देवानां भद्रा सुमतिर्ऋजूयताम्।। ऋ० १/८९/२

ISSN : 2395-7115
Impact Factor 8.642
January 2025
Vol.-21, Issue-1

# Bohal Shodh Manjusha

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

UGC Valid Journal (The Gazette of India, Extraordinary Part III, Section 4, Dated July 18, 2018)

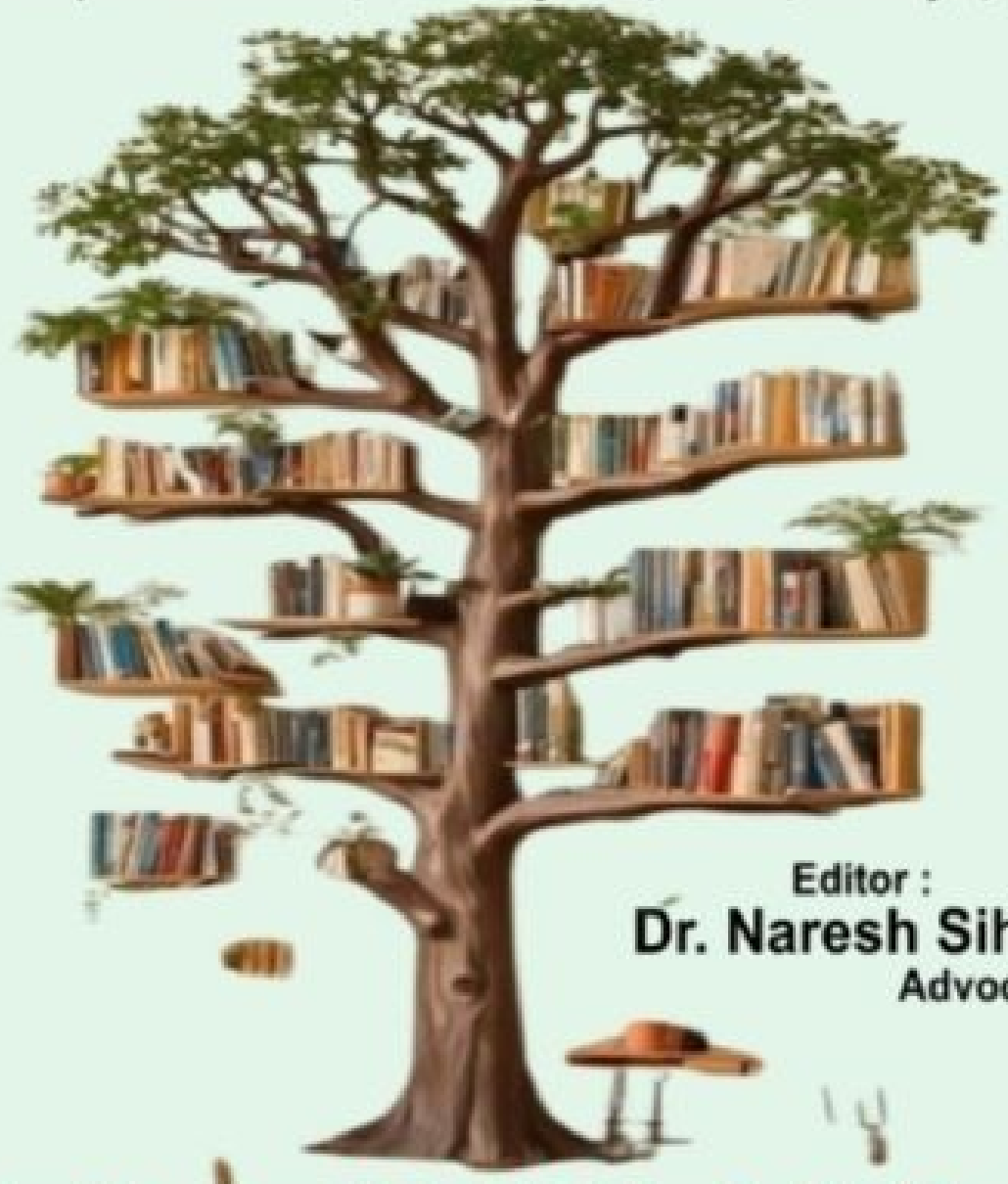

Editor :
Dr. Naresh Sihag
Advocate

Publisher :
Gugan Ram Educational & Social Welfare Society (Regd.)
202, Old Housing Board, Bhiwani, Haryana-127021

स्व. चौ. गुगनराम सिहाग व उनकी छोटी बहन स्व. श्रीमती गीना देवी के शुभाशीर्वाद से प्रकाशित

JOURNAL OF HUMANITIES, COMMERECE, SCIENCE, MANAGEMENT & LAW

# बोहल शोध मञ्जूषा

# Bohal Shodh Manjusha

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

Vol. 21 ISSUE-1 (जनवरी 2025) ISSN : 2395-7115

*प्रेरणा :*

**चौ. एम. सिहाग**

*सम्पादक :*

**डॉ. नरेश सिहाग 'बोहल', एडवोकेट**

एम.ए. (समाजशास्त्र, लोक प्रशासन, हिन्दी शिक्षा शास्त्र, पत्रकारिता),
एम.फिल (समाजशास्त्र, हिन्दी) एम. लिब., एल-एल.बी. (ऑनर्स),
डिप्लोमा पंचायती राज (रजत पदक विजेता), पी.एच.डी. (हिन्दी)
डी.लिट् (मानद उपाधि), काठमांडू, नेपाल
विभागाध्यक्ष हिन्दी एवं शोध निर्देशक
टांटिया विश्वविद्यालय, श्रीगंगानगर-335001 (राज.)

**प्रकाशक :**

**गुगनराम एजुकेशनल एण्ड सोशल वैलफेयर सोसायटी (रजि.)**

202, पुराना हाऊसिंग बोर्ड, भिवानी-127021 (हरियाणा)

# Bohal Shodh Manjusha

AN INTERNATIONAL REFEREED/REVIEWED AND INDEXED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL
ISSN 2395-7115

**सम्पादकीय सम्पर्क :**
**डॉ. नरेश सिहाग एडवोकेट**
**202, पुराना हाऊसिंग बोर्ड,**
**भिवानी-127021 (हरियाणा)**
Email : nksihag202@gmail.com
मो. 09466532152

*Published by :*
Gugan Ram Educational & Social Welfare Society (Regd.)
202, Old Housing Board,
Bhiwani-127021 (Haryana) INDIA
Email : grsbohal@gmail.com
Facebook.com/bohalshodhmanjusha
Website : www.bohalsm.blogspot.com
WhatsApp : 9466532152

All Right Reserved by Publisher & Editor

Price

Individual/Institutional : 1100/-

*Disclaimer :*

1. Printing, Editing, Selling and distribution of this Journal is absolutely honorary and non-commercial.
2. All the Cheque/Bank Draft/IPO should be sent in the name of Gugan Ram Educational & Social Welfare Society payable at Bhiwani.
3. Articles in this journal do not reflect the Views or Policies of the Editor's or the Publisher's. Respective authors are responsible for the originally of their views/opinions expressed in their articles.
4. All dispute will be Subject to Bhiwani, Hry. Jurisdication only.

*Printed by :* Manbhawan Printers, Old Bus Stand Road, Naya Bazar, Bhiwani (Hry.)

# बोहल शोध मंजूषा परिवार*

## मानद संरक्षक

**प्रो. राधेमोहन राय**
पूर्व उप प्राचार्य,
राजकीय स्नातकोत्तर महा.,
अलवर, राजस्थान।

**डॉ. राजेन्द्र गोदारा**
परीक्षा नियंत्रक,
टांटिया विश्वविद्यालय,
श्रीगंगानगर, राजस्थान।

**डॉ. विनोद तनेजा**
पूर्व अध्यक्ष, हिन्दी विभाग
गुरूनानक वि.वि. अमृतसर
पंजाब।

## सम्पादक मण्डल

सह सम्पादिका :
**डॉ. रेखा सोनी**
उप प्राचार्या, शिक्षा विभाग
टाटिया वि.वि. श्रीगंगानगर।

सह सम्पादिका :
**डॉ. सुशीला आर्या**
हिन्दी विभाग, चौ. बंसीलाल
विश्वविद्यालय, भिवानी।

प्रबंध सम्पादक :
**समुन्द्र सिंह**
भिवानी, हरियाणा।

## विधि विशेषज्ञ

**डॉ. रामफल दलाल**, एडवोकेट
जिला न्यायालय
भिवानी, हरियाणा।

**अजीत सिहाग**, एडवोकेट
पंजाब एवं हरियाणा हाईकोर्ट,
चंडीगढ़।

**चरणवीर सिंह**, एडवोकेट
जिला न्यायालय
पटियाला, पंजाब।

## विषय विशेषज्ञ/परामर्शदात्री/शोधपत्र निरीक्षण समिति

**माई मनीषा महंत**
किन्नर अधिकार ट्रस्ट
भूना, जिला कैथल, हरियाणा

**डॉ. विश्वबंधु शर्मा**
पूर्व अध्यक्ष, हिन्दी विभाग
बाबा मस्तनाथ वि.वि. रोहतक

**डॉ. संजय एल. मादार**
विभागाध्यक्ष, पी.जी. केन्द्र
द.भा.हिन्दी प्रचार सभा हैदराबाद।

**डॉ. गीता दहिया**, प्राचार्या,
नैशनल टीटी कॉलेज फॉर गर्ल्स
अलवर, राजस्थान

**डॉ. विनोद कुमार**
हिन्दी विभाग, लवली प्रोफेशनल
यूनिवर्सिटी, पंजाब

**डॉ. मो. रियाज़ खान**
बीएमएस वूमैन कॉलेज आटोनोमेस
बेगलूरू

**डॉ. वनिता कुमारी**
च. दादरी (हरियाणा)

**श्री सहदेव समर्पित**
सम्पादक, शान्तिधर्मी, जीन्द

**डॉ. अंजली उपाध्याय**
उत्तर प्रदेश

**डॉ. लता एस. पाटिल**
राजीव गांधी बीएड कालेज
धारवाड़, कर्नाटक

**प्रो. अमनप्रीत कौर**
गुरू तेग बहादुर खालसा कॉलेज
फॉर वूमैन, दसूहा, पंजाब

**डॉ. वर्षा रानी**
संस्कृत विभाग, डॉ. भीमराम
अम्बेडकर, वि.वि., आगरा

**प्रो. कमलेश चौधरी**
राजकीय रणबीर महाविद्यालय
संगरूर, पंजाब

**डॉ. किरण गिल**
दीनदयाल टी.टी. महाविद्यालय
बारी, जिला सीकर, राज.

**डॉ. सविता घुड़केवार**
पीजी विभाग, दक्षिण भारत
हिन्दी प्रचार सभा, मद्रास

**डॉ. परमजीत कौर**
बरेली कॉलेज बरेली,
उत्तर प्रदेश।

**डॉ. राजकुमारी शर्मा**
नेपाल

**डॉ. श्रीविद्या एन.टी.**
श्री शंकराचार्य संस्कृत वि.वि.
केरल।

**डॉ. बी. संतोषी कुमारी**
पी.जी.विभाग, दक्षिण भारत हिन्दी
प्रचार सभा, मद्रास

**श्री राकेश ग्रेवाल**
सन जॉस,
कैलिफोर्निया, यू.एस.ए.

**डॉ. पंडित बन्ने**
भारत महाविद्यालय,
सोलापुर (महाराष्ट्र)

**डॉ. पायल लिल्हारे**
अमरशहीद चंद्रेशेखर आजाद
शा.स्ना.महा. निवाड़ी, मध्यप्रदेश

**श्री राकेश शंकर भारती**
यूक्रेन।

**डॉ. उमा सैनी**
आई.ए.एस.ई. विश्वविद्यालय
सरदारशहर, राजस्थान

**डॉ. मनमीत कौर**
राधा गोविन्द वि.वि.,
रामगढ़, झारखण्ड।

**डॉ. रीना उन्नीयाल तिवारी**
शिक्षा संकाय, डी.ए.वी. पीजी
कालेज, देहरादून

**डॉ. सुरजीत सिंह कस्वां**
डीन फिजिकल एजुकेशन
टांटिया वि.वि., श्रीगंगानगर,

**डॉ. शबाना हबीब**
त्रिवन्तपुरम, केरल

**डॉ. शिवकरण निमल**
राजस्थान

**डॉ. राधाकृष्णन गणेशन**
वाराणसी

**डॉ. मानसिंह दहिया**
हरियाणा

**डॉ. नीलम आर्या**
उत्तर प्रदेश

**डॉ. रवि सुण्डयाल**
जम्मू कश्मीर

**प्रो. नरेन्द्र सोनी**
डी.एन. कॉलेज, हिसार।

**प्रो. रोहतास**
डी.एन. कॉलेज, हिसार।

**प्रो. सत्यबीर कालोहिया**
पूर्व प्राचार्य, कैलिफोर्निया।

**डॉ. इस्पाक अली**
प्राचार्य, लाल बहादुर शास्त्री
शिक्षा महाविद्यालय, बेंगलूरू

**प्रो. रेखा रानी**
गवर्नमेंट कॉलेज
संगरूर, पंजाब

**डॉ. के.के. मल्हौत्रा**
पूर्व विभागाध्यक्ष
गवर्नमेंट कॉलेज, गुरदासपुर

**डॉ. संजीव कुमार विश्वकर्मा**
शासकीय महाविद्यालय,
लवकुश नगर, मध्य प्रदेश

**डॉ. परमानन्द त्रिपाठी**
एचओडी एजुकेशन, एल.एन.डी.
कालेज, मोतिहारी, बिहार

**डॉ. करमजीत कौर**
प्राचार्या, दशमेश गर्ल्स कॉलेज
चक आला, मुकेरिया, पंजाब

*सम्पूर्ण बोहल शोध मञ्जूषा परिवार/सम्पादक मण्डल अवैतनिक है।

# शोध-पत्र प्रकाशन के लिए निर्देश मंजूषा

गुगनराम सोसायटी (पंजीकृत) द्वारा शोधार्थियों व अध्येताओं के शोध/अनुसंधान की गतिविधियों को प्रोत्साहित करने हेतू बोहल शोध मंजूषा ISSN 2395-7115 नामक बहुभाषिक अंतर्राष्ट्रीय शोध पत्रिका का प्रकाशन किया जा रहा है। कला, संस्कृति, विज्ञान, वाणिज्य, मानविकी, प्रबंध, प्रौद्योगिकी, विधि, भूगोल, शिक्षा, पत्रकारिता पर केन्द्रीत इस शोध पत्रिका को विषय विशेषज्ञों तथा मनीषी विद्वानों की सक्रिय सहभागिता प्राप्त है। पत्रिका का वार्षिक शुल्क 1100 रु. है।

आप अपना शोध पत्र कम्प्यूटर से मुद्रित फोन्ट साईज 14, कृतिदेव-10, कृतिदेव-21 में व अंग्रेजी के Arial, Times New Roman में पेज मेकर या माइक्रोसोफ्ट वर्ल्ड में हमारी Email ID : grsbohal@gmail.com पर भेजें। शोध पत्र प्रेषित करने से पूर्व दिये गये सन्दर्भ, मात्रा आदि की पूर्णतया जाँच कर लें।

नोट :- उर्दू, पंजाबी आदि भाषा के शोध पत्र पेपर साईज 7x9.5 पर टाईप कराकर JPG या PDF फाईल हमारी ईमेल आई.डी. पर भेज सकते हैं।

हमारी पत्रिका में शोध पत्र लेखक के फोटो सहित प्रकाशित किये जाते हैं। इसलिए आप अपने शोध पत्र के साथ पासपोर्ट साईज फोटोग्राफ, सम्पर्क सूत्र : टेलीफोन, मोबाईल नं., ई-मेल तथा पिनकोड सहित पत्र व्यवहार का पूरा पता (हिन्दी व अंग्रेजी) कम्प्यूटर द्वारा टाईप करवाकर भेजें।

★ शोध पत्र 2000-2500 शब्दों (4-6 पेज) से अधिक नहीं होनी चाहिए, यदि शब्द सीमा अधिक होती है तो सम्पादक को अधिकार होगा यथा स्थान संक्षिप्तीकरण कर दें। अस्वीकृत शोध पत्र की वापसी संभव नहीं है।

★ पत्रिका में प्रकाशित श्रेष्ठ शोध पत्र को हमारी सोसायटी/पत्रिका की ओर से बहुउपयोगी श्रीमती गिना देवी शोधश्री सम्मान प्रदान किया जायेगा।

★ शोध पत्र में व्यक्त विचार लेखकों के स्वयं के विचार हैं। उनसे सम्पादक, प्रकाशक की सहमति आवश्यक नहीं है। शोध पत्र में प्रयुक्त किए गए तथ्यों के प्रति संबंधित लेखक उत्तरदायी होगा। पत्रिका में शोध आलेख प्रकाशन के लिए भेजने से पहले सम्पूर्ण जानकारी प्राप्त करना लेखक का दायित्व है। प्रत्येक विवाद का न्यायक्षेत्र भिवानी (हरियाणा) होगा।

★ सम्पादकीय पद अव्यावसायिक और अवैतनिक हैं। पत्रिका में केवल शोध पत्र ही प्रकाशनार्थ भेजें। शोध पत्र का प्रकाशन योजना एवं व्यवस्था के अनुसार यथा समय व प्रकाशित समस्त शोध पत्रों का सर्वाधिकार समिति/सम्पादक के पास सुरक्षित होगा।

**नोट :**

सहयोग/सदस्यता राशि 1100/- रू. का ड्राफ्ट/चैक/आई.पी.ओ. 'गुगनराम एजुकेशनल एण्ड सोशल वैलफेयर सोसायटी' के नाम भेजें तथा ऑनलाईन बैंक में सहयोग जमा राशि की रसीद की फोटोप्रति अपने आलेख के साथ हमें मेल कर सूचित करने का कष्ट करें ताकि समय पर रसीद भेजी जा सके। ऑनलाईन सहयोग राशि के साथ 50/- रू. अतिरिक्त अवश्य जमा करवायें। प्रकाशन सहयोग शुल्क वापिस देय नहीं।

| | | |
|---|---|---|
| बैंक का नाम | : | पंजाब नैशनल बैंक, हालु बाजार, भिवानी (हरियाणा) |
| खाता धारक का नाम | : | गुगनराम एजुकेशनल एण्ड सोशल वैलफेयर सोसायटी |
| बैंक खाता संख्या | : | 1182000109078119 |
| IFSC Code | : | PUNB0118200 |
| MICR CODE | : | 127024003 |

# अनुक्रमणिका - जनवरी 2025


| क्र० | विषय | लेखक | पृष्ठ |
|---|---|---|---|
| 1. | संपादकीय | डॉ० नरेश सिहाग | 10-10 |
| 2. | भारतीय मन्दिर स्थापत्य कला : एक अध्ययन | ज्योति, डॉ० विवेक डांगी | 11-15 |
| 3. | समकालीन कविता की पृष्ठभूमि | डॉ० अनिता जोशी, डॉ० विक्रम सिंह | 16-18 |
| 4. | चरणदासी संप्रदाय में प्रेमाभक्ति | रूमी जायसवाल, प्रो० विजय कुमार सिंह | 19-22 |
| 5. | भारतीय साहित्य की अवधारणा | डॉ० हेमन्त सिंह कंवर | 23-25 |
| 6. | कबीर काव्य में प्रतीक एवं बिम्ब | निवेदिता स्वरूप | 26-30 |
| 7. | मानव मूल्य और साहित्य का अंतर्संबंध | नीतू तिवारी | 31-38 |
| 8. | ଗଙ୍ଗାଧର ମେହେରଙ୍କ କବିତା ଏକ ସୌନ୍ଦର୍ଯ୍ୟ-ତାତ୍ତ୍ୱିକ ଅଧ୍ୟୟନ | Dr. Prahallad Khilla | 39-50 |
| 9. | सामाजिक विचारधारा में पुरुषवादी लेखन-शैली और स्त्री विमर्श (मु. हनीफ 'अकेला' के कथा-संग्रहों के विशेष संदर्भ में) | डॉ. नम्रता गौरव | 51-57 |
| 10. | हिंदी साहित्य में स्त्री-विमर्श की अभिव्यक्ति | डॉ. बिंदु कनौजिया | 58-62 |
| 11. | बौद्ध धर्म में स्तूप का महत्व - भरहुत व साँची के विशेष सन्दर्भ में | मौ० सलमान, डॉ० मनसूर अहमद सिददीकी | 63-64 |
| 12. | समकालीन साहित्य और भूमंडलीकरण :किन्नर - विमर्श | प्रो. सत्यनारयणप्पा | 65-67 |
| 13. | गिरिजा कुमार माथुर के काव्य में अस्वीकृति - बोध की अभिव्यक्ति | डॉ. चौवाराम यदु | 68-71 |
| 14. | “स्लम क्षेत्रों में किशोरों एवं वृद्धों में मादक पदार्थों के सेवन की प्रवृति" ( नालन्दा जिला के | मो० गयास सरवर | 72-78 |

| | | | |
|---|---|---|---|
| | बिहार शरीफ नगर के विशेष संदर्भ में) | | |
| 15. | 'गया में एक अदद दलित' उपन्यास में चित्रित दलित चेतना एवं प्रतिरोध | अंजिता जे. एम, | 79-84 |
| 16. | साहित्य का आधार लोकसाहित्य | डॉ॰ डी॰ सी॰ पाण्डेय | 85-90 |
| 17. | योगाभ्यास का शैक्षिक उपलब्धि पर प्रभाव : साहित्य का अवलोकन | राशी तिवारी, संतोष जागवानी | 91-96 |
| 18. | 'संस्कृत साहित्य में वर्णित पांच विकारों का वर्णन' | डॉ. मीनू तलवाड़ | 97-101 |
| 19. | यमुना के बागी बेटे उपन्यास में सामाजिक-सांस्कृतिक चेतना | ऐपिन सिंह | 102-105 |
| 20. | समकालीन भारत में न्यायिक सक्रियता : एक समीक्षा | आर्या सिंह | 106-110 |
| 21. | भारतीय संघवाद एवं इसका बदलता स्वरूप | प्रवीण कुमार | 111-114 |
| 22. | मातृभाषा बनाम हिन्दी की उपभाषाएँ और बोलियाँ : वर्तमान और भविष्य | डॉ. अनामिका सिंह | 115-117 |
| 23. | राम की शक्ति-पूजा और निराला के काव्य सौन्दर्य | डॉ॰ प्रशांत केतु | 118-123 |
| 24. | Online Buyer Behavior: Factors Affecting Online Purchasing Choices | Sarabjit Kaur Panesar | 124-130 |
| 25. | చెలియలికట్ట - వివాహ వ్యవస్థ | డా. కె. వి. శాంతకుమారి | 131-135 |
| 26. | मधु कांकरिया कृत उपन्यास 'सेज पर संस्कृत' में चित्रित नारी अस्मिता का संघर्ष | मोनिका | 136-140 |
| 27. | आचार्य सोमानन्द द्वारा विरचित शिवदृष्टि में योगतत्त्व की अवधारणा | टीना कुमारी | 141-143 |
| 28. | इक्कीसवीं सदी की हिंदी कविताओ में दलित चेतना | श्री परवीज़ पाशा एस, डॉ. प्रभुसेन, | 144-150 |
| 29. | समकालीन कथाकरो का तुलनात्मक अध्ययन- | मोनिका मेहता, | 151-153 |

| | | | |
|---|---|---|---|
| | नारी संघर्ष | डॉ. सुमन कौशिक | |
| 30. | “गांधी और हिंदी कथा साहित्य” | निधी मिश्रा | 154-159 |
| 31. | अमृतलाल नागर के बाल साहित्य में अभिव्यक्त जीवन मूल्य | डॉ. हेलन मेरी ए. जे. | 160-163 |
| 32. | लोकतांत्रिक समाज में लैंगिक समानता को बढ़ावा देने और महिलाओं को सशक्त बनाने में शिक्षा की भूमिका | पूजा कुमारी | 164-174 |
| 33. | नारी जागरण की अभिव्यति में महात्मा ज्योतिबा फुले का योगदान | विजयलक्ष्मी, डॉ॰ विवेक डांगी | 175-181 |
| 34. | राजस्थान के पूर्व में दादू पंथ का प्रमुख योगदान | श्री विक्रम सिंह | 182-187 |
| 35. | E-COMMERCE AND CONSUMER RIGHTS: APPLICABILITY OF CONSUMER PROTECTION LAWS IN INDIA ONLINE TRANSACTIONS | Sarabjit Kaur Panesar | 188-195 |
| 36. | वाल्मीकिरामायण में प्रौद्योगिकी | रोहित कुमार | 196-198 |
| 37. | वाल्मीकिरामायण में मूर्तिकला वास्तु विज्ञान के आधार पर | वीणा शर्मा | 199-200 |
| 38. | भोजपुरी संस्कार गीतों में निहित लोक-मान्यताएँ व प्रथाएँ | सृष्टि गंगवार | 201-205 |
| 39. | मानवाधिकार और पुलिस नैतिकता | रमेश कुमार भोजक, डॉ. तेज कुमार | 206-209 |
| 40. | ऐतिहासिक रूप से बांग्लादेश के निर्माण में भारत की भूमिका | धनराज दादालियन | 210-213 |
| 41. | लोक देवता तथा धर्म: राजस्थान में सामाजिक भूमिका | श्रीमती कविता यादव | 214-217 |
| 42. | रीतिकाल में समावेशित भक्तिकालीन प्रवृत्तियाँ | डॉ॰ आशा हर्बोला | 218-220 |
| 43. | डॉ. शेर सिंह बिष्ट के कुमाउनी पद्य साहित्य में लोक संस्कृति | रेवा महरा | 221-226 |

| | | | |
|---|---|---|---|
| 44. | 21 वीं सदी के नाटकों मे राष्ट्रीय एकता एवं सांप्रदायिक सद्भाव (जिस लाहौर नइ देख्या ओ जम्याइ नइ' नाटक के विशेष संदर्भ में) | डॉ. चौधरी नीलोफर महेबुब | 227-230 |
| 45. | श्री राधासर्वेश्वरशरणदेवाचार्य विरचित काव्यों एवं संस्कृत वाङ्मय में मानवीय जीवन मूल्यों का तुलनात्मक अध्ययन | डॉ. भेषराज शर्मा, लक्ष्मण राम शर्मा | 231-237 |
| 46. | तेजेंद्र शर्मा की कहानियों में मानवीय संवेदना | मोनिका मेहता, डॉ. सुमन कौशिक | 238-240 |
| 47. | ਪੰਜਾਬੀ ਗਜ਼ਲ : ਇਤਿਹਾਸਕ ਪਰਿਪੇਖ | ਜਗਜੀਤ ਸਿੰਘ ਡਾ. ਇਕਬਾਲ ਸਿੰਘ ਸੰਧੂ | 241-248 |
| 48. | TEACHING EFFECTIVENESS OF SECONDARY SCHOOL TEACHERS' | MR. RAVINDER SINGH | 249-254 |

# संपादकीय

प्रिय पाठकों!

जनवरी का यह अंक आपके समक्ष प्रस्तुत करते हुए हमें अपार हर्ष हो रहा है। यह केवल एक नया महीना नहीं, बल्कि एक नया वर्ष है, जो हमें शोध और नवाचार के क्षेत्र में नयी ऊंचाइयों तक पहुंचने का अवसर प्रदान करता है। "बोहल शोध मंजूषा" ने अपने पाठकों और शोधकर्त्ताओं के साथ मिलकर हमेशा ज्ञान-विस्तार के नये आयाम तलाशे हैं, और इस दिशा में हमारा यह प्रयास सतत जारी रहेगा।

नववर्ष 2025 की शुरुआत में, हम 'बोहल शोध मंजूषा' के इस अंक के माध्यम से आपके समक्ष प्रस्तुत हैं। यह अंक विशेष रूप से उन शोधकर्त्ताओं, लेखकों और पाठकों के लिए समर्पित है, जो ज्ञान की खोज में निरंतर अग्रसर हैं। इस वर्ष, हम कुछ विशेष कार्यों की योजना बना रहे हैं:

1. **शोध-पत्रों की गुणवत्ता में सुधार :** हम सुनिश्चित करेंगे कि प्रकाशित शोध-पत्र उच्चतम गुणवत्ता के हों, ताकि पाठकों को नवीनतम और विश्वसनीय जानकारी मिल सके।
2. **विविध विषयों पर ध्यान केंद्रित करना :** विभिन्न क्षेत्रों में शोध को बढ़ावा देने के लिए, हम विभिन्न विषयों पर विशेषांक प्रकाशित करेंगे, जिससे विभिन्न क्षेत्रों के शोधकर्त्ताओं को मंच मिलेगा।
3. **ऑनलाइन प्लेटफ़ॉर्म का विस्तार :** डिजिटल माध्यमों द्वारा हम अपने पाठकों तक पहुंच बढ़ाएंगे, जिससे वे कहीं से भी हमारे शोध-पत्रों का लाभ उठा सकें।
4. **शोधकर्त्ताओं के लिए कार्यशालाएं और सेमिनार :** हम शोधकर्त्ताओं के लिए कार्यशालाएं और सेमिनार आयोजित करेंगे, ताकि वे अपने ज्ञान को साझा कर सकें और नवीनतम शोध प्रवृत्तियों से अवगत हो सकें।

हमारे पाठकों की निरंतर समर्थन और सहभागिता के लिए हम आभारी हैं। हम आशा करते हैं कि इस वर्ष के हमारे प्रयास आपके लिए लाभकारी होंगे और हम मिलकर ज्ञान की नयी ऊँचाइयों तक पहुँचेंगे।

आपके सुझाव और विचार हमेशा हमारे लिए प्रेरणा स्रोत रहे हैं। हम आशा करते हैं कि आप हमारे इस प्रयास को और बेहतर बनाने के लिए अपना सहयोग देते रहेंगे।

नए वर्ष की शुभकामनाओं के साथ,

**संपादक मंडल**

**बोहल शोध मंजूषा**

www.bohalshodhmanjusha.com Bohal Shodh Manjusha ISSN: 2395-7115
Impact Factor:8.642 January 2025 Page No. : 11-15
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

# भारतीय मन्दिर स्थापत्य कला : एक अध्ययन

**ज्योति,** शोध छात्रा इतिहास विभाग,
B. M. U. रोहतक हरियाणा,
**डॉ. विवेक डांगी,** शोध सह निर्देशक, सहायक प्रोफेसर,
इतिहास विभाग, आ. इं. जाट. एच. एम. कॉलेज. रोहतक

**सारांश**

हिंदू धर्म भारतीय भूमि का प्रमुख धर्म है। यह धर्म लौह युग से दृष्टिगत है और इसे दुनिया का सबसे पुराना जीवित धर्म कहा जाता है। हिंदू धर्म का कोई एक संस्थापक नहीं है और यह मान्यताओं की एक कठोर प्रणाली के बजाय विविध परंपराओं और दर्शनो का समूह है। अधिकांश हिंदू एक ही परम ईश्वर में विश्वास करते हैं जो देवों के रूप में कई अलग–अलग रूपों में प्रकट होता है, और वे एक ही ईश्वर के अनेक व्यक्तिगत पहलुओं के रूप में विशेष देवों की पूजा कर सकते हैं। भारतीय मन्दिर स्थापत्य कला विश्वास की इस विविधता को दर्शाती है, और भारतीय मन्दिर, जहां वास्तुकला और मूर्तिकला अटूट रूप से जुड़े हुए हैं, और यह विभिन्न देवताओं को समर्पित हैं। ज्यादातर पूजे जाने वाले देवताओं में भगवान शिव शामिल हैं श्री हरि विष्णु अपने अवतारों में राम और कृष्ण के रूप में गणेश समृद्धि के देवता और देवी शक्ति के विभिन्न रूप, हिन्दू देवताओं को अक्सर अनेक अंगों और सिरों के साथ चित्रित किया जाता है, जो भगवान की शक्ति और क्षमता की सीमा को दर्शाते है। भारतीय मन्दिर स्थापत्य कला की विशेषता कई आवर्ती पवित्र प्रतीकों से भी है, जिनमें ओम भी है, जो ईश्वर की दिव्य चेतना का आहवान है। स्वस्तिक, सौभाग्य का प्रतीक और कमल का फूल पवित्रता, सुंदरता, उर्वरता और उत्कृष्टता का प्रतीक। मूर्तिकला भारतीय मन्दिरों में वास्तुकला से अटूट रूप से जुड़ी हुई है, जो साधारणतः कई अलग–अलग देवताओं को समर्पित हैं।

**मुख्य शब्द** : हिन्दू मन्दिर, भारतय मन्दिर, पुरातन मन्दिर, स्थापत्य कला, वास्तुकला।

**भूमिका**

हिंदू धर्म विभिन्न परंपराओं और दर्शनों का एक संग्रह है, न कि मान्यताओं का एक कठोर समूह। अधिकांश हिंदू एक ही परम ईश्वर में विश्वास करते हैं जो देवी या देवताओं के रूप में कई अलग–अलग रूपों में प्रकट होता है, और वे एक ही ईश्वर के व्यक्तिगत पहलुओं के रूप में विशेष देवों की पूजा करते हैं। हिंदू मूर्तिकला, जैसा कि भारतीय मन्दिर स्थापत्य कला के अन्य रूपों में देखा जाता है, मान्यताओं की इस विविधता को दर्शाती है। चूँकि धर्म और संस्कृति हिंदू धर्म से अटूट रूप से जुड़े हुए हैं, इसलिए हिंदू मूल की कई मूर्तियों में देवता और उनके पुनर्जन्म, कमल के फूल, अतिरिक्त अंग और यहां तक कि पारंपरिक कला जैसे आवर्ती प्रतीक दिखाई देते हैं। मूर्तिकला भारतीय मन्दिरों की वास्तुकला से अटूट रूप से जुड़ी हुई है, जिनमें से अधिकांश विभिन्न देवताओं को समर्पित हैं। भारतीय मन्दिर शैली कला, धर्म के आदर्शों, आस्था, मूल्यों और हिंदू धर्म में मूल्यवान जीवन शैली के संश्लेषण को दर्शाती है। इन मंदिरों को पूरी तरह से मूर्तियों से सजाया गया है, जो कलाकृतियों, नक्काशीदार स्तंभों और मूर्तियों की एक मण्डली बनाते हैं जो हिंदू धर्म में

मानव जीवन के चार महत्वपूर्ण और आवश्यक सिद्धांतों का प्रतिनिधित्व करते हैं – अर्थ (समृद्धि, धन) की खोज, काम की खोज (आनंद), धर्म की खोज (सदाचार, नैतिक जीवन) और मोक्ष की खोज (मुक्ति, आत्म–ज्ञान)।

प्राचीन भारत में लगभग सभी क्षेत्रों में उच्च कोटि की मंदिर वास्तुकला विकसित हुई। विभिन्न भागों में मंदिर निर्माण की भिन्न–भिन्न स्थापत्य शैली भौगोलिक, जलवायु, जातीय, नस्लीय, ऐतिहासिक और भाषाई भिन्नताओं का परिणाम थी। प्राचीन भारतीय मंदिरों को तीन प्रमुख भागो में वर्गीकृत किया गया है। यह वर्गीकरण मंदिरों के निर्माण में प्रयुक्त विभिन्न स्थापत्य शैलियों पर आधारित है। मंदिर वास्तुकला की तीन प्रमुख शैलियाँ हैं

1. नागर या उत्तरी शैली
2. द्रविड़ या दक्षिणी शैली
3. वेसर या मिश्रित शैली

साथ ही, बंगाल, केरल और हिमालयी क्षेत्रों की कुछ क्षेत्रीय शैलियाँ भी हैं। प्राचीन भारतीय मंदिरों का एक महत्वपूर्ण हिस्सा उनकी सजावट थी। यह आकृति मूर्तिकला के विवरण और वास्तुशिल्प तत्वों दोनों में परिलक्षित होता है। भारतीय मंदिरों की एक अन्य महत्वपूर्ण विशेषता गर्भ–गृह या गर्भ कक्ष थी, जिसमें मंदिर के देवता रहते हालाँकि, मंदिर परिसरों के भीतर कई सहायक मंदिर भी होते हैं, जो दक्षिण भारतीय मंदिरों में अधिक देखने को मिलते हैं। विकास के प्रारंभिक चरण में, उत्तर और दक्षिण भारत के मंदिरों को कुछ विशिष्ट विशेषताओं जैसे शिखर और द्वार के आधार पर अलग किया गया था। उत्तर भारतीय मंदिरों में शिखर सबसे प्रमुख विशेषता रहा, जबकि द्वार आम तौर पर अदृश्य थे। दक्षिण भारतीय मंदिरों की सबसे प्रमुख विशेषताएँ मंदिरों के चारों ओर के घेरे और गोपुरम (विशाल द्वार) थे। गोपुरम भक्तों को पवित्र प्रांगण में ले गए। उत्तरी और दक्षिणी शैलियों में कई समानताएँ थीं। इसमें फर्श योजना, बाहरी दीवारों और आंतरिक भाग पर नक्काशीदार पत्थर के देवताओं की स्थिति और सजावटी तत्वों का चयन शामिल था। भारतीय मन्दिर वास्तुकला एक खुली, समरूपता–उन्मुख संरचना है जिसमें एक वर्गाकार पद ग्रिड पर कई विविधताएं होती हैं जो वृत्त और वर्गों जैसी सही ज्यामितीय आकृतियों को दर्शाती हैं। एक भारतीय मन्दिर में एक आंतरिक गर्भगृह, गर्भगृह या गर्भ कक्ष होता है, जिसमें पुरुश के अलावा किसी देवता की प्राथमिक मूर्ति होती है। गर्भगृह के शीर्ष पर एक मीनार जैसा शिखर है, जिसे विमान कहा जाता है। वास्तुकला में परिक्रमा के लिए एक बाह्य कक्ष, एक सामुदायिक हॉल और कभी–कभी एक बरोठा और बरामदा शामिल होता है। भारतीय मन्दिर वास्तुकला हिंदू धर्म में मूल्यवान कलाओं, धर्म के आदर्शों, मान्यताओं, मूल्यों और जीवन शैली के संश्लेषण को दर्शाती है। यह एक पवित्र स्थान में लोगों, देवताओं और सार्वभौमिक पुरुष (देवता) के बीच एक संबंध है।

ऐसा माना जाता है कि भारतीय मन्दिर का सार इस विचारधारा से विकसित हुआ है कि सभी चीजें एक हैं और सब कुछ आपस में जुड़ा हुआ है। गणितीय रूप से संरचित कमरे, जटिल कलाकृति, सजाए गए और नक्काशीदार खंभे और भारतीय मन्दिरों की स्थापत्य कला को दर्शाते हैं। दर्शन मंदिर के केंद्र में बिना किसी सजावट के एक गुहा, आमतौर पर देवता के नीचे, लेकिन देवता के किनारे या ऊपर भी हो सकता है। यह पुरुष की जटिल अवधारणा का प्रतीक है, जिसका अर्थ है – सार्वभौमिक सिद्धांत, चेतना, ब्रह्मांडीय मनुष्य। हालांकि, प्रत्येक रूप सर्वव्यापी है और सभी चीजों को जोड़ता है। भारतीय मन्दिर चिंतन, प्रोत्साहन और मन की शुद्धि को प्रोत्साहित करते हैं और भक्तों के बीच आत्म–साक्षात्कार की प्रक्रिया को संचारित करते हैं।

भारतीय मन्दिर के परिसरों के क्षेत्र आमतौर पर विशाल होते हैं और उनमें से कई प्रकृति की गोद में जल निकायों के पास स्थित होते हैं। ऐसा शायद इसलिए है, क्योंकि प्राचीन संस्कृत ग्रंथों के अनुसार, भारतीय मन्दिर जिसे मंदिर कहा जाता है, उनके लिए सबसे उपयुक्त स्थान जल निकायों और बगीचों के करीब ही माना गया है जहां फूल खिलते हैं, पक्षियों का चहचाहट और बत्तखों और हंसों की आवाज सुनी जा सकती है जहाँ बिना भय के शांति है। ऐसे स्थान जो इन आवश्कताओं की पूर्ती करते हैं, उनको ग्रंथों में भारतीय मन्दिरों के निर्माण के लिए श्रेष्ठ बताया गया है, जो बताते हैं कि ऐसे स्थानों पर देवता निवास करते हैं। यद्यपि पुराण और भारत संहिता के

अनुसार, प्रमुख भारतीय मन्दिरों का निर्माण प्राकृतिक जल निकायों जैसे नदियों के संगम, नदी तट, समुद्र तट और झीलों के पास करने का सुझाव दिया गया है, लेकिन मंदिरों का निर्माण उन स्थानों पर भी किया जा सकता है जहां कोई प्राकृतिक जल निकाय नहीं हैं। हालाँकि, इन सुझावों में एक तालाब और उसके सामने जल उद्यान होना भी शामिल है

"मंदिर" या बायीं ओर प्राकृतिक और कृत्रिम दोनों जल निकायों की अनुपस्थिति में, देवता या मंदिर के अभिषेक के दौरान पानी आमतौर पर मौजूद रहता है। हिंदू ग्रंथ विष्णुधर्मोत्तरपुराण में भी गुफाओं और नक्काशीदार पत्थरों के भीतर मंदिर बनाने की प्रेरणा दी गई है जो शानदार हो और शांत परिदृश्यों के बीच पहाड़ियों पर आश्रमों और वनों में बगीचों के बगल में और शहर की एक सड़क के शीर्ष पर हो।

एक भारतीय मन्दिर की फर्श योजना एक ज्यामितीय वास्तुकला पर आधारित होती है जिसे वास्तु पुरुष मंडल के रूप में जाना जाता है। यह शब्द तीन आवश्यक घटकों से लिया गया है, अर्थात् वास्तु, जिसका अर्थ है वास या निवास, पुरुष – जिसका अर्थ है सार्वभौमिक सिद्धांत और मंडल का अर्थ है। वास्तु पुरुष मंडल एक रहस्यमय आरेख है जिसे संस्कृत में यंत्र कहा जाता है। वास्तु में प्रस्तुत भारतीय मन्दिर का सममित और दोहराव वाला मॉडल प्राथमिक मान्यताओं, परंपराओं, मिथकों, मौलिकताओं और गणितीय मानकों से लिया गया है। वास्तुपुरुषमंडल के अनुसार, भारतीय मन्दिर के लिए सबसे पवित्र और विशिष्ट मंडुका भारतीय मन्दिर की फर्श योजना है, जिसे भेकपाड़ा और अजीरा भी कहा जाता है। रूपरेखा में एक जीवंत भगवा रंग का केंद्र है जिसमें विकर्ण प्रतिच्छेद करते हैं, जो हिंदू दर्शन के अनुसार पुरुष का प्रतीक है। मंदिर की धुरी चार मूलभूत महत्वपूर्ण दिशाओं का उपयोग करके बनाई गई है और इस प्रकार उपलब्ध स्थान के भीतर धुरी के चारों ओर एक पूर्ण वर्ग बनाया गया है। मंडला वृत्त से घिरा और पूर्ण वर्गाकार ग्रिडों में विभाजित यह वर्ग पवित्र माना जाता है। दूसरी ओर, वृत्त को मानवीय और सांसारिक माना जाता है, जिसे दैनिक जीवन में देखा या महसूस किया जा सकता है, जैसे–जैसे सूर्य, चंद्रमा, इंद्रधनुष, क्षितिज या पानी की बूंदें वर्ग और वृत्त दोनों एक दूसरे का समर्थन करते हैं। मॉडल आमतौर पर बड़े मंदिरों में देखा जाता है, मुख्य चौराहे के भीतर प्रत्येक वर्ग, जिसे पद कहा जाता है, एक विशिष्ट तत्व का प्रतीक है, जो एक देवता, एक अप्सरा या एक आत्मा का रूप कहा जा सकता है। ब्रह्म पद कहे जाने वाले प्राथमिक या अंतरतम वर्ग ब्राह्मण को समर्पित है। गर्भारुह या ब्रह्म पद में घर के केंद्र में मुख्य देवता का निवास होता है। ब्रह्म पद की बाहरी संकेंद्रित परत देविका पद है, जिसका अर्थ है देवों या देवताओं के पहलू, जो बदले में चलन के साथ अगली परत, मानुष पद से घिरे होते हैं। भक्त मानुष पद की परिक्रमा करने के लिए दक्षिणावर्त दिशा में घूमते हैं, अंदर देविका पद और पैशाचिका पद, जो असुरों और बुराई के प्रतीक हैं, बाहर की ओर अंतिम संकेंद्रित वर्ग बनाते हैं। बड़े मंदिरों में तीन बाहरी पद आम तौर पर प्रेरणादायक चित्रों, नक्काशी और छवियों से सजाए जाते हैं, दीवार की नक्काशी और विभिन्न मंदिरों की छवियां विभिन्न हिंदू महाकाव्यों और वैदिक कहानियों की किंवदंतियों को दर्शाती हैं।

7वीं शताब्दी के उत्तरार्ध में भारतीय मन्दिरों ने एक विशेष संरचना अपनाई भारतीय मन्दिरों के सामान्य तत्व उनके मूल संस्कृत शब्दों में इस प्रकार हैं मंदिर के मुख्य परिसर को विमान के रूप में जाना जाता है और इसमें दो भाग होते हैं। विमान के ऊपरी हिस्से को शिखर के नाम से जाना जाता है और विमान के भीतर स्थित निचले हिस्से को गर्भगृह (सेल या आंतरिक कक्ष) कहा जाता है।

**भारतीय मन्दिर का तत्व**

1. शिखर का तात्पर्य शिखर या मीनार से है। इसका आकार पिरामिड और टेपर जैसा है और यह पौराणिकता या सबसे ऊंची पर्वत चोटी का प्रतिनिधित्व करता है।
2. गर्भगृह गर्भ कक्ष को संदर्भित करता है, किसी भी मंदिर का सबसे भीतरी कक्ष जहां देवता निवास करते हैं। इसमें मुख्य रूप से वर्गाकार फर्श योजना है और इसमें पूर्व दिशा से प्रवेश किया जाता है।

3. प्रदक्षिणापथ परिक्रमा के लिए चलने योग्य मार्ग को संदर्भित करता है और इसमें गर्भगृह के बाहर एक संलग्न गलियारा होता है। भक्त देवता के चारों ओर दक्षिणावर्त दिशा में चलते हैं और देवता को अपना सम्मान देते हैं।
4. मंडप गर्भगृह के सामने स्तंभों वाला हॉल है, जिसका उपयोग भक्तों द्वारा मंत्रों के लिए एक सभा स्थल के रूप में किया जाता है अनुष्ठान करने वाले पुजारियों का ध्यान कक्ष भी कहा जाता है। कभी–कभी कुछ मंदिरों में नटमंदिर जिसका अर्थ है नृत्य के लिए हॉल भी प्रदान किया जाता है। कुछ प्रारंभिक मंदिर संरचनाओं में, मंडप गर्भगृह से एक अलग संरचना थी।
5. अंतराल मंदिर परिसर के मुख्य गर्भगृह और हॉल को जोड़ने वाले मध्यवर्ती कक्ष को संदर्भित करता है।
6. अर्धमंडप मंदिर के मुख्य प्रवेश द्वार में मुख्य मंदिर की ओर जाने वाले बरामदे को संदर्भित करता है। भारतीय मन्दिरों में पाए जाने वाले कुछ अन्य आवश्यक संरचनात्मक तत्व मुख्य रूप से दक्षिण भारतीय मंदिरों में पाए जाते हैं।
7. गोपुरम मंदिर परिसर का स्मारकीय और अलंकृत प्रवेश द्वार है।
8. पीठा या मुख्य मंदिर का आधार उत्तर भारतीय मंदिरों के विशिष्ट द्वार तोरण हैं।
9. अमलका शिखर के शीर्ष पर रखा गया बांसुरीदार डिस्क जैसा पत्थर है।

**नागर वास्तुकला**

नागर मंदिर भारत के उत्तरी भाग में स्थित हैं। नागर मंदिर वास्तुकला की वह शैली है जो उत्तरी भारत में लोकप्रिय हुई। यहां एक पत्थर के चबूतरे पर पूरा मंदिर बनाने की प्रथा है, जिसमें ऊपर तक जाने के लिए सीढ़ियां होती हैं। दक्षिण भारत के विपरीत, यहाँ आमतौर पर कोई विस्तृत सीमा दीवारें या द्वार नहीं हैं। पहले मंदिरों में केवल एक शिखर होता था, लेकिन बाद के समय में कई शिखर जोड़े गए। गर्भगृह हमेशा सबसे ऊंचे टॉवर के ठीक नीचे स्थित होता है। नागर मंदिरों की दो विशिष्ट विशेषताएं हैं योजना में, मंदिर एक वर्ग है जिसके प्रत्येक कक्ष के केंद्र में चरणबद्ध प्रक्षेपणों की एक श्रृंखला है, जो कई पुनः प्रवेश कोणों के साथ एक विशेष आकार बनाती है।

7वीं और 14वीं शताब्दी ईस्वी के बीच नागर शैली में निर्मित मंदिरों में मंडप (मंडप) होते थे। योजना में प्रक्षेपणों को शिखर के शीर्ष तक भी ले जाया गया है, यही कारण है कि ऊर्ध्वाधर समोच्च रेखाओं पर जोर दिया गया है। नागर शैली भारत के बड़े हिस्से में व्यापक है और स्थान के आधार पर विकास और विस्तार की दृष्टि से इसके विभिन्न रूप और शाखाएँ हैं। नागर वास्तुकला का एक उदाहरण खजुराहो में कंदरियामहादेव मंदिर है।

**द्रविड़ वास्तुकला**

द्रविड़ शैली के मंदिर लगभग हमेशा निम्नलिखित चार भागों से बने होते हैं, केवल उस युग में अंतर होता है जिसमें उनका निर्माण किया गया था। मुख्य भाग, मंदिर को ही विमान (या विमान) कहा जाता है। इसकी योजना हमेशा वर्गाकार होती है और इसके ऊपर एक या बहुमंजिला पिरामिडनुमा छत होती है इसमें वह कक्ष होता है जिसमें भगवान की छवि या उनका प्रतीक रखा जाता है। नागर मंदिर के विपरीत, द्रविड़ मंदिर एक परिसर की दीवार से घिरा हुआ है। सामने की दीवार के मध्य में एक प्रवेश द्वार है जिसे गोपुराध्गोपुरम के नाम से जाना जाता है। मुख्य मंदिर के टॉवर का आकार विमान (नागर शैली शिखर) के रूप में जाना जाता है। विमान उत्तरी भारत के घुमावदार शिखर के बजाय एक सीढ़ीदार पिरामिड जैसा दिखता है जो ज्यामितीय रूप से ऊपर उठता है। दक्षिण भारत में, शिखर शब्द का उपयोग केवल मंदिर के शीर्ष पर मुकुट तत्व के लिए किया जाता है, जो आमतौर पर एक छोटे स्तूपिका या अष्टकोणीय गुंबद के रूप में होता है (यह उत्तर भारतीय मंदिरों के अमलक या कलश से मेल खाता है)। उत्तर भारतीय मंदिरों में हम मिथुन (कामुक) और मंदिर की रक्षा करने वाली नदी देवी गंगा और यमुना जैसी छवियों को देख सकते हैं। लेकिन मंदिर वास्तुकला की द्रविड़ शैली में, इन मूर्तियों के बजाय, हम मंदिर की रक्षा करने वाले भयंकर द्वारपालों या द्वार रक्षकों की मूर्तियां देख सकते हैं। दक्षिण भारतीय मंदिरों में परिसर के भीतर एक बड़ा जलाशय या मंदिर टैंक होना आम बात है।

**निष्कर्ष**

लोगों ने आस्था, विज्ञान और रहस्य पर आधारित प्रेरक संरचनाएँ बनाने के लिए सभी वित्तीय और समय की बाधाओं को दूर कर दिया है। हममें से अधिकांश के लिए, हजारों वर्षों के अनुसंधान और विकास पर आधारित मंदिरों का विज्ञान खो गया है, समझ खो गई है। जब हम भारतीय मंदिरों के विज्ञान को समझते हैं, तो हम उस बुद्धिमत्ता, शक्ति और आश्चर्य का अनुभव कर सकते हैं जिससे ये संरचनाएँ उत्पन्न हुईं और जिनके लिए इन्हें बनाया गया था। भारत और उसके मंदिरों के प्राचीन अतीत पर नजर डालने से मंदिर निर्माण के मूल विज्ञान और उद्देश्य का पता चलता है। प्रार्थना या पूजा का स्थान होने से दूर, मंदिरों को शक्तिशाली स्थानों के रूप में बनाया गया था जहां एक व्यक्ति स्थिर ऊर्जा को अवशोषित कर सकता था। अधिकांश मंदिर जीवन के एक विशिष्ट पहलू को संबोधित करने के लिए बनाए गए थे और इसलिए वे मानव प्रणाली में मुख्य ऊर्जा केंद्रों, एक या दो विशिष्ट चक्रों को सक्रिय करने के लिए समर्पित थे। मुख्य देवता को अक्सर एक या अधिक छोटे देवताओं द्वारा पूरक किया जाता था, जिन्हें मुख्य देवता के मार्ग पर सावधानीपूर्वक तैनात किया जाता था। इन संरचनाओं को देखने से यह स्पष्ट होता है कि मंदिरों का निर्माण एक विशिष्ट पैटर्न, समझ और उद्देश्य के अनुसार तथा व्यक्ति और समाज की आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए किया गया था। मंदिर रणनीतिक रूप से ऐसे स्थान पर स्थित हैं जहां उत्तरी दक्षिणी ध्रुव के चुंबकीय और विद्युत तरंग वितरण से सकारात्मक ऊर्जा प्रचुर मात्रा में होती है। मुख्य मूर्ति मंदिर के केंद्र में है। दरअसल, मूर्ति स्थापित करने के बाद ही मंदिर की संरचना का निर्माण होता है। देवता का स्थान वह है जहां पृथ्वी की चुंबकीय तरंगें अपनी अधिकतम सीमा तक पहुंचती हैं

**संदर्भ सूची**


1. प्रभाकर शंकर, 'विश्वकर्मा की वास्तुविद्या', भारतीय वास्तुकला में अध्ययन, एशिया पब्लिशिंग हाउस, मुंबई, 1979।
2. मिशेल, जी., 'हिंदू टेम्पल : एन इंट्रोडक्शन टू इट्स मीनिंग एंड फॉर्म्सः, शिकागो और लंदन : शिकागो विश्वविद्यालय प्रेस, 1988।
3. श्वेता वर्डिया और पाउलो बी लौरेंको, "भवन विज्ञान से भारतीय मंदिर वास्तुकला" अंतर्राष्ट्रीय सम्मेलन (आईसीआई), आईआईटी मद्रास, चेन्नई, भारत, 2013. पृ० 167–178.
4. फ्लेचर, सर रेलिंग, वास्तुकला का इतिहास, सीबीएस पब्लिशर्स एंड डिस्ट्रीब्यूटर्स, नई दिल्ली, 1992
5. ग्रोवर एस., द आर्किटेक्चर ऑफ इंडिया : बुद्धिस्ट एंड हिंदू, विकास पब्लिशिंग हाउस प्रा. लिमिटेड, गाजियाबाद, 1988.
6. डैगेन्स, बी., मायामाता, एन इंडियन ट्रीटीज ऑन डोमेस्टिक आर्किटेक्चर एंड आइकॉनोग्राफी, सीताराम भरतिया इंस्टीट्यूट ऑफ साइंटिफिक रिसर्च, नई दिल्ली, 1986
7. आचार्य पी.के., एन इनसाइक्लोपीडिया ऑफ हिंदू आर्किटेक्चर, लंदन, 1946
8. सुरेंद्र कुमार, आशीष दलाल और सितेंद्र छिल्लर, प्राचीन भारतीय मंदिरों का निर्माण विज्ञान, विज्ञान, प्रौद्योगिकी और प्रबंधन में नवीन विकास पर राष्ट्रीय सम्मेलन (एनसीआईडीएसटीएम–2015), गंगा टेक्निकल कैंपस, सोलधा, बहादुरगढ़, हरियाणा (भारत) द्वारा आयोजित, 2015
9. मंदिर वास्तुकला और मूर्तिकला, भारतीय कला का परिचय, एनसीईआरटी प्रकाशन।

www.bohalshodhmanjusha.com Bohal Shodh Manjusha ISSN: 2395-7115
Impact Factor:7.523 January 2025 Page No. : 16-18
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

# समकालीन कविता की पृष्ठभूमि

**डा0 अनिता जोशी,** एसोसिएट प्रोफेसर, हिन्दी विभाग,

**डा0 विक्रम सिंह,** असिस्टेंट प्रोफेसर, हिन्दी विभाग,

एम0 बी0 राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय हल्द्वानी, नैनीताल। पिन कोड–263139

समकालीन कविता पर जब भी बात या बहस होती है तो बहुसंख्य समालोचकों के सामने प्रायः एक प्रश्न खड़ा होता है कि समकालीनता के क्या मायने हैं? कहना न होगा कि कविता प्रत्येक युग में या यूँ कहें कि अपने समय में समकालीन ही होती है। हिन्दी कविता में आधुनिक हिन्दी कविता का स्पष्ट सामाजिक संरचना से संबंध रहा है। भारतेन्दुयुगीन कविता भी अपने युग की समकालीन कविता ही थी। लेकिन हमें वादों की परिधि में ही काव्य का विश्लेषण और विवेचन करना होता है। इस दृष्टि से समकालीन कविता की बात करें तो सन् साठ के बाद की कविता को विभिन्न नामों व वादो से जाना पहचाना गया है मसलन साठोत्तरी कविता, समकालीन कविता, अकविता, अभिनव कविता, युयुत्सावादी कविता, बीट कविता, अस्वीकृत कविता अति कविता, सहज कविता आदि।

समकालीन कविता के संदर्भ में यह कहना अतिशयोक्ति न होगा कि समकालीन कविता आधुनिक हिन्दी कविता का नवीनतम आयाम है डा0 विश्वम्भर नाथ उपाध्याय समकालीन कविता को वर्तमान से अंकित कविता मानते हैं, जो अद्यतन जारी है। सन् 60 के बाद की कविता समकालीन हिन्दी कविता के आइने में ही समाहित, संदर्भित एवं व्याख्यायित होती रही है। 'समकालीन' कविता की मुख्य विषय वस्तु पर अपने विचार करते हुए डा0 विश्वम्भर नाथ उपाध्याय लिखते हैं–''समकालीन कविता अपने समय के मुख्य अन्तर्विरोधों और द्वंद्वों की कविता है। समकालीन कविता में 'जो हो रहा है' (बिकमिंग) का सीधा खुलासा है। इसे पढ़कर वर्तमान काल का बोध हो सकता हैः क्योंकि उसमें जीने, संघर्ष करते, लड़ते, बौखलाते, तड़पते–गुजरते तथा ठोकर खाकर सोचते वास्तविक आदमी का परिदृष्य है।''01

समालोचक डा0 सुन्दर लाल कथूरिया समकालीन कविता की मुख्य विषयवस्तु एवं कथ्य के संबंध मेंअपने विचार व्यक्त करते हुए लिखते हैं–'' समकालीन कविता जर्जर मूल्यों, वर्तमान व्यवस्था के प्रति असंतोष की कविता है। समकालीन कविता का मूलकथ्य ऐसी व्यवस्था की कामना है जो सहज प्राप्य नहीं है, और जो व्यंग्य को माध्यम बनाती है।''02

वहीं समकालीन कविता को व्याख्यायित करते हुए कवि आलोचक डा0 वीरेन्द्र सिंह अपने विचार व्यक्त करते हुए लिखते हैं–'' यथार्थ स्थिति की विसंगतियों को उभारने, उन्हें अर्थवत्ता प्रदान करने के निमित्त समकालीन कविता मानव के राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय संबंधों की अर्थहीनता को पहचानकर आक्रोश और व्यंग्य के मुहावरे को इस्तेमाल करती है।''03

आधुनिक कविता की मुख्यधारा के महत्वपूर्ण एवं सशक्त हस्ताक्षर जगदीश नारायण चतुर्वेदी समकालीन कविता के इन्वाल्वमेंट को अपने शब्दों में व्यक्त करते हुए लिखते हैं– ''समकालीन कविता देश की चिन्ताजनक स्थितियों में 'इन्वाल्व होने की कविता है।''04

समकालीन कविता के संदर्भ में उपर्युक्त समीक्षकों के विचारों से गुजरते हुए यह आभास होता है कि उक्त विचार समकालीन कविता के किसी न किसी तेवर को व्यक्त कर रहे हैं। समस्त आलोचकों के विचार एक दूसरे के पूरक हैं। कहना चाहिए कि समकालीन कविता आक्रोश तथा व्यंग्य के आनुपातिक मिश्रण

के माध्यम से, विसंगतियों के समुद्र में डूबकर, मानव जीवन के सर्जनात्मक मूल्यों की तलाश छोटा किन्तु संकल्प से भरा सार्थक एव सराहनीय प्रयास है।

''आजादी के बाद ''प्रयोगवादी काव्यधारा की कोख से जहाँ छठे दषक में नयीं कविता सामने आयी, वहीं सातवें दशक के दौरान पाश्चात्य विशेषकर अमेरिकी उन्मुक्तता एवं अत्याधुनिकतावादी रुझानों से प्रेरित अकविता आदि आंदोलनों के कारण हिन्दी कविता अपनी मूल धुरी से खिसक कर आन्दोलनधर्मी बड़बोले कवियों के आत्मप्रचार एवं आत्मप्रतिष्ठा का माध्यम बनने के लिए अभिशप्त हुई।'' अकविता निषेध की कविता थी इसका केन्द्र बिन्दु परंपरागत रूढ़ियों और संस्कारों के प्रति क्षोभ, रूढ़िवादी मानसिकता के विद्रोह तथा सामाजिक निषेधों से मुक्ति था। यह जीवन का भी निषेध करती थी। समकालीन कवियों का वर्तमान सामाजिक, धार्मिक, राजनीतिक स्थितियों के प्रति घोर विरोध है। कवियो ने इसका विरोध प्रत्यक्ष रूप से न करकर अपनी कविताओं के माध्यम से किया है। वर्तमान स्थिति से असंतुष्ट प्रमुख कवि आलोचक कैलाश वाजपेयी एकाकीपन को भोगते हुए जहर पीने तक की इच्छा को अपनी कविता के माध्यम से अभिव्यक्त कर देते हैं–

''तब फिर मैं ही
अस्तित्वबद्ध होकर क्या पा लूंगा
अकेला हूँ
कभी जहर खा लूंगा।''05

हालांकि सन् 1920 से पूर्व भी काव्य रचना होती रही परन्तु 1960 के बाद का काव्य व्यक्तिगत परिस्थितियों का काव्य होने के कारण अपने पूर्ववर्ती काव्य से भिन्न था। इसी भिन्नता को देखते हुए कवि और समालोचक ने इस कविता को समकालीन कविता नाम से संबोधन किया है यह नाम इसलिए भी क्योंकि यह कविता '' नवीन जीवन मूल्यों, सरोकारों तथा परिवेश की कविता है।''06

समकालीन कविता में मोहभंग विस्थापन तथा अलगाव के स्वर को प्रमुखता मिली है, मोहभंग का प्रमुख कारण सामाजिक, राजनीतिक व आर्थिक मूल्यों का विघटन रहा है। सन् 1968 में नक्सलवादी आंदोलन तथा तेलंगाना क्रांति के साथ पुनः वामपंथी विचारों के प्रति रुझान बढ़ा। इस मोहभंग के साथ वामपंथी विचारों को साहित्य में तल्खी के साथ अभिव्यक्त किया गया। सन् 1970 में कांग्रेस का विभाजन तथा वामपंथी सहयोग से सरकार चली साथ ही पाकिस्तान के आक्रमण ने आर्थिक जर्जरता को बढ़ाया और बांग्लादेष का अस्तित्व सामने आया। जयप्रकाश नारायण के नेतृत्व में छात्र आंदोलन होने लगे। समाजवादी नेताओं द्वारा छात्र आंदोलनों को गति प्रदान करने के कारण 26 जून 1975 को आपात काल की घोषणा हो गई। परिणामतः अनेक नेताओं, छात्रों और बुद्धिजीवियों को जेल जाना पड़ा। इसके परिणाम स्वरूप समाज में बेरोजगारी, लूट–पाट, भ्रष्टाचार, मानव मूल्यों में गिरावट, महंगाई, आगजनी, हत्या, आत्महत्या, कालाबाजारी का प्रचलन तीव्र गति से रहा। इस दशक के कवि समाज की पुनर्रचना नए सिरे से करने लगे। अतः जहाँ सन् 1947 से सन् 1959 तक की कविता रचनात्मक एवं संरचनात्मक उर्जा से संचालित रही वहीं सन् 1960 से वर्तमान समय तक की कविता अराजकता, आक्रामकता और स्यूडो सामाजिकता से ग्रस्त रही है।

आठवें दशक में समकालीन कविता पुनः साहित्य के केन्द्र में आती है। वह जीवन को अपंग और अपाहिज बना देने वाले दबाबों, अंतर्रविरोधों और कुरूपताओं को पहचानने, इंसानी रिश्तों को रिक्त कर देने वाली शक्तियों की असलियत उधेड़ने और मनुष्य को उपयुक्त धरातल पर प्रतिष्ठित करने के लिए सक्रिय है इस धारा के अधिकांश कवियों ने अपने वर्तमान के यथार्थ को मोहभंग के रूप में अपने लेखन में व्यक्त किया है।

नई कविता से समकालीन कविता को भिन्न मानते हुए आलोचक डा0 बीरेन्द्र सिंह लिखते हैं– '' इस काल खंड में कविता का तेवर नई कविता से भिन्न है यह आज की कविता की मुख्यधारा है। जो नई कविता का अत्यधिक चिंतनशीलता के स्थान पर यथार्थ को तीखे एवं व्यंग्यात्मक रूप को विचार संवेदना के धरातल पर अर्थ प्रदान कर रही है। यह यथार्थबोध, समाजशास्त्र, राजनीतिशास्त्र, इतिहास और भौतिकवादी दर्शनों से अधिक प्रभावित होने के कारण दिक्काल को प्रतीति में वैचारिकता और यथार्थ के तीखे विडम्बित रूप को व्यक्त करती है।''07

हिन्दी के समकालीन कविता के सशक्त हस्ताक्षर कवि वेणुगोपालन ने अपने कविता संग्रह 'हवाएं चुप नहीं रहती'(1980) में सहजता से अपनी बात संप्रेषित की है–

''तो सन् 1975 है
और इन्हें मेरा इंतजार करना चाहिए
और इन्हें राख के ढेर में ढूंढना चाहिए
ढूंढते रहना चाहिए
शोला नहीं तो कोई चिंगारी ही
मेरे लौटने तक।''08

इतना ही नहीं इनकी कविता में मुक्ति का विश्वास ज्यादा सबलता से मुखर हुआ है और उसके पीछे अनुभव का बल भी दिखाई पड़ता है, साथ ही विचार और समझ के साथ एक साहसिकता जो उन्हें अन्य समकालीन कवियों से अलग करती है–

ऐसे ही कुछ होते हैं खतरे
अगर डरें तो खतरे और अगर
नहीं तो भविष्य दिखाते
रंगीन पारदर्शी शीशे के टुकड़े।''09

जैसा कि प्रारम्भ में ही कहा गया है कि कविता अपने समय में समकालीन ही होती है साथ ही निजी होने के साथ–साथ सार्वजनिक भी। हिन्दी के ख्याति प्राप्त आलोचक परमानन्द श्रीवास्तव के नजरिये से कविता की पृष्ठभूमि पर बात करे तो वे विश्वप्रसिद्ध कवि सादी युसुफ की कविता से स्पष्ट करते हैं–

तुम्हारी जगह में चला जाऊंगा
''( वैसे भी दमिष्क बहुत दूर है उस गुप्त होटल सें....)
मैं पूछुंगा उसकी फेहरिश्तों पर
मैं ऐलान करूंगा कि हम हैं इराक के आवाम
हम हैं इस धरती के पुरखों के जमाने से खड़े दरख्त
अपनी बॉस की मामूली छत के नीचे सिर उठाकर जीते हुए।''

अपनी बात को आगे बढ़ाते हुए वे लिखते हैं–'' इससे क्या फर्क पड़ता है कि हम इराक की ओर से कविता लिख रहे हैं या रूस, चीन किरमिस्तान या हिन्दुस्तान से! आज कविता जितनी निजी है उतनी ही सार्वजनिक। कविता को इसी समय गहरे अर्थों में अपने और वक्त के प्रति जवाबदेह होना है।..... कविता अपने समय में होकर भी समय के पार जाती है और अतीत में गुम नहीं होती।''10

**संदर्भ सूची–**


1. विश्वम्भर नाथ उपाध्याय तथा मंजुल उपाध्याय, समकालीन कविता की भूमिका, पृष्ठ– 03,04
2. डा0 सुन्दर लाल कथूरिया, साहित्य आधुनिक साहित्य, पृष्ठ–13–14
3. डा0 वीरेन्द्र सिंह, आधुनिक कविता के नए संदर्भ, पृष्ठ– 34
4. डा0 हरिचरण शर्मा, नई कविता नए धरातल, पृष्ठ– 20
5. कैलाश वाजपेयी, संक्रांत पृष्ठ–94
6. विश्वनाथ प्रसाद तिवारी, आठवें दशक की हिन्दी कविता, पृष्ठ– 219–223
7. आलोचना, अक्टूबर–दिसम्बर 2009, पृष्ठ–71
8. वही, पृष्ठ–71
9. वही, पृष्ठ–71–72
10. परमानन्द श्रीवास्तव, कविता का उत्तर जीवन, पृष्ठ–153



मोबाइल न0.–9411596889 ई–मेल anujoshia54@gmail.com
मोबाइल न0.–8859904670 ई–मेल vikramrathour2010@gmail.com

www.bohalshodhmanjusha.com Bohal Shodh Manjusha ISSN: 2395-7115
Impact Factor:8.642 January 2025 Page No. : 19-22
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

# चरणदासी संप्रदाय में 'प्रेमाभक्ति'

**रूमी जायसवाल** (शोधार्थिनी),
**प्रो० विजय कुमार सिंह** (प्रोफेसर)
आगरा कॉलेज, आगरा।

चरणदासी संप्रदाय में 'ब्रह्म' को प्राप्त करना ही साधक का उद्देश्य है। इसका सरल उपाय है शरणागति। साधक को ईश्वर की शरण में जाने से पूर्व गुरू शरण में जाना आवश्यक है। फिर गुरू आदेशानुसार साधक ईश्वर की ओर उन्मुख होता है। शिष्य के प्रति गुरू का उपदेश उपासना के रूप में होता है। भक्ति भगवत्प्रेम का साधन है। अतः भगवान की पूजा के रूप में उपासना इस संप्रदाय में माना जाता है।

अज्ञानता की परम्परा से छूटने के लिए मनुष्य को ईश्वर की उपासना अवश्य करनी चाहिए। इस संप्रदाय में साधक गुरूसेवा, नामस्मरण, भगवत् उपासना और भगवत् स्वरूप चिन्तन का ही यथासम्भव अनुष्ठान करता है क्योंकि संप्रदाय की एकमात्र अपूर्व देन यह सुमधुर उपासना प्रणाली है।

उपासना और पूजा में आन्तरिक और बाह्य भावना का अन्तर है यह दो प्रकार से की जाती है:–

निराकार रूप में – चिन्तन, मनन
साकार रूप में – सेवा भावना

आलोच्य संप्रदाय में द्वैताद्वैत सिद्धान्त का अनुकरण किया गया है। संप्रदाय में ईश्वर समस्त दोषों से रहित और समस्त शक्तियों से परिपूर्ण कल्याण गुणों का विधान है। जीव ब्रह्म का अंश है ब्रह्म अंशी है। ब्रह्म भिन्न और अभिन्न दोनों है। मुक्ति प्राप्ति के लिए मुख्य साधन भक्ति है। ब्रह्म को निराकार और साकार दोनों रूपों में विचार किया जा सकता है।

"वही निरगुण सरगुण वही, वही दोनों से न्यार।।
जो था सो जाना नहीं, सोचा बारम्बार।।
अनंत शक्ति लीला अनन्त, गुण अनंत बहुभाव।।
कौतुक रूप अनंत है, चरणदास बलिजाव।।"[1]

चरणदासी सम्प्रदाय का गुरू ग्रन्थ 'श्रीमद्भागवत पुराण' है जिसकी रचना श्री वेदव्यास जी ने की है। 'श्रीमद्भागवत्' के व्याख्याता श्री शुकदेव मुनि हैं। संप्रदाय के आद्यप्रवर्तक श्री श्यामाचरण दास जी हैं श्री शुकदेवमुनि चरणदास जी के गुरू हैं इस प्रकार इस संप्रदाय का एक मान 'शुकसंप्रदाय' भी है।

प्रेमाभक्ति इस संप्रदाय की इष्टभक्ति है। निज वृन्दावन धाम संप्रदाय की तपोभूमि है जहाँ श्याम और श्यामा सखी परिकर सहित विराजमान है।

"निज वृन्दावन देखिया, नित अखंड जहा रास।
पिय प्यारी विरहत सदा – जा पहुचै द्वादॉस।।"[2]

आलोच्य संप्रदाय में प्रेमाभक्ति साध्य मानी गई है। साधकों के लिए हरिचरण सेवा के अतिरिक्त अन्य कोई आश्रय नहीं है। श्रीकृष्ण ही साक्षात् परमपुरुष परमेश्वर हैं जिनकी वंदना त्रिदेव एवं अन्य देवी, देवता, यक्ष, गन्धर्व किया करते हैं। साधकों को आनन्दित करने के लिए वे माधुर्य रूप में प्रकट होते हैं। ऐसे परमात्मा की प्राप्ति पाँच भावों से पूर्ण मानी जाती है शांत, दास्य, सख्य, वात्सल्य और उज्ज्वला। इसमें सबसे उत्कृष्ट भक्ति उज्जवला भाव की होती है।

"सखा भाव पहुचत वहि ठाई। सखी भाव ऊपर को जाई।।
धरै स्वरूप अनुपम भारी। सदा सुहागिनि हरि पीय प्यारी।।"[3]

चरणदास जी सखी भाव की भक्ति को उत्तमा भक्ति मानते हैं। इस संप्रदाय में भक्ति जिस रूप में स्वीकार की गई है वह मूलतः नवधा न होकर 'दशधा' भक्ति है– 1. श्रवण 2. कीर्तन 3. स्मरण 4. पादसेवन 5. राजसी व मानसी 6. वंदन 7. आत्मनिवेदन 8.सख्य 9. दास्य 10. प्रेमा

"नवो अंग के साधते, उपजै प्रेम अनूप।
प्रेम बराबर योग ना, प्रेम बराबर ज्ञान।
प्रेम भक्ति विन साधुवा सबही थोथा ध्यान।।
प्रेम छुटावै जगत कूँ, प्रेम मिलावै राम।
प्रेम करै गति और ही, ले पहुचै हरिधाम।।"[4]

प्रेमाभक्ति में साधक सखी भाव का आरोप कर अपनी समस्त प्रवृत्तियों को ईश्वर सेवा में समर्पित कर देता है। इस प्रकार की सेवा आत्मरूप से की जाती है, संसार में दिखाने के लिए नहीं। स्वयं चरणदास जी माधुर्य उपासना के लिए सखी रूप धारण करते थे।

"शहर पुराने थे इक बारी। आवै वहाँ बहुत नर–नारी।।
सखी भेष चरणदास जु धारै। चूड़ी माँग सिन्दूर संवारे।।
कर मेंहदी पग कंकण साजै। सखी भेष पट भूषण राजै।।
कपटी भगल कौ मन भायो। चरणदास तिया भेष बनायी।।"[5]

"चरणदास जी के शिष्य रामसखी सदैव स्त्री वेश में ही रहते थे। उनकी साधना भी सखी भाव की थी। उनकी रचना 'भक्तिरस मंजरी' सखी भाव का एक सिद्धान्त ग्रन्थ है। चरणदास जी के शुकदेवपुरा नामक स्थान पर जब रासलीला का आयोजन होता था तब स्वयं चरणदास जी गोपी वेश धारण करते थे। रामसखी जी प्रायः ऐसे आयोजनों के संयोजक होते थे। उनके द्वारा आयोजित रासलीला में स्त्री और पुरुष दोनों प्रकार के भक्त समान रूप से भाग लेते थे।"[6]

'भक्तिसागर' नामक सम्पूर्ण ग्रन्थ में चरणदास जी ने अनेकानेक स्थानों पर अपने को सखी भाव से संबोधित किया है। 'चरणदास सखी पर शुकदेव गुरु कृपा कीनो वाको सो बिहारी एक पल में दिखायो है'। 'चरणदास कहै सखी तिहारी मिलजा छानी हो'। 'गोपी कहै चरणदास श्याम की सी सुख हमे दिखायी हो।' उनके हेली, रास, मॉझ, बसन्त, होरी आदि पदों में सखी भाव की पंक्तियाँ हैं। श्री रामसखी ने श्रीशुकदेव मुनि के भी आठ सखी नाम गिनाये हैं और यह भी बताया है कि ये सूक्ष्म रूप धारण करके सदैव युगल सरकार के रासविलास की सहचरी बनकर सखी परिकर में गतिमान रहते हैं। उनके अष्टसखी नाम कुछ इस प्रकार है– शुकसखी, सुखदा, आह्लादिका, कलैवनिका, आनंदा, रसपुंजिका, प्रेमप्रभा, प्रभुदा।"[7]

"शुक शब्द का अर्थ राधा और कृष्ण के संयुक्त रूप का वाचक है। शुक शब्द का मूल अर्थ परमानन्द है। चारों मुक्तियां आदि आनन्दमयी होने के कारण इसी अर्थ में समाहित है। यह श्री शुकदेव जी की अन्तर्निहित शक्ति है। इसमें 'स' और 'क' दो वर्ण हैं जिनमें से स संघिनी और क कृषणचन्द का सूचक है अर्थात् यह शुक शब्द राधाकृष्ण युगल स्वरूपात्मक है।"[8]

इसी प्रकार चरणदास जी को अष्टसखी नामों से संबोधित किया जाता है– प्रेममंजरी, गन्धर्वा, प्रमोदिनी, मधुरास्वरा, सहजानन्दिनी, गुणप्रकाशिका, जुगतानन्दिनी, प्रभुदमंगला।

ये आठ नाम विशिष्ट प्रयोजन से जुड़े हुए हैं जैसे– द्वितीय सखी 'गन्धर्वा' रूप उन्होंने रासविलास में प्रिया–प्रियतम को रिझाने के लिए की है।

"प्रेममंजरी नाम है, गन्धर्वा गुणग्राम।
प्रमोदिनी मधुरा स्वरा, सहजानन्दिनी बाम।।
गुण प्रकाशिका जानिये, जुगतानन्दिनी बाल।।
प्रभुदमंगला जू सखी, रुप राशि छवि जाल।।"[9]

प्रेमाभक्ति में निकुंज बिहारी श्रीराधाकृष्ण युगल सरकार आराध्य रूप में है। इस भाव का लीला स्थल इस भूमण्डल से परे गोलोक धाम है जिसका दूसरा रूप ब्रजमण्डल में नित्य वृन्दावन धाम है।

"अमरलोक गुप्त सो गुप्ता। जहाँ विराजत है भगवंता।।
अमरलोक गौ लोक कहावै। चौथा पद निर्वान बतावै।
निज वृन्दावन है वह वही। सदा बसो मेरे मन माही।

दिव्य फूल फूले बहुरंगा। बिन ऋतु फूले रंग–बिरंगा।।"[10]

उनकी सत्ता का अनुभव उनकी कृपा से उनके अनन्य भक्त को ही होती है। ऐसे प्रेमी भक्तों की एक मात्र साध्य होती है निकुंज लीलाओं का दर्शन।

"पुरुषोत्तम निज लीला धारी। वृन्दावन में सदा विहारी।।
निज धामा की कहियत शोभा। वृन्दावन में रहे अलोपा।।
दिव्य दृष्टि बिन दृष्टि न आवै। सकल पुराण वेद यो गावै।।
गोल चौतरो निज वृन्दावन। तापरवारो अपनी तनमन।।"[11]

माधुर्यभाव की परिपक्व अवस्था में इस निकुंजलीला में श्रीकृष्ण राधा की सेवा। इस सेवा का अधिकार पुरुषत्व के समस्त भावों के विलीन होने पर सखी भाव में ही मिलता है। इस भाव से चरणदासजी कह रहे हैं–

"आसपास बहु कुंज है, बीच लाल को धाम।
चरणदास को दीजिये, सखियन में विश्राम।।"[12]

अनुराग, समर्पण, सेवा के रूप में अपने अहम् भाव को आराध्यमय कर देना ही सखी भाव में सम्भव है। ये सखियां युगल के सुख में अपना सुख समझती हैं उन्हीं के आनन्द में उनका आनन्द निहित है। यदि श्यामश्यामा के सुख में आत्मसुख की कामना नहीं होती तो उनका स्वयं का सुख बाधक बनता इस प्रकार वह पूर्ण रूप से युगल के प्रति समर्पित मानी गई है।

चरणदासी सम्प्रदाय में अष्टसखियों का उल्लेख मिलता है। ललितासखी, विशाखा सखी, रंगदेवी सखी, चित्रासखी, तुंगविद्या सखी, चंपकलता सखी, इन्दुलेखा सखी, सुदेवी सखी, इनमें गौर वर्ण की सखियाँ सदा राधा के निकट रहती हैं और कृष्णवर्ण की सखियाँ कृष्ण के अधिक निकट रहती हैं। ये सभी सखियाँ युगल की सेवा पुत्रभाव, मित्रभाव, पतिभाव और आत्मभाव से करती हैं।

"धन सतगुरु शुकदेव जी, मेरी करी सहाय।
निज वृन्दावन धाम की, लीला दई दिखाय।।
अब कहु कौतुक रास की, वरणत है चरणदास।
लाल लाड़िली कृपा सो, पाव निज व्रजवास।।"[13]

सखीभाव को स्वीकार करने वाला साधक युगल स्वरूप वृन्दावन बिहारी की अष्टयाम सेवा करना ही अपना परम कर्त्तव्य मानता है। ये अष्ट सखियां ही अष्टयाम सेवा की लीलायें और सेवायें भिन्न–भिन्न कुंजों में करती हैं।

1– रंगमहल (मंगलाकुंज) 2– श्रृंगारकुंज 3– पुष्पकुंज 4– प्रमोदकुंज 5– हिंडोलाकुंज 6– आनन्दकुंज 7– सेवाकुंज 8– प्रेमप्रकाश कुंज [14]

अष्टयाम सेवा में प्रातः उत्थान से लेकर रात्रि शयनकाल तक का समावेश होता है। माधुर्य उपासना में भक्त इन्हीं लीलाओं का चिन्तन, कीर्तन करता हुआ विविध उपचारों से प्रभु की भक्ति में तत्पर रहता है।

इस प्रकार निःसंदेह रूप से कह सकते हैं कि सखी भाव की प्रधानता प्रेमाभक्ति के लिए आदर्श रूप है। वैष्णव भक्ति साधना में प्रेमाभक्ति को उत्तमा भक्ति या उज्ज्वल रस की भक्ति की संज्ञा दी गई है। इस प्रकार चरणदासी संप्रदाय एक वैष्णव संप्रदाय है। यह नवधा भक्ति को साधते हुए प्रेमाभक्ति को सर्वोत्कृष्ट माना है।

**संदर्भ सूची**


1. श्री स्वामीचरण दास, भक्तिपदार्थ, राजकुमार प्रेस बुक डिपो लखनऊ, प्रकाशन 1951, पृष्ठ सं० 177
2. श्री स्वामी रामरूप, गुरुभक्ति प्रकाश, श्रीस्वामीचरणदास, प्रकाशन कार्यालय, दिल्ली, प्रकाशन–1950, पृष्ठ सं० 97
3. श्री स्वामी चरणदास, अमरलोक अखण्ड धाम, राजकुमार प्रेस बुक डिपो, लखनऊ प्रकाशन–1951, पृ०सं० 19
4. श्री स्वामी चरणदास, भक्तिपदार्थ, राजकुमार प्रेस बुक डिपो लखनऊ, प्रकाशन 1951, पृष्ठ सं० 180–181
5. ध्यानेश्वर श्री जोगजीत, लीलासागर, श्री शुक चरणदासीय साहित्य प्रकाशन ट्रस्ट जयपुर प्रकाशन–1968, पृ०सं० 261

6. डॉ० श्यामसुन्दर शुक्ल, चरणदासी संप्रदाय और उसका साहित्य, कला प्रकाशन, वाराणसी, प्रकाशन–1996, पृ०सं० 674
7. वही, पृ०सं० 675
8. श्री सरसमाधुरीशरण : श्री शुक संप्रदाय सिद्धान्त चन्द्रिका, जेल प्रेस, जयपुर प्रकाशन–1923, पृ०सं० 47
9. वही, पृ०सं० 51
10. श्री स्वामी चरणदास : अमरलोक अखण्डधाम, राजकुमार प्रेस बुक डिपो, लखनऊ प्रकाशन–1951, पृ०सं० 16–19
11. श्री स्वामी चरणदास : ब्रजचरित्र वर्णन, राजकुमार प्रेस बुक डिपो, लखनऊ प्रकाशन–1951, पृ०सं० 7
12. श्री स्वामी चरणदास : अमरलोक अखण्डधाम, राजकुमार प्रेस बुक डिपो, लखनऊ प्रकाशन–1951, पृ०सं० 21
13. श्री स्वामी चरणदास : शब्द वर्णन, राजकुमार प्रेस बुक डिपो, लखनऊ प्रकाशन–1951, पृ०सं० 355
14. डॉ० श्यामसुन्दर शुक्ल, चरणदासी सं० और उसका साहित्य, कला प्रकाशन, वाराणसी, प्रकाशन–1996, पृ०सं० 737

www.bohalshodhmanjusha.com Bohal Shodh Manjusha ISSN: 2395-7115
Impact Factor:7.523 January 2025 Page No. : 23-25
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

# भारतीय साहित्य की अवधारणा

**डॉ. हेमन्त सिंह कंवर,** सहायक प्राध्यापक,
शा. काकतीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, जगदलपुर (छ.ग.)

**सारांश :–**

भारतीय साहित्य की अवधारणा एक गहन और बहुआयामी दृष्टिकोण पर आधारित है, जो भारत की समृद्ध सांस्कृतिक, सामाजिक, और ऐतिहासिक धरोहर को व्यक्त करती है। यह न केवल विविध भाषाओं और संस्कृतियों का संगम है, बल्कि भारत के धार्मिक, दार्शनिक और समाजिक जीवन के विभिन्न पहलुओं की अभिव्यक्ति भी है। भारतीय साहित्य एक बहुआयामी और बहुभाषीय परंपरा है, जो भारत की समृद्ध सांस्कृतिक, सामाजिक, और ऐतिहासिक धरोहर को अभिव्यक्त करती है। यह न केवल विविध भाषाओं और विधाओं का संगम है, बल्कि इसमें भारत के धार्मिक, दार्शनिक, और सामाजिक चिंतन की गहन छाप भी दिखाई देती है। भारतीय साहित्य की अवधारणा को समझने के लिए इसके विभिन्न पहलुओं का अध्ययन करना आवश्यक है। भारतीय साहित्य की सबसे महत्वपूर्ण विशेषता इसकी बहुभाषिकता और विविधता है। भारत में संस्कृत, हिंदी, बांग्ला, उर्दू, तमिल, पंजाबी, मराठी, गुजराती, कन्नड़, और अन्य भाषाओं में साहित्य की परंपरा है, जो विभिन्न युगों और कालों में विकसित हुई है।

**प्रस्तावना :–**

भारतीय साहित्य के अंतर्गत वेद, उपनिषद, महाकाव्य, पुराण, और भक्ति साहित्य सहित अनेक विधाएँ आती हैं। प्राचीन साहित्य में संस्कृत साहित्य की प्रमुखता है, जिसमें रामायण, महाभारत और गीतांजलि जैसी कृतियाँ शामिल हैं। मध्यकाल में भक्ति साहित्य और सूफी साहित्य का उदय हुआ, जिसमें कवियों जैसे सूरदास, कबीर, मीरा, और गुरु नानक ने धार्मिक और सामाजिक मुद्दों पर अपने विचार व्यक्त किए। आधुनिक काल में हिंदी साहित्य, उर्दू साहित्य, और प्रादेशिक साहित्य जैसे बांग्ला, मराठी, और तमिल साहित्य ने सामाजिक, राजनीतिक और सांस्कृतिक मुद्दों को सामने रखा।

भारतीय साहित्य की अवधारणा केवल भाषा की विविधता पर आधारित नहीं है, बल्कि यह साहित्य के विचारों और भावनाओं की समानता पर भी केंद्रित है। यह संस्कृति की विविधता और समान मानव अनुभवों को प्रदर्शित करता है। भारतीय साहित्य में धर्म, समाज, राजनीति, सामाजिक सुधार, राष्ट्रवाद और संस्कृतिक पुनरुत्थान जैसे महत्वपूर्ण विषयों पर आधारित कृतियाँ प्रकट होती हैं।

मनुष्य ने विभिन्न समय और स्थानों में भाषा, साहित्य, और संस्कृति का सृजन और विकास किया है, जिसमें न केवल विविधताएँ हैं, बल्कि समानताएँ भी पाई जाती हैं। इन विविधताओं और समानताओं का अध्ययन करते हुए, साहित्यिक चिंतन और अध्ययन के नए दृष्टिकोण और पद्धतियाँ विकसित हुईं हैं। दो प्रमुख अध्ययन पद्धतियाँ हैं– व्यतिरेकी अध्ययन और तुलनात्मक साहित्य का अध्ययन, जिनका उद्देश्य साहित्य के अंतरसंबंध और साहित्यिक मूल्यों का गहराई से विश्लेषण करना है।

व्यतिरेकी अध्ययन का तात्पर्य है साहित्यिक रूपों और विचारों में भिन्नताओं को समझना, जबकि तुलनात्मक साहित्य के तहत हम विभिन्न साहित्यिक परंपराओं, कृतियों और शैलियों के बीच समानताएँ और अंतर खोजते हैं। यह पद्धति न केवल साहित्यिक कृतियों का अध्ययन करती है, बल्कि उन कृतियों के अंतर्निहित विचारों और सांस्कृतिक संदर्भों को भी उजागर करती है।

मैथ्यू आर्नल्ड, जो एक प्रसिद्ध अंग्रेजी आलोचक और कवि थे, ने तुलनात्मक साहित्य के विचार को प्रमुखता से प्रस्तुत किया। उनके अनुसार, आलोचक का प्रमुख कार्य यह होना चाहिए कि वह विश्व साहित्य में उपस्थित श्रेष्ठतम और महनीय कृतियों का अध्ययन, मनन, और प्रचार करें। इस विचार का

उद्देश्य केवल कृतियों की सुंदरता का आनंद लेना नहीं, बल्कि उन कृतियों के द्वारा प्रस्तुत किए गए प्राणवान और सत्य विचारों की धारा को प्रवाहित करना है।

आर्नल्ड का मानना था कि जब विभिन्न भाषाओं और संस्कृतियों के साहित्यिक कार्यों का तुलनात्मक अध्ययन किया जाता है, तो यह न केवल उन कृतियों को समझने में मदद करता है, बल्कि इसमें छिपे हुए समान मूल्यों की खोज भी संभव होती है। उनके अनुसार, यह साहित्यिक समानताएँ और सार्वभौमिक मूल्य साहित्य के पारंपरिक और सांस्कृतिक अंतर को पार कर मानवता को जोड़ने का काम करती हैं। उदाहरण के लिए, अगर हम पश्चिमी और भारतीय साहित्य का तुलनात्मक अध्ययन करें, तो हम पाते हैं कि दोनों में सत्य, न्याय, प्रेम, और नैतिकता जैसे तत्व समान हैं, हालांकि इनकी अभिव्यक्ति की विधियाँ भिन्न हो सकती हैं। एक ओर जहां शेक्सपियर के नाटकों में नैतिक दुविधाओं का सामना कर रहे पात्र दिखाई देते हैं, वहीं दूसरी ओर भारतीय महाकाव्य महाभारत में धर्म और अधर्म के बीच संघर्ष को प्रस्तुत किया गया है।

इस प्रकार, आर्नल्ड का विचार हमें यह सिखाता है कि साहित्य केवल एक विशिष्ट सांस्कृतिक या भौगोलिक स्थान तक सीमित नहीं होता, बल्कि यह मानवता की वैश्विक धारा का हिस्सा है। तुलनात्मक साहित्य का अध्ययन हमें न केवल विभिन्न संस्कृतियों के बीच पुल बनाने में मदद करता है, बल्कि यह साहित्य में समाहित मूल्यों और विचारों को एक सार्वभौमिक परिप्रेक्ष्य में देखने का अवसर भी प्रदान करता है।

भारत में समय–समय पर राष्ट्रवाद, सुधारवाद, और पुनरुत्थानवाद जैसी विचारधाराओं का प्रसार हुआ, जो समाज सुधार के व्यापक उद्देश्य से प्रेरित थीं। इन्हीं विषयों को केंद्र में रखकर भारत की विभिन्न भाषाओं में उपन्यास और साहित्यिक कृतियाँ रची गईं। इस प्रकार, भारतीय साहित्य की एक महत्वपूर्ण विशेषता यह है कि विभिन्न भाषाओं और सांस्कृतिक विविधताओं के बावजूद, यह कहीं न कहीं आपस में जुड़ा हुआ है।

भारत की बहुभाषिक स्थिति ने साहित्य को समृद्ध बनाया है। अनेक साहित्यकारों ने कई भाषाओं में सृजन किया है, जिससे भारतीय साहित्य को किसी एक भाषा में सीमित नहीं किया जा सकता। यह विविधता में एकता का प्रतीक है। भारत केवल एक भौगोलिक इकाई नहीं, बल्कि एक विचार, एक भावना, और एक चेतना है। हमारे साहित्य की मूल अवधारणा जनता और साहित्य के आपसी संबंधों से उत्पन्न होती है।

आधुनिक भारतीय साहित्य में नारीवाद, दलित साहित्य, और आदिवासी साहित्य जैसे नए दृष्टिकोण सामने आए हैं, जो समाज की विभिन्न जटिलताओं और विसंगतियों पर प्रकाश डालते हैं। भारतीय साहित्य की मुख्य विशेषता यह है कि यह न केवल भारतीय समाज की मानसिकता और संस्कृति को व्यक्त करता है, बल्कि वैश्विक साहित्य में भी अपनी उपस्थिति दर्ज कराता है। इस प्रकार, भारतीय साहित्य की अवधारणा एक जीवंत और लगातार विकसित होने वाली प्रक्रिया है, जो भारतीय समाज, संस्कृति और मानवता के व्यापक दृष्टिकोण को दर्शाती है।

भारतीय साहित्य को परिभाषित करने में भाषा, भौगोलिक क्षेत्र, राजनीतिक एकता, और जनता की भूमिका महत्वपूर्ण है। यह साहित्य समन्वित सांस्कृतिक क्षेत्र का निर्माण करता है और इसके विभिन्न अंग परस्पर जुड़े हुए हैं। भारतीय साहित्य की एकता भाषाओं की समानता में नहीं, बल्कि विचारों और भावनाओं की सामूहिकता में है। उदाहरणस्वरूप, प्रेमचंद ने हिन्दी और उर्दू, दोनों भाषाओं में अपने विचार व्यक्त किए। यह दर्शाता है कि भारतीय साहित्य, भारतीय जनता की सामूहिक अभिव्यक्ति और सांस्कृतिक धरोहर का इतिहास है। यह साहित्य परंपरा की एकता और विविधता का प्रतीक है, जिसमें राष्ट्र के स्वर मुखरित होते हैं।

भारतीय साहित्य में प्रांतीय और जातीय गतिविधियों का समावेश होता है। संविधान द्वारा मान्यता प्राप्त भारतीय भाषाओं में लिखा गया साहित्य, ''भारतीय साहित्य'' कहलाता है, जो हमारी सांस्कृतिक और राष्ट्रीय चेतना को अभिव्यक्त करता है।

भारतीय साहित्य भी एक विस्तृत और विविध क्षेत्र है, जैसा कि विश्व साहित्य के संदर्भ में देखा जाता है। साहित्य, जो मानव के आंतरिक अनुभवों और संवेदनाओं का प्रतिफल होता है, यह मानता है कि मनुष्य की भावनाएँ समान होती हैं। शोक, हर्ष, घृणा, क्रोध, प्रेम और वात्सल्य जैसे भावनाएँ सभी मनुष्यों में एक जैसी पाई जाती हैं, और इन्हीं भावनाओं के आधार पर साहित्य का मूल ढांचा हर भाषा में एक जैसा होता है।

भारत, जो बहुभाषिक और बहुसांस्कृतिक देश है, वहां की विभिन्न भाषाओं में लिखे गए साहित्य में थोड़ी–बहुत भिन्नताएँ हो सकती हैं, लेकिन उनके बीच की एकता और समानता बहुत अधिक है। यह समानता ही भारतीय साहित्य की परिभाषा का केंद्र बिंदु है। पांडेय शशि भूषण शीतांशु का यह विचार भी महत्वपूर्ण है कि ''भारतीय साहित्य का अर्थ है आत्मज्ञान को सृजन, प्रस्तुति और वितरण करने वाला साहित्य।'' इसका अर्थ यह है कि भारतीय साहित्य न केवल बाहरी घटनाओं का वर्णन करता है, बल्कि यह मानव की आंतरिक चेतना और आत्म–अन्वेषण की दिशा में भी मार्गदर्शन करता है।

भारतीय साहित्य के स्वरूप निर्धारण में विभिन्न भाषाओं के साहित्य की परंपरा का अध्ययन महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। उदाहरण के लिए, जब हम सूरदास के काव्य का अध्ययन करते हैं, तो हमें यह समझने के लिए उस समय की व्यापक परंपरा की ओर भी देखना पड़ता है, जिसने पूरे भारत की भाषाओं को प्रभावित किया। इसी तरह, रामकथा की परंपरा को समझने के लिए वाल्मीकि की श्रामायणश, कालिदास का रघुवंश और भवभूति की उत्तररामचरित जैसे ग्रंथों का अध्ययन जरूरी है। इन सभी उदाहरणों से यह स्पष्ट होता है कि भारतीय साहित्य की गहरी जड़ें प्राचीन वाङ्गमय में हैं, और वह लगातार परंपरा से प्रेरित है।

आधुनिक काल में भी, भारतीय साहित्य ने अपनी प्रेरणा प्राचीन ग्रंथों और परंपराओं से ली है। जैसे 'रामायण', 'महाभारत' और 'कथा सरित्सागर' जैसी कृतियाँ भारतीय साहित्य का अहम हिस्सा मानी जाती हैं। इसके साथ ही, भारतीय साहित्य में नवजागरण काल में एक समान आधुनिक चेतना का प्रसार हुआ, जिसने सामाजिक और राजनैतिक गुलामी के कारणों को पहचानकर उनसे मुक्ति की दिशा में कदम बढ़ाए। विभिन्न भाषाओं में यह चेतना समान रूप से प्रसारित हुई बंगला में बंकिमचंद्र चटर्जी और रवींद्रनाथ ठाकुर, हिंदी में भारतेंदु हरिश्चंद्र, तमिल में सुब्रह्मण्य भारती, और तेलुगु में गुरजाडा अप्पाराव जैसे रचनाकारों ने इसे आगे बढ़ाया।

इसी प्रकार, हिंदी साहित्य में छायावाद और तेलुगु में भाववाद, प्रगतिवाद और अभ्युदय जैसे आंदोलन एक साथ सामने आए। भारतीय साहित्य की एकता इन समान प्रवृत्तियों, विचारों और प्रेरणाओं से उत्पन्न होती है, जो विभिन्न भाषाओं में समान रूप से विद्यमान हैं।

सर्वपल्ली राधाकृष्णन के आर्केस्ट्रा के दृष्टांत से यह स्पष्ट होता है कि जैसे विभिन्न वाद्य यंत्रों के माध्यम से एक राग उत्पन्न होता है और भिन्नताएँ एकता में समाहित हो जाती हैं, वैसे ही भारतीय साहित्य में विविधताएँ होते हुए भी एकता की भावना निहित है। भारतीय साहित्य वस्तुतः सामूहिक संस्कृति की खोज करता है, जो भारतीयता का मूल है।

**उपसंहार :–**

भारतीय साहित्य की अवधारणा एक समृद्ध और विविध परंपरा का प्रतिनिधित्व करती है, जो भारत की बहुभाषिकता, सांस्कृतिक विविधता, और सामाजिक इतिहास को व्यक्त करती है। यह साहित्य न केवल विभिन्न भाषाओं में विस्तृत है, बल्कि इसके भीतर धार्मिक, दार्शनिक, और सामाजिक विषयों की गहरी अभिव्यक्ति भी पाई जाती है। भारतीय साहित्य में वेद, उपनिषद, महाकाव्य, भक्ति साहित्य, सूफी साहित्य, और आधुनिक हिंदी, उर्दू, बांग्ला, और अन्य भाषाओं के साहित्य की प्रमुखता है। भारतीय साहित्य का उद्देश्य केवल मनोरंजन नहीं, बल्कि समाज के विभिन्न पहलुओं, जैसे धर्म, संस्कृति, राजनीति, और सामाजिक सुधार, को समझाना और उस पर चिंतन करना है। इसमें जीवन के विभिन्न अनुभवों, संघर्षों और विचारों को स्वर दिया गया है, जो न केवल भारतीय समाज को, बल्कि वैश्विक परिप्रेक्ष्य को भी प्रभावित करते हैं। इसलिए, भारतीय साहित्य की अवधारणा भाषा, संस्कृति, और विचारों की विविधता के बावजूद एकता और मानवता की साझा भावनाओं पर आधारित है, जो इसे विश्व साहित्य का महत्वपूर्ण हिस्सा बनाती है।

**संदर्भ सूची**


1. शोध प्रविधि – डॉ. दिलीप सिंह एवं डॉ. ऋषभ देव शर्मा;
2. तुलनात्मक साहित्य की भूमिका – डॉ. इंद्र नाथ चौधुरी.
3. आलोचना के सिद्धांत – डॉ. शिवदान सिंह चौहान.
4. भारतीय साहित्यरू सिद्धांत, संगति और सादृश्यता – जगदीश यादव।
5. हिंदी साहित्य का इतिहास–आचार्य रामचन्द्र शुक्ल।

www.bohalshodhmanjusha.com Bohal Shodh Manjusha ISSN: 2395-7115
Impact Factor:8.642 January 2025 Page No. : 26-30
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

# कबीर काव्य में प्रतीक एवं बिम्ब

**निवेदिता स्वरूप,** शोधार्थी–हिन्दी विभाग,
ए.के.पी. (पी.जी.) कॉलिज, खुर्जा।

भक्ति की निर्गुण काव्यधारा की महत्वपूर्ण शाखा ज्ञानमार्गी शाखा है। जिसे हम संत काव्यधारा भी सम्बोधित करते हैं। संत का अर्थ है आत्मउन्नति, सदाचारी और समाज के लिए मंगलकारी, ज्ञानमार्गी शाखा के संत कवि इस प्रकार है–'नामदेव, रामानन्द, कबीर, रैदास, दादुदयाल, मलूकदास, सुन्दरदास, रज्जव आदि। ज्ञानमार्गी संतों के काव्य का अध्ययन करने के पश्चात हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि ये सभी कवि निर्गुण ब्रह्म के उपासक साधुसंगति में बैठने वाले जाति–पाति और बाह्य आडम्बरों का विरोध करने वाले, माया का खण्डन करने वाले, अहंकार का त्याग, राम नाम की महत्ता, गुरू की महत्वता, साधारण बोलचाल की विशेषता आदि पर बल देते हैं।

सभी संत कवि पढ़े लिखे नहीं थे, उन्होंने जो भी ज्ञान प्राप्त किया था। वो साधु संगति से और देशाटन से प्राप्त किया था। उनकी भाषा सरल–सरस भावानुरूप और प्रभावशाली है, उन्होंने विभिन्न प्रकार की शब्दावली का प्रयोग किया है। उनका शब्द भण्डार सशक्त और सक्षम है, उनके काव्य में अरवी, फारसी, बुन्देली, गुजराती, भोजपुरी, पंजाबी, ब्रज भाषा के शब्दों का प्रयोग मिलता है। लोकमंगल की भावना और परोपकार की भावना इनके काव्य में मुखरित होती है। कबीर ज्ञानमार्गी शाखा के प्रतिनिधि कवि है, उनका भाषा पर असाधारण अधिकार हे। प्रारम्भ में उनकी भाषा को पंचमेल खिचड़ी कहा गया, किन्तु बाद में इस भाषा को सधुक्कड़ी का नाम दिया गया। कबीर तो स्वयं कहते हैं–

**''मसि कागद छुयो नहीं, कलम गही नहीं हाथ।''**

**कबीर काव्य में प्रतीक :–**

साहित्य में कविता संत कबीर के लिए अत्यन्त महत्वपूर्ण है, उन्होंने कविता लिखने की कभी कोई प्रतिज्ञा नहीं की, फिर भी उनकी आध्यात्मिक रसपूर्ण गगरी से जन–जीवन को सरबोर कर देने वाली काव्य–रस छलका। वस्तुतः कबीर को मूल उद्दश्य भक्ति है और भक्ति भी ऐसी जो दुर्लभ है कि जिसे पढ़ सुनकर सहृदय के हृदय में श्रद्धा और प्रेम दोनों उमड़ पड़ते हैं।

''सच पूछा जाए तो जनता कबीरदास पर श्रद्धा करने की अपेक्षा प्रेम अधिक करती है। इसीलिए उनके संत रूप के साथ ही उनका कवि रूप बराबर चलता रहता है। वे केवल नेता और गुरू नहीं है, साथी और मित्र भी हैं'' [1]

''उन्होंने अपने साथी मित्र पाठकों की अपने काव्य का पान कराने के लिए अपने भावों को अपने सिलबट्ट पर घोट–घोट जिज्ञासुओं को अपनी वाणी में इस प्रकार से समझाया है कि वह अगोचर आत्मा सहज ही उस परमात्मा से जा मिलती है।'' [2]

**प्रतीक विधान :–**

''भावों की सरसतापूर्वक अभिव्यक्ति के साधन का नाम प्रतीक है। जिसमें पर्याप्त शब्दों के अभाव में कवि द्वारा प्रयुक्त होने वाले भाव सूचक शब्द, जिससे अमूर्त भावों को मूर्त रूप दिया गया हो, प्रतीक कहलाते हैं।'' [3] प्रतीकों का प्रयोग भारतीय संत साहित्य में काफी पुराना रहा है।

भारतीय संत परम्परा के अनुसार भक्त, संत आदि लोग भगवान के प्रति पिता और माता का सम्बन्ध ही स्थापित करते आये थे। किन्तु सूफी कवियों ने इस परम्परा में मोड़ लाकर उसे दाम्पत्य भाव के पड़ाव पर लाकर खड़ा कर दिया। [4]

''कबीर भारतीय संत परम्परा के साथ–साथ सूफियों से भी विशेष प्रभावित हुए हैं और उन्होंने एक ओर 'हरि जननी मैं बालक तोरा, पिता हमारो बड़ो गुसाई' कहकर प्रतीक पद्धति में जहाँ भारतीय

परम्परा का निर्वाह किया है।''[5] ''वहाँ 'हरि मेरे पीव मैं राम की बहुरिया' कहकर सूफियों के साथ भी हो लिए हैं। दाम्पत्य प्रतीक के प्रयोग से शुद्ध आध्यात्मिक विचार मधुमयी कोमल भावनाओं के रूप में व्यक्त होते हैं। जिसमें काव्य में एक आलौकिक आनन्द एक दिव्य रस स्फुरित होने लगता है। दाम्पत्य प्रेम में विरह और मिलन की मधुर और कोमल परिस्थितियाँ आती हैं। कबीर ने आत्मा और परमात्मा के विरह और मिलन जनित अनेक चित्र दाम्पत्य प्रतीकों के ही सहारे व्यक्त किए हैं।'' [6]

कबीर काव्य में प्रतीक मुख्य रूप से बौद्ध, सिद्ध और नाथ सम्पद्रायों से या फिर सामान्य जन से लिए गये हैं। इनके प्रतीक मुख्य चार प्रकार के हैं–

1. पारिभाषिक प्रतीक (जैसे–गगन, गुफा, गगन मण्डल, चन्द्र, सूर्य, सरस्वती, गंगा–यमुना, बाधिन, पाताली, वनिहारी)।
2. संख्यावाचक शब्दों में (दूई पाठ, त्रिकुटी, तीन गाउ, चार चोर, अष्ट कमल, दशम्, द्वारादि)।
3. अन्योक्तिपरक (चौराहा, बालम, चदरिया, गांव, दुलहिन, भरतार आदि)।
4. उल्टबॉसी वाले प्रतीक (मछली, मृग, सर्प, कुआ, खरगोश आदि)।

कबीर का दाम्पत्य प्रेम सूफियों के दाम्पत्य प्रेम से भिन्न है। कबीर भारतीय संत परम्परा का निर्वाह करते हुए उस समय तक दाम्पत्य प्रेम को अभिव्यक्ति नहीं देते जब तक पति–पत्नी का शास्त्रीय विधि से विवाह सम्पन्न न हो जाये। इस प्रकार कबीर ने पति–पत्नी के विवाह की बात कह कर आत्मा और परमात्मा के दाम्पत्य भाव का बड़ा ही पवित्र, आध्यात्मिक वर्णन किया है।

कबीर ने साम्यमूलक और विरोध मूलक दोनों प्रकार की प्रतीक योजना को प्रयुक्त किया है। कुछ उदाहरण दृष्टव्य है –

**''कियों सिंगार मिलन के ताई, हरि न मिले जगजीवन गुसाईं।**
**हरि मेरे पीव मैं हरि की बहुरिया, राम बड़े मैं छुटक लुहरिया।।''** [7]

इन मुख्य प्रतीकों के अलावा कबीर ने नाथों और सिद्धों से प्रभावित होकर सांकेतिक, संख्यामूलक एवं रूपात्मक प्रतीकों का भी प्रयोग किया है। ''सांकेतिक प्रतीक' के अन्तर्गत नाथपंथियों के गगन मण्डल, ब्रह्मकाल आदि शब्दों को लिया जा सकता है। गगनमण्डल को नाथपंथ ने ब्रह्मरंध्र का पर्याय एवं ब्रह्मकाल को सुषुम्ता का वाचक माना है।'' [8]

'पारिभाषिक प्रतीकों' में इड़ा नाड़ी के लिए गंगा, पिंगला के लिए यमुना और कुण्डलिनी शक्ति के लिए बालरंध्र नाम के पारिभाषिक प्रतीक निश्चित किये गये हैं और मूलाधार चक्र के लिए सूर्य सहस्त्रारचक्र के लिए चन्द्रमा को पारिभाषिक प्रतीक माना गया हे। कबीर ने ऐसे पारिभाषिक प्रतीकों का बहुलता से प्रयोग किया है–

**''सूर्य समाणा चन्द्र में दुहुँ किया घर एक।**
**मन कर चिन्ता तथा भया कछू पूर्वला लेख।''** [9]

सिद्धों और नाथों की परम्परा में कबीर ने संख्यावाची शब्दों के प्रतीक भी ग्रहण किये हैं–

**'चौसठ दीया जोय के चौदा चंदा माहि।**
**तेहि घर किसका चानड़ो जेहि घर गोविन्द नाहिं।''** [10]

यहाँ पर चौंसठ संख्यावाचक शब्द, चौसठ कलाओं एवं चौदह शब्द, चौदह विधाओं का प्रतीक है।

कबीर की अधिकाश उल्टवासियाँ ऐसी हैं, जिसमें आरभ से अन्त तक उल्टवासियों की अभिव्यक्ति हुई है, इन्हें पूर्णपद उल्टवासी कहा जा सकता है, एक उदाहरण दृष्टव्य है–

**''एक अचम्भौ देखा रे भाई।**
**ठाढ़ा सिंघ चरावै गाई।।**
**पहिले पूत पिछै भई माई। चेला कै गुरू लागै पाई।**
**जल की मछरी तरवरि ब्याई। कूता कौ लै गई बिलाई।**
**बैलहिं डारि गोंनि घरि आई। घोरै चढ़ि भैस चरावन जाई।**
**तलिकरि पत्ता उपरि करि मूल। बहुत भाँति जड़ लागे फूल।**
**कहै कबीर या पद कौ बूझै। ताकौं तीनिउँ त्रिभूवन सूझै।।** [11]

**कबीर काव्य में बिम्ब :–**

प्रतीक की भांति बिम्ब भी काव्य का एक प्रमुख अंग है। बिम्बों का प्रयोग साहित्य में आरम्भ से होता रहता है। प्रतीकों के विपरीत बिम्ब इन्द्रिय–संवेद्य होते हैं। अर्थात उनकी अनुभूति किसी न किसी

इन्द्रीय से जुड़ी रहती है। पं0 रामचन्द्र शुक्ल – **''काव्य में केवल अर्थ ग्रहण को ही नहीं अपितु बिम्ब ग्रहण को भी अपेक्षित मानते हैं।''** [12]

काव्य–कला के संदर्भ में बिम्ब अंग्रेजी शब्द 'इमेज' का पर्याय है। अतः बिम्ब का अर्थ स्पष्ट करने के लिए पहले **'इमेज'** शब्द की व्याख्या करना आवश्यक है। **'इमेज'** का अर्थ है–कल्पना अथवा स्मृति में उपस्थित चित्र अथवा प्रतिकृति, जिसका उपस्थित होना अनिवार्य नहीं है।

**'इमेज'** का हिन्दी संस्कृत रूपान्तर है **'बिम्ब'** जिसका शब्दार्थ है–सूर्य चन्द्र मंडल प्रतिच्छवि, प्रतिच्छाया, प्रतिबिम्बित अथवा प्रत्यांकित रूप चित्र। [13]

**बिम्ब** यथार्थ न होकर उसकी प्रतिच्छवि हैं। बिम्ब एक प्रकार का चित्र है, जो किसी पदार्थ के साथ विभिन्न इन्द्रियों के द्वारा पाठक के हृदय में उत्पन्न हो जाता है। यह प्रत्यक्ष तथा परोक्ष दोनों रूपों में होता है। प्रथम में इन्द्रिय–व्यापार मुख्य रहता है तथा द्वितीय में कल्पना का बाहुल्य होता है, जिसके द्वारा कवि बिम्ब निर्माण में सक्षम होता है। बिम्ब पूर्वानुभूतियों एवं भावनाओं का ऐसा पूर्वाकरण है, जिसमें ऐन्द्रियता अपेक्षित है। आवेग, संवेदना एवं भावना इसकी मूल आवश्यकताएँ हैं। [14]

अनुभूति, भाव, आवेग व ऐन्द्रियता कबीर काव्य बिम्ब के प्रमुख तत्व हैं। इन्हीं के द्वारा बिम्ब जीवन्त बनता है और काव्य में विशिष्ट महत्व का अधिकारी होता है। [15] कबीर काव्य में बिम्बों की बहुत ही सुन्दर व्यंजना हुई है।

कबीर के बिम्ब मानव की संवेदनाओं से जुड़े हैं। इसी वजह से सुन्दरता की अपेक्षा सजीवता बिम्बों का मुख्य गुण है। बिम्बो के प्रयोग में कबीर अनुभवों को प्रमाणित करते हैं, जैसे अनुभव करते हैं, उसे वैसे ही अपने काव्यरूप में साकार करते हैं। कबीर काव्य में बिम्ब कई प्रकार के जैसे–दृश्य, श्रव्य, घ्राण, स्पर्श, स्वाद आदि जिनमें एन्द्रिकता केन्द्रीय तत्व हैं।

**दृश्य बिम्ब** का उदाहरण दृष्टव्य है, जिसमें कबीर दास जी ईश्वर की महत्ता बताते हुए कहते हैं कि–

''कस्तुरी कुण्डल बसे, मृग ढूँढत वन माहि।
ज्यों घट–घट राम है, दुनिया देखे नाहि।''

यहाँ कबीरदास जी कहते हैं कि–जिस प्रकार हिरन की नाभि में कस्तुरी होती है, परन्तु हिरन अज्ञान के कारण उसे वन–वन ढूँढता फिरता है, उसी प्रकार परमात्मा इस संसार के कण–कण में व्याप्त है और मनुष्य अपनी अज्ञानता के कारण देख नहीं पाता।

''बुरा जो देखन मैं चला, बुरा न मिलिया कोय,
जो दिल खोजा आपना, मुझसे बुरा न कोय।।''

उक्त दोनों पदों में दृश्य बिम्ब दृष्टव्य है।

**घ्राण बिम्ब** का उदाहरण दृष्टव्य है–

''जाके मुख माथा नहीं, नाहीं रूप कुरूप।
पहुप बास तै पातरा, ऐसा तत्व अनुप।''

यहाँ कबीरदास जी कहते हैं कि जिसका न मुख है, न माथा है तथा जिसका न कोई रूप है और न ही वह कुरूप है। वह पुष्प की सुगन्ध से भी पतला, ऐसा तत्व अनूप है।

**ध्वनि बिम्ब** का उदाहरण निम्न है –

कबीर जन्त्र न बाजई, टूटि गए सब तार,
जन्त्र विचारा क्या करै, चले वजावनहारा। [16]

यहाँ कबीर दास जी कहते हैं कि–यह यन्त्र (शरीर) अब नहीं बजेगा, इसके सब तार टूट चुके हैं। यन्त्र बेचारा क्या करे, जब इस यन्त्र को चलाने/बजाने वाला (आत्मा) इसमें से चला गया है। अर्थात् मृत्यु के पश्चात शरीर रूपी यन्त्र के न बजने की अभिव्यक्ति की गई है।

**स्वाद बिम्ब** का उदाहरण दृष्टव्य है –

रूखा सूखा खाइ के, ठंडा पानी पीव
देख पराई चुपड़ी, मत ललचावे जीव।

यहाँ कबीरदास जी ने मनुष्यों को यह समझाने का प्रयास किया है कि–''हमारे पास जो है, हमें उसी में संतुष्ट रहना चाहिए, किसी दूसरे व्यक्ति की अच्छी स्थिति देखकर हमें लालच नहीं करना चाहिए।''

**स्पर्श बिम्ब** का उदाहरण दृष्टव्य है –

माखी गुड़ में गड़ि रही, पंख रही लपटाय।
हाथ मले और सर धुने, लालच बुरी बलाय।

कबीरदास जी जीवात्मा को मोह और माया से बतने के प्रति आगाह करते हुए कहते हैं कि–जीवात्मा अपने स्वभाव से सुख–चैन और मोह–माया के प्रति लालायित रहता है। जिस प्रकार मक्खी गुड़ पर आकर्षित होती है, एक बार मीठे के चक्कर में फँस जाने पर वह उससे चिपक कर रह जाती है, जब उसे ज्ञान होता है तो वह इसके जाल से निकलने के लिए खूब प्रयत्न करती है, लेकिन वह गुड़ पर ही चिपक कर रह जाती है और अपनी जान गवां देती है। इसी प्रकार जीवात्मा भी संसार की मोह–माया में फंसकर अपनी जान गंवा बैठता है।

**बिम्ब** और **प्रतीक** दोनों ही कल्पना के दो रूप हैं, इस कारण उनमें अनेक समानताएँ हैं, पर दोनों एक नहीं है, दोनों की अपनी–अपनी सीमायें हैं। प्रतीक मूल में बिम्ब होता है, काव्य में निरन्तर प्रयुक्त होते वह प्रतीक का स्वरूप धारण कर लेता है। [17]

प्रतीक यद्यपि बिम्ब के अति निकट है, परन्तु दोनों के उद्‌गम स्थलों में अत्यधिक अन्तर है, एक का उद्‌गम यदि समाज की चेतना पर निर्भर रहता है तो दूसरे का कवि की चेतना पर। [18]

अतः समग्र रूप में कहा जा सकता है कि प्रतीक व बिम्ब दोनों ही कल्पना के ही दो रूप हैं और कबीर काव्य की उत्कृष्टता के परिचायक हैं। परन्तु उनमें अनेक एकरूपता एवं विभिन्नताएँ हैं। यद्यपि प्रतीक मूल रूप में बिम्ब ही हैं, पर मूलरूप की समानता होते हुए भी उनमें अनेक अन्तर प्रतीक यदि जातीय चेतना से अधिक सम्पृक्त है तो बिम्ब व्यक्तिगत चेतना से, इस प्रकार इन दोनों के उद्‌गम स्थलों में भिन्नता है। अस्तु स्पष्ट है कि कबीर काव्य में प्रतीक व बिम्ब कल्पना के दो भिन्न स्वरूप हैं, जिसकी सीमा रेखाएँ एक दूसरे को स्पर्श अवश्य करती हैं, पर उनके क्षेत्र अलग–अलग ही हैं। [19]

**निष्कर्ष :–**

उपर्युक्त अध्ययन से हिन्दी के सूफी संत काव्यों में जो प्रतीक एवं बिम्ब योजना हुई है, उसकी महत्ता और उत्कृष्टता प्रकट हो जाती है। ''हिन्दी सूफी संत काव्यों की इस प्रतीक योजना के आधार पर कई महत्वपूर्ण निष्कर्ष निकल सकते हैं। संत काव्य की उपर्युक्त विवेचन या अवलोकन के उपरान्त हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि संत काव्य मानव जीवन की सहज अनुभूतियों का सहज सरल संकलन है।'' [20] इसमें बरसाती नाले की नहीं, अपितु गंगा की कल–कल चंचल धारा की सी तीव्रता, गति और प्रवाह है। यहाँ सभी कुछ प्राकृतिक है, कृत्रिमता तनिक भी नहीं है। भाव, शिल्प दोनों दृष्टि से संत काव्य **'बहुजन हिताय, बहुजन सुखाय'** का नारा सिद्ध करता है।

कबीर के अन्य पहलू जिस प्रकार विवादास्पद है, उसी प्रकार उनका कविकर्म भी विवाद का विषय रहा है। असल में इन फक्कड़ राम का व्यक्तित्व ही ऐसा विलक्षण है कि किसी भी पक्ष को पूर्वनिश्चित चौखटे में ढालना टेढ़ी खीर हो जाता है।

कबीर ने प्रबन्ध काव्य की रचना नहीं की। उनका सारा काव्य मुक्तक शैली का है, अर्थात उनका प्रत्येक छन्द अथवा गीत अपने में ही स्वतन्त्र तथा पूर्ण है।

**संदर्भ सूची**


1. हजारी प्रसाद द्विवेदी – कबीर, पृष्ठ सं0–218 ।
2. गोविन्द लाल छावड़ा – क्रांतीकारी कबीर, पृष्ठ सं0–152 ।
3. वही, पृष्ठ सं0–155 ।
4. वही, पृष्ठ सं0–156 ।
5. बैजनाथ प्रसाद शुक्ल – कबीर एक नव्य बोध, पृष्ठ सं0–127 ।
6. वही, पृष्ठ सं0–128 ।
7. कबीर ग्रन्थावली, पृष्ठ सं0–277 ।
8. गोविन्द लाल छावड़ा – क्रांतीकारी कबीर, पृष्ठ सं0–158 ।
9. विजेन्द्र स्नातक – कबीर, पृष्ठ सं0–218 ।
10. डॉ0 सरोजनी पाण्डेय – हिन्दी सूफी काव्य में प्रतीक योजना, पृष्ठ सं0–64 ।
11. हजारी प्रसाद द्विवेदी – कबीर, पृष्ठ सं0–221 ।
12. चिन्तामणि – कविता क्या है? प्रथम भाग, पृष्ठ सं0–145 ।
13. डॉ0 सरोजनी पाण्डेय – हिन्दी सूफी काव्य में प्रतीक योजना, पृष्ठ सं0–65 ।
14. वही, पृष्ठ सं0–66 ।

15. वही, पृष्ठ सं0–78 ।
16. हजारी प्रसाद द्विवेदी – कबीर, पृष्ठ सं0–220 ।
17. डॉ0 सरोजनी पाण्डेय – हिन्दी सूफी काव्य में प्रतीक योजना, पृष्ठ सं0–65 ।
18. वही, पृष्ठ सं0–74 ।
19. डॉ0 पारसनाथ तिवारी – कबीर वाणी संग्रह, पृष्ठ सं0–99 ।
20. डॉ0 सरोजनी पाण्डेय – हिन्दी सूफी काव्य में प्रतीक योजना, पृष्ठ सं0–291 ।
21. www.wikipedia.org

www.bohalshodhmanjusha.com Bohal Shodh Manjusha ISSN: 2395-7115
Impact Factor:8.642 January 2025 Page No. : 31-38
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

# मानव मूल्य और साहित्य का अंतर्संबंध

**नीतू तिवारी,** शोधार्थी हिन्दी विभाग,
ए0 के0 पी0 (पी0 जी0) डिग्री कॉलेज खुर्जा, बुलंदशहर

मूल्य की मूल अवधारणा का संबंध उस गुण या धर्म से है, जो किसी अस्तित्ववान वस्तु व्यक्ति या समाज के मूल में निहित होता है। जिससे इन सब के अस्तित्ववान बने रहने और उसके उत्कर्ष में सहायता मिलती है। इससे अस्तित्ववान वस्तु व्यक्ति या समाज की सार्थकता सिद्ध होती है। मानव मूल्य ऐसे मूल्यों की इकाई है जिससे सामाजिक एवं सामूहिक स्तर पर मनुष्य के जीवन को सार्थकता मिलती है। मनुष्य की मनुष्यता या मानवीयता का उत्कर्ष मानव मूल्य पर निर्भर करता है। मानव जीवन की सार्थकता इसी से सिद्ध होती है अन्यथा वह निरर्थक प्रतीत होने लगता है। मूल्य के बिना जीवन का अस्तित्व तो संभव हो सकता है लेकिन उसकी सार्थकता प्रमाणित करना संभव नहीं है। अस्तित्व अपरिहार्य है लेकिन अस्तित्व की सार्थकता सिद्ध करने के लिए मूल्य अनिवार्य है ।

मूल्य की परिभाषा करना कठिन है उसके स्वरूप का ज्ञान प्राप्त करने के लिए उसके लक्षणों और विशेषताओं का विश्लेषण और संश्लेषण करते हुए किसी निष्कर्ष तक पहुंचना पड़ता है। मूल्य की परिभाषा संबंधी कठिनाई का उल्लेख करते हुए चंद किरण ने लिखा है "मूल्य अपने आप में एक बहुत ही विस्तृत तथा अमूर्त संकल्पना है जिसमें अनेक प्रकार के आयाम को देखा व परखा जाता है। एक और किसी भी समाज की संस्कृति की विशेषता इन मूल्यों के स्वरूप पर ही निर्भर करती है तो दूसरी ओर यह किसी भी समाज के सदस्यों के व्यवहार की कसौटी भी माने जाते हैं सामान्य तौर पर किसी भी समाज की शिक्षा प्रणाली का लक्ष्य इन मूल्यों को ही पाना होता है जिन्हें प्राय शिक्षा के उद्देश्य अथवा लक्ष्य के रूप में निर्धारित किया जाता है ताकि उस समाज के सदस्यों को समाज की एक निश्चित या फिर निश्चित से जीवन शैली में डाला जा सके वह समाज के द्वारा स्वीकृत किए गए व्यवहार के मानदंड के अनुसार व्यवहार कर सकें। सामाजिक संदर्भ में जीवन जीने या जीवन शैली के मानदंड ही मूल्य कहलाते हैं। सामान्य शब्दों में इन्हें

जीवन जीने की कसौटी कहा जा सकता है। तकनीकी शब्दावली में इन्हें मानक कहा जा सकता है"।[1]

चंदकिरण के उक्त कथन से स्पष्ट है कि मूल्य का संबंध एक ओर व्यक्ति के आचरण से जुड़ा है तो दूसरी ओर संपूर्ण समाज की संस्कृति से जुड़ा है इसका आयाम व्यक्ति से लेकर समाज तक फैला हुआ है इससे व्यक्ति के चरित्र से लेकर समाज की अच्छाई बुराई तक पता चलता है क्योंकि मूल्य इन सबको मापने की कसौटी है।

साहित्य के प्रसंग में मानव मूल्य के विश्लेषण के लिए रचनाकार की अंतरात्मा का प्रश्न अत्यंत महत्व के साथ जुड़ा है इस स्थिति में मूल्य भी सृजन प्रक्रिया का अंग होता है साहित्य में अभिव्यक्त मानव मूल्य का अनिवार्य संबंध रचनाकार के विश्वबोध से होता है इसके साथ ही मानव हित में उसमें एक विशेष प्रकार की पक्षधर्ता भी मौजूद रहती है वह अपनी अंतरात्मा की आवाज पर मूल निर्धारण की प्रक्रिया में शामिल रहता है इस संदर्भ में मुक्तिबोध का मत है "साहित्य में पक्षधर्ता का प्रश्न हमेशा से रहा है और रहेगा पक्षधर्ता का संबंध मनुष्य के विश्व बोध और सद असद विवेक बुद्धि अर्थात अंतरात्मा के विवेक से है।"[2]

साहित्य के गुणों की परख में कई बार मूल्य के आधार पर की जाती है साहित्य का मूल्य समाज को प्रत्यक्ष रूप से प्रभावित करता है वरिष्ठ आलोचक शंभू नाथ के शब्दों में "साहित्य में कविता कहानी उपन्यास के गुणों की परख ही कई बार इस आधार पर की जाती है कि उनमें किन मूल्य मूल्य के संकट या मूल्य की टकराहट अभिव्यक्ति हुई है संस्कृतियों के केंद्र में सदा से साहित्य रहा है इसलिए साहित्य को विघटित होते बदलते या विस्थापित होते नए मूल्यों के आईने के रूप में देखा जाता है साहित्य के मूल्य ही देश स्थान और काल पर रोशनी डालते हैं।"[3]

मानव मूल्य किस प्रकार साहित्य की सृजन प्रक्रिया में शामिल होकर श्रीजीत और संश्लेषित होता है इसे स्पष्ट करने के लिए डॉ. जगदीश गुप्त के मत को देखना अनिवार्य है। उनके अनुसार "किसी मूल्य का संश्लेषण तब तक सृजन प्रक्रिया में संभव नहीं है जब तक वह अनुभूति की स्स्पंदित भाव भूमि पर अवतरित नहीं होता जिन मानवी अनुभवों के आधार पर वह मूल्य सामान्य जीवन में सिद्ध माना गया है उन्हें या उनके समानांतर परिकल्पित वैसे ही अनुभूतियों की सजीव सृष्टि का सूत्रपात हुए बिना रचना प्रक्रिया में मूल्य बोध का समावेश संभव है साहित्य में वे मानव मूल्य ही प्रतिबिंबित एवं समष्टि हो पाते हैं जिनको साहित्यकार ने अपने अंतःकरण में धारण कर लिया है और जो उनके संवेदनशील व्यक्तित्व के अविभाज्य अंग बन चुके हैं ऐसे मानव मूल्य साहित्य और कला में संश्लिष्ट होकर व्यक्त होते हैं वह आरोपित प्रतीत नहीं होते इन्हें साहित्य के माध्यम से उपलब्ध मानव मूल्य कहा जा सकता है।"[4]

साहित्य में व्यक्त मानव मूल्यों की स्थिति अन्य क्षेत्रों में व्यक्त मानव मूल्यों से भिन्न होती है ऐसा साहित्य की विशिष्ट प्रकृति और मानव जीवन से उसके विशिष्ट संबंध के कारण संभव होता है इसलिए साहित्य में व्यक्त मूल्य का स्वरूप विशिष्ट रूप से सामने आता है इस संदर्भ में डॉ. भागीरथ पैरोड ने लिखा है "साहित्य में मानव मूल्यों की स्थिति महत्वपूर्ण है साहित्य क्योंकि युग विशेष का प्रतिनिधित्व होता है तथा युग विशेष के विचारों का निर्माण करता पथ प्रदर्शक भी होता है इसलिए मानव मूल्यों के संदर्भ में साहित्य का महत्व बढ़ जाता है।"[5]

मूल्य शब्द किसी भी वस्तु व्यक्ति या समाज के मूल में निहित वह तत्व है जिसके कारण वह मूल्यवान होता है यह किसी वस्तु व्यक्ति या समाज के महत्व को मापने का मानदंड है मूल्य के द्वारा ही किसी भी लक्ष्य को प्राप्त किया जाता है अतः वह लक्ष्य को प्राप्त करने का साधन है मूल्य के कारण ही व्यक्ति या वस्तु में वह योग्यता उत्पन्न होती है जिससे किसी लक्ष्य में सिद्ध प्राप्त की जाती है इस योग्यता के कारण ही वस्तु में अच्छाई और सुंदरता आधार होता है मूल्य में इच्छापूर्ति की क्षमता होती है इसलिए यह वंचित होता है मूल्य महत्व का देवता है जिसके द्वारा किसी वस्तु का मूल्यांकन किया जाता है किसी चीज की कीमत या महत्व को मूल्य कहा जाता है वस्तु की कीमत या उसके महत्व का परीक्षण उसकी उपयोगिता के आधार पर किया जाता है उपयोगिता वास्तुगत भी हो सकती है और भावगत भी हो सकती है वस्तु की उपयोगिता ही हमारी संतुष्टि का आधार है संतुष्टि अनुभूति का विषय है उपयोगिता जान संतुष्ट की अनुभूति विभिन्न रूपों में होती है इस संदर्भ में जगदीश गुप्त ने कहा है- "जो वस्तु मानव मन में प्रसाद प्रेरणा सार्थकता आपूर्ति तथा परितोष की अनुभूति उत्पन्न करने में सक्षम होती है वही मूल्यवान प्रतीत होने लगती है।"[6]

जो साहित्यिक कृति हमें जितना संवेदना प्रदान करती है वह उतनी ही मूल्यवान मानी जाती है यह हमारी सुप्त या अव्यक्त भावनाओं को जागृत कर एक विशिष्ट प्रकार की भावनात्मक संतुष्ट प्रदान करती है भावनात्मक संतुष्ट प्रदान करने वाली उपयोगिता स्थल भी हो सकती है और सच में इसके बावजूद यह माना जाता है कि मूल्य वस्तु पर आधारित न होकर मनुष्य की इच्छा आकांक्षा और संतुष्टि पर आधारित होता है इस संदर्भ में अशोक त्रिपाठी का कथन है "मूल्य वस्तु आश्रित ना होकर मानवी इच्छा आकांक्षा एवं परितोष के आश्रित रहता है इसलिए इच्छाओं और विचारों के साथ-साथ मूल्य में भी बदलाव होता रहता है शाश्वत मूल्य की कल्पना कोरि कल्पना ही है इच्छाओं और आकांक्षाओं का बदलाव सहज ही नहीं होता वरन इस बदलाव के पीछे संघर्ष की मनोभूमि रहती है इसलिए मूल्य जगत में भी संघर्ष की स्थिति निरंतर गतिशील रहती है ।"[7]

मूल्य की परिवर्तनशीलता और विविधता को देखते हुए उसका वर्गीकरण और संख्या की गणना करना आव्यावहारिक प्रतीत होता है। फिर भी व्यावहारिक स्तर भी मूल्य का संदर्भगत वर्गीकरण किया जाता रहा है मूल शब्द मुल्यता अर्थशास्त्र का शब्द है लेकिन क्षेत्र विस्तार के साथ ही उसका अर्थ विस्तार भी होता चला गया है इस संदर्भ में आचार्य देवेंद्र नाथ शर्मा का कथन है - "मूल्य मुलता अर्थशास्त्र या यूं कहें कि राजनीतिक अर्थव्यवस्था का शब्द है किंतु इसका क्षेत्र विस्तार हो गया है अर्थशास्त्र से इसका प्रवेश दर्शन शास्त्र में हुआ फिर मनोविज्ञान में और मनोविज्ञान से साहित्य में ।"[8]

किसी भाषा के बची और लिखित शास्त्र समूह को साहित्य कह सकते हैं किसी साहित्य की सार्थकता उसकी मूल्य परकता में निहित है इसलिए साहित्य सर्जक के लिए मूल निरपेक्ष कृति की सृष्टि करना निरर्थक है इससे उसकी रचना निष्प्रयोजन हो जाती है ऐसे कार्य का किसी भी दृष्टि से महत्व संपादन करना संभव हो जाता है साहित्यकार एक जागरूक एवं जिम्मेदार प्राणी होता है इसलिए उसे पर रचना के अतिरिक्त सामाजिक दायित्व होता है इस संदर्भ में डॉ. राजेंद्र प्रसाद का कथन है "मूल्य बोध एवं उससे जुड़े प्रश्न पर विचार करना नीति के आचार्य दार्शनिकों आदि का ही कार्य नहीं बल्कि उसे व्यक्ति अथवा सर्जक के लिए भी आवश्यक है जो सामाजिक रूप से पूरी तरह जागरूक है क्योंकि मूल्य का निर्धारण उसका चुनाव आवश्यकता पड़ने पर किन्हीं मूल्य का अनुमोदन एवं विरोध अथवा नए मूल्यों की सृष्टि पूरी तरह से सामाजिक जिम्मेदारी का कार्य है मूल्य एवं उससे जुड़े प्रश्नों से विमुख होकर कोई भी सर्जक अपने सामाजिक दायित्व का पूरा-पूरा निर्वाह नहीं कर सकता ।"[9]

भाषा साहित्य और संस्कृति के साथ मूल्य का गहरा संबंध है भाषा अत्यंत महत्वपूर्ण कारक है इससे जुड़े होने के कारण साहित्य का भी घनिष्ठ संबंध हो जाता है संस्कृत में किसी भी मानव समुदाय के विश्वास और मूल्य निहित होते हैं मूल्य और विश्वासों से जुड़े साहित्य का सांस्कृतिक महत्व संदिग्ध है अतः कहा जा सकता है कि मूल्यों के आधार के बिना साहित्य का मानव जीवन के संदर्भ में कोई अर्थ नहीं रह जाएगा साहित्य में मूल्य की स्थिति अत्यंत महत्वपूर्ण होती है साहित्य का अत्यंत महत्व मूल्य आश्रित होता है साहित्य परंपरागत उपयोगी मूल्य का संवाहक एवं संरक्षक होता है साथ ही वह नए मूल्यों का रिश्ता भी होता है फलता वह समाज का नवनिर्माण करने में समर्थ होता है इसके अभाव में साहित्य अर्थहीन और बेकार हो जाता है साहित्य की मुल्यता पर जोर देते हुए डॉ. धर्मवीर भारती का कथन बिल्कुल उचित है "मानवीय मूल्यों के संदर्भ में यदि हम साहित्य को नहीं समझते तो अक्सर हम ऐसी झूठी प्रतिमान योजना को प्रश्रय प्देने लगते हैं की समस्त साहित्यिक अभियान गलत दिशाओं में मुड़ जाता है ।"[10]

वर्तमान युगीन संकट को देखते हुए साहित्य की मूल्य पर रखना का प्रश्न और जीवन और ज्वलंत रूप में हमारे सामने उपस्थित हुआ है सरवत मूल्य के चरण दृष्टिगत हो रहे हैं इसका सर्वाधिक घातक प्रभाव मानव के अस्तित्व और जीवन की गर्म पर पड़ रहा है इस संकट से उबर का एक बड़ा साधन मानव का वह कृति है जिसे साहित्य कहा जाता है इसमें योग क्षेम की अपार क्षमता है। किसी समस्या के समाधान के लिए मनुष्य जिस वैकल्पिक समाधान की खोज करता है वह मूल्य है इस प्रकार के मूल्य को साधन मूल्य कहना उचित होगा जिस प्रकार मनुष्य का भौतिक परिवेश समस्याग्रस्त है उसी प्रकार उसका आंतरिक प्रवेश भी समस्या ग्रस्त रहता है साहित्य अपनी विशिष्ट प्रकृति और मूल्य में समस्याओं को सुलझाने में सहायता करता है खासकर मनुष्य के भीतर कर्मियों को दूर करने में उसकी बड़ी भूमिका होती है आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने साहित्य की सामाजिक भूमिका को स्पष्ट करते हुए लिखा है । - "हमारी राजनीति हमारे अर्थ नित और हमारी नवनिर्माण की योजनाएं तभी सर्व मंगलमय बना सकेंगे जबकि हमारा हृदय उदार और संवेदनशील होगा बुद्धि सोच और सद ग्रहणी होगी और संकल्प महान और शुभ होगा यह काम केवल उपयोगी और व्यावहारिक साहित्य के निर्माण से नहीं हो सकेगा इसके लिए साहित्य के उन सुकुमार अंगों की व्यापक प्रचार की आवश्यकता होगी जो मनुष्य को मनुष्य के सुख-दुख के प्रति संवेदनशील बनाते हैं जब तक मानव मात्र के मंगल के लिए इन्हें नहीं लिखा जाता तब तक वह अपना उद्देश्य सिद्ध नहीं कर सकेंगे इस बात के लिए यह भी आवश्यक है की जीवन की प्रति हमारी जो परंपरा  दृष्टि है वह स्पष्ट और सतेज हो ।"[11]

आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी की मान्यता है कि मनुष्य ही साहित्य का लक्ष्य है । डॉ. धर्मवीर भारती की मान्यता है कि वर्तमान समय में मनुष्य की अंतरात्मा का नाश हो चुका है इस परिस्थिति में हमारी आंतरिक स्थिति की प्रगति हमारी सृजनात्मक साहित्यिक और सांस्कृतिक गतिशीलता के अभाव में मनुष्य भीतर से खोखला हो गया है मनुष्य की अंतरात्मा की पुनः प्रतिष्ठा के लिए जी विवेक और साहस की आवश्यकता है उन जीवन मूल्यों का पोषण करने वाला सबसे सशक्त साधन साहित्य ही हो सकता है यदि कोई साहित्य इस दृष्टि से सक्षम नहीं है तो वह प्रगतिशील एवं मूल्यवान साहित्य नहीं कहला सकता ।

डॉ. धर्मवीर भारती ने लिखा है "सृजन साहित्य और संस्कृति के क्षेत्र में प्रगति की धारणा अंत तो गत्वा आंतरिक ही हो सकती है प्रगति हमसे निरपेक्ष नहीं है वह हमसे आवत है उसके निर्णायक तत्व हम ही हैं इसलिए प्रगति के प्रसंग में समानता की स्थापना और मानवी वर्मा की प्रतिष्ठा अन्य नियंत्रित अभिषेक मूल्य है इसे समझकर इसी दिशा में अंतरात्मा की पुनः प्रतिष्ठा इस आसन संकट से मानव मात्र का उद्धार कर सकती है विवेक और साहस का यह मार्ग थोड़ा दुष्कर आवश्यक है किंतु इसके अतिरिक्त और कोई रास्ता नहीं है ।"[12]

यह सच है की कला साहित्य और नैतिकता का उद्देश्य सर्वोच्च शुभ को साध्य बनाना है इसलिए इन्हीं लोक मंगल की साधना का सर्वाधिक नैतिक साधन माना जाता है इस प्रकार के शाम के बावजूद इन सब में प्रक्रिया गति ही नहीं प्रकृति भेद भी पाए जाते हैं इस संदर्भ में नंदकिशोर आचार्य का मत है "कला और नैतिकता में एक साम्य तो देखा जा सकता है लेकिन दोनों की प्रक्रिया अलग है चाहे मोटे तौर पर उसका लक्ष्य एक जैसा अधिक पड़ता हो साहित्य के जरिए सत्य को उसकी विधि अर्थात उसके रूप से पृथक किया जाना संभव नहीं है इन्हीं अर्थों में साहित्य एक स्वस्थ विद्या भी है क्योंकि एक स्वतंत्र चिंतन शैली होने के नाते वह जी सत्य को पहचानता है उसे तक किसी दूसरी चिंतन शैली के माध्यम से पहुंचना संभव नहीं है दर्शन की शब्दावली में कहे तो साहित्य अपने आप में एक ज्ञान में मनसा भी है इसलिए उसे प्राप्त तत्वबोध और मूल्य बोध भी अनिवार्यता इस ज्ञान मीमांसा की विधि से निर्धारित एवं प्रतिबिंब है आधुनिक लेखक जब कविता को अनुभव करने का देखने का एक तरीका  कहते हैं या जब वह लेखक के दर्शन को सोच के विषय में नहीं बल्कि स्वयं सोच की प्रक्रिया और व्यवहार में निहित मानते हैं तो वह उसे भारतीय धरना का ही समर्थन कर रहे होते हैं जिसमें साहित्यकार को दृष्ट अर्थात कवि कहा गया है इसका तात्पर्य क्या यही नहीं है की काव्य अपने में एक विशिष्ट दृष्टि एक विशिष्ट विजन है जिसे अपने अस्तित्व के लिए ज्ञान के किसी अन्य प्रकार विज्ञान दर्शन समाजशास्त्र या नीति शास्त्र पर निर्भर रहने की आवश्यकता नहीं है ज्ञान के अन्य प्रकार जहां विश्लेषण प्रधान और सत्य को युक्त सत्य की तरह प्रस्तुत करने की ओर उन्मुख होते हैं वहीं साहित्य और अन्य कला प्रकार सत्य को एक संश्लेषित एवं समग्र रचना अनुभव एक संवेदनात्मक रूप की तरह प्रस्तुत करते हैं साहित्य का सत्य इसी अर्थ में रचनात्मक सत्य है क्योंकि वह एक रचनात्मक अनुभव है।"[13]

प्रोफेसर नित्यानंद मिश्र के अनुसार "मनुष्य कोई भी सोच एक शून्य दिमाग से नहीं करता वह एक अवधारणा आत्मक ढांचे के अंतर्गत ही सोच विचार करता है यह संरचना इस संस्कृति की ही दिन होती है जिसमें वह मनुष्य जन्म लेकर पलता है और अपने जीवन यात्रा में आगे बढ़ता है संस्कृत का प्रभाव कुछ ऐसा होता है कि उसमें आविर्भुत लक्षण व्यक्त की मानसिकता का महत्व आगंतुक लक्षण नहीं होता वरुण वह उसे मानसिकता का आंतरिक या स्वरूप लक्षण ही बन जाता है।"[14]

कलात्मक सौंदर्य की संस्कृत चर्चा करते हुए मुक्तिबोध ने लिखा है "कलात्मक सौंदर्य के मन एक विशेष मर्यादा के अंतर्गत कलाकृति के भीतर रही है किन सौंदर्य का यह अंतूरोध भूत अंतर जनित निकट निश्चित नियमित और नियंत्रित होता है सौंदर्य मानव की उसे सांस्कृतिक परंपरा से जो पूर्व पर रूप से निरंतर संशोधित संस्कार निर्मल होती है और जो वर्तमान अवस्था

में भी युगीन परिस्थितियों और आवश्यकताओं तथा इतरातर प्रभावों से संशोधित संपादित होती चलती है सौंदर्य मानव की उसे सांस्कृतिक परंपरा से जो आज विश्व के विभिन्न देशों के सौंदर्य मनु और कलात्मक उपलब्धियां से पुनः पुनः प्रभावित संशोधित और संपादित हुई जा रही है सुंदर मानव की उसे सांस्कृतिक परंपरा से जिसमें मानव आदर्श नैतिक मूल्य तथा अन्य जीवन मूल्य संस्कार तथा मानवीय मूल्यों के प्रति विभिन्न जीवन गतियां प्रवाहित और समाहित होती हैं उसे सांस्कृतिक परंपरा से जिसमें कलात्मक अभिरुचि कलात्मक आदर्श कल संबंधी चिंतन भी समाविष्ट होता है।"[15] इस संदर्भ में आचार्य रामचंद्र शुक्ल की मान्यता है कि "साहित्य के सौंदर्य शास्त्री मूल्य का महत्व लोकमंगल की साधना अवस्था और लोकमंगल की सीधा अवस्था के काव्य के लिए एक समान होता है उनके शब्दों में कहा जा सकता है कि वास्तव में कल की दृष्टि दोनों प्रकार के काव्य में अपेक्षित है साधना अवस्था या पर्यटन पांच को लेकर चलने वाले काव्य में भी एक कला में चूक हुई तो लोक गति को प्रचलित करने वाला स्थाई प्रभाव उत्पन्न नहीं हो सकेगा।"[16]

साहित्य का मानव केंद्रित अध्यात्म वाद ही उसकी सबसे बड़ी मूल्य पर रखता है जिसके फल स्वरुप साहित्यकार का कृतित्व अच्छे बुरे द्वंद से ऊपर उठकर साक्षी भाव की उच्च स्थिति को प्राप्त कर लेता है और मानव मात्र के कल्याण सिद्ध के लिए एक साधन बन जाता है। सर्वोच्च शुभ की उपलब्धि में ही साहित्य की वास्तविक मूल्य पर रखना निहित होती है जहां वह जनहित के लिए स्वयं को समर्पित कर देता है।

**निष्कर्ष** - साहित्य के अंतर्गत मूल्य एक विचार या धारणा के रूप में मान्य रहा है यह दृश्य वस्तु न होकर अदृश्य वस्तु है चिंतन मनन ही इसके अन्वेषण शोध और सृजन का स्रोत रहा है यह चेतना के स्तर पर अनुभव करने योग्य तथ्य है जिसे सत्य में परिवर्तन करना व्यक्ति और समाज के लिए अत्यंत कठिन साधन का परिणाम होता है साहित्य का जीवन से गहरा संबंध होता है मूल्य जीवन को सार्थक एवं महत्वपूर्ण बनता है अतः साहित्य का मूल्य परक होना अनिवार्य है।

**शोध संदर्भ** -


1. शिक्षा के दार्शनिक परिप्रेक्ष्य, चंद किरण, हिंदी माध्यम कार्यान्वयन निदेशालय दिल्ल विश्वविद्यालय दिल्ली संस्करण 2006
2. मुक्तिबोध रचनावली, संपादक नेमचंद जैन, खंड 5, राजकमल प्रकाशन नई दिल्ली संस्करण 2011
3. हिंदी साहित्य ज्ञान कोष, खंड 5, प्रधान संपादक- शंभू नाथ, भारतीय भाषा परिषद कोलकाता प्रथम संस्करण 2019

4. स्वातंत्र्योत्तर हिंदी उपन्यास में मानव मूल्य और उपलब्धियां, डॉ0 भागीरथ बडोले, स्मृति प्रकाशन इलाहाबाद प्रथम संस्करण 1983
5. समकालीन हिंदी कविता के तीन दशक, अशोक त्रिपाठी, विवाह प्रकाशन इलाहाबाद संस्करण 2014
6. धर्मवीर भारती ग्रंथावली, संपादक चंद्रकांत, खंड 5, वाणी प्रकाशन नई दिल्ली, संस्करण 2009
7. अशोक के फूल, आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी, लोक भारती प्रकाशन इलाहाबाद, संस्करण 2013
8. समकालीन पश्चात दर्शन, प्रोफेसर नित्यानंद मिश्रा और मोतीलाल बनारसी दास, दिल्ली, संस्करण 2014
9. आचार्य रामचंद्र शुक्ल के श्रेष्ठ निबंध, संपादक प्रोफेसर सत्य प्रकाश मिश्रा, डॉ0 विनोद तिवारी, लोक भारती प्रकाशन इलाहाबाद, संस्करण 2010
10. लेखक की साहित्यिक मान्यताएँ, नंदकिशोर आचार्य, वाणी प्रकाशन नई दिल्ली, संस्करण 2008
11. साहित्य की वैचारिक भूमि, परशुराम शास्त्री, नवयोग प्रकाशन, नई दिल्ली
12. शब्दिता, डॉ0 धर्मवीर भारती, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली
13. रचना का सच और सर्जक का मन, नन्दकिशोर आचार्य, राजकमल प्रकाशन प्रा0 लिमिटेड, नई दिल्ली
14. आलोचना के विविध आयाम, नित्यानंद तिवारी, नया किताबघर प्रकाशन, नई दिल्ली
15. एक साहित्यिक की डायरी, मुक्तिबोध, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली
16. हिन्दी साहित्य का इतिहास, आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, कमल प्रकाशन, नई दिल्ली-110002

www.bohalshodhmanjusha.com Bohal Shodh Manjusha ISSN: 2395-7115
Impact Factor:8.642 December 2024 Page No. : 39-50
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

# ଗଙ୍ଗାଧର ମେହେରଙ୍କ କବିତା ଏକ ସୌନ୍ଦର୍ଯ୍ୟ-ତାତ୍ତ୍ୱିକ ଅଧ୍ୟୟନ

## (An Aesthetic-Theoretical Study of Gangadhar Meher's Poems)

**ଡ. ପ୍ରହ୍ଲାଦ ଖିଲା**
**Dr. Prahallad Khilla**, Assistant Professor of Odia,
P.G. Department of Language and Literature
Fakir Mohan University, Balasore, Odisha, Pin. 756089

**ସାରାଂଶ/ Abstract:** ସୌନ୍ଦର୍ଯ୍ୟ କ'ଣ – ଏସଂପର୍କରେ ଭିନ୍ନଭିନ୍ନ ଶିଳ୍ପୀ, ଭିନ୍ନଭିନ୍ନ ସମାଲୋଚକ, ଗବେଷକ, ଦାର୍ଶନିକ ତଥା ବିଦଗ୍ଧ-ବ୍ୟକ୍ତିବିଶେଷ ନିଜନିଜର ଦୃଷ୍ଟିକୋଣ ଜନିତ ତର୍କ, ଅଭିଜ୍ଞତା ଓ ଅନୁଭୂତିଲବ୍ଧ ଜ୍ଞାନ ଆଧାରରେ ବିଭିନ୍ନ ଦିଗରୁ ଭିନ୍ନଭିନ୍ନ ମତ ପ୍ରକାଶ କଇଛନ୍ତି। ସେ ହୋଇପାରେ ପ୍ରାଚ୍ୟ ମନୀଷୀ ପ୍ରଦତ୍ତ ସିଦ୍ଧାନ୍ତଟିଏ ଅଥବା ପାଶ୍ଚାତ୍ୟ ବିଦ୍ୱାନ ପ୍ରଦତ୍ତ ସୌନ୍ଦର୍ଯ୍ୟ-ମୀମାଂସାଟିଏ, କିନ୍ତୁ ସବୁଠି ଗୋଟିଏ କଥା ସ୍ପଷ୍ଟ ଯେ ସୌନ୍ଦର୍ଯ୍ୟ ସମ୍ପର୍କରେ ଚରମ କଥା କୁହାଯାଇନପାରେ; ଏହା ଏପରି ଏକ ଅନୁଭବ ଯାହା ଥରେ, ଦୁଇଥର, ତିନିଥର, ଚାରିଥର ନୁହେଁ ବରଂ ବହୁବାର ଅନୁଭବି ସୁଦ୍ଧା ଆସ୍ୱାଦନ ଅଭିଳାଷା ମନରୁ ନିବୃତ୍ତ ହେବା ସହଜ ସମ୍ଭବ ହୋଇନଥାଏ। ସୌନ୍ଦର୍ଯ୍ୟ ସୃଷ୍ଟିର ପ୍ରମୁଖ ଉଦ୍ଦେଶ୍ୟ ହେଉଛି ଆନନ୍ଦ ଦାନ। ଏହି ଦୃଷ୍ଟିରୁ ପ୍ରାଚ୍ୟ-ସୌନ୍ଦର୍ଯ୍ୟଶାସ୍ତ୍ରୀମାନେ କାବ୍ୟ, ନାଟକାଦିରେ ରସ, ରୀତି, ଅଳଙ୍କାର, ବକ୍ରୋକ୍ତି, ଔଚିତ୍ୟ, ଧ୍ୱନି ଆଦି ଶାସ୍ତ୍ରୀୟ ଅନୁଷଙ୍ଗର ପ୍ରୟୋଗରୁ ଜାତ ଅର୍ଥଚମତ୍କାରିତାକୁ ସୌନ୍ଦର୍ଯ୍ୟ ରୂପେ ଗ୍ରହଣ ପୂର୍ବକ ଶାସ୍ତ୍ରୀୟସୌନ୍ଦର୍ଯ୍ୟ-ମୀମାଂସା (classical theories of beauty) ଉପରେ ଗୁରୁତ୍ୱ ଦେଇଛନ୍ତି। ଅନୁରୂପ ପାଶ୍ଚାତ୍ୟ ସୌନ୍ଦର୍ଯ୍ୟଶାସ୍ତ୍ରୀମାନେ ସୌନ୍ଦର୍ଯ୍ୟ-ତତ୍ତ୍ୱକୁ ଦର୍ଶନଶାସ୍ତ୍ରର ଏକ ଅଂଶ ଭାବରେ ଗ୍ରହଣ କରି ସାହିତ୍ୟରେ ପ୍ରକୃତିବର୍ଣ୍ଣନା , ଅଧ୍ୟାତ୍ମିକତାର ଅବଧାରଣା, ରୂପାନୁଭୂତି, କଳ୍ପନା, ପ୍ରେମର ମହତୀଶକ୍ତି, ଉଦାତ୍ତଭାବ ଆଦି ବିଚିତ୍ର ମାନବୀୟ ଅନୁଭବ ସମୂହର ରୂପାୟଣରୁ ଜାତ ଆହ୍ଲାଦମୟ ଅନୁଭୂତି ଉପରେ ପ୍ରାଧାନ୍ୟ ଦେଇଛନ୍ତି। କବି ଗଙ୍ଗାଧର ମେହେରଙ୍କ କାବ୍ୟମାନସ କିପରି ପାଶ୍ଚାତ୍ୟ ସୌନ୍ଦର୍ଯ୍ୟ-ତତ୍ତ୍ୱାନୁସାରୀ କଳାଗତ-ସୌନ୍ଦର୍ଯ୍ୟ ମଣ୍ଡିତ ହୋଇ ପ୍ରଭାବଶାଳୀ ହୋଇପାରିଛି ସେ ସମ୍ପର୍କିତ ସମୀକ୍ଷା ଏହି ପ୍ରବନ୍ଧରେ ସ୍ଥାନିତ ହୋଇଛି।

**ଭିତ୍ତିଶବ୍ଦାବଳୀ/ Keywords:** ସୌନ୍ଦର୍ଯ୍ୟ-ମୀମାଂସା, କାବ୍ୟଜାତ-ସୌନ୍ଦର୍ଯ୍ୟ, ସଂକ୍ରମିତ ସୌନ୍ଦର୍ଯ୍ୟାନୁଭୂତି, ଉଦାତ୍ତ ଭାବନା, ପ୍ରକୃତି-ସୌନ୍ଦର୍ଯ୍ୟ, ନୈତିକ-ସୌନ୍ଦର୍ଯ୍ୟବୋଧ, ଆଧ୍ୟାତ୍ମିକ ସୌନ୍ଦର୍ଯ୍ୟର, ଯୌବନର ପ୍ରଲୋଭନ ଓ ଉତ୍ତେଜନା, ତପସ୍ୱିନୀ କାବ୍ୟ, ଆଧୁନିକ ବିଶ୍ୱମାନବ, ସ୍ୱୟଂବର ଓ ସ୍ୱୟଂବରଣ, ପ୍ରେମ ଓ ସୌନ୍ଦର୍ଯ୍ୟ।

## 1. ଉପକ୍ରମ / Indroduction:

### 1.1. ସର୍ଜନଶୀଳତା/ Creativeness:

ସର୍ଜନଶୀଳତା ଅପୂର୍ବ ଓ ଦୁର୍ଲ୍ଲଭ ଚିନ୍ତାଶକ୍ତିକୁ ବିଶେଷିତ କରିଥାଏ। ଏହାର ସମାର୍ଥ ସୂଚକ ଇଂରାଜୀ ପ୍ରତିଶବ୍ଦ Creativity/Creativeness. ବର୍ତ୍ତମାନ ଏହା ନିର୍ମାଣ/ ବିନିର୍ମାଣକ୍ଷମ ପ୍ରତିଭା/ ପ୍ରତିଭାନିକଶକ୍ତି ଆଦି ଅର୍ଥରେ ବିଶ୍ୱର ସମସ୍ତ ବିଦଗ୍ଧମାନସ ଓ ପ୍ରତିଟି ଜ୍ଞାନଧାରା ସହିତ ସମ୍ବନ୍ଧିତ। ସର୍ଜନଶୀଳତା ଏକ ଦିବ୍ୟଶକ୍ତିର ଅଥବା ସାଧନାସମ୍ଭୁତ ଶକ୍ତିର ପ୍ରତୀକ। ଫଳତଃ ଦିବ୍ୟଚେତନାର ଅମୃତମୟ, କଲ୍ୟାଣକର, ସକରାତ୍ମକ ବାଣୀରୂପ ଏଥିରୁ ଅଭିବ୍ୟଞ୍ଜିତ ହୋଇଥାଏ। ଏହା ମିଥ୍ୟା(ମାୟାଜଗତ)ହୋଇ ମଧ୍ୟ ମିଥ୍ୟା ନୁହେଁ । ଜୀବନ ଓ ଜଗତର ବାସ୍ତବତା ଉପରେ ସ୍ରଷ୍ଟାର ସତ୍ୟ ଓ ଶ୍ରଦ୍ଧାଶୀଳ ହସ୍ତକ୍ଷେପରୁ କଳାର ଉତ୍ପତ୍ତି ଏବଂ ସହୃଦୟର ଆକର୍ଷଣରୁ ଏହାର ବିକାଶ । ଭାରତୀୟ ସୃଜନଶୃଙ୍ଖଳାରେ ବାଲ୍ମୀକି, ବେଦବ୍ୟାସ, କାଳିଦାସ, ଆର୍ଯ୍ୟଭଟ୍ଟ, ବରାହମିହିର, ଭର୍ତ୍ତୃହରି, ପତଞ୍ଜଳି, ବାତ୍ସାୟନ, ନାଗାର୍ଜୁନ, ଚାଣକ୍ୟ ପ୍ରମୁଖ ଭାବନିର୍ମାତାଗଣ ଭିନ୍ନଭିନ୍ନ ସିଦ୍ଧାନ୍ତରେ ଚିରନ୍ତନ ଓ ସାର୍ବକାଳିକ ସୃଜନଭିତ୍ତି ପ୍ରତିଷ୍ଠା କରି ମହାକାଳକୁ ଅତିକ୍ରମି ହୋଇଛନ୍ତି କାଳଜୟୀ । ଏହି ଅନ୍ତର୍ମୁଖୀ ମାନସିକ ପ୍ରକ୍ରିୟାର ଶକ୍ତିବଳରେ ଆରିଷ୍ଟୋଟଲ୍, ହୋମର୍, ଭଲ୍ଟେୟାର୍, ସ୍ମିଥ୍, ଆଇଜାକ୍ ନିଉଟନ୍,

ମହାତ୍ମା ଗାନ୍ଧୀ, ମାର୍ଟିନ୍‌ଲୁଥର, ଅବ୍ରାହମ୍‌ଲିଙ୍କନ, ଲିଓନାଡୋଡାଭେନ୍‌ସି, ଶ୍ରୀଅରବିନ୍ଦ, ସି.ଭି.ରମଣ, କଲାମଙ୍କ ପରି ଅନେକ ପ୍ରତିଭାବାନ୍ ବ୍ୟକ୍ତି ନିଜନିଜ ସମୟଖଣ୍ଡର ସମାଜ ଓ ସାଂସ୍କୃତିକ ମୂଲ୍ୟବୋଧର ଗୁରୁତ୍ୱ ସହିତ ବିଶ୍ୱମାନବୀୟ ସତ୍ୟକୁ ଯୋଡ଼ି ଏକଏକ ଯୁଯୋପଯୋଗି ମୂଲ୍ୟବୋଧରେ ନିର୍ମିତ କର୍ମକୁ ନୂଆନୂଆ ଅର୍ଥ ପ୍ରଦାନ କରିଛନ୍ତି । ଫ୍ରାନ୍‌ସିସ୍ ବେକନ୍ ଆଦି ଦାର୍ଶନିକ ମଧ୍ୟ ବୈଜ୍ଞାନିକ ତଥା ପ୍ରମାଣିକ ସିଦ୍ଧାନ ଭିତ୍ତିରେ ସତ୍ୟର ସନ୍ଧାନ ଓ ନୂତନତ୍ୱ ନିରୂପଣ କରିବାର ପ୍ରାସଙ୍ଗିକତାକୁ ସୃଜନ-ବୈଶିଷ୍ଟ୍ୟ ରୂପେ ଗ୍ରହଣ କରିଛନ୍ତି।୧ ସର୍ଜନଶୀଳତାର ପରିସର ବ୍ୟାପକ। ଏକ କଲ୍ୟାଣକର ପରିବେଶ ଓ ପରିସ୍ଥିତିରେ ସମାଜ ଓ ସଭ୍ୟତାକୁ; ମାନବ ଜାତିକୁ ଶାଶ୍ୱତ, ସୁନ୍ଦର ଜୀବନ ବଞ୍ଚିବାର କ୍ଷେତ୍ର ଯୋଗାଇ ଦେବା ସୃଜନ ମାନସିକତାର ଏକ ବଡ଼ ବିଶେଷତ୍ୱ । ଏଥି ନିମିତ୍ତ ମନୁଷ୍ୟ ସାହିତ୍ୟକୁ ସବୁକାଳରେ ଶ୍ରେଷ୍ଠ ମାଧ୍ୟମରୂପେ ଗ୍ରହଣ କରିଆସିଛି । "ସାହିତ୍ୟ ଅମୂର୍ତ୍ତ ସୌନ୍ଦର୍ଯ୍ୟକୁ ସର୍ବତ୍ର ପ୍ରାଧାନ୍ୟ ଦେଇଥାଏ । ପ୍ରକୃତ ସାହିତ୍ୟ ମହତ୍ ଭାବ ସୃଷ୍ଟି କରେ, ନୂତନ ଚିନ୍ତା, ନୂତନ ଛାଞ୍ଚ, ନୂତନ ଆଦର୍ଶର ଆଲୋକରେ ସଂସାରକୁ ଆଲୋକିତ କରେ।"୨ ଏହି ସାଧନକୁ ମାନଦଣ୍ଡ ରୂପେ ଗ୍ରହଣ କରି ନିତ୍ୟକାଳର ମାନବୀୟ ସତ୍ୟକୁ ଚିତ୍ରବତ ଆଙ୍କିପାରିଲେ ଆତ୍ମପ୍ରତ୍ୟୟର ସପ୍ତରଙ୍ଗୀ ଇନ୍ଦ୍ରଧନୁ ଉଦୟରେ ସର୍ବତ୍ର ସୌନ୍ଦର୍ଯ୍ୟର ପ୍ରତିଫଳନ ସମ୍ଭବ ହୋଇପାରିବ ବୋଲି ବଡ଼ମଥାମାନେ ବିଶ୍ୱାସ କରନ୍ତି। ସବୁ ମଣିଷ ସାହିତ୍ୟିକ ନୁହନ୍ତି କି ସବୁ ଭାବାବେଗର ଅଭିବ୍ୟକ୍ତି ମଧ୍ୟ ସୃଜନ ପଦବାଚ୍ୟ ହୋଇପାରେନାହିଁ । ଏଥିପାଇଁ ଆବଶ୍ୟକ ଶିଳ୍ପୀର ଅନ୍ତର୍ମୁଖୀ ବାସ୍ତବତା । "ଯେକୌଣସି ପ୍ରକାଶକୁ ସୃଜନ କୁହାଯାଇ ନପାରେ। କବି ଅନ୍ତରର ଗଭୀର ସ୍ତରରେ ନିଦ୍ରିତ ବାସନାତରଙ୍ଗ ଯେତେବେଳେ ମନ-ବେଳା ଲଙ୍ଘି ଉଠିଆସେ-ସେତେବେଳେ ତାଙ୍କର ପ୍ରକାଶ-ବେଦନାର ଘଟେ ଅବସାନ। ଏହି ପ୍ରକାଶ ହିଁ ସୃଜନ, ନିର୍ମିତି ।"୩

ଭାରତୀୟ ଭାବମାନସ ଏକ ନୈତିକ ମୂଲ୍ୟବୋଧ ଉପରେ ପ୍ରତିଷ୍ଠିତ । ରୁଚି, ନୀତି, ଆଦର୍ଶ, ବାସ୍ତବତାକୁ ପ୍ରାଧାନ୍ୟ ଦେଇ ଭାରତୀୟ ସୃଜନକ୍ରିୟା ସାଧାରଣତଃ ଭାବସୌନ୍ଦର୍ଯ୍ୟ ଓ ଶିଳ୍ପସୌନ୍ଦର୍ଯ୍ୟ ଭେଦରେ ଦ୍ୱିଧା ସମର୍ପିତ । ଅଳଙ୍କାରଶାସ୍ତ୍ର ଅନୁସାରୀ ରସସୃଷ୍ଟିର ଚମତ୍କାରିତା ସୃଜନ ପ୍ରକ୍ରିୟାର ଆତ୍ମୀକ ସୌନ୍ଦର୍ଯ୍ୟ ରୂପେ ଗୃହିତ । ଅନୁରୂପ ରୀତି, ଅଳଙ୍କାର, ବକ୍ରୋକ୍ତି, ଔଚିତ୍ୟବୋଧର ସୁବିନ୍ୟାସ ଆଙ୍ଗିକ ସୌନ୍ଦର୍ଯ୍ୟ ସୃଷ୍ଟିରେ ସହାୟକ। ତେଣୁ ପ୍ରତିଭାନିକ ଶକ୍ତି ବା ବିଭାବନ ଶକ୍ତି ହିଁ ସୃଜନ ଓ ସୌନ୍ଦର୍ଯ୍ୟର ମୂଳଭିତ୍ତି। ବିଶ୍ୱନାଥଙ୍କ ବିଚାରରେ ସର୍ଜନଶୀଳତା ଯାବତୀୟ ବ୍ୟର୍ଥତା ଓ ଅମଙ୍ଗଳକୁ ସର୍ବୋତ୍ତମ କଲ୍ୟାଣବୋଧ, ସତ୍ୟବୋଧ ଓ ସୁନ୍ଦରବୋଧରେ ବଦଳାଇଦିଏ। କାବ୍ୟମୀମାଂସାକାର ପଣ୍ଡିତ ରାଜଶେଖର ବାକଶୌଚ, ମନଃଶୌଚ ଓ କାୟଃଶୌଚ ଆଦି ତ୍ରିବିଧ ଶୁଦ୍ଧତାର ଗୁରୁତ୍ୱକୁ ସାରସ୍ୱତୀୟ ସୌନ୍ଦର୍ଯ୍ୟ ରୂପେ ସ୍ୱୀକାର କରିଛନ୍ତି। ଅଭିନବଗୁପ୍ତ ଏହାକୁ ପାରିଭାଷିକ ଅର୍ଥ ପ୍ରଦାନ କରିବାକୁ ଯାଇ 'ଅପୂର୍ବବସ୍ତୁ ନିର୍ମାଣ କ୍ଷମା ପ୍ରତିଭା' ରୂପେ ଅଭିହିତ କରିଛନ୍ତି। କବିସମ୍ରାଟ ଉପେନ୍ଦ୍ରଭଞ୍ଜ କାବ୍ୟ-ପ୍ରକରଣ ଚାତୁରୀ କ୍ଷେତ୍ରରେ ଏହି ସିଦ୍ଧାନ୍ତଟିକୁ ଗ୍ରହଣ କରି ସୌନ୍ଦର୍ଯ୍ୟ ପ୍ରକାଶରେ ବିଚିତ୍ର ମାର୍ଗକୁ ପ୍ରାଧାନ୍ୟ ଦେଇ 'ଦୃଷ୍ଟି ସୃଷ୍ଟିରେ ହୋଇଛି ବିଚିତ୍ର' ଏହି କାବ୍ୟିକ ପରିଭାଷା ପ୍ରଦାନ କରିଛନ୍ତି।୪ ଏଥି ନିମିତ୍ତ ସାଧାରଣ ଲୋକବୃତ୍ତିକ ଦୃଷ୍ଟିକୋଣକୁ ବିଚିତ୍ର ମାର୍ଗରେ ଘେନି ଯାଇ କାବ୍ୟିକ-ସୌନ୍ଦର୍ଯ୍ୟ ସୃଷ୍ଟି / ସର୍ଜନଶୀଳତାରେ ଉପେନ୍ଦ୍ରଙ୍କ ନବଧାରସ-କଳ୍ପନା, ଅଳଙ୍କାରର ମଞ୍ଜୁଳ ପ୍ରୟୋଗ, ଧ୍ୱନ୍ୟାତ୍ମକ ଅର୍ଥକରଣ, ଅପୂର୍ବ ଓ ମୂର୍ତ୍ତିମନ୍ତ ବିମ୍ବକଳ୍ପନା, ଚମତ୍କାର ପଦବିନ୍ୟାସ, ଉତ୍ତମ ସାଙ୍ଗୀତିକ ଧର୍ମରକ୍ଷା ସହିତ ପ୍ରଣୟ ବିଳାସୀ ରୂପବିଭବର ଅବତାରଣାକୁ ଲକ୍ଷ କରାଯାଇପାରେ। ଚଣ୍ଡୀଦାସ ଅପୂର୍ବ ଭାବରୂପର ବସ୍ତୁରୂପ ଲାଭକୁ (ଅଦୃଶ୍ୟକୁ ଦୃଶ୍ୟାୟିତ କରିବା), ଜଗନ୍ନାଥ ଦାସ ପାର୍ଥବଲୀଳାର ସମଦର୍ଶିତାକୁ, କବି ଦୀନକୃଷ୍ଣ ନିର୍ମଳ ଚିନ୍ତାଶକ୍ତିକୁ, କବି ଭୀମଭୋଇ ଅନ୍ତଃପ୍ରବାହୀ ପ୍ରଜ୍ଞା ଓ ମାନବୀୟ ଦୃଷ୍ଟିକୋଣର ଉଦାର ଓ ସ୍ୱର୍ଗୀୟ ପରିପ୍ରକାଶକୁ; ନୂଆଧାରାର ସାହିତ୍ୟପ୍ରବାହରେ ବିଶ୍ୱାସୀ କବି ରାଧାନାଥ ସୌନ୍ଦର୍ଯ୍ୟକୁ, କବି ଫକୀର ମୋହନ ସତ୍ୟକୁ, କବି ଗଙ୍ଗାଧର ପୁରାତନରେ ନୂତନତା ଏବଂ ଆହୃତରେ ମୌଳିକତା ପ୍ରତିଫଳିତ କରିବାର ସମର୍ଥ-ପ୍ରତିଭାକୁ; ବିଶ୍ୱକବି ରବୀନ୍ଦ୍ରନାଥ ତତ୍ତ୍ୱଦର୍ଶୀ, ଭାବଦର୍ଶୀ, ରୂପଦର୍ଶୀ ସାଧକର ବିଚିତ୍ର ଓ ଅଭିନବ ପରିକଳ୍ପନାକୁ, ଦିବ୍ୟାତ୍ମା ଶ୍ରୀଅରବିନ୍ଦ ସାମାନ୍ୟକୁ ଅସାମାନ୍ୟରେ ରୂପାନ୍ତରିତ କରିପାରୁଥିବା ଏକ ଉଦାତ୍ତ ଓ ଦିବ୍ୟଚେତନାକୁ ସୃଜନ ଓ ସୌନ୍ଦର୍ଯ୍ୟର ଲକ୍ଷଣରୂପେ ଗ୍ରହଣ କରିଛନ୍ତି।

### 1.2. ସୌନ୍ଦର୍ଯ୍ୟ ଚେତନା/ Aesthetic :

ପ୍ରତିଟି ସର୍ଜନଶୀଳକୃତି ନିଜସ୍ୱ ମୋହିନୀଶକ୍ତି ଘେନି ସମୃଦ୍ଧ ଓ ବିକଶିତ। ଏହି ଶକ୍ତି ବଳରେ ଏହା କଳାକୁ ଆଦର କରୁଥିବା ମଣିଷକୁ ଆକର୍ଷଣ କରିଥାଏ, ବ୍ୟକ୍ତିକୁ ଅପାର ଆନନ୍ଦରେ ଅବଗାହନ କରାଇଥାଏ। ସୌନ୍ଦର୍ଯ୍ୟର ମୂଳହେତୁ ଆନନ୍ଦଦାନ, ସୌନ୍ଦର୍ଯ୍ୟାନୁଭୂତିର ପରିଣାମ ହେଉଛି ଆନନ୍ଦଲାଭ। ସୌନ୍ଦର୍ଯ୍ୟ କ'ଣ – ଏସଂପର୍କରେ ଭିନ୍ନଭିନ୍ନ ଶିଳ୍ପୀ, ଭିନ୍ନଭିନ୍ନ ସମାଲୋଚକ, ଗବେଷକ, ଦାର୍ଶନିକ ତଥା ବିଦଗ୍ଧ-ବ୍ୟକ୍ତିବିଶେଷ ନିଜନିଜର ଦୃଷ୍ଟିକୋଣ ଜନିତ ତର୍କ, ଅଭିଜ୍ଞତା ଓ ଅନୁଭୂତିଲବ୍ଧ ଜ୍ଞାନ ଆଧାରରେ ବିଭିନ୍ନ ଦିଗରୁ ଅନେକ ସିଦ୍ଧାନ୍ତ ଉପସ୍ଥାପନ କରିଥିବା ଲକ୍ଷକରାଯାଏ। ତେବେ ସୌନ୍ଦର୍ଯ୍ୟ ସମ୍ପର୍କରେ ଚରମ କଥା କୁହାଯାଇନପାରେ; ଏହା ଏପରି ଏକ ଅନୁଭବ ଯାହା ଥରେ, ଦୁଇଥର, ତିନିଥର, ଚାରିଥର ଅନୁଭବି ଆସ୍ୱାଦନ ଅଭିଳାଷା ମନରୁ ନିବୃତ୍ତ ହେବା ସହଜ ହୁଏ ନାହିଁ। ମଣିଷର ଚିତ୍ତବୃତ୍ତି ଓ ବସ୍ତୁ/ଭାବ/ବ୍ୟକ୍ତି ମଧ୍ୟରେ ଥିବା ଅନୁସମ୍ପର୍କର ରହସ୍ୟକୁ ପ୍ରାଧାନ୍ୟ ଦେଇ ନବମ ଶତାବ୍ଦୀର କବି ମାଘ ସ୍ୱରଚିତ ଶିଶୁପାଳବଦ୍ଧମ୍ କାବ୍ୟରେ ସୌନ୍ଦର୍ଯ୍ୟର ଏକ ବହୁଜନଗ୍ରାହୀ ପରିଭାଷା ପ୍ରଦାନ କରିବାର ସଫଳ ପ୍ରୟାସ କରିଛନ୍ତି। ଶିଶୁପାଳବଦ୍ଧମ୍ କାବ୍ୟର ଚତୁର୍ଥ ସର୍ଗଟି ରୈବତକ ପର୍ବତର ଶୋଭା ବର୍ଣ୍ଣନା

ଉପରେ ଆଧାରିତ। ମାଘଙ୍କ ବର୍ଣ୍ଣନା ଅନୁସାରେ ଦ୍ୱାରିକାରୁ ହସ୍ତିନାପୁରକୁ ଯିବା ବାଟରେ ଆସୁଥିବା ରୈବତକ ପର୍ବତର ସୌନ୍ଦର୍ଯ୍ୟ ଅପୂର୍ବ ଏବଂ ଶ୍ରୀକୃଷ୍ଣ ପୂର୍ବରୁ ଅନେକବାର ଏହି ପର୍ବତଟିକୁ ଦେଖିଥିଲେ ମଧ୍ୟ ପୁନଃପୁନଃ ତା'ର ସୌନ୍ଦର୍ଯ୍ୟ ଅବଲୋକନ ପୂର୍ବକ ବିସ୍ମୟାଭିଭୂତ ଓ ଆନନ୍ଦିତ ହୋଇଛନ୍ତି । ତାହା ଏହିପରି-

"ଦୃଷ୍ଟୋଽପି **ଶୈଳଃ** ସମୂହୁର୍ମୂରାରେର ଅପୂର୍ବ ବଦ୍ ବିସ୍ମୟମାତତାନ୍
କ୍ଷଣେକ୍ଷଣେ ଯତ୍ନବତାମୁପୈତି ତଦେବ ରୂପଂ **ରମଣୀୟତାୟାଃ** ।"୫ ଅର୍ଥତ୍-

"ବହୁବାର ଦୃଷ୍ଟ ହୋଇଥିଲେ ସୁଦ୍ଧା ଗିରି ଦେଖାଯାଏ ନୂତନ
କ୍ଷଣେକ୍ଷଣେ ଯାହା ନୂତନତା ଦିଶେ ତା, ରମଣୀୟ ଲକ୍ଷଣ ।"**୬**

କବି ମାଘଙ୍କ ବିଚାରରେ ପ୍ରତିକ୍ଷଣ ନୂଆନୂଆ ରୂପରେ ଦେଖାଦେଇ ଦେଖିବା ଲୋକକୁ ବିସ୍ମୟାଭିଭୂତ କରିଦେଉଥିବା ଅନୁଭୂତି ସୌନ୍ଦର୍ଯ୍ୟ ଭାବରେ ଅଭିହିତ ।**୭** ଶିଶୁପାଳ ବଧ କାବ୍ୟର ଚତୁର୍ଥ ସର୍ଗଟି ରୈବତକ ପର୍ବତର ଶୋଭା ବର୍ଣ୍ଣନା ପ୍ରସଙ୍ଗ ଆଧାରିତ। ଏହି କ୍ରମରେ ଶ୍ରୀହରିଙ୍କ କ୍ଷେତ୍ରରେ ପର୍ବତଟି ଦୃଷ୍ଟପୂର୍ବ ହୋଇ ସୁଦ୍ଧା ଅଦୃଷ୍ଟପୂର୍ବ ପ୍ରତୀତହୋଇ ମନଭିତରେ ବିସ୍ମୟ ଓ ଅନିର୍ବଚନୀୟ ଆନନ୍ଦର ନିକଟତର କରାଇ ବାରଂବାର ନିରେଖିବାର ଅଭିଲାଷା ସୃଷ୍ଟି କରୁଥିବା ଭାବଦୃଷ୍ଟିଟି ସୁନ୍ଦରପଣର ରୀତି ରୂପେ ପରିଚିତ। ପରବର୍ତ୍ତୀ ସମୟରେ ଆଧୁନିକ ଓଡ଼ିଆ ପଦ୍ୟସାହିତ୍ୟର ପ୍ରାଣପ୍ରତିଷ୍ଠାତା କବିବର ରାଧାନାଥ ରାୟଙ୍କ 'ଚିଲିକା' ଖଣ୍ଡକାବ୍ୟରେ ଯଥାରୂପ ଭାବାଦର୍ଶଟି ସୌନ୍ଦର୍ଯ୍ୟର ପରିଭାଷାରୂପେ ପ୍ରକାଶିତ ହୋଇ ପ୍ରଭାବଶାଳୀ ଓ ଆଦରଣୀୟ ହୋଇଛି।୮

ପାଶ୍ଚାତ୍ୟ ଜଗତରେ ସୌନ୍ଦର୍ଯ୍ୟଶାସ୍ତ୍ରର ଜନକ ରୂପେ ସୁପରିଚିତ ଜର୍ମାନ ଦାର୍ଶନିକ**୯** Alexander Gottlieb Baumgarten (୧୭୧୪–୧୭୬୨) ୧୭୩୫ ମସିହାରେ ସୌନ୍ଦର୍ଯ୍ୟବୋଧ ବା Aesthetic ର ପରିଭାଷା ଦେବାକୁ ଯାଇ ଏହା ଇନ୍ଦ୍ରିୟଲବ୍ଧ ଜ୍ଞାନର ବିଷୟ (the perfection of sensory knowledge) ବୋଲି ପ୍ରକାଶ କରିଛନ୍ତି। ରବୀନ୍ଦ୍ରନାଥ ଟାଗର ଏହି ସୌନ୍ଦର୍ଯ୍ୟବୋଧ ବା Aesthetic ଅବବୋଧକୁ ନନ୍ଦନତତ୍ତ୍ୱ ନାମରେ ନାମିତ କରିଛନ୍ତି।

ସୌନ୍ଦର୍ଯ୍ୟ ଦେଖିବା ଲୋକର ଦୃଷ୍ଟିକୋଣ ଜନିତ ବିଷୟ; କିନ୍ତୁ ଦୃଷ୍ଟିକୋଣ ସଂକୀର୍ଣ୍ଣ ନହୋଇ ପ୍ରସାରିତ ହୋଇଥିବା ଆବଶ୍ୟକ। ନଚେତ୍ ସୁନ୍ଦରବସ୍ତୁ କିମ୍ବା କଳାଅନ୍ତର୍ଗତ ଅଭିବ୍ୟଞ୍ଜନାମୂକ-ମହତ୍ତ୍ୱ ଉପଲବ୍ଧି ସମ୍ଭବ ହୋଇପାରିବ ନାହିଁ। ତେଣୁ ସୌନ୍ଦର୍ଯ୍ୟବୋଧ (Aesthetic) ନିମିତ୍ତ ତଟସ୍ଥତା ବା Psychical distance କୁ ପ୍ରାଧାନ୍ୟ ଦିଆଯାଇଛି।**୧୦** ଏହି ଦୃଷ୍ଟିରୁ ପ୍ରକୃତ ସୌନ୍ଦର୍ଯ୍ୟ ଉପଲବ୍ଧି ନିମିତ୍ତ ବସ୍ତୁ ଉପରେ ବା ସୃଜନକର୍ମ (କଳା ଓ ସାହିତ୍ୟ) ଉପରେ ବ୍ୟକ୍ତିର ଧ୍ୟାନ ନିରପେକ୍ଷ ରହିବା ଉଚିତ।

ସୌନ୍ଦର୍ଯ୍ୟବୋଧ / ସୌନ୍ଦର୍ଯ୍ୟ-ଚେତନା ବା ଏହାର ସମାର୍ଥସୂଚକ ଇଂରାଜୀ ପ୍ରତିଶବ୍ଦ 'Aesthetic' ହେଉଛି ଦର୍ଶନଶାସ୍ତ୍ରର ଏକ ଅଂଶବିଶେଷ ଯାହା ସୌନ୍ଦର୍ଯ୍ୟର ସିଦ୍ଧାନ୍ତ ଅଧ୍ୟୟନ ସହିତ ସମ୍ବନ୍ଧିତ। ସୌନ୍ଦର୍ଯ୍ୟ ଏକ ପ୍ରତ୍ୟୟ ଏବଂ ସୁନ୍ଦର ବସ୍ତୁମାନଙ୍କ ଠାରେ ଏହା ପ୍ରତିବିମ୍ବିତ ହୋଇଥାଏ ।

ସର୍ଜନଶୀଳତା ସମ୍ବନ୍ଧରେ ଭାବ ଓ ଧର୍ମ ଦୃଷ୍ଟିରୁ ପାଶ୍ଚାତ୍ୟ ଚିନ୍ତାଜଗତରେ ମନସ୍ତତ୍ତ୍ୱ, ଦର୍ଶନ, ସମାଜତତ୍ତ୍ୱ, ନୃତତ୍ତ୍ୱ, ଶିକ୍ଷା, ସାହିତ୍ୟ, କଳା ଓ ସ୍ଥାପତ୍ୟକୁ କେନ୍ଦ୍ରକରି ନାନା ସିଦ୍ଧାନ୍ତମାନ ଉପସ୍ଥାପିତ ଓ ପ୍ରତିଷ୍ଠିତ ହୋଇଆସିଛି। ସରଳ ଭାବରେ କହିଲେ ସର୍ଜନଶୀଳତାର ମୂଳ ହେତୁ ସୌନ୍ଦର୍ଯ୍ୟାନୁଭବ। ଏହା ମନୁଷ୍ୟର ଅନୁଭବବେଦ୍ୟ ଅନ୍ତର୍ଜଗତ ଓ ଦୃଶ୍ୟମାନ ବହିଃଜଗତର ବିଭିନ୍ନ ଉପାଦାନ ଦେଇ ପ୍ରକାଶିତ ହୋଇଥାଏ। ଏହି ମର୍ମରେ ଗ୍ରୀକ୍ ଦାର୍ଶନିକ ସକ୍ରେଟିସ୍ ସୁନ୍ଦର ଭିତରେ ମଙ୍ଗଳକୁ ସ୍ଥାନିତ କରି ସୌନ୍ଦର୍ଯ୍ୟ ଚେତନାର ଅର୍ଥ ନିର୍ଦ୍ଧାରଣ କରିଥିବା ସ୍ଥଳେ ତାଙ୍କରି ଶିଷ୍ୟ ପ୍ଲେଟୋ ସତ୍ୟ, ଶିବ, ସୁନ୍ଦରର ଏକ ଓ ଅଭିନ୍ନତ୍ୱକୁ ଗୁରୁତ୍ୱ ଦେଇ ସର୍ବମଙ୍ଗଳ ବିଧାୟକ ବିଚାରଧାରାକୁ ସୌନ୍ଦର୍ଯ୍ୟର ଉତ୍ତମ ଲକ୍ଷଣରୂପେ ସ୍ୱୀକାର କରିଛନ୍ତି । ଦାର୍ଶନିକ ସିସେରୋ, ପ୍ରୋଟିନସ୍ ପ୍ରକୃତି ଓ ଜୀବନର ଅପୂର୍ବ ଚିତ୍ରଣ ଶକ୍ତିକୁ, ଆରିଷ୍ଟୋଟଲ୍ ମନୁଷ୍ୟର ମନୋବିକାର ଦୂରକାରୀ ଟ୍ରାଜେଡିର ଫଳଶ୍ରୁତି (ବିରେଚକ ତତ୍ତ୍ୱ), ଅଗଷ୍ଟାଇନ୍ ଆଧ୍ୟାତ୍ମିକ ସୌନ୍ଦର୍ଯ୍ୟ, ଦେକାର୍ତ୍ତ ଚମତ୍କାରଅର୍ଥପୂର୍ଣ୍ଣ ବାଣୀ ସୁଷମା ଓ ରଚନାଶକ୍ତି, ବେନେଡେଟୋକ୍ରୋଚେ ଅନ୍ତପ୍ରେରଣାଦାୟୀ ଦୃଶ୍ୟମାନ ବସ୍ତୁପ୍ରତିମାର ଅଭିବ୍ୟଞ୍ଜନା, ସେଫ୍ଟବରୀ ଦିବ୍ୟଶକ୍ତିର ଅଭିବ୍ୟକ୍ତି, ଟମାସରିଡ୍ ମନର ନୈତିକ ଓ ଆଧ୍ୟାତ୍ମିକ ପୂର୍ଣ୍ଣତା, କ୍ୟାଣ୍ଟ ଅତିନ୍ଦ୍ରିୟ ଓ ଇନ୍ଦ୍ରୀୟଚେତନାର ମିଳନରୁ ଜାତ ସୌନ୍ଦର୍ଯ୍ୟବୋଧ, ଗେଟେ ଆତ୍ମା ପ୍ରେରିତ ପ୍ରେମରୂପୀ ସୌନ୍ଦର୍ଯ୍ୟର ଜନନୀ( ଅସୁନ୍ଦରକୁ ସୁନ୍ଦର କରୁଥିବା ପ୍ରେମ), ବସାଙ୍କେ କଳ୍ପନାଶକ୍ତିର ଚମତ୍କାରିତା, ଥିଓଡର୍ ଲିପ୍ସ ସମାନୁଭୂତି ମୂଳକ ସୌନ୍ଦର୍ଯାନୁଭୂତି, ବେଞ୍ଜାମିନ୍ ଫ୍ରାଙ୍କଲିନ୍ ସାମାଜିକ ଆଦର୍ଶ ତଥା ସାମାଜିକ ଅଭିଜ୍ଞତା ମୂଳକ ସୌନ୍ଦର୍ଯ୍ୟକଳ୍ପନା, ଡାଭିନ୍‌ସି ସାର୍ବକାଳିନ ମୂଲ୍ୟବୋଧ ଅନୁସାରୀ ବିସ୍ମୟବୋଧ ଓ ନାବନ୍ୟାୟିକ ମୂଲ୍ୟବୋଧ ଭିତ୍ତିକ ସୃଷ୍ଟିକୁ ସୌନ୍ଦର୍ଯ୍ୟ-ତତ୍ତ୍ୱର ବୈଶିଷ୍ଟ୍ୟ ରୂପେ ସ୍ୱୀକାର କରି ଆପଣା ଆପଣା ସିଦ୍ଧାନ୍ତମାନ ଉପସ୍ଥାପିତ କରିଛନ୍ତି। ଏହି କ୍ରମରେ ଇଞ୍ଜାଇନ୍‌ସ୍, ଏଡମଣ୍ଡବର୍କ୍, କାଣ୍ଟ, ବ୍ରାଡଲେ ପ୍ରମୁଖ ଶୈଳୀରେ ଉଦାତ୍ତ ନିର୍ଦ୍ଦେଶ କରି ଆତ୍ମାର ମହାନତା ଓ ଉତ୍କର୍ଷ ସାଧନକାରୀ ଅନୁଭୂତି ମୂଳକ ଭାବମାନସକୁ ସୌନ୍ଦର୍ଯ୍ୟ ରୂପେ ଗ୍ରହଣ କରିଛନ୍ତି । ଫ୍ରୟେଡଙ୍କର ସର୍ଜନଶୀଳ ସୌନ୍ଦର୍ଯ୍ୟଦୃଷ୍ଟି ଶୋଭନୀୟ ଯୌନଚେତନାକୁ ପ୍ରାଧାନ୍ୟ ଦେଇ ସାହିତ୍ୟରେ/ କଳାରେ ତା'ର ଔଚିତ୍ୟ ଉଲଂଘନ ଓ ଉଦ୍ଦେଶ୍ୟମୂଳକ ପ୍ରକାଶ ଅଶ୍ଳୀଳ ହୋଇଥାଏ ବୋଲି ସୌନ୍ଦର୍ଯ୍ୟ-ସଚେତନ କରାଇଛି।**୧୧**

ପାଶ୍ଚାତ୍ୟ ଜଗତର ସୌନ୍ଦର୍ଯ୍ୟଶାସ୍ତ୍ରୀ ମାନଙ୍କ ସୌନ୍ଦର୍ଯ୍ୟ-ମୀମାଂସା ଆଧାରରେ କବି ଗଙ୍ଗାଧରଙ୍କ କାବ୍ୟାନୁଶୀଳନ ଏହି ପ୍ରବନ୍ଧର ମୂଳଲକ୍ଷ୍ୟ। ଏହିକ୍ରମରେ ଗଙ୍ଗାଧରଙ୍କ କବିତାରେ ରୂପାୟିତ ଅନ୍ତଃପ୍ରକୃତି ଓ ବହିଃପ୍ରକୃତି ଚିତ୍ରଣ, ଅନୁରାଗ ଓ ପ୍ରେମର ମହତୀଶକ୍ତି, ସଂଯତ-ରୂପାନୁଭୂତି, ସତ୍ୟ-ଶିବ-ସୁନ୍ଦରର ପରିକଳ୍ପନା, ରୁଚି ଓ ନୀତି, ଉଦାର ଓ ଉଦାତ୍ତ ଆଦି ଭାବନା କିପରି କଳାଗତ ସୌନ୍ଦର୍ଯ୍ୟ ସୃଷ୍ଟିର ଆଧାର ହୋଇଛି ସେସମ୍ପର୍କିତ ସଂକ୍ଷିପ୍ତ ଆଲୋଚନା କରାଯାଇଛି।

## 2. ଗଙ୍ଗାଧରଙ୍କ କବିତ୍ୱ ଓ ସୌନ୍ଦର୍ଯ୍ୟବୋଧ/ Aesthetic aspects in Gangadhar's poetry:

### 2.1. ସଂସ୍କୃତିସମ୍ପନ୍ନ ସୌନ୍ଦର୍ଯ୍ୟବୋଧ / Aesthetic of Culturalism:

ସାହିତ୍ୟ ସୌନ୍ଦର୍ଯ୍ୟ ଉପଲବ୍ଧିର କଳା; ଗଙ୍ଗାଧରଙ୍କ କବିତ୍ୱ ଦିବ୍ୟଚେତନାର ଅଭିବ୍ୟକ୍ତି। ଏହା ଆତ୍ମପ୍ରକାଶକ୍ଷମ। ରୁଚି ଓ ନୀତି, ଆଦର୍ଶ ଓ ବାସ୍ତବତା, ପ୍ରାଚୀନ ଓ ନୂତନତା ମଧ୍ୟରେ ସାର୍ଥକ ସମନ୍ୱୟ ଘଟାଇ ଆର୍ଯ୍ୟଜୀବନବୋଧର ଗରିମାମୟ ଐତିହ୍ୟସମୃଦ୍ଧ ଚରିତାବଳୀ ଏବଂ ସେମାଙ୍କର ଦୃଷ୍ଟାନ୍ତକଳ୍ପ ଚାରିତ୍ରିକବୈଶିଷ୍ଟ୍ୟ ଘେନି ଏହି କାବ୍ୟଶିଳ୍ପୀଙ୍କର ଶିଳ୍ପ-ସୌନ୍ଦର୍ଯ୍ୟ ବିକଶିତ। ଗୋଟିଏ ବିଦଗ୍ଧ ମନୁଷ୍ୟର ଭାବନେଇ ଅନୁଧାନମଗ୍ନ ହେଲେ ଦେଖାଯିବ ଯେ କବି ଗଙ୍ଗାଧରଙ୍କ କାବ୍ୟଜଗତର ନରନାରୀଙ୍କ ନିକଟରେ ଯେଉଁ ସୁଖଦୁଃଖର ଇତିହାସ ରହିଛି; ତାହା ବିଶ୍ୱର ଯେକୌଣସି ପ୍ରାନ୍ତରରେ ଥିବା ଆଦର୍ଶ ରଜା, ଆଦର୍ଶ ପ୍ରଣୟୀ, ଆଦର୍ଶ ପ୍ରଣିୟିନୀ, ଆଦର୍ଶ ସ୍ୱାମୀ, ଆଦର୍ଶ ପତ୍ନୀ, ଆଦର୍ଶ ମନୁଷ୍ୟର ସୁଖ ସହିତ ସମାନ, ଦୁଃଖ ସହିତ ସମାନ, ଆନନ୍ଦ ସହିତ ସମାନ !୧୨ ସୁନ୍ଦର ମନ ସୁନ୍ଦର ଭାବପ୍ରତି ଅନୁରାଗୀ ହୋଇଥାଏ। ଅସୁନ୍ଦର ମନ ସୁନ୍ଦର ସ୍ଥାନରେ ଅବସ୍ଥାନ କରିପାରେ ନାହିଁ।୧୩ ନୀତିବାଦୀ କବି ଗଙ୍ଗାଧରଙ୍କ ଭାବଦୃଷ୍ଟିରେ ଶାରୀରିକ ସୌନ୍ଦର୍ଯ୍ୟ ଅପେକ୍ଷା ମନର ସୌନ୍ଦର୍ଯ୍ୟ ଅଧିକ ଗୁରୁତ୍ୱ ବହନ କରିଛି। କବି ତେଣୁ ଚରିତ୍ରର ରୂପସୌନ୍ଦର୍ଯ୍ୟରେ ଆତ୍ମ-ସନ୍ତୁଷ୍ଟି ଲାଭ କରିନାହାନ୍ତି ବରଂ ଚରିତ୍ରମାନଙ୍କ ଭିତରେ ଆତ୍ମିକ ସୌନ୍ଦର୍ଯ୍ୟ ସନ୍ଧାନ କରିଛନ୍ତି। ଫଳରେ ମନର ସୁନ୍ଦରତା ଓ ସ୍ୱଭାବିକ ସୌନ୍ଦର୍ଯ୍ୟ ିହୋଇଛି ସତ୍ୟଶୀଳ ସୌନ୍ଦର୍ଯ୍ୟ। ବସ୍ତ୍ର ବିନା ସୌନ୍ଦର୍ଯ୍ୟ ଯେମିତି ମର୍ଯ୍ୟାଦାହୀନ ହୋଇଥାଏ, ଅନୁରୂପ ଚରିତ୍ରବିନା ପାତ୍ର ମଧ୍ୟ ଆଦରଣୀୟ କି ମହନୀୟ ହୋଇପାରେନାହିଁ। ଏହି ମହତଭାବଧାରାରେ କବି ଗଙ୍ଗାଧରଙ୍କ ଚରିତ୍ର ପ୍ରତିକୂଳ ପରିସ୍ଥିତିରେ ସୁଦ୍ଧା ଆଦୌ ବିଚଳିତ କିମ୍ବା ପ୍ରତିକ୍ରିୟାଶୀଳ ନହୋଇ ତତ୍ତ୍ୱଦର୍ଶୀ ତପସ୍ୱୀପ୍ରାୟ ସୁନ୍ଦର ଓ ମହିମ(sublime)ଭାବାଦର୍ଶରେ ଅଭିମଗ୍ନ ରହିଛନ୍ତି। ଏହି ଅନ୍ତର୍ମନର ସୁନ୍ଦରତା କେତେଯେ ଉଚ୍ଚକୋଟିର ହୋଇପାରେ ତାପସୀ-ସୀତା ଆଶ୍ରମରେ ଥାଇ ଉଷାଦେବୀଙ୍କ ବନ୍ଦନା କରିବା କାଳରେ ତାହା ପ୍ରମାଣିତ-

"ବୋଇଲେ ତାକୁ ପ୍ରଶଂସି, ତୁମେ ତିମିର-ବିଧ୍ୱଂସି
ରବି-ଆଗମନ-ଶଂସୀ ହୁଅ ସଂସାରେ,
ତୁମ୍ଭ କୋମଳ ଚରଣ କରେ ଜ୍ୟୋତି ଆହରଣ
ତହିଁ ଯାଉଛି ଶରଣ ଦୃଢ ଆଶାରେ,
ଶୁଭ୍ର-ସଉରଭ ରସିକେ
ଶୁଭ-ସମ୍ପାଦିନୀ ହୁଅ ରଘୁବଂଶିକେ ।"୧୪

ସୀତା ଏଠି ନିର୍ବାସିତା କିନ୍ତୁ ଶ୍ରୀରାମଚନ୍ଦ୍ର କିମ୍ବା ରଘୁବଂଶ ପ୍ରତି ସଂଭ୍ରମ ଓ ଗଭୀର ମମତ୍ୱବୋଧ ସୀତାଙ୍କ ମନଭିତରୁ ତିଳେହେଁ ନିଷ୍ପ୍ରଭ ହୋଇନାହିଁ। କବିଙ୍କ ଭାଷାରେ ସେ ତେଣୁ ସୀତା-ସୁନ୍ଦରୀ; ବିନୟ, ନମ୍ରତା ଓ ସହନଶୀଳତାର ସମର୍ଥ ପ୍ରତୀକ। ଉଷାଦେବୀଙ୍କ ନିକଟରେ ଏହି ପ୍ରାର୍ଥନା ସାଧାରଣ ପ୍ରାର୍ଥନା ନୁହେଁ ଅତି ଉଚ୍ଚକୋଟିର ଆର୍ଯ୍ୟନାରୀ ହୃଦୟରୁ ଉଚ୍ଚାରିତ ମଙ୍ଗଳଦାୟିନୀ ସ୍ୱରଲିପି। ଏହି ତପସ୍ୟା ସାଧାରଣ ତପସ୍ୟା ନୁହେଁ, ଏହା ପତିହିତସାଧିନୀ ତପସ୍ୟା । ଏହି ଅନ୍ତର୍ଦୃଷ୍ଟି ିଗଙ୍ଗାଧର କାବ୍ୟମାନସର ଶ୍ରେଷ୍ଠକୃତି 'ତପସ୍ୱିନୀ'ର ସୁନ୍ଦରତା । ସୀତା ଚରିତ୍ର ମାଧ୍ୟମରେ ପ୍ରକାଶିତ ଏହି ଆଦର୍ଶ-ସୌନ୍ଦର୍ଯ୍ୟ ବିଶ୍ୱବନ୍ଦନୀୟ ।

ଭୋଗରେ ନୁହେଁ ତ୍ୟାଗରେ ହିଁ ସୌନ୍ଦର୍ଯ୍ୟ ବିକଶିତ ହୋଇଥାଏ। ଏଠି ସୌନ୍ଦର୍ଯ୍ୟ ଶବ୍ଦଟି ବଡ଼ ତାତ୍ପର୍ଯ୍ୟପୂର୍ଣ୍ଣ, ଏହା ଅଙ୍ଗଜ ନୁହେଁ ଭାବଜ; ଗୋଟିଏ ଯୁଗରେ କ୍ୱଚିତ ବ୍ୟକ୍ତିବିଶେଷଙ୍କୁ କେବେକେବେ ହିଁ ଏହିପରି ସୁନ୍ଦରତା ପ୍ରାପ୍ତହୋଇଥାଏ। ଏପ୍ରକାର ସୌନ୍ଦର୍ଯ୍ୟଧାରଣ କରିବାର ପାତ୍ରତା,ଯୋଗ୍ୟତା ଓ କ୍ଷମତା ମଧ୍ୟ ସବୁକାଳର ସବୁମଣିଷଙ୍କ ନିକଟରେ ସମ୍ଭବ ନୁହେଁ। ଏହି ସୌନ୍ଦର୍ଯ୍ୟ ସମ୍ମାନର ଯୋଗ୍ୟ, ଏହାକୁ ଧାରଣ କରିବାର ସାମର୍ଥ୍ୟ ରଖୁଥିବା ବ୍ୟକ୍ତି-ସତ୍ତାଟି ପୂଜାର ଯୋଗ୍ୟ । ସୌନ୍ଦର୍ଯ୍ୟର ଦେବୀଙ୍କ କୃପାଦୃଷ୍ଟି ଯେଉଁଠି ପଡ଼ିଯାଏ ବ୍ୟକ୍ତି ସେଇଠି ମହାନ ଓ ପ୍ରଶଂସନୀୟ ହେବାର ପରମ ସୌଭାଗ୍ୟ ଲାଭକରେ। ଏହି ପ୍ରକାର ସୌଭାଗ୍ୟର ଉତ୍କର୍ଷତା ସ୍ଥିର, ଭରସାଯୋଗ୍ୟ, ସାର୍ବକାଳିକ ଓ ସାର୍ବଜନୀନ-ବିଶ୍ୱସନୀୟତା ଉପରେ ପ୍ରତିଷ୍ଠିତ। ତମସା କଣ୍ଠରେ ସୌନ୍ଦର୍ଯ୍ୟାନ୍ୱେଷୀ କବି ସ୍ୱୀକାରୋକ୍ତି ଦାର୍ଶନିକସୁଲଭ ଦୃଷ୍ଟିଭଙ୍ଗୀ-ଅନୁସାରୀ ପ୍ରକାଶିତ ହୋଇଛି-

"ଅମୃତ ମଧୁର ସ୍ୱରେ ଭାସିଗଲା ପରିତୋଷରେ
ମାଆ ଗୋ, ମୋ ମାନସରେ ନ ଥିଲା ଆଶା,
କରିବ ଅଙ୍କେ ବିହାର ରାଜଲକ୍ଷ୍ମୀ-ହୃଦହାର

ସୀତା କରି ପରିହାର ଭୋଗ-ପିପାସା;
ଭାଗ୍ୟବତୀ ମୋତେ ସଂସାରେ,
ବୋଲିବେ ତୋ ଯୋଗୁଁ ଏକା ପରଶଂସାରେ ।"**୧୫**

ସାରା ସଂସାରରେ ଗୋଟିଏ ରାମ ଗୋଟିଏ ସୀତା। ଜଗତରେ ରାମସୀତା ତୁଲ୍ୟ ଦ୍ୱିତୀୟ ନାସ୍ତି। ଏମାନଙ୍କ ଆଦର୍ଶରୁ ଜାତ ଭୁବନମୋହିନୀ ସୌନ୍ଦର୍ଯ୍ୟବୋଧ ସର୍ବତ୍ର ରାମସୀତାଙ୍କ ଚାରିତ୍ରିକ ବିଶେଷତ୍ୱ ପ୍ରତି ଅନୁରାଗ ଓ ଆକର୍ଷଣର ମୂଳହେତୁ ହୋଇଆସିଛି। କବି ଗଙ୍ଗାଧରଙ୍କ ବିଚାରରେ ପ୍ରେମରୁ ଜାତ ସୌନ୍ଦର୍ଯ୍ୟର ନାମ ତପସ୍ୟା। ପ୍ରେମ କୌଣସି ବସ୍ତୁ ବା ଦ୍ରବ୍ୟ ନୁହେଁ ଯେ ଗୋଟିଏ ସ୍ଥାନରେ ନମିଳିଲେ ଅନ୍ୟସ୍ଥାନରୁ କ୍ରୟ କରିନିଆଯିବ । ଏହା ଆତ୍ମାର ସମ୍ପତ୍ତି, କେବଳ ତପସ୍ୟା ବିନିମୟରେ ପ୍ରାପ୍ତ କରାଯାଇପାରିବ। ତେଣୁ ସୀତାଙ୍କ ଜୀବନ ତପସ୍ୟାମୟ ; ସେ ହୋଇପାରେ ପତି ରୂପେ ଶ୍ରୀରାମଙ୍କ ପ୍ରାପ୍ତି ପାଇଁ, ପତିହିତସାଧନ ପାଇଁ ଅଥବା ପ୍ରେମରୁ ଜାତ ସୌଦର୍ଯ୍ୟର ଉପାସନା ପାଇଁ। ସୀତା ପ୍ରତିଶ୍ରୁତିବଦ୍ଧ – ସ୍ୱୟଂବରେ ଯଦି ରାମ ନମିଳିବେ ସୀତା ତପସ୍ୱିନୀ ହୋଇଯିବେ।**୧୬** ତେଣୁ ରାମଙ୍କ ବିନା ସୀତାଙ୍କ ଜୀବନ ମୂଲ୍ୟହୀନ, ସୀତା ବ୍ୟତିରେକ ରାମଙ୍କ ଜୀବନ ଅର୍ଥହୀନ। ଭାରତୀୟ ସାଂସ୍କୃତିକ ମୂଲ୍ୟବୋଧର ଏହି ମୌଳିକ ଚିନ୍ତାଧାରାଟିକୁ କବି ଗଙ୍ଗାଧର ତପସ୍ୱିନୀ କାବ୍ୟ ଜରିଆରେ ଆଧୁନିକ ବିଶ୍ୱମାନବକୁ ନୂଆ ଭାବରେ ପୁଣିଥରେ ପ୍ରଦାନକଲେ।

### 2.2. **ପ୍ରେମ ଓ ସୌନ୍ଦର୍ଯ୍ୟ/ Love and beauty :**

କବି ଗଙ୍ଗାଧରଙ୍କ ସମସ୍ତ କାବ୍ୟକବିତାରେ ପ୍ରେମର ସୂକ୍ଷ୍ମରୂପ ଓ ପ୍ରଣୟୀ, ପ୍ରଣୟିନୀଙ୍କର ଅଶରୀରୀ ଭାବରୂପ ସୌନ୍ଦର୍ଯ୍ୟର ମୂର୍ତ୍ତିମନ୍ତ ଦେବସତ୍ତା ଆକାରରେ ରୂପାୟିତ। ଏହି ସୌନ୍ଦର୍ଯ୍ୟ କାମନା,ବାସନା ମୁକ୍ତ, ଇନ୍ଦ୍ରିୟଭୋଗର ଅତୀତ। ଅପୂର୍ବ ଓ ଅତୁଳନୀୟ ମାଧୁର୍ଯ୍ୟମଣ୍ଡିତ ଉଦାର-ଲାବଣ୍ୟ ଓ ଉଦାତ୍ତ-ସୌକୁମାର୍ଯ୍ୟ ମହାଭାରତୀୟ ଆଦର୍ଶାନୁସାରୀ ହୋଇ ସଂସାର ଓ ବ୍ୟକ୍ତିତ୍ୱ ପରିଚାଳନର ନିୟମ(law of society and personality management) ହୋଇଥିବା କବି ଲକ୍ଷକରିଛନ୍ତି। ପ୍ରେମର ଏହିପରି ଅବିଚଳିତ ସଂଯତ ସମାହିତ ଆଦର୍ଶରୂପ ବିଶେଷିତ କରିଛି ସୌନ୍ଦର୍ଯ୍ୟର ମହତୀଶକ୍ତିକୁ। କବି ଗଙ୍ଗାଧରଙ୍କ ଦୃଷ୍ଟିରେ ପ୍ରେମ ଓ ସୌନ୍ଦର୍ଯ୍ୟ ପରସ୍ପର ପରିପୂରକ। ପ୍ରେମ ସହିତ ସୌନ୍ଦର୍ଯ୍ୟର ସମନ୍ୱୟ ଘଟାଇବାବେଳେ କବି ଆନନ୍ଦର ଉପଲବ୍ଧି କେବଳ ହୃଦୟରୁ ହୃଦୟକୁ ସର୍ବାପେକ୍ଷା ପ୍ରଭାବିତ କରୁଥିବା ଅନୁରାଗ ପ୍ରତି ଯତ୍ନବାନ ରହିଛନ୍ତି। ଜଳର ପ୍ରାବଲ୍ୟତାରେ ତଟିନୀ ସୀମା ଲଙ୍ଘନ କରିପାରେ କିନ୍ତୁ ସାଗର ତଥାପି ସାଗର ନିଜ ଭିତରେ ସବୁକିଛି ସମାହିତ କରିନିଏ। -

"ତହିଁରେ ଚତୁରୀ ବର ବର୍ଣ୍ଣିନୀର ମାନସ ଭୁଲିଲା ନାହିଁ,
ମାନସର କେଳିଲାଳସୀ ମରାଳୀ କାସାରେ ରସିବ କାହିଁ ?"**୧୭**

ବ୍ୟକ୍ତିର ଅନ୍ତର ସହିତ ସୌନ୍ଦର୍ଯ୍ୟର ସମ୍ପର୍କ ନିବିଡ଼। ପୁଣି ଗୁଣ ଓ ଶ୍ରେଷ୍ଠତ୍ୱ ବିନା ସୌନ୍ଦର୍ଯ୍ୟ ଅସାର ଓ ବୀରତ୍ୱ ପ୍ରବଞ୍ଚନା ଜନକ। ଫଳତଃ ସୁନନ୍ଦା ରାଜନନ୍ଦିନୀ ଇନ୍ଦୁମତୀଙ୍କୁ ମଥୁରା ନରେଶଙ୍କର ସୌନ୍ଦର୍ଯ୍ୟ, ବୀରତ୍ୱ, ପରାକ୍ରମ ବିଷୟରେ ଯେତେ ବର୍ଣ୍ଣନା କରି ଆକର୍ଷଣ ସୃଷ୍ଟି କରିବାର ପ୍ରୟାସ କରିଥିଲେ ସୁଦ୍ଧା ଅଜ ଅନୁରାଗିଣୀ ଇନ୍ଦୁମତୀଙ୍କ ମନ ସେଥିରେ ତିଳେହେଁ ବିଚଳିତ ହୋଇନାହିଁ। କାରଣ ଏ ସୌନ୍ଦର୍ଯ୍ୟ ଚକ୍ଷୁ ସହିତ ରୂପର ନୁହେଁ ହୃଦୟ ସହିତ ଦୃଦୟର।

ପ୍ରେମ ମନୁଷ୍ୟର ଏକ ସହଜାତ ପ୍ରବୃତ୍ତି। ପ୍ରାପ୍ତିର ପୂର୍ଣ୍ଣତା ଠାରୁ ଅପ୍ରାପ୍ତିର ସନ୍ତୁଳନ ମଧ୍ୟରେ ଥିବା ଶାଶ୍ୱତତମ ମୁହୂର୍ତ୍ତ ଜନିତ ବ୍ୟବଧାନର ନାମ ପ୍ରେମ, ଏହାର ଅବ୍ୟବହିତ ପୂର୍ବାବସ୍ଥା ପୂର୍ବରାଗ(romance) ରୂପେ ପରିଚିତ । ପବିତ୍ର ଦାମ୍ପତ୍ୟ ଜୀବନାରମ୍ଭ ନିମିତ୍ତ ଏହା ସେତୁତୁଲ୍ୟ ଭୂମିକା ନିର୍ବାହ କରିଥାଏ। ତେଣୁ ଏହି ଅବସ୍ଥାଟି ସୁନ୍ଦର ଓ ସ୍ୱାଭାବିକ । ଏହା ସଂସାର-ଅନଭିଜ୍ଞ-ନାୟକନାୟିକା ତରୁଣ-ତରୁଣୀଙ୍କ ନିକଟରେ ଅବସ୍ଥାନ କରେ। ଏଇଠି ଚକ୍ଷୁ ରୂପଦର୍ଶନ କରେ ଏବଂ ମନ ବନ୍ଦୀହୁଏ।**୧୮** ପରସ୍ପରପ୍ରତି ଗଭୀର ହୃଦୟାକର୍ଷଣ ଓ ଦୃଷ୍ଟି ବିନିମୟ ହେତୁ କ୍ରମଶଃ ନାରୀର ଅସାମାନ୍ୟ ସମ୍ମୋହନକାରୀ ଶକ୍ତି ତଥା ନାରୀତ୍ୱର ଐଶ୍ୱର୍ଯ୍ୟ ନିକଟରେ ତରୁଣ-ପୁରୁଷର ସମସ୍ତ ଆଭିଜାତ୍ୟ ଓ ଦାମ୍ଭିକତା ଏବଂ ପୁରୁଷର ସୌକୁମାର୍ଯ୍ୟପଣର ଚମକ ନିକଟରେ ତରୁଣୀ-ନାୟିକାର ସମସ୍ତ ମାଧୁରୀ ପରାଜୟ ସ୍ୱୀକାର କରିବା ଆରମ୍ଭ କରି ଅନିର୍ବାଚନୀୟ ସୌନ୍ଦର୍ଯ୍ୟାନନ୍ଦ ତଥା ରୂପସୌନ୍ଦର୍ଯ୍ୟ ଦର୍ଶନ ଜନିତ ସୁଧାମୟସୁଖ ଉପଲବ୍ଧିର ନିକଟତର କରାଏ। ସଂଯତ ରୂପାନୁଭୂତି କେତେ ସ୍ୱାଭାବିକ ଓ ଆଦର୍ଶଯୁକ୍ତ ହୋଇପାରେ-

"ନୃପ ମୁଖେ ଦିଏ କଟାକ୍ଷ ତରୁଣୀ ନୃପ ଦୃଷ୍ଟି ଥିଲେ ଆନେ
ଆବର୍ତ୍ତିଲେ ନୃପ ଚକ୍ଷୁ ତାର ଦିଗେ ବେଗେ ଅପସରି ଆଣେ ।**୧୯**

ରୂପର ଦର୍ଶନ ଓ ମନନରେ ସୌନ୍ଦର୍ଯ୍ୟର ସାର୍ଥକତା। ଇନ୍ଦ୍ରିୟଗ୍ରାହ୍ୟ ରୂପରେ ସୌନ୍ଦର୍ଯ୍ୟର ଆବିର୍ଭାବ ଓ ରୂପରେ ଁ ତାହାର ଅଧିଷ୍ଠାନ। ରୂପକୁ ଛାଡ଼ି ରୂପାୟିତ ହେବାକୁ ତାର ପ୍ରୟାସ ନଥାଏ।**୨୦** ପ୍ରେମର ପୂଜାରେ ରୂପର ବିନିଯୋଗ ନହେଲେ ରୂପରେ ଅଧିଷ୍ଠିତ ସୌନ୍ଦର୍ଯ୍ୟ ଶ୍ରୀହୀନ ହୋଇପଡ଼େ । ରୂପବାନ-ରୂପବତୀ ନାୟକ-ନାୟିକା ପରସ୍ପରପ୍ରତି ମୋହିତ ହେବା ସୌନ୍ଦର୍ଯ୍ୟ ତାତ୍ତ୍ୱିକ ଦୃଷ୍ଟିରୁ କିଛି ଅସ୍ୱାଭାବିକ ହୋଇନାହିଁ। ସୌନ୍ଦର୍ଯ୍ୟ ଏଠାରେ ଇନ୍ଦ୍ରିୟଗ୍ରାହ୍ୟ ବିଭବ ଘେନି ପ୍ରକଟିତ

ହୋଇଥିଲେ ହେଁ ତାହା ସଂଯତ ଓ ସଙ୍କୁଚିତ। କାରଣ ଶକୁନ୍ତଳା ଋଷିକନ୍ୟା ଓ ଦୁଷ୍ମନ୍ତ ସ୍ୱୟଂ ରଜା । ତେଣୁ ଉଚ୍ଚକୋଟିର ଚରିତ୍ରସୃଷ୍ଟି କ୍ଷେତ୍ରରେ ଉଚ୍ଚଆଦର୍ଶ ହିଁ ଶୋଭନୀୟ, ବନ୍ଦନୀୟ ହୋଇଥାଏ । ତେଣୁ ଆସକ୍ତିର ଗ୍ରାସରେ ସୌନ୍ଦର୍ଯ୍ୟର ତୃଷ୍ଣା, ପ୍ରଣୟ-ପିପାସା ଜନିତ ତୃପ୍ତିର ଅତିକ୍ରମଣ ଓ ତଜ୍ଜନିତ ଅସୁନ୍ଦର ପରିଣତିକୁ କବି ଗଙ୍ଗାଧର ପ୍ରଶ୍ରୟ ଦେଇନାହାନ୍ତି। ଫଳତଃ ରମଣୀୟ କ୍ଷେତ୍ରରୁ ଚିତ୍ତଦ୍ରବୀଭୂତକାରୀ ବେଶ, ଆକର୍ଷଣୀୟ ଆଚରଣ-ସମୃଦ୍ଧ ନରନାରୀଙ୍କ ସମାଗମରେ ଗଙ୍ଗାଧରଙ୍କ କାବ୍ୟକାନନ ସୁଶୋଭିତ । ଏମାନଙ୍କର ପ୍ରତିଟି ଶ୍ୱାସ ମଳୟ-ସମୀର ଠାରୁ ବଳି ସୁଗନ୍ଧିତ । ଚାହାଁଣିରେ ଉଲ୍ଲାସ,ସତୀତ୍ୱ ଓ ଲଜ୍ଜାର ମୋହୀନିମନ୍ତ୍ର। ସୀତା, ଦ୍ରୌପଦୀ, ଇନ୍ଦୁମତି, ଶକୁନ୍ତଳା ଆଦି ଦିବ୍ୟତ୍ୱମଣ୍ଡିତ ଓ ପୁଷ୍ପତୁଲ୍ୟ ରମଣୀୟ-ବ୍ୟକ୍ତିସତ୍ତାର ଔଜଲ୍ୟ ନିକଟରେ ନବଦୀପ୍ତ ସୂର୍ଯ୍ୟର କନକ କିରଣରେ ମୁକୁଳିତ ଶତଦଳ ମଧ୍ୟ ମଳିନ ଦେଖାଯିବ। କବି ଗଙ୍ଗାଧରଙ୍କ ଭାବଦୃଷ୍ଟିରେ ଏହିମାନେ ଯଥାର୍ଥରେ ସୌନ୍ଦର୍ଯ୍ୟର ସାଧକ/ସାଧିକା। ସାଧନାର ନାମ ତପସ୍ୟା, ସାଧନର ନାମ ସଦାଚାର। ଏହି ପ୍ରକାର ପବିତ୍ର ଗୁଣର ଅଧିକାରୀ ହୋଇଥିବା ହେତୁ ଏହିମାନଙ୍କର ସୌନ୍ଦର୍ଯ୍ୟ ନଭଭାଗର ତାରକାମାନଙ୍କ ଠାରୁ ଅଧିକ ତେଜଦୀପ୍ତ, ରୂପ ଓ ସୌନ୍ଦର୍ଯ୍ୟ ଅତ୍ୟନ୍ତ ପ୍ରଭାବଶାଳୀ। ଦ୍ରବୀଭୂତ ପ୍ରେମରେ ଅବଗାହନ କରିଥିବା ହେତୁ ଏହାର ତେଜର ଶୁଦ୍ଧତା ଓ ପବିତ୍ରତା ହୃଦୟବୃତ୍ତିକୁ ସର୍ବୋତ୍ତମ ଗୁଣପୂର୍ଣ୍ଣ କରିଦେଇଥିବା କାରଣରୁ ସେଠାରେ ଅତିଉତ୍ତମ ତଥା ସର୍ବୋତ୍କୃଷ୍ଟ ଚିତ୍ରମାନ ଭାବରୂପ ଲାଭକରି ପ୍ରକାଶିତ ହେବା ସମ୍ଭବ ହୋଇଛି।୨୧ ଫଳରେ ଯୌବନର ପ୍ରଲୋଭନ ଓ ଉତ୍ତେଜନାରେ ମୋହେରଙ୍କ ଚରିତ୍ର କେବେ କବଳିତ ହୋଇନାହାନ୍ତି ବରଂ ସାବଧାନତା ଓ ଚତୁରତାର ସହିତ ସୌନ୍ଦର୍ଯ୍ୟ-ଦେବୀର କଥା ଶୁଣିଛନ୍ତି ଓ ବୁଣିଛନ୍ତି। ନାରୀସୁଲଭ ଲଜ୍ଜାରୁ ପ୍ରକଟିତ ସୌନ୍ଦର୍ଯ୍ୟ ଚାଲିଚଳଣକୁ ନିୟନ୍ତ୍ରଣ କରିଛି। ହୃଦୟରେ ନିର୍ଦ୍ଦୋଷତା/ ନୈତିକତା ଅବସ୍ଥାନ କରିଛି। ଚିତ୍ତବୃତ୍ତିକୁ ଆଚ୍ଛାଦିତ କରିଛି ନାରୀତ୍ୱ ଓ ସତୀତ୍ୱର ଓଜ।

"ଲଜ୍ଜାବଶେ  ଉଠି ଗଲେ ହେବ ବୋଲି ଅତିଥିଙ୍କ ଅପମାନ
ଗମନ-ଉନ୍ମୁଖୀ ପ୍ରାୟ ବସିଥାଏ ଯେହ୍ନେ ମନ କରି ଆନ ।
ସପ୍ତପର୍ଣ୍ଣ-ପତ୍ର ଶିରା ଗଣିଗଣି ନତ କରିଥାଏ ମୁଖ
ମଧ୍ୟେ ଥରେଥରେ ନୃପଙ୍କୁ ଅପାଙ୍ଗେ ଚାହିଁ  ଲଭୁଥାଏ ସୁଖ।"୨୨

ଅନୁରାଗ-ସଂପ୍ରୀତିର ମଧୁରତମ ମୂହୁର୍ତ୍ତ ଗୁଡ଼ିକ କିପରି ଦୁଷ୍ମନ୍ତ ଓ ଶକୁନ୍ତଳଙ୍କ ପୂର୍ବରାଗ-କ୍ଷେତ୍ରରେ ନୈତିକ ପ୍ରେରଣାର ସୌନ୍ଦର୍ଯ୍ୟଘେନି ପ୍ରକାଶିତ ହୋଇଛି ତା'ର ଅବତାରଣା ଏଠାରେ ଅତିମାର୍ମିକ ହୋଇଛି।

### 2.3. ସୌନ୍ଦର୍ଯ୍ୟ ସହିତ ବୀରତ୍ୱର ସମନ୍ୱୟ/ Addition of heroism to beauty:

ସୌନ୍ଦର୍ଯ୍ୟ ଆତ୍ମାର ସମ୍ପତ୍ତି, ମନର ବିକୃତି ନୁହେଁ। ଯିଏ କେବଳ ରୂପ ଓ ସୌନ୍ଦର୍ଯ୍ୟରେ ମୋହିତ ହୁଏ ସିଏ ବାସନାର ଲୋଭୀ ହୋଇଥାଏ। କେବଳ ଭ୍ରଷ୍ଟାଚାରୀ ହିଁ ସୌନ୍ଦର୍ଯ୍ୟକୁ ପାପ-ଚକ୍ଷୁରେ ଦେଖିଥାଏ। ପୁରୁଷ ଯେତେବେଳ ବିଚାରକରିଛି ଯୁବତୀ କେବଳ ମାତ୍ର ଲୋଭନୀୟ ଓ ଭୋଗନୀୟ ବସ୍ତୁ ସେ  କ୍ଷେତ୍ରରେ କବି ଗଙ୍ଗାଧର କବିବର ରାଧାନାଥଙ୍କ ପରି କାବ୍ୟନାୟିକାକୁ (ଚନ୍ଦ୍ରଭାଗା) ଆତ୍ମବିସର୍ଜନ ପାଇଁ ଛାଡ଼ିଦେଇ ନାହାନ୍ତି ବରଂ ସୌନ୍ଦର୍ଯ୍ୟ  ହିତ ସତୀତ୍ୱ ଓ ବୀରତ୍ୱର ସମନ୍ୱୟ ଘଟାଇ କଳାଗତ ସୌନ୍ଦର୍ଯ୍ୟର ଚମତ୍କାରିତା ସୃଷ୍ଟି କରିଛନ୍ତି କାମାସାକ୍ତ କୀଚକର ବଧ ଜରିଆରେ –

"ମନ୍ଦିର ଭିତରେ ଦେଖି ଧବଳ ମୂରତି / ମୋ ପ୍ରାଣ ବାନ୍ଧବୀ ବୋଲି ଧଇଲା ତଡ଼ତି
ଭୀମ ବସିଥିଲା ଯେହ୍ନେ କ୍ଷୁଧାର୍ତ୍ତ ଶାର୍ଦ୍ଦୁଳ / ଧଇଲା ଗରଜି ଜବେ ଗ୍ରୀବା-ମୂଳ
ବାମା ନୁହେଁ ବାମ ବୋଲି ଗର୍ଜିଲା କୀଚକ / ପ୍ରଭଞ୍ଜନ ପ୍ରହାରେ ଜେସନେ କୀଚକ।"୨୩

ଆଦର୍ଶ-ସୌନ୍ଦର୍ଯ୍ୟଦୃଷ୍ଟି  ମରିଗଲେ ବ୍ୟକ୍ତି ଶବ ହୋଇଯାଏ ଏବଂ ସେପ୍ରକାର ଶବ ଆଦରଣୀୟ ମଧ୍ୟ ହୋଇପାରେ ନାହିଁ । ତେଣୁ ମହାଯୋଦ୍ଧା ଓ ପରାକ୍ରମଶାଳୀ କୀଚକର ମାଛି ଭଣଭଣ, ବିଭତ୍ସ ଅବସ୍ଥାରେ ପଡ଼ିରହିଥିବା ପ୍ରାଣଶୂନ୍ୟ ଶରୀର ଦେଖି ଲୋକଙ୍କ ମନରେ ଘୃଣା ମିଶ୍ରିତ ସନ୍ଦେହ ଜାତ ହୋଇଛି 'ଶବ କୀଚକ ପରି' ଦିଶୁଛି।

### 2.4. ଆଧ୍ୟାତ୍ମିକତା ଓ ସୌନ୍ଦର୍ଯ୍ୟ / Beauty and transcendental conception:

ଆଧ୍ୟାତ୍ମିକ ଭାବଦୃଷ୍ଟିର ମୂଳାଧାର ସତ୍ୟ-ଶିବ-ସୁନ୍ଦରର ପରିକଳ୍ପନା। ବିଶ୍ୱପ୍ରସିଦ୍ଧ କବି କିଟ୍ସଙ୍କ ଦୃଷ୍ଟିରେ ସତ୍ୟ ସୁନ୍ଦର। ସତ୍ୟଠାରୁ ବଳି ସୌନ୍ଦର୍ଯ୍ୟ ଓ ଆକର୍ଷଣୀୟ ଚିଜ ଜଗତରେ କିଛି ନାହିଁ । ଦାର୍ଶନିକ ମୁରାଟରୀଙ୍କ ଭାବଦୃଷ୍ଟିରେ ଈଶ୍ୱର ସବୁ ବସ୍ତୁଠାରୁ ସୁନ୍ଦର। ପ୍ରକୃତ ସୌନ୍ଦର୍ଯ୍ୟ, ପ୍ରକୃତ ଶକ୍ତି, ପ୍ରକୃତ ଧନ, ପ୍ରକୃତ ଜ୍ଞାନ, ପ୍ରକୃତ ଯଶ, ପ୍ରକୃତ ତ୍ୟାଗ ଆଦି ଐଶ୍ୱର୍ଯ୍ୟରେ ପରିପୂର୍ଣ୍ଣ ଚରମସତ୍ତା ସତ୍ୟ ନାମରେ ପରିଚିତ। ଏହି ଚରମ ସତ୍ତା ଓ ତଦ୍ଜନିତ ଉପଲବ୍ଧିର ସମାର୍ଥସୂଚକ ପ୍ରତିଶବ୍ଦ ଈଶ୍ୱର, ଭଗବାନ ଅଥବା ପରମାତ୍ମା ରୂପେ ବ୍ୟବହୃତ। ଅର୍ଥାତ ଈଶ୍ୱର ସତ୍ୟ,କାରଣ ସେ ମଙ୍ଗଳଦାୟକ, ସେହେତୁ ସୁନ୍ଦର। ପ୍ରତ୍ୟେକ ଜୀବ ବାସ୍ତବରେ ସତ୍ୟ-ଶିବ-ସୁନ୍ଦରର କୃପା ଉପରେ ନିର୍ଭରଶୀଳ। ନିର୍ଭରଶୀଳତାର ଏ ସ୍ତରଟି 'ସତ୍ତ୍ୱ ସଂଶୁଦ୍ଧି' ଅର୍ଥାତ୍ ସ୍ଥିତିର ଶୁଦ୍ଧତା ରୂପେ ପରିଚିତ। ପ୍ରତ୍ୟେକ ପରିସ୍ଥିତିରେ ଭଗବାନ୍ ହିଁ ତାକୁ ସୁରକ୍ଷା ପ୍ରଦାନ କରିଆସିଛନ୍ତି; ତେଣୁ ସେ ସଦାକାଳରେ ବନ୍ଦନୀୟ । ଭଗବାନ୍ ଇନ୍ଦ୍ରିୟମାନଙ୍କ ସାହାଯ୍ୟରେ ଗ୍ରାହ୍ୟ ହୁଅନ୍ତି ନାହିଁ। ସେ ମଧ୍ୟ ଆତ୍ମମାନଙ୍କର ଜଡ଼ଚକ୍ଷୁ ସାହାଯ୍ୟରେ

ଦେଖାଯା'ନ୍ତି ନାହିଁ କିମ୍ବା ଆମର ଜଡ଼କର୍ଣ୍ଣ ସାହାଯ୍ୟରେ ଶୁଣାଯା'ନ୍ତି ନାହିଁ। ମନୁଷ୍ୟ ଚର୍ମଚକ୍ଷୁରେ ଈଶ୍ୱରଙ୍କ ଦର୍ଶନରେ ସକ୍ଷମ ନ ହୋଇଥିଲେ ସୁଦ୍ଧା, ଭଗବାନ୍ ଏତେ କୃପାମୟ ଯେ ସେ ସବୁଠି ସର୍ବବ୍ୟାପକ ରୂପେ ନିଜ ଉପସ୍ଥିତିର ଅନୁଭବ କରାଇଆସିଛନ୍ତି। ଫଳତଃ ଈଶ୍ୱରଙ୍କୁ ନିଜନିଜ ଉପଲବ୍ଧି ଅନୁସାରେ କିଏ କୃପାମୟ, କିଏ ଦୟାମୟ, କିଏ କରୁଣାସାଗର, କୃପାସିନ୍ଧୁ, କୃପାସାଗର, ପତିତପାବନ ଆଦି ନାମରେ ସମ୍ବୋଧନ କରି ପୂଜା କରିଆସୁଛି। କବି ଗଙ୍ଗାଧର କିନ୍ତୁ ପୁରାତନ ବିଚାର, ବିଶ୍ୱାସ, ପ୍ରତ୍ୟୟ, ମଳିଧରା ଜୀବନଶୈଳୀକୁ ଉପେକ୍ଷା କରି  ସମସ୍ତ ପ୍ରକାର ବ୍ୟକ୍ତିଗତ ପରିଧିରୁ ବିଶ୍ୱ-ପରିଧି ଆଡ଼କୁ ଅଗ୍ରସର ହୋଇଛନ୍ତି ଏବଂ ଐଶ୍ୱରିକସତ୍ତା-ଅନୁଭବିବାର ଯଥାର୍ଥତା ଭିତରେ ଚରମ ସୌନ୍ଦର୍ଯ୍ୟର ସନ୍ଧାନ କରିଛନ୍ତି- 'ବିଶ୍ୱଜୀବନ' ରୂପେ। କବିଙ୍କ ବିଚାରରେ ଅନନ୍ତକୋଟି ବ୍ରହ୍ମାଣ୍ଡ/ ଗ୍ରହ, ନକ୍ଷେତ୍ର ଆଦିକୁ କଣ୍ଠାଭୂଷଣ ରୂପେ ଧାରଣ କରିବାର ସାମର୍ଥ୍ୟ ରଖୁଥିବା ଚରମଶକ୍ତିଶାଳୀ ସତ୍ତାଙ୍କୁ ତାହାଙ୍କର ହିଁ ଦୟାଦାନରୁ ପ୍ରାପ୍ତ ହୋଇଥିବା ଯାବତୀୟ ଦ୍ରବ୍ୟାଦି ଅର୍ପଣ କରିବାର ନିର୍ବୋଧପଣ-ମୂଳକ କାର୍ଯ୍ୟଟା କେଡ଼େ ଅପମାନ ସୂଚକ ହୋଇନଥିବ ସତେ !୨୪ ଈଶ୍ୱର ମଣିଷକୁ ଅନନ୍ତକାଳ ପର୍ଯ୍ୟନ୍ତ ତା'ର ସମସ୍ତ ଆବଶ୍ୟକତା ପୂରଣ କରିବାର ସାମର୍ଥ୍ୟଯୁକ୍ତ ବିଶ୍ୱଟିଏ ଦେଇଛନ୍ତି, କିନ୍ତୁ ଲୋଭୀ ମଣିଷ ସେଥିରେ ବା ତାକୁ ବିନିଯୋଗ କରି ନୂଆ କିଛି ତ ସୃଜି ପାରିଲା ନାହିଁ; ବରଂ ମୋରମୋର-ଚିତ୍କାରପଣର ବୀଜ ବୁଣି ଅହଂକାର ରୂପକ ପ୍ରଚୁରଫଳ ଫଳାଇଛି ଏବଂ ଅତି ଯତ୍ନସହକାରେ ସାଇତି ରଖିଛି ଗୋପନୀୟ ଭାବରେ, ହୃଦୟ ଭିତରେ । କବି ଗଙ୍ଗାଧର ତାକୁ ଆବିଷ୍କାର କରିଛନ୍ତି ନିହାତି ନିଜସ୍ୱ ସମ୍ପତ୍ତି ଭାବରେ ଏବଂ ବିଶ୍ୱ-ସମ୍ରାଟଙ୍କ ଚରଣରେ ଅର୍ପଣ କରି ଆଧ୍ୟାତ୍ମିକ ସୌନ୍ଦର୍ଯ୍ୟକୁ ଅର୍ଥପ୍ରଦାନ କରିଛନ୍ତି –

"ମୁଁ କାର ମାତର ମୋର ନୁହେଁ ବୋଲି କହିବାକୁ ନାହିଁ ବାଟ,
ଦୂରୁ ଶ୍ରୀ ଚରଣେ ଅର୍ପଣ କରୁଛି ଘେନ ତା ବିଶ୍ୱ-ସମ୍ରାଟ ।"**୨୫**

ଉଚ୍ଚବଂଶରେ ଜନ୍ମ ହେବା, ଖୁବ୍ ଧନଧାନ୍ୟର ଅଧିକାରୀ ହେବା, ଜ୍ଞାନ ବା ପାଣ୍ଡିତ୍ୟ ଅର୍ଜନ କରିବା, ଅତ୍ୟନ୍ତ ସୌନ୍ଦର୍ଯ୍ୟର ଅଧିକାରୀ ହେବା - ଏସବୁ ପୂର୍ବାର୍ଜିତ ପୁଣ୍ୟକର୍ମ ବା ସୁକୃତିର ଫଳ ହୋଇପାରେ ଏବଂ ଏହା ବ୍ୟକ୍ତିକୁ ଖୁବବଡ଼ ହୋଇଯାଇଥିବାର ମିଥ୍ୟାନୁଭବ କରାଇ ଅହଙ୍କାରର ବଶବର୍ତ୍ତୀ ମଧ କରାଇପାରେ। କିନ୍ତୁ ଏସବୁ ପୁଣ୍ୟକର୍ମର ଫଳ ବିଶ୍ୱଜୀବନଙ୍କ କୃପା ଏବଂ ତାଙ୍କର ପ୍ରେମମୟୀ ସେବାରେ ନିଯୁକ୍ତ ହେବା ନିମିତ୍ତ ପର୍ଯ୍ୟାପ୍ତ ନୁହେଁ। କବିଙ୍କ ବିଚାରରେ ଅହଂକାରଯୁକ୍ତ ମଣିଷ କେବଳ ଆଧ୍ୟାତ୍ମିକ ଦୃଷ୍ଟିରୁ ନୁହେଁ ସବୁଦୃଷ୍ଟିରୁ ସୌନ୍ଦର୍ଯ୍ୟ-ଶୂନ୍ୟ ହୋଇଥାଏ । ଈଶ୍ୱର ସୌନ୍ଦର୍ଯ୍ୟସାରସର୍ବସ୍ୱ; ସୌନ୍ଦର୍ଯ୍ୟସାରଶୂନ୍ୟ ସ୍ଥାନରେ ସୌନ୍ଦର୍ଯ୍ୟ-ଦେବୀଙ୍କ ନିବାସ ଆଧ୍ୟାତ୍ମିକ-ପ୍ରକୃତି-ନିୟମର ବିରୁଦ୍ଧ ଅଟେ। ତେଣୁ ହୃଦୟ-ଗୃହରୁ ଅହଂଭାବ ରୂପକ ଗବାକ୍ଷ ନଭାଙ୍ଗିଲେ ବିଶ୍ୱାତ୍ମାରୂପୀ ବିଶ୍ୱସମ୍ରାଟଙ୍କ ସୌନ୍ଦର୍ଯ୍ୟାବଲୋକନ ସମ୍ଭବ ହୁଏନାହିଁ। ଭୌତିକ ସ୍ଥିତି ଯେ କିପ୍ରକାର ଦୁଃଖଦାୟକ ଓ ଅସୁବିଧାଜନକ, ଏକ ବୁଦ୍ଧିମାନ୍ ବ୍ୟକ୍ତି ତାହା ନିର୍ଦ୍ଧାରଣ କରିପାରେ ଏବଂ ସେ ଏଥିନିମିତ୍ତ ଜିଜ୍ଞାସା କରିବାକୁ ଆରମ୍ଭ କରେ ଯେ ସେ କ'ଣ, ସେ କାହିଁକି ତ୍ରିତାପରେ ଦଗ୍ଧୀଭୂତ ହେଉଛି, ଦୁଃଖ ପାଉଛି, କିପରି ଦୁଃଖରୁ ମୁକ୍ତି ଲାଭ କରିପାରିବ । କବି ଗଙ୍ଗାଧରଙ୍କ ବିଚାରରେ ଆତ୍ମସମୀକ୍ଷା କରି ଏକ ଅତ୍ୟନ୍ତ ବୁଦ୍ଧିମାନ୍ ବ୍ୟକ୍ତି ଆତ୍ମାନୁଭୂତି ଲାଭ ମାର୍ଗରେ ଗତି କରିପାରିବ ଏବଂ ଉନ୍ନତ ଜୀବନଧାରା ଅନୁସରଣ କରିପାରିବ। ଆତ୍ମଜ୍ଞାନ ଉଦୟ ପରେ ବଦ୍ଧଜୀବର ବିଷୟଭୋଗ ପ୍ରତି ଯେଉଁ ଆସକ୍ତି ଅଛି, ତାହା ଶିଥିଳ ହେବ ଏବଂ ଏହିପରିଭାବରେ କ୍ରମଶଃ ସେ ମାୟା ଓ ମିଥ୍ୟା-ଅହଂକାର କବଳରୁ ମୁକ୍ତ ହୋଇ ପ୍ରକୃତ ଜୀବ-ସଚ୍ଚିଦାନନ୍ଦମୟ ଜୀବନ ସ୍ତରକୁ ଉନ୍ନୀତ ହେବ। ଏହାହିଁ ଭକ୍ତି କବିତାର ନାନ୍ଦନିକ ସ୍ୱରୂପ।

ଈଶ୍ୱର ଭାବମୟ ହୋଇଥିବା ହେତୁ ଭାବର ଅଭାବିପଣ ଭିତରେ ଐଶ୍ୱରିକସତ୍ତାର ଉପଲବ୍ଧି କରାଯାଇ ନପାରେ। ଆତ୍ମମୟ ପରମାତ୍ମାଙ୍କ ଅନୁଭବ କେବଳ ଅନ୍ତରାତ୍ମାରେ କରାଯାଇପାରିବ। ସୃଷ୍ଟିର କୋଣ ଅନୁକୋଣରେ ଈଶ୍ୱରଙ୍କ ନିବାସ। ଈଶ୍ୱରଙ୍କ ମଙ୍ଗଳବିଧାନ ଉପରେ ବିଶ୍ୱାସୀ ବ୍ୟକ୍ତିସତ୍ତା ଯେତେବେଳେ ଆତ୍ମଚେତନଶୀଳ ହୁଏ, ସେତେବେଳେ ସେ ସମସ୍ତ ଭୌତିକ କାମନାରୁ/ ରଜ ଓ ତମୋଗୁଣରୁ ମୁକ୍ତ ହୋଇ ସତ୍ତ୍ୱଗୁଣରେ ଅବସ୍ଥାନ କରେ। ଏହି ସ୍ଥିତିରେ ବିଭୁଚେତନାମଗ୍ନ ଜୀବସତ୍ତା ଜଳ,ସ୍ଥଳ,ନଭ ସର୍ବତ୍ର ବିଭୁସତ୍ତା ଉପଲବ୍ଧି କରି ଆନନ୍ଦିତ ହୁଏ।

"ଉଭୟ ପାର୍ଶ୍ୱରେ ଶୁଭ୍ର ବେନୀନଦୀ /ଦିଶନ୍ତି ଯେସନେ ଚିତା-ରାମାନନ୍ଦୀ।
ଜୀବବ୍ରହ୍ମ ପ୍ରାୟେ ତଟିନୀଯୁଗଳ/ କେତେ ଦୂରୁ ବହିଆସି ଅନର୍ଗଳ ।

ଏକ ହୋଇ ଏହି ପବିତ୍ର ଧାମରେ / ଅଭିଖ୍ୟାତ ହେଲେ ବ୍ରାହ୍ମଣୀ ନାମରେ ।"**୨୬**

ସବୁଠି ଆଧ୍ୟାତ୍ମିକ ଚେତନାର ନିବାସ, ସୃଷ୍ଟିର କୋଣ ଅନୁକୋଣରେ ଏହାର ବିକାଶ। ଆତ୍ମା-ପରମାତ୍ମା ମିଳନର ମହାନୁଭବ ହିଁ ମହାରାସ। କବି ଆଧ୍ୟାତ୍ମିକ କ୍ଷେତ୍ର ବେଦବ୍ୟାସ ଠାରେ ପ୍ରବାହିତ ଶଙ୍ଖ ଓ କୋଇଲି ନଦୀଦ୍ୱୟର ସଂଗମ ଓ ପବିତ୍ର ବ୍ରାହ୍ମଣୀ ନଦୀର ଉତ୍ପତ୍ତି ସ୍ଥଳରେ  ଆତ୍ମାପରମାତ୍ମା ମିଳନର ମଧୁମୟ ପରିକଳ୍ପନା ମାଧ୍ୟମରେ ଆଧ୍ୟାତ୍ମିକ ସୌନ୍ଦର୍ଯ୍ୟର ମହାଭାବ ସୃଷ୍ଟି କରିଛନ୍ତି।

### 2.5. ପ୍ରକୃତି-ସୌନ୍ଦର୍ଯ୍ୟ/ Nature and Beauty:

ସୌନ୍ଦର୍ଯ୍ୟଶାସ୍ତ୍ର ବିଶାରଦ ଫିଲିପ୍ ସିଡନିଙ୍କ ବିଚାରରେ ଦୃଶ୍ୟମାନ ବାସ୍ତବ ପ୍ରକୃତି ଓ କବିକଳ୍ପନା ନିର୍ମିତ ପ୍ରକୃତି ଭିନ୍ନ ହୋଇଥାଏ। ସାଧାରଣ ଦୃଷ୍ଟିରେ ବାସ୍ତବ ପ୍ରକୃତି କେବଳ ଶିଳା,ସ୍ରୋତ,କାନନର ମୂକ ଓ ଜଡ଼ ସମଷ୍ଟି ଠାରୁ ଅଧିକ କିଛି ହୋଇନପାରେ। କିନ୍ତୁ କବି ମାଘ,ରବୀନ୍ଦ୍ରନାଥ,ରାଧାନାଥ, ଫିଲିପ ସିଡନି ପ୍ରମୁଖ ପ୍ରକୃତି ଠାରେ ନିତ୍ୟସୌନ୍ଦର୍ଯ୍ୟ ଆବିଷ୍କାର କରି କବିମାନସସୃଷ୍ଟ ପ୍ରକୃତି ଓ ବାସ୍ତବ ପ୍ରକୃତି ମଧ୍ୟରେ ପାର୍ଥକ୍ୟ ଦେଖାଇ କବିକଳ୍ପନାଜାତ ପ୍ରକୃତି ବିଶୁଦ୍ଧ ଆନନ୍ଦ ଦାୟକ ହୋଇଥିବାର ପ୍ରକାଶ କରିଛନ୍ତି। ଏହି ରୀତିରେ ଓଡ଼ିଆ ସାହିତ୍ୟରେ ଯେଉଁ ପ୍ରକୃତି ଗଙ୍ଗାଧରଙ୍କ ପୂର୍ବରୁ ପ୍ରାଣଶୂନ୍ୟ କୌଣସି ପଥରର ମୂର୍ତ୍ତି ସଦୃଶ ଥିଲା ତାହା ଗଙ୍ଗାଧରଙ୍କ କୁହୁକତୁଳି ସ୍ପର୍ଶରେ ଜୀବନ୍ତ,ବାଙ୍ମୟ ଓ ମାନବୀୟ-ସଂବେଦନଶୀଳ ହୋଇଛି। ଏହାର ମାର୍ମିକ ଉପଲବ୍ଧି ଗଙ୍ଗାଧରଙ୍କ ଭାଷାରେ ଅତି ହୃଦୟସ୍ପର୍ଶୀ –

"ଜଗତକୁ ଯେଉଁ ପଦାର୍ଥ ଅସାର/ ନିଜ ପ୍ରାଣ ତୋଷୁ କରି ତାହା ଆହାର ।

ସ୍ୱାଦୁ ଫଳ ଦେଇ ତୋଷୁ ପର ପ୍ରାଣ/ ରୋପଣେ ଛେଦାନେ ନାହିଁ ଭିନେ ଜ୍ଞାନ ।

ପ୍ରତି ଉପକାରେ ନୋହି ସ୍ପୃହାବାନ / ପର ଉପକାରେ କରୁ ତନୁଦାନ ।

ସ୍ଥାବର ହୋଇ ତୁ ଭାଗବତ-ଧର୍ମ / ଅବଲମ୍ବନରେ କରୁ ପୁଣ୍ୟ କର୍ମ ।"୨୬

ପ୍ରକୃତି ସୌନ୍ଦର୍ଯ୍ୟ ସମ୍ପର୍କରେ ଏହିପରି ଉଚ୍ଚ ଧାରଣା କବିଙ୍କର ସମସ୍ତ ପ୍ରକୃତିମୂଳକ କାବ୍ୟକବିତାରେ କାର୍ଯ୍ୟକାରଣ-ସମ୍ବନ୍ଧ ସୂତ୍ରରେ ଅତି ଉଦାରସ୍ୱର-ସୌନ୍ଦର୍ଯ୍ୟ ଅନୁସାରୀ ହୋଇ ପ୍ରକାଶିତ ହୋଇଛି। ସାମାଜିକ ଜୀବନର ତଥାକଥିତ ସଭ୍ୟମଣିଷର ଦୃଷ୍ଟିରେ ଧୂସର ଓ ଧୂଳୀମୟ ମନେହେଉଥିବା ମାଟିରେ ଏବଂ ନଗଣ୍ୟକର୍ମ ମନେହେଉଥିବା କୃଷିରେ ସୁଦ୍ଧା ସୌନ୍ଦର୍ଯ୍ୟଦର୍ଶୀ କବି ମାଟିର ସୁଗନ୍ଧ ଓ କୃଷିକ୍ଷେତର ସୌନ୍ଦର୍ଯ୍ୟ ଉପଲବ୍ଧି କରି ମହାନୁଭବର ପ୍ରେରଣା ସୃଷ୍ଟି କରିଛନ୍ତି।୨୮

### 2.6. ନୈତିକତା ଓ ସୌନ୍ଦର୍ଯ୍ୟ / Morality and beauty:

ରୁଚି,ନୀତି ଓ ଆଦର୍ଶ ସାମାଜିକ-ସାଂସ୍କୃତିକ ଜୀବନବୋଧର ଭାବ ଓ ଅନୁଭୂତି ଗଙ୍ଗାଧରଙ୍କ କାବ୍ୟମାନସକୁ ତାତ୍ପର୍ଯ୍ୟପୂର୍ଣ୍ଣ କରିଛି। ଏହାମଧ୍ୟ ଭାରତୀୟ ଜୀବନଦର୍ଶନର ମୂଳ ଆଧାର । ଏଗୁଡ଼ିକ ନୀତିଦିନିଆ ଜୀବନରେ ଛୋଟଛୋଟ ମନେହେଉଥିବା ମହତ ବିଷୟ । ଏସବୁ ଚରିତ୍ରଗଠନର ଓ ସଭ୍ୟତା ଶିକ୍ଷାର ଭିତ୍ତିଶୀଳା। ଭାରତବର୍ଷର ସବୁଠାରୁ ଅସଭ୍ୟ,ଅସମାଜିକତତ୍ତ୍ୱ ଯଦି କେହି କେଉଁଠି ଥାଏ ତେବେ ତା'ର ପରିବାରରେ ମଧ୍ୟ ସର୍ବନିମ୍ନ ସଭ୍ୟତା,ନୀତି ଓ ଆଦର୍ଶ ବୋଲି କିଛିଗୋଟେ ମୂଲ୍ୟବୋଧ ଯେ ରହିନଥିବ ଏହାକୁ ଅସ୍ୱୀକାର କରାଯାଇ ନପାରେ । ମାନବୀୟ ମୂଲ୍ୟବୋଧର ଏହିସବୁ ପରିମାପକରୁ ଜାତ ସୌନ୍ଦର୍ଯ୍ୟ ନୀତିବାଦୀ ଦାର୍ଶନିକ ରସ୍କିନଙ୍କୁ ପ୍ରଭାବିତ କରିଥିବା ପରି ରୁଚି ଓ ନୀତିରେ ବିଶ୍ୱାସୀ ଗଙ୍ଗାଧରଙ୍କ କବିତାରେ ମଧ୍ୟ ଚମତ୍କାର ଅର୍ଥଯୁକ୍ତ ହୋଇ ସୌନ୍ଦର୍ଯ୍ୟ ସୃଷ୍ଟିରେ ହାୟକ ହୋଇଛି- 'ଚନ୍ଦ୍ର ରଜନୀ' କବିତାରେ। ସୂର୍ଯ୍ୟ ଓ ଚନ୍ଦ୍ର ପ୍ରତି ମନୁଷ୍ୟର ଅନୁରାଗ ପ୍ରବୃତ୍ତିଗତ। ପୂର୍ଣ୍ଣିମାର ପୂର୍ଣ୍ଣଚନ୍ଦ୍ର-ସଂପ୍ରୀତି ଲୋକଜୀବନରେ ବେଶ ଆଦରଣୀୟ ଓ ପ୍ରଭାବଶାଳୀ। ପ୍ରକୃତିର ନିୟମାନୁସାରେ କିନ୍ତୁ ଅମାବାସ୍ୟା ତିଥିରେ ଚନ୍ଦ୍ର ଓ ସୂର୍ଯ୍ୟ ଗୋଟିଏ ସ୍ଥାନରେ ଅବସ୍ଥାନ କରୁଥିବା ହେତୁ ଚନ୍ଦ୍ର ଦୃଶ୍ୟମାନ ହୁଏନାହିଁ । କଳ୍ପନା ବଳରେ କବି ଗଙ୍ଗାଧର ଏହାକୁ ଚନ୍ଦ୍ରର ପରଗୃହେ ଅବସ୍ଥାନ କରିବାର ପରିଣାମ ସ୍ୱରୂପ ଅପଯଶ ଅର୍ଜନ ରୂପେ ଚିତ୍ରିତ କରି ସାମୂହିକ ଭାବମାନସ ନିର୍ମାଣ ଜନିତ ନୈତିକ ପ୍ରେରଣାର ସୌନ୍ଦର୍ଯ୍ୟ ସୃଷ୍ଟି କରିଛନ୍ତି।

"ଯେଡ଼େ ଲୋକ ହେଉ କଲେ ପରଗୃହେ ବାସ
ନିଜ ଗୁଣ ଯଶ ସବୁ ହୋଇଯାଏ ହ୍ରାସ।"୨୯

ଅତି ଚମତ୍କାର ଭାବରେ କବି ଭାରତୀୟ ଜନମାନସରେ ପ୍ରଚଳିତ ନୈତିକ-ବିଶ୍ୱାସ ସହିତ ବୈଜ୍ଞାନିକ ସତ୍ୟର ସମନ୍ୱୟ ଘଟାଇ ପ୍ରକରଣ-କୌଶଳରେ ଅଭିନବତ୍ୱ ପ୍ରତିପାଦନ କରିଛନ୍ତି। "ବିଜ୍ଞାନର ସତ୍ୟକୁ ପରୀକ୍ଷାକରି,ବୁଝି ଗ୍ରହଣ କରାଯାଇଥାଏ,ମାତ୍ର କଳାର ସୌନ୍ଦର୍ଯ୍ୟ ଆତ୍ମିକଅବବୋଧ । ଏହାକୁ ପରୀକ୍ଷା କରାଯାଏ ନାହିଁ କିମ୍ବା ଉପଯୋଗିତାର ମାନଦଣ୍ଡରେ ବିଚାର କରାଯାଇପାରେ ନାହିଁ। ଭଲ ପାଇବାରୁ ଏହାର ସୃଷ୍ଟି। ଏହାର ଦାନ ଆତ୍ମିକ ଆନନ୍ଦ।+++ପ୍ରକୃତିର ବିବିଧ ରୂପାୟନ,ତା'ର ଆକାର,ରଙ୍ଗ,ଶବ୍ଦ ଓ ଛନ୍ଦକୁ ଶିଳ୍ପୀ ନିଜର କରି ତହିଁରୁ ସୌନ୍ଦର୍ଯ୍ୟ ସୃଷ୍ଟିକରେ ।"୩୦ ପ୍ରକୃତି ଓ ନୀତି ଁ ବ୍ୟକ୍ତିର ପଥପ୍ରଦର୍ଶକ ରୂପେ କାର୍ଯ୍ୟ କରିଥାଏ। ନୀତିପ୍ରଦର୍ଶିତ ମାର୍ଗରେ ଅଗ୍ରସର ହୋଇ ସିଧାବାଟରେ ଚାଲିବା ସହଜ ହୁଏ। କବିଙ୍କ ବିଚାରରେ ପ୍ରତିଟି ମାନବୀୟ ଆଚରଣ ଓ ଉଚ୍ଚାରଣ ନୈତିକ ମୂଲ୍ୟବୋଧର ଅଭିବୃଦ୍ଧି ପ୍ରତି ପ୍ରତିଶୃତିବଦ୍ଧ ରହିବା ଉଚିତ। ଏହି ମାର୍ଗରେ ବିଶ୍ୱାସୀ-ପଥିକ ଯାବତୀୟ ଲାଳସା ତଥା ଅଭୀପ୍ସା ସମୂହକୁ ମର୍ଯ୍ୟାଦାସମ୍ପନ୍ନ କରି ରଖିବାରେ ସୌନ୍ଦର୍ଯ୍ୟ ଓ ଆନନ୍ଦ ଉପଲବ୍ଧି କରିଥାଏ।

ବହୁଜନସୁଖ, ବହୁଜନହିତ ଓ ଶୁଭଚିନ୍ତନର ମାନବୀୟ ହୃଦୟ ସହିତ ଆତ୍ମିକ ସଂଯୋଗ ରହିଛି। ତେଣୁ ଉଦାରତା, ଦାନଶୀଳତା, ସତ୍ୟଶୀଳତା ଆଦିର ଆଚରଣରେ ମନ ଉଲ୍ଲସିତ ହୁଏ। କିନ୍ତୁ ଏଥିନିମିତ୍ତ ପ୍ରମୁଖ ଅନ୍ତରାୟଟିଏ ରହିଛି – ଧନ ଓ ଲାଳସା। ଧନ ଲୋଭର ଜନକ ଏବଂ ଲୋଭ ହିଁ ସମସ୍ତ ନୈତିକ-ସୌନ୍ଦର୍ଯ୍ୟବୋଧର ବିନାଶକ। ନୀତିଜ୍ଞ ଓ

ଦାୟବଦ୍ଧ ବ୍ୟକ୍ତି ଧନକୁ ଧର୍ମପାଳନ ଓ କର୍ତ୍ତବ୍ୟକର୍ମ ସମ୍ପାଦନ ଠାରୁ ବଡ଼କରି ଦେଖେ ନାହିଁ। ସାମାନ୍ୟ ପ୍ରଲୋଭନରେ ଯଦି ଜଣେ ସହଜରେ ଭାସିଯିବ, ତେବେ ପ୍ରଲୋଭନର ପ୍ରଚଣ୍ଡ ବନ୍ୟାରେ ତିଷ୍ଠି ରହିବା ତା ପାଇଁ ଅତିକଷ୍ଟସାଧ୍ୟ ହୋଇପଡିବ । ତେଣୁ କବି ଗଙ୍ଗାଧରଙ୍କ ଭାବନାରେ ଧନକୁ ସତ୍ୟ ସହିତ ତୁଳନୀୟ ନୁହେଁ ମଣୁଥିବା ବ୍ୟକ୍ତିନିକଟରୁ ନୈତିକମୂଲ୍ୟବୋଧ ଆଶା କରାଯାଇପାରେ।

"ଲୋଭର ଜନକ ଧନ, ଧନକୁ ଯେ ଛାର / ମଣନ୍ତି, ସେ କରିଥାନ୍ତି ନିର୍ମଳ ବିଚାର ।

ଧରମର ଆଧିପତ୍ୟ ରହିଲେ ସମାଜେ / ସମୃଦ୍ଧି ଉନ୍ମୁଖି ହେବ ଭାରତ-ସାମ୍ରାଜ୍ୟେ ।"**୩୧**

ରାଷ୍ଟ୍ର ନିର୍ମାଣର ସ୍ୱପ୍ନ ଅର୍ଥଲୋଭୀର ବିଳାସ ଦ୍ୱାରା ନୁହେଁ, ନିର୍ମଳ ବିଚାରରେ ବିଶ୍ୱାସ କରୁଥିବା ନୀତିବାନ ପ୍ରତିନିଧିଙ୍କ ପ୍ରତିନିଧିତ୍ୱରେ ସମ୍ଭବ ହୋଇଥାଏ।

### 2.7. ଉଦାତ୍ତ ଓ ସୌନ୍ଦର୍ଯ୍ୟ / Sublimation and beauty:

ଉଦାତ୍ତ ଭାବନା ଦ୍ୱାରା ଆତ୍ମାର ବିରାଟୀକରଣ ସାଧିତ ହୁଏ। ପ୍ରକୃତି-ସୌନ୍ଦର୍ଯ୍ୟରେ ନିହିତ ହୃଦୟ-ବିସ୍ମୃତି ଗୁଣ ଏହି ଉଦାତ୍ତ ଭାବନାର ହେତୁ। ବିରାଟ ଦର୍ଶନ ଓ ମନନରୁ ଜାତ ବିସ୍ମୟ,ଭୟ ଓ ହର୍ଷୋତ୍ଫୁଲତା ଉଦାତ୍ତ ବିଚାରର ଲକ୍ଷଣ। ଲଞ୍ଜାଇନସ୍ ,ଏଡ୍ମଣ୍ଡ୍ ବର୍କ୍, ଇମାନୁଏଲ୍ କାଣ୍ଟ୍, ବ୍ରାଡ୍ଲେ- ପ୍ରମୁଖ ଉଦାତ୍ତ ଭାବନକୁ ସୌନ୍ଦର୍ଯ୍ୟଶାସ୍ତ୍ରର ପରିସରଭୁକ୍ତ କରିଛନ୍ତି। ମନଭିତରେ ଲୀନହୋଇଥିବା ଦୃଶ୍ୟରୂପର ସମଷ୍ଟିଭୂତ-ବିରାଟ-ଅନୁଭୂତି ଧ୍ୟାନରୂପରେ ପୁନଃଉତ୍ପାଦିତ ହେବା ଦ୍ୱାରା ତା'ର ସ୍ମରଣରେ ଚିତ୍ତ ଆହ୍ଲାଦିତ ହୁଏ। କବି ଗଙ୍ଗାଧର ପଶ୍ଚିମ ଓଡ଼ିଶାର ନୃସିଂହନାଥ, ହରିଶଙ୍କର ଆଦି ଭୟମିଶ୍ରିତ ଆନନ୍ଦପ୍ରଦ ସ୍ଥାନବିଶେଷର ବିଶାଳତା ନିକଟରେ ନତମସ୍ତକ ହୋଇ ଭୟ,କ୍ଷଭ,ବିସ୍ମୟରେ ପ୍ରତ୍ୟାବର୍ତ୍ତନ କରିଥିବା ପ୍ରତ୍ୟକ୍ଷରୂପର କଳ୍ପରୂପଟି ଉଦାତ୍ତ ହୋଇଛି। ତାହା ଏହିପରି-

"ନ ପାରିଲା ପଶି ନୃସିଂହନାଥରେ/ ଗ୍ରୀଷ୍ମକାଳେ ଯହିଁ ଶୀତେ ତନୁ ଥରେ।
ଦୂରାରୋହ ଗିରି ଚଢିବାକୁ ଡର/ ଅତିଥି-ବିଶେଷେ ଧରେ ପୁଣି ଜ୍ୱର।
କରିବାକୁ ଡରି ଗିରି ବିଚରଣ/ ଦୂରୁ ପ୍ରଣମିଲା ନୃସିଂହ ଚରଣ।
ପ୍ରଣମିଲା ହରିଶଙ୍କର ପୟରେ/ ବାହୁଡ଼ି ଆସିଲା କ୍ଷୋଭ ବିସ୍ମୟରେ ।"**୩୨**

ସୃଷ୍ଟିର ଅତି ଅଦ୍ଭୁତ ଓ ବିରାଟ ପ୍ରାକୃତିକ ଦୃଶ୍ୟରେ କବିଚିତ୍ତ ବିସ୍ମୟାଭିଭୂତ ହୋଇ ପ୍ରଣିପାତ କରିବା ଉଚିତ ମନେକରିଛି। ଏହିପରି ଅବସ୍ଥାରେ ମୁଁ ଅଛି- ଏହି ଜ୍ଞାନ କିଛିକ୍ଷଣ ପାଇଁ ଅପସରି ଯାଏ, ମୋଠାରୁ ଶ୍ରେଷ୍ଠ କିଛି ନାହିଁ- ଆଦି ଧାରଣା ମଧ୍ୟ ଭ୍ରାନ୍ତ ପ୍ରତୀତ ହୁଏ।**୩୩** ଏହି ରୀତିରେ ଆତ୍ମା ବା ବ୍ୟକ୍ତିର ହୃଦୟ ସମସ୍ତ ପ୍ରକାର ସଙ୍କୀର୍ଣ୍ଣତାର ବଳୟରୁ ସ୍ୱତଃ ମୁକ୍ତ ହୋଇ ମହାନତାର ଉପଲବ୍ଧି ସ୍ତରର ଉଚ୍ଚତାକୁ ଉନ୍ନୀତ ହୁଏ।

## 3. ଉପସଂହାର/ Conclusion:

ସୌନ୍ଦର୍ଯ୍ୟତତ୍ତ୍ୱ କବିର ପ୍ରତିଭା ଓ ଶକ୍ତିଶାଳୀ କବିତ୍ୱ ସହିତ ସମ୍ବନ୍ଧିତ। ଉଚ୍ଚାଙ୍ଗ ଅନୁଭୂତି ଓ କବିକଳ୍ପନାର ଚମତ୍କାରୀ-ସମନ୍ୱୟରୁ କାବ୍ୟକବିତାରେ ସୌନ୍ଦର୍ଯ୍ୟବୋଧ(Aesthetic) ପ୍ରକାଶିତ ହୁଏ। କାବ୍ୟ-ସୃଜନ କ୍ଷେତ୍ରରେ କବିପ୍ରତିଭା ଓ ଶିଳ୍ପଗୌରବର ଅବକ୍ଷୟ ଘଟିଲେ ବା ବିକ୍ଷିପ୍ତ ହେଲେ ସୌନ୍ଦର୍ଯ୍ୟତତ୍ତ୍ୱ ସୌନ୍ଦର୍ଯ୍ୟବାଦୀ-ବଳୟଭୁକ୍ତ ହୁଏ। ସୌନ୍ଦର୍ଯ୍ୟବାଦରେ ସୌନ୍ଦର୍ଯ୍ୟସୃଷ୍ଟି ବ୍ୟତୀତ କାବ୍ୟ-କବିତାର ଅନ୍ୟକୌଣସି କ୍ରିୟା ନାହିଁ। ସୌନ୍ଦର୍ଯ୍ୟ-ଚେତନା ଆନନ୍ଦମୟ-ଆକର୍ଷଣ। ଇନ୍ଦ୍ରିୟଲବ୍ଧ ଅନୁଭୂତି ଓ ମନୋଜ ଆବେଗ ସହିତ ଏହାର ସମ୍ପର୍କ ନିବିଡ଼। ସୌନ୍ଦର୍ଯ୍ୟବାଦୀ ସମାଲୋଚକମାନଙ୍କ ଦୃଷ୍ଟିରେ, କାବ୍ୟଜାତ-ସୌନ୍ଦର୍ଯ୍ୟ ବାସ୍ତବପ୍ରୟୋଜନହୀନ ବିଷୟ (All art is quite useless- Oscar Wilde) ବା ଏହି ସୌନ୍ଦର୍ଯ୍ୟର କୌଣସି ବାସ୍ତବ ପ୍ରୟୋଜନ ନାହିଁ(Purposiveness without purpose, Kant)। ଅପରପକ୍ଷରେ ବ୍ୟବହାରବାଦୀଙ୍କ ମତରେ ସାହିତ୍ୟ ବା କାବ୍ୟକବିତାର ପ୍ରଧାନକାର୍ଯ୍ୟ ହେଉଛି ମଣିଷର ପ୍ରୟୋଜନରେ ଲାଗିବା। ବିଶିଷ୍ଟ ଦାର୍ଶନିକ କ୍ରୋଚେ ପ୍ରକାଶ କରିଛନ୍ତି, ସୌନ୍ଦର୍ଯ୍ୟ-ଚେତନା ଆତ୍ମପ୍ରକାଶକ୍ଷମ ଓ ସଂକ୍ରାମକ ହୋଇଥିବା କାରଣରୁ କାବ୍ୟରେ ସ୍ପୃର୍ତ୍ତିଲାଭ କରୁଥିବା ସୌନ୍ଦର୍ଯ୍ୟ ପାଠକ ମନରେ ସଂକ୍ରମିତ ହୁଏ। ଏହି ସଂକ୍ରମିତ ସୌନ୍ଦର୍ଯ୍ୟାନୁଭୂତି ଦ୍ୱାରା ପାଠକ ନିୟନ୍ତ୍ରିତ ହୁଏ।

ସାହିତ୍ୟ ଜୀବନର କଥା କହେ । ଜୀବନ ସରଳରେଖା ନୁହେଁ! ଜୀବନକୁ ଉପଲବ୍ଧି କରି ଲେଖାଯାଇଥିବା ସାହିତ୍ୟ କାଳଜୟୀ ହୁଏ। ଯାବତୀୟ ଅବିଭକ୍ତସତ୍ତା ଭିତରେ ଏକ ପୂର୍ଣ୍ଣସତ୍ତାକୁ ଯିଏ ଦେଖେ ଓ ଭଲପାଏ ସିଏ ହିଁ ପ୍ରକୃତ ଭଲପାଇ ଜାଣେ । କବି ଗଙ୍ଗାଧରଙ୍କ ସାହିତ୍ୟରେ ଅନୁରୂପ କଥା ପ୍ରକାଶିତ; ଭଲପାଅ! ଜୀବନକୁ,ଜଗତକୁ,ବ୍ୟକ୍ତିକୁ,ବିଶ୍ୱକୁ,ମଣିଷକୁ,ରୁଚି,ନୀତି,ଆଦର୍ଶ ଓ ଭୂମିସଂଲଗ୍ନ ବାସ୍ତବତାକୁ; ସର୍ବୋପରି ପାରିପାର୍ଶ୍ୱିକ ସ୍ଥିତାବସ୍ଥାକୁ-ଭଲପାଅ! ଏହିପ୍ରକାର ଭାବରୂପକ ସମ୍ବେଦନାରୁ ଗଙ୍ଗାଧରଙ୍କ କାବ୍ୟକବିତା ସୁନ୍ଦର ଓ ମହିମ ହୋଇଛି। ଦର୍ଶନକୁ ନେଇ କବିତା ଲେଖାଯାଏ ନାହିଁ, କବିତା ଭିତରେ ଦର୍ଶନ ରୂପପାଏ। ଏହି ପରିମାପକରେ ଗଙ୍ଗାଧର-କାବ୍ୟମାନସ ବୈଚିତ୍ର୍ୟପୂର୍ଣ୍ଣ ହୋଇଥିବା ହେତୁ ତାହା ସୌନ୍ଦର୍ଯ୍ୟସୃଷ୍ଟିରେ ବାଧକ ନହୋଇ ସହାୟକ ହୋଇଛି।

**ପୃଷ୍ଠଟୀକା/ References :**


୧ – Bacon, Francis. "anything that conveys truth from the discoverer to his readers as clearly as a picture**.** The mind, he argued, is not like a wax tablet. On a tablet you cannot write the new till you rub out the old, on the mind you cannot rub out the old except by writing in the new.", *Francis Bacon and the Four Idols of the Mind*, Farnam Street. https://fs.blog/francis-bacon-four-idols-mind/#:~:text=Even%20with%20his%20rationalistic%20view,power%20narrative%20had%20to%20instruct dt. 7th December, 2024, 12: 01.

୨- କର, "ବାଉରୀବନ୍ଧୁ. ସମାଲୋଚନା ସ୍ତବକ", ପୃଷ୍ଠା – ୨୯.

୩- ଜେନା, ବୈରାଗୀ ଚରଣ. "ସୌନ୍ଦର୍ଯ୍ୟତତ୍ତ୍ୱ ଓ ଓଡ଼ିଆ କାବ୍ୟରେ ସୌନ୍ଦର୍ଯ୍ୟ-ଚେତନା", ପୃଷ୍ଠା-୩

୪- ତ୍ରିପାଠୀ, ସନ୍ତୋଷ. "ସଂଯୋଗ-ଅନୁବିଧି", ପୃଷ୍ଠା-୪୯.

୫- ମାଘ, "ଶିଶୁପାଳବଧମ୍", ୪/୧୭, ପୃଷ୍ଠା-୧୪୮.

୬- ସିଂହଦେବ, ବୀରମିତ୍ରୋଦୟ (ଅ) ୧୯୨୮, ମାଘ ବିରଚିତ "ଶିଶୁପାଳବଧ", ପୃଷ୍ଠା-୩୯.

୭- ମହାପାତ୍ର, ବାଲୁକେଶ୍ୱର (ଅ). "ପୁଣିପୁଣି ସେ ଶୈଳ ଦେଖି ଶ୍ରୀହରି, ବିସ୍ମୟେ ମଣୁଥିଲେ ଅପୂର୍ବ ପରି;/ ଯେତେ ଦେଖିଲେ ନୂଆ ଦିଶଇ ଯାହା,/ ଶୋଭା-ସଂସାରେ ତେତେ ସୁନ୍ଦର ତାହା।" ମାଘ ବିରଚିତ "ଶିଶୁପାଳବଧ", ଓଡ଼ିଶା ସାହିତ୍ୟ ଏକାଡେମୀ, ୧୯୬୪, ପୃଷ୍ଠା-୫୪.

୮ – ରାୟ, ରାଧାନାଥ. "କେତେଥର ଦେଖିଅଛି ଏହିମାନ /ମାତ୍ର ପ୍ରତିଥର ଦିଶେ ଆନଆନ/ ଦୃଷ୍ଟପୂର୍ବ ହୋଇ ଅପୂର୍ବ ପ୍ରତୀତି /ସୁନ୍ଦର ପଣର ଚିରନ୍ତନ ରୀତି/ ସୁନ୍ଦରେ ତୃପ୍ତିର ଅବସାଦ ନାହିଁ/ ଯେତେ ଦେଖିଲେହେଁ ନୂଆ ଦିଶୁଥାଇ।" ଚିଲିକା, କଟକ ଟ୍ରେଡିଙ୍ଗ କମ୍ପାନୀ, ସପ୍ତମ ସଂସ୍କରଣ, ୧୯୫୫, ପୃଷ୍ଠା-୧୨.

୯- "Aesthetics is generally understood to be Baumgarten's child." Tomáš Hlobil, Alexander Gottlieb Baumgarten. Ästhetik. Latin-German edition. Trans., preface, notes, indexes by Dagmar Mirbach. 2 vols (vol. 1, pp. LXXX, 1–595; vol. 2, pp. IX, 596–1305). Hamburg: Felix Meiner Verlag, 2007. Este tika: The Central European Journal of Aesthetics, XLVI/I, pp-105.

୧୦- Edward Bullough. "Psychical Distance" in Melvin Rader's A Modern Book of Esthetics, 5th edition., Holt, Rinehart and Winston, pp. 347-62.

୧୧- ଜେନା, ବୈରାଗୀ ଚରଣ. "ସୌନ୍ଦର୍ଯ୍ୟତତ୍ତ୍ୱ ଓ ଓଡ଼ିଆ କାବ୍ୟରେ ସୌନ୍ଦର୍ଯ୍ୟ-ଚେତନା", ପୃଷ୍ଠା-୫୧.

୧୨- ମେହେର, ଗଙ୍ଗାଧର. "ବିଜ୍ଞ ପାଠକବୃନ୍ଦ ଏଥିରୁ ମୋର କୃତିତ୍ୱକୁ ଲକ୍ଷ ନକରି ନିଜନିଜର ହୃଦୟସ୍ଥ ସୀତାଙ୍କର ଉଜ୍ଜ୍ୱଳ, ନିର୍ମଳ ଓ ପବିତ୍ର ଚରିତ୍ର-ଚିତ୍ରିତ ସ୍ମୃତିପଟକୁ ଥରେ ଉଦ୍‌ଘାଟନ କରି ନାରୀ-ହୃଦୟର ଉନ୍ନତିବିଧାନ କରିବେ।", ସପସ୍ୱିନୀ, ମୁଖବନ୍ଧ

୧୩- ସେନାପତି, ଫକୀର ମୋହନ. "ନିର୍ମଳ ଚରିତ୍ର ପୂତମନା ଯେ ମାନବ / ସ୍ୱର୍ଗୀୟ ସୁଷମା ସେଥି କରେ ଅନୁଭବ/ ବାଳକ-ଜୀବନଦାୟୀ ଅମୃତ ଭଣ୍ଡାର/ କଦର୍ଯ୍ୟ ନେତ୍ରରେ ତାହା ଦେଖେ ଦୁରାଚାର।" ପୁଷ୍ପମାଳା, ଫକୀର ମୋହନ ଗ୍ରନ୍ଥାବଳୀ,୧ମ ଖଣ୍ଡ, କଟକ ଷ୍ଟୁଡେନ୍ଟ ଷ୍ଟୋର, ଦ୍ୱିତୀୟ ସଂସ୍କରଣ,୧୯୬୩, ପୃଷ୍ଠା-୨୭୦.

୧୪- ମେହେର, ଗଙ୍ଗାଧର. "ତପସ୍ୱିନୀ,ଚତୁର୍ଥ ସର୍ଗ",ଗଙ୍ଗାଧର ଗ୍ରନ୍ଥାବଳୀ, ପୃଷ୍ଠା-୧୭.

୧୫- ମେହେର, ଗଙ୍ଗାଧର. "ତପସ୍ୱିନୀ,ଚତୁର୍ଥ ସର୍ଗ",ଗଙ୍ଗାଧର ଗ୍ରନ୍ଥାବଳୀ, ପୃଷ୍ଠା-୧୭-୧୮.

୧୬- ମେହେର, ଗଙ୍ଗାଧର. "ଯେ ଭାଙ୍ଗିବ ଧନୁ ତାକୁ ମୋ କର ଅର୍ପଣ/କରିବାକୁ ପିତା ମୋର କରିଥିଲେ ପଣ। / ମୁଁ ଭାବିଲି, ସେହି ଦିନ ପଣହେଲା ଶେଷ/ତପସ୍ୱିନୀ ହେବି ନେଇ ପିତାଙ୍କ ଆଦେଶ +++/ମନ ଥିବ ଏକେ, ଅନ୍ୟ ହେବ ଯେବେ ପତି/ ଜୀବନେ ମରଣେ ହେବ ଭୀଷଣ ଦୁର୍ଗତି।", ତପସ୍ୱିନୀ,ଷଷ୍ଠସର୍ଗ,ଗଙ୍ଗାଧର ଗ୍ରନ୍ଥାବଳୀ, ପୃଷ୍ଠା-୨୬.

୧୭- ମେହେର, ଗଙ୍ଗାଧର. ଇନ୍ଦୁମତି,ପୂର୍ବଭାଗ, ଗଙ୍ଗାଧର ଗ୍ରନ୍ଥାବଳୀ, ପୃଷ୍ଠା-୧୬୮.

୧୮- ଜେନା, ବୈରାଗୀ ଚରଣ. "ସୌନ୍ଦର୍ଯ୍ୟତତ୍ତ୍ୱ ଓ ଓଡ଼ିଆ କାବ୍ୟରେ ସୌନ୍ଦର୍ଯ୍ୟ-ଚେତନା",ପୃଷ୍ଠା-୧୦୨.

୧୯- ମେହେର, ଗଙ୍ଗାଧର. ପ୍ରଣୟ ବଲ୍ଲରୀ, ଗଙ୍ଗାଧର ଗ୍ରନ୍ଥାବଳୀ, ପୃଷ୍ଠା-୭୧.

୨୦- ଜେନା, ବୈରାଗୀ ଚରଣ. "ସୌନ୍ଦର୍ଯ୍ୟତତ୍ତ୍ୱ ଓ ଓଡ଼ିଆ କାବ୍ୟରେ ସୌନ୍ଦର୍ଯ୍ୟ-ଚେତନା", ପୃଷ୍ଠା-୨୨.

୨୧- ମେହେର, ଗଙ୍ଗାଧର. "ଦେଖିବାକୁ ଅଙ୍ଗଲାବଣ୍ୟ ନୃପଙ୍କୁ ନ ମିଳଇ ଅବସର / କିନ୍ତୁ ନତମୁଖୀ ବାମା ଦେଖୁଥାଏ ତାହାଙ୍କ ଚାରୁ ପୟର।", ପ୍ରଣୟ ବଲ୍ଲରୀ, ଗଙ୍ଗାଧର ଗ୍ରନ୍ଥାବଳୀ, ପୃଷ୍ଠା-୭୨.

୨୨- ମେହେର, ଗଙ୍ଗାଧର. "ପ୍ରଣୟ ବଲ୍ଲରୀ", ଗଙ୍ଗାଧର ଗ୍ରନ୍ଥାବଳୀ, ପୃଷ୍ଠା-୭୧.

୨୩- ମେହେର, ରଘୁନାଥ. "କୀଚକ ବଧ", ଗଙ୍ଗାଧର ଗ୍ରନ୍ଥାବଳୀ, ପୃଷ୍ଠା-୧୪୬.
୨୪- ମେହେର, ଗଙ୍ଗାଧର. "କିଦେଇ ପୂଜିବି ଯାହା ମୁଁ ଦେଖୁଛି ସବୁ ତୁମରି ପ୍ରସାଦ/ ଯାହା ପରସାଦ ତାକୁ ଅରପିଲେ ହେବାସିନା ଅପରାଧ।" ଭକ୍ତି,ଅର୍ଘ୍ୟଥାଳୀ,ଗଙ୍ଗାଧର ଗ୍ରନ୍ଥାବଳୀ,ପୃଷ୍ଠା-୨୫୯.
୨୫- ମେହେର, ଗଙ୍ଗାଧର. "ଭକ୍ତି,ଅର୍ଘ୍ୟଥାଳୀ",ଗଙ୍ଗାଧର ଗ୍ରନ୍ଥାବଳୀ, ପୃଷ୍ଠା-୨୫୯.
୨୬- ମେହେର, ଗଙ୍ଗାଧର. "ବେଦବ୍ୟାସ,କବିତାକଲ୍ଲୋଳ", ଗଙ୍ଗାଧର ଗ୍ରନ୍ଥାବଳୀ, ପୃଷ୍ଠା-୨୩୩.
୨୭- ମେହେର, ରଘୁନାଥ. "ତରୁବର", ଗଙ୍ଗାଧର ଗ୍ରନ୍ଥାବଳୀ, ପୃଷ୍ଠା-୩୬୨-୬୩.
୨୮- ମେହେର, ଗଙ୍ଗାଧର. "କୃଷି ସିନା ସଂସାରେ ସଭ୍ୟତାର ମୂଳ/ କୃଷି ଏକା ସକଳ ଜୀବିକାର ଚୂଳ/ ଯେଉଁକାଳେ ମାନବ ନଥିଲା ତା ଜାଣି/ ମାଂସ ଖାଇ ବନରେ, ମନରେ ହୋଇନଥିଲା ଜ୍ଞାନୀ ହେ।" କୃଷିର ଗୌରବ,କୃଷକ ସଙ୍ଗୀତ,ଗଙ୍ଗାଧର ଗ୍ରନ୍ଥାବଳୀ, ପୃଷ୍ଠା-୩୭୬.
୨୯- ମେହେର, ଗଙ୍ଗାଧର. "ଚନ୍ଦ୍ର ରଜନୀ/୧୬", ଗଙ୍ଗାଧର ଗ୍ରନ୍ଥାବଳୀ, ପୃଷ୍ଠା-୨୪୦.
୩୦- ବାରିକ, ସୌରୀନ୍ଦ୍ର. "ସାଂପ୍ରତିକ କାଳ ଓ ଚିରନ୍ତନ କବି", ପୃଷ୍ଠା-୧୩.
୩୧- ମେହେର, ଗଙ୍ଗାଧର. "ପଞ୍ଚାୟତ", ଅର୍ଘ୍ୟଥାଳୀ,ଗଙ୍ଗାଧର ଗ୍ରନ୍ଥାବଳୀ, ପୃଷ୍ଠା-୨୮୯.
୩୨- ମେହେର, ଗଙ୍ଗାଧର. "ବେଦବ୍ୟାସ", କବିତାକଲ୍ଲୋଳ, ଗଙ୍ଗାଧର ଗ୍ରନ୍ଥାବଳୀ, ପୃଷ୍ଠା-୨୩୨.
୩୩- ରାୟ, ରଥନାଥ. "ଭୀଷଣ,ବିରାଟ,ବିକଟ,ଉଦାର/ଦୃଶ୍ୟଦେଖି ହେଲା ବିସ୍ମୟ ଅପାର,/ ଚିତ୍ତବୃତ୍ତି ଗଲା ନିଜ ପଥ ହୁଡ଼ି/ସତ୍ତା ଗଲା ସେହି ମହାଭାବେ ବୁଡ଼ି,/ ଖର ସୌରକରେ ତାରକା ଯେସନ/ଅସ୍ମିତା ବିସ୍ମୟେ ହେଲା ନିମଗନ ।" ଚିଲିକା, ପୃଷ୍ଠା-୬-୭.

**ସହାୟକ ପୁସ୍ତକ/ Bibliography :**

**ଓଡ଼ିଆ/ Odia Books:**


- କର,ବାଉରୀବନ୍ଧୁ. ସମାଲୋଚନା ସ୍ତବକ, ଓଡ଼ିଶା ଲେଖକ ସମବାୟ ସମିତି ଲିଃ, ଭୁବନେଶ୍ୱର, ପ୍ରଥମ ପ୍ରକାଶ,୨୦୦୧.
- ଜେନା,ବୈରାଗୀଚରଣ, ସୌନ୍ଦର୍ଯ୍ୟ-ତତ୍ତ୍ୱ ଓ ଓଡ଼ିଆ କାବ୍ୟରେ ସୌନ୍ଦର୍ଯ୍ୟ-ଚେତନା, ଓଡ଼ିଶା ବୁକଷ୍ଟୋର୍, ପ୍ରଥମ °କରଣ,୧୯୯୨.
- ତ୍ରିପାଠୀ, ସନ୍ତୋଷ, ସଂଯୋଗ-ଅନୁବିଧି, ନାଳନ୍ଦା, ପ୍ରଥମ ସଂସ୍କରଣ, ୨୦୦୬.
- ଦାସ, ଦାଶରଥି, କାବ୍ୟସମ୍ବାଦ,ଫ୍ରେଣ୍ଡସ୍ ପବ୍ଲିଶର୍ସ୍, ପ୍ରଥମ ସଂସ୍କରଣ, ୧୯୭୩.
- ଫକୀର ମୋହନ ଗ୍ରନ୍ଥାବଳୀ,୧ମ ଖଣ୍ଡ, କଟକ ଷ୍ଟୁଡେନ୍ଟ୍ସ ଷ୍ଟୋର, ଦ୍ୱିତୀୟ ସଂସ୍କରଣ,୧୯୬୩.
- ବାରିକ, ସୌରୀନ୍ଦ୍ର, ସାଂପ୍ରତିକ କାଳ ଓ ଚିରନ୍ତନ କବି, ଗ୍ରନ୍ଥମନ୍ଦିର, ପ୍ରଥମ ସଂସ୍କରଣ, ୧୯୯୯.
- ମହାନ୍ତି, ଗିରିବାଳା, କାବ୍ୟିକ ସୌନ୍ଦର୍ଯ୍ୟ, କାହାଣୀ, ୧୯୯୮.
- ମାଘ, ଶିଶୁପାଳବଧମ୍(ସଂସ୍କୃତ), ଅନନ୍ତରାମ ଶାସ୍ତ୍ରୀ ବେତାଳ(ସମ୍ପାଦନା),ଜୟକୃଷ୍ଣ ଦାସ-ହରିଦାସ ଗୁପ୍ତା, ବିଦ୍ୟାବିଲାସ ପ୍ରେସ୍, ବନାରସ୍, ୧୯୨୯.
- ମାଘ, ଶିଶୁପାଳବଧ, ବୀରମିତ୍ରୋଦୟ ସିଂହଦେବ (ଅ), ସୋନପୁର ଷ୍ଟେଟ୍, ସମ୍ବଲପୁର, ଓଡ଼ିଶା, ୧୯୨୮.
- ମାଘ, ଶିଶୁପାଳବଧ, ବାଲୁକେଶ୍ୱର ମହାପାତ୍ର (ଅ), ଓଡ଼ିଶା ସାହିତ୍ୟ ଏକାଡେମୀ, ୧୯୬୪.
- ମେହେର,ଗଙ୍ଗାଧର,ଗଙ୍ଗାଧର ଗ୍ରନ୍ଥାବଳୀ,ଦାସ ବ୍ରୋଦର୍ସ, ବ୍ରହ୍ମପୁର,କଟକ,ସମ୍ବଲପୁର,୧୯୬୧.
- ମେହେର, ରଘୁନାଥ, ଗଙ୍ଗାଧର ଗ୍ରନ୍ଥାବଳୀ, ବିଦ୍ୟା ପ୍ରକାଶନ, ପଞ୍ଚମ ସଂସ୍କରଣ, ୨୦୨୨.
- ମେହେର, ରଘୁନାଥ, ଗଙ୍ଗାଧରଙ୍କ ସୌନ୍ଦର୍ଯ୍ୟ ଦୃଷ୍ଟି, ଏଥେନା ବୁକ୍ସ୍, ଭୁବନେଶ୍ୱର, ୨୦୧୦.
- ରାୟ ରଥନାଥ ରାୟ, ଚିଲିକା, କଟକ ଟ୍ରେଡିଙ୍ଗ କମ୍ପାନୀ, ସପ୍ତମ ସଂସ୍କରଣ, ୧୯୫୫.
- ଶୁକ୍ଳ, ଅନନ୍ତ ଚରଣ, ପାଶ୍ଚାତ୍ୟ ସାହିତ୍ୟ ତତ୍ତ୍ୱ ଅତୀତରୁ ବର୍ତ୍ତମାନ, ପ୍ରଥମ ଭାଗ-ଗ୍ରୀକ୍ ପର୍ବ (ଅ), ନିଉ ଏଜ୍ ପବ୍ଲିକେଶନ୍ସ୍, ୨୦୧୦.


**ଇଂରାଜୀ/English Books:**


1. Bullough, Edward, "Psychical Distance" in Melvin Rader's A Modern Book of Esthetics, Holt, Rinehart and Winston, 5th edition.
2. Kant, Immanuel, Critique of Judgement, trans. by J.B. Bernard, London: Macmillan, 1892.
3. Michael B. Gill, A Philosophy of Beauty: Shaftesbury on Nature, Virtue, and Art, Princeton University of press, UK,2023.

4. Sri Aurobindo, The national value of art, Pondicherry: Sri Aurobindo ashram publication.
5. Tagore, Rabindranath, The meaning of art, Lalit kala academy, 1983.

**ପତ୍ରିକା/ Journals:**

1. Beauty in the universal encyclopedia of philosophy, piotr jaroszyński, Studia Gilsoniana 7, no. 4 (October–December 2018): 579–595.
2. Este tika: The Central European Journal of Aesthetics, XLVI/I, 105–110.

**Contact No. 9437587697**

**e-mail ID**: prahalladsbp2003@gmail.com

www.bohalshodhmanjusha.com Bohal Shodh Manjusha ISSN: 2395-7115
Impact Factor:8.642 January 2025 Page No. : 51-57
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

# सामाजिक विचारधारा में पुरूषवादी लेखन–शैली और स्त्री विमर्श (मु. हनीफ 'अकेला' के कथा–संग्रहों के विशेष सन्दर्भ में)

**डॉ. नम्रता गौरव ,** असिस्टेंट प्रोफेसर, समाजशास्त्र विभाग,
संताल परगना महिला महाविद्यालय (एसकेएमयू) दुमका, झारखंड

**शोध सार :**
**स्त्री विमर्श का मतलब है स्त्रियों को लेकर होने वाली बहस, संवाद, वार्तालाप, या विचारों का आदान–प्रदान। स्त्री–विमर्श को लेकर महिला लेखकों के साथ–साथ पुरूष लेखकों के लेखन से इस विमर्श को पुष्टि मिलती है। वर्तमान समय में स्त्रियों के साथ–साथ अनेक पुरूष लेखक भी स्त्री–विमर्श के इस संकल्पना में अपने रचनाओं को रच रहे हैं। हालांकि सामाजिक विचारधारा यह स्पष्ट करती है कि पुरूष लेखकों ने भी स्त्री–समस्या को अपना विषय बनाया, लेकिन महिला लेखिकाओं की तुलना में अलग तरीके से लिखा। अर्थात् हिन्दी साहित्य में स्त्री–विमर्श पर पुरूष और महिला लेखकों का अलग–अलग योगदान रहा है। योगदान की यह भूमिका आज भी अस्पष्ट है क्योंकि अभी तक पुरूषवादी लेखन–शैली में स्त्री–विमर्श की विचारधारा को स्पष्ट रेखांकित नहीं किया जा सका है, क्योंकि इसपर तार्किक विमर्श साहित्य जगत में हमेशा लोपनीय है। अतः विमर्श के इन्हीं पहलूओं को छूते हुए प्रस्तुत शोध–आलेख डॉ. मोहम्मद हनीफ के तीन कथा–संग्रहों के यथार्थता में रची नारियों के पात्रों के साथ स्त्री–विमर्श के धरातल पर उनकी पुस्तक समीक्षा पर आधारित है।**

**बीज शब्द :** स्त्री विमर्श, पुरूषवादी लेखन–शैली, सामाजिक विचारधारा, कथा संग्रह।

**भूमिका :**

साहित्यकारों की कहानियों में नारी विमर्श से जुड़े तथ्यों को तलाश करने की यात्रा अनेक प्रश्नों को जन्म देती हैं। जैसे–समाज के परम्परागत दोयम दर्जे के नागरिक के आवरण से निकल अपनी अस्मिता और अस्तित्व तलाशती नारी का प्रश्न, घर और बाहर शोषण के दो पहियों के बीच पिसती नारी का प्रश्न, नारी मुक्ति चाहती है तो किससे और क्यों का प्रश्न, क्या पुरूष मानसिकता के बदलाव से समाज में नारी सशक्त हो जायेगी का प्रश्न या अभी और संघर्ष कर कई कदम उठाने होंगे अपने वजूद को कायम करने के लिए, इत्यादि ऐसे अनेकों प्रश्न उठते हैं ?[1]

इन अनेकानेक जटिल प्रश्नों और अपने कड़े तल्ख तेवर में सच्चाईयों के साथ नारी विमर्श पर महिला साहित्यकारों द्वारा लिखे जा रहे साहित्य में स्त्रीवादी विमर्श का पक्ष तो उज्जवल कहा जा सकता है, लेकिन पुरूष साहित्यकारों के साहित्य में स्त्री–विमर्श के पक्ष का प्रश्न हमेशा साहित्यिक के साथ सामाजिक विचारधारा के द्वंद्व में फँसा मालूम होता है। अर्थात् इसका तात्पर्य यह है कि स्त्रियों के नजर में, मानस में और लेखन में अन्य स्त्रियों के प्रति एक ऐसी छवि अभिव्यक्त होती है जो वह स्वयं अपने में देखती, सुनती, गुनती और गढ़ती है, परंतु क्या किसी पुरूष के लिए ऐसा करना संभव है ?

इस महत्वपूर्ण बिंदु पर विचार करने हेतु प्रस्तुत शोध आलेख ''सामाजिक विचारधारा में पुरूषवादी लेखन–शैली और स्त्री विमर्श'' को डॉ. मोहम्मद हनीफ के जीवन की यथार्थता में रचित और संग्रहित कथा संग्रहों में समझने के लिए निम्न अध्ययन बिंदु प्रमुख हैं–

1. सामाजिक विचारधारा में पुरूषवादी लेखन–शैली और स्त्री विमर्श का आशय।
2. स्त्री–विमर्श में शामिल कथा संग्रहों के रचनाकार डॉ. मोहम्मद हनीफ का व्यक्तिगत परिचयः।
3. डॉ. मोहम्मद हनीफ के कथा–संग्रहों में नारी पात्र और स्त्री–विमर्श की समीक्षा ।

**सामाजिक विचारधारा में पुरूषवादी लेखन–शैली और स्त्री विमर्श से तात्पर्य –**

जब भी सामाजिक विचारधारा में स्त्री विमर्श का चिंतन किया जाता है तो इसके आशय को स्पष्ट करना अति आवश्यक है। सर्वप्रथम, विचारधारा को स्पष्ट किया जाय तो विचारों, दृष्टिकोणों और आस्थाओं का समूह, जो किसी व्यक्ति या सामाजिक व्यवस्था को संचालित करता है। अतः सामाजिक विचारधारा का शाब्दिक अर्थ है समाज के बारे में विचार या समाज के बारे में चिन्तन। ये सामाजिक विचार सामाजिक व्यक्तियों अथवा सहयोगी व्यक्तियों के सहचिंतन का परिणाम है। इस प्रकार का सहचिंतन दैनिक जीवन की किसी भी प्रकार की समस्या से सम्बन्धित हो सकता है क्योंकि समस्याएँ सदैव समाज में ही रही है। इसलिए सहचिंतन भी सदैव होता रहा है, अर्थात् सामाजिक विचारों का इतिहास उतना ही पुराना है जितना कि स्वयं समाज का इतिहास। ऐसे में महान समाजशास्त्री फूरफे के परिभाषा को स्पष्ट किया जा सकता है कि–''सामाजिक विचारधारा मानवीय जीवन से सम्बन्धित है।[2] इसी तरह, स्त्री विमर्श का तात्पर्य है स्त्रीवादी दृष्टिकोण तथा स्त्री से संबंधित विभिन्न पहलुओं पर विचार एवं विमर्श। स्त्री जीवन और जगत से संबंधित प्रत्येक घटना, विचार वस्तु और भाव इत्यादि ऐसे विभिन्न कारण एवं समस्याएँ हैं जो वर्तमान परिवेश में स्त्री चिंतन से उत्पन्न हुई है।[3] अंततः विचारधारा यह निर्धारित करती है कि हम चीजों को कैसे समझते हैं ? यह दुनिया, उसमें हमारी जगह और दूसरों के साथ हमारे संबंधों का एक व्यवस्थित दृष्टिकोण कैसे प्रदान करता है ?[4] प्रस्तुत शोध–पत्र का प्रमुख अध्ययन–बिंदु भी यही है कि सामाजिक विचारधारा में पुरूषवादी लेखन–शैली में स्त्री–विमर्श की छवि को स्पष्ट किया जाय, क्योंकि हिंदी साहित्य के स्त्री–विमर्श में रचनाओं का दायरा बहुत बड़ा है परंतु पुरूषवादी लेखन–शैली जिसमें किसी पुरूष रचनाकार द्वारा अपनी रचनाओं में जीवन की यथार्थता लाने की कोशिश चरम सीमा तक की जाती है क्या वहाँ स्त्री–विमर्श में उसकी जड़ता और पराधीनता टूटती है अथवा वहाँ अभी भी सिसकियाँ ही सुनाई पड़ती है। इसी विमर्श को वर्तमान सामाजिक विचारधारा में समझने के लिए हिन्दी में रची गई तीन कथा–संग्रहों के कहानियों पर स्त्री–पात्रों का विमर्श पर अध्ययन आवश्यक है।

**स्त्री–विमर्श में शामिल कथा संग्रहों के रचनाकार डॉ. मोहम्मद हनीफ का व्यक्तिगत परिचय :** डॉ. मोहम्मद हनीफ अपने पिता मु. जुम्मन, एवं माता सफीरन के वे पुत्र हैं जिन्होने बचपन से अपने–माता को उनपर फक्र करने का अवसर प्रदान किया है। बचपन के झंझावातों और जीवन के कठिनतम दौर को हंसकर पार करने वाले मोहम्मद हनीफ ने वाराणसी नगरी से अंग्रेजी में एम.ए की परीक्षा उतीर्ण की। वर्तमान समय में सिदो–कान्हू मुर्मू विश्वविद्यालय से संबद्ध महाविद्यालय के अंग्रेजी विभाग के विभागाध्यक्ष की लेखन–शैली की एक विशेषता यह है कि जितनी पकड़ ये अपने विषय अंग्रेजी में रखते हैं, उतनी ही बेबाकीपन व पकड़ हिन्दी, बांग्ला, उर्दू, अरबी और क्षेत्रीय जनजातीय भाषा संथाली में भी रखते हैं। फिल्म के लिए कहानियां और डायलॉग लिखना उनकी लिक से हटकर एक अलग पहचान है। उनके द्वारा लिखी गई अनेक रचनाएँ झारखंड राज्य तथा भारत के अन्य राज्यों के विश्वविद्यालयों के सिलेबस में भी शामिल किए गए हैं। अंग्रेजी भाषा में लिखी पुस्तक 'ए रोजरी ऑफ पोएजी' को राजस्थान वि.वि. के सिलेबस में जगह मिली है।[5] अंतरराष्ट्रीय साहित्यकार, डॉ मोहम्मद हनीफ की 17 से ऊपर पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं, जिसमें से ''आई एंड माय मदर : ए गॉस्पेल'' साउथ अफ्रिका से प्रकाशित होना एक छोटे शहर से व सरल तथा सामान्य जीवन जीने वाले लेखक के लिए गर्व की बात है। हिन्दी और अंग्रेजी के अनेक पुस्तकों के लेखक डॉ. मोहम्द हनीफ को हावर्ड वर्ल्ड रिकॉर्ड अवॉर्ड लंदन, इंटरनेशल ह्यूमन राइट्स अवार्ड लंदन, विश्व भाषा संस्कृति सम्मान बांग्ला देश, नेपाल भारत लिटरेचर सम्मान नेपाल, नेशनल टीचर्स अवॉर्ड, हितैषी इंटरनेशनल लिटरेचर अवॉर्ड, मंथन संस्कृति लिटरेचर अवॉर्ड, इंटरनेशनल बेस्ट एजुकेनिस्ट अवॉर्ड, राष्ट्रीय शिक्षा श्री अवॉर्ड जैसे अनेको–अनेक पुरस्कार प्राप्त हो चुके हैं।[6]

जनजातीय सांस्कृतिक विशेषताओं से परिपूर्ण झारखंड के संताल परगना के दुमका जिले के निवासी डॉ. मोहम्मद हनीफ के लेखन–शैली की एक महत्वपूर्ण विशेषता यह है कि जीवन के वास्तविक यथार्थ को हू–बहू अपने लेखनशैली में उतार लेते हैं। इनके पात्रों के मध्य रचित डायलॉग एवं घटित घटनाओं को पढ़कर सहसा महसूस होता है कि ऐसी घटनायें हमारे जीवन के इर्द–गिर्द घट चुकी है। इनके रचनाओं में स्त्री–पात्र कहीं त्याग की प्रतिमूर्ति है, कहीं आत्मबलिदान को केन्द्रित करती हैं, तो कहीं सामाजिक विचारधारा के जकड़न में जकड़ी हुई मालूम होती हैं।

पुरूषवादी लेखन–शैली में स्त्री–विमर्श की पहल इनकी रचनाओं में स्पष्ट दृष्टिगोचर होती है।

**डॉ. मोहम्मद हनीफ के कथा–संग्रहों में नारी पात्र और स्त्री–विमर्श की समीक्षाः**

प्रस्तुत शोध–आलेख में डॉ. मोहम्मद हनीफ की ''कुछ भूली–बिसरी यादें'', ''दर्द कहूँ या पीड़ा'', ''तथा सलाखों में बंद'' नामक तीन कथा–संग्रहों की कहानियों के नारी पात्र और स्त्री–विमर्श संबंधी मुख्य तथ्यों पर समीक्षात्मक अध्ययन किया गया है। कथा–संग्रहों से संबंधित विशेष तथ्य यह है कि ''कुछ भूली–बिसरी यादें'', वर्ष 2016 में, ''दर्द कहूँ या पीड़ा'', वर्ष 2018 में ''तथा सलाखों में बंद'' वर्ष 2019 में आयुष्मान पब्लिकेशन हाउस नई दिल्ली से प्रकाशित हुई हैं।

डॉ. मोहम्मद हनीफ के कथा संग्रहों में छपी हुई कहानियों में मध्यमवर्गीय परिवारों के परमपरागत जीवन–शैली में जीवनयापन करने वाली स्त्रियों के विहंगम संसार का दर्शन मिलता है। कुछ भूली–बिसरी यादें'', कहानी संग्रह की 'आहुति', 'ये वांदिया.....ये फिजायें, 'मुहब्बत की कसम', और 'अच्छा किया कि तूने' हवस, तथा अनकरीब, रातों के अंधेरे में, झील के किनारे, हल्दी के रंग, अच्छा किया कि तूने...., शीर्षाकिंत कहानियों में स्त्री–विमर्श के विभिन्न पहलू उजागर होते हैं।

'कुछ भूली–बिसरी यादें' कहानी संग्रह में डॉ. हनीफ ने अपनी लेखनी से परंपरागत सामाजिक व्यवस्था के मध्यवर्गीय परिवारों की रूढ़िगत व्यवस्थाओं में स्त्री–पुरूष का वैवाहिक जीवन और भावनायें किस कदर आहत होती हैं और उसका स्त्रियों पर क्या प्रभाव पड़ता है इसका भली–भांति चित्रण किया है। डॉ. हनीफ की लेखनशैली में स्त्री–विमर्श की प्रखरता और जनचेतनावादी होने का अंदाजा इसी से लगाया जा सकता है कि इन्होंने परंपरागत समाज में जी रहे परिवारों में सामाजिक प्रतिष्ठा और जातीयता तथा मुस्लिम समाज में तलाक की स्थिति और उसका स्त्री–पुरूष संबंधों पर बेबाकी से चित्रण किया है। सभी कहानियों में से कुछ चुनिंदा कहानियों 'हवस' और 'अनकरीब' तथा 'हल्दी के रंग' को उदाहरण के रूप में स्पष्ट किया जा सकता है। हवस कहानी में नाहिदा और आसफ शादी करके सुखी जीवन जी रहे हैं लेकिन नाहिदा के पिता आसफ को अपनी बराबर वालों में से नहीं मानते हैं और आसफ को अपनी बेटी को तलाक देने के लिए कहते हैं। पिता की जबर्दस्ती के कारण दोनों अलग तो हो जाते हैं लेकिन उनके जीवन का परिणाम आसफ की आत्महत्या और नाहिदा का तवायफ का रास्ता अख्तियार करने पर समाप्त होती है। इस कहानी में पुरूष पात्र आसफ के माध्यम से लेखक ने मुस्लिम समाज के परिवेश में स्त्री विमर्श को प्रमुखता से दर्शाया है –''.....आसफ अपने आपको कोसता जा रहा था कि किस कद्र मुस्लिम समाज के अनपढ़ लोग छोटी–छोटी बातों पर तलाक शब्द का इस्तेमाल कर बसी–बसायी दुनिया को उजाड़ देता है और वह भी क्षण भर में। इस्लाम में तलाक को मजबूरी के तहत स्थान दिया गया है न कि मामूली सी बातों के लिए हुक्म। वह सोच रहा था कि कितने खुशनसीब हैं वे लोग जिनकी सिर्फ एक बीवी हो और जीवन उसी के साथ निभाये और कितने बदनसीब हैं वे औरतें जिसे चूल्हें की तरह सौहर बदलना पड़े और जीवनभर घूँट–घूँट कर जीना पड़े..... ।[7] उपरोक्त अवतरण पर सीमोन द बोउवार का वह स्त्री–विमर्श सजग हो जाता है जहाँ उन्होंने स्पष्ट किया है कि– पुरोहितों, पण्डितों, दार्शनिकों, लेखकों, शिक्षकों और राजनेताओं ने अब तक यह दिखाने की चेष्टा की है कि औरत की अधीनस्थ स्थिति स्वर्ग में ही बनाई गई है। पृथ्वी पर उसे उसकी सुविधाएं मिलती हैं। अतः जिस धर्म की खोज पुरूष ने की हो वह स्त्री को अपने अधीन रखेगा ही।''[8] वहीं, अनकरीब कहानी में एक अमीर बाप परवेज आलम की इकलौती बेटी और सुंदर युवती आसमां को उसके बचपन के प्यार और प्रेमी पति महरूफ से एक साधारण सी बात न मानने पर आसमां को अपने अब्बू के दबाव में आकर तलाक लेना पड़ा था। और उसके बाद पिता के द्वारा जबर्दस्ती जानवरों की तरह एक से अनेक घरों में बिक्री की जाती रही जिसका दुष्परिणाम दिल की बीमारी और अंत में मौत रही। इस कहानी की स्त्री पात्र आसमां के मरने के पश्चात् कहानी को घटनाक्रम में वर्णित करने के लिए कहानीकार जिस डॉयलाग को रचते हैं वह मसला स्त्री–विमर्श का एक अकाट्य सत्य हैं जिसकी बानगी कुछ इस तरह है–''.....यह सत्य है कि इस आधुनिक काल में भी औरतों को उनका हक नहीं मिलता। उनके साथ बदसलूकी किया जाता है। उनकी आत्मा को गिरवी रख दिया जाता है और उनकी इच्छा के विरूद्ध उनका यौन शोषण कर उसे गन्दी नाली में फेंक दिया जाता है....जूठे पत्तल की तरह।''[9] वस्तुतः डॉ. हनीफ एक प्रगतिशील कहानीकार हैं और अपने कथा–संग्रहों में स्त्री–विमर्श के यथार्थोन्मुख आदर्शवाद की भी स्थापना करते हैं। इसके अंतर्गत् 'हल्दी के रंग' कहानी को स्पष्ट किया जा सकता है जो पुनः विजातीयता और सामाजिक प्रतिष्ठा के त्रिकोण में खड़े तीन स्त्रियों के मध्य स्त्रियों के सामाजिक द्वंद्वं में फंसे होने का कारूणिक चित्रण करता है। कहानी

'हल्दी के रंग' में लेखक ने दो माँ के दो विभिन्न पहलूओं को दर्शाया है कि एक माँ अपने बेटे नीमू की शादी अपने ही कल्चर वाली लड़की के साथ कराना चाहती है और वहीं लड़की की माँ अपनी बेटी की खुशी की खातिर उसकी शादी अपने जाति से बाहर उसके पसंद के लड़के से कराना चाहती है। वह बंगाली लड़के नीमू से अपनी बेटी की शादी कराने के लिए अपनी बेटी को बंगला भाषा भी सिखाती है इसके बावजूद नीमू अपने प्यार चन्दा से विवाह नहीं कर पाता है, और चन्दा द्वारा नीमू के शर्ट में अपने शरीर में लगे हल्दी के रंग को लगाकर कहती है कि –''देखो नीमू, ...मै जानती हूँ मेरे खोने के बाद तुम मुझे पाने के लिए जीवन भर तरसोगे.....।''[10] इस कहानी में स्त्री–विमर्श का स्वर यह स्पष्ट करने के लिए काफी है कि स्त्रियों की अन्तर्जातीय विवाह अथवा अपने पसंद के लड़के से विवाह, अथवा परिवार के खिलाफ जाकर किये जाने वाले विवाह में आज भी स्त्रियों के प्रति समाज की मानसिकता रूढ़ियों एवं दकियानूसी ख्यालों के पराधीन हैं। अर्थात् परम्परागत समाज में परम्परात्मक मूल्यों को महत्व दिया जाता है क्योंकि वे अतीत से अर्जित किए जाते हैं। इसलिए स्त्री–पक्ष की भावनाएँ आधुनिक समय में भी परम्परागत समाज से अर्जित किए गए मूल्यों के कारण आज भी समाज के नजरों में गिरी हुई मानी जाती है।[11]

डॉ. मोहम्मद हनीफ की ''दर्द कहूँ या पीड़ा'' कहानी संग्रह में भी कुल 8 कहानियाँ हैं, जिनमें 'और इस तरह', 'स्मृति के अवशेष पन्ने'', 'दर्द कहूँ या पीड़ा', 'राख की सौंगध', 'काली बछिया', ''दरम्यान'','ख्वाहिश', अनकही'' इत्यादि महत्वपूर्ण कहानियाँ है। इन कहानियों में स्त्री–विमर्श के विरोधाभासी स्वर प्रमुखता से प्रकट हुए हैं।

डॉ. हनीफ की कहानियाँ पुरूषवादी लेखन–शैली में स्त्री–विमर्श को प्रमुखता से स्पष्ट करती हैं। 'दर्द कहूँ या पीड़ा' तथा 'राख' की सौगंध' एवं 'ख्वाहिश' कुछ इसी तरह की अन्य कहानियाँ हैं। दर्द कहूँ या पीड़ा' कहानी में एक भाई की कहानी है जो तीन स्त्रियों के विविध चरित्रों के बीच अपनी जिंदगी जीते–जीते मर जाता है। निसार अपने छोटे भाई बाबू को पढ़ाने–लिखाने और बड़ा अफसर बनाने का ख्वाहिशमंद है क्योंकि यही उसके अब्बू की आखिरी इच्छा रहती है। निसार के इस ख्वाहिश को पूरा करने के लिए अपना एल.आई.सी., बैंक से ऋण यहाँ तक की उसकी पत्नी उसका साथ देते हुए अपने जेवरात तक गिरवी रख देती है, लेकिन बाबू, बड़ा अफसर बनने और शादी करने के बाद सिर्फ अपनी पत्नी की ही सुनता है। उसकी पत्नी धनाढ्य वर्ग की महिला है जो अपने भाई के साथ पूरे घर की व्यवस्था को संभालती है। माँ के इलाज के लिए जब निसार छोटा भाई के पास जाता है तो छोटा भाई व्यस्तता का बहाना किए हुए हाथ में मोबाइल चलाते रहता है और उसकी पत्नी बनावटी मजबूरी बताकर बगैर पैसे दिए उसे वापस कर देती है। लेकिन घर में तो पैसे की दरकार है इसके लिए लाचारी में एक ब्लड बैंक में निसार अपना ब्लड बेचकर अपने माँ और पत्नी सहित बाल–बच्चों का भरण–पोषण करता है। लेकिन, इस पैसे से ली हुई माँ अपनी रंगीन साड़ी में भी खुश नहीं है पर वह हकीकत जान नहीं पाती और इलाज के अभाव में मर जाती है। कहानी दुखांत मोड़ लेती हैं और माँ के ईलाज के समय नहीं बल्कि उनके मौत के मातम में लाखों रूपए खर्च करने वाले छोटे बाबू की बहू को ब्लड की आवश्यकता है जो अचानक से मिलना बंद हो जाता है और पड़ताल करने पर पता चलता है कि यह वही ब्लड है जो प्रत्येक महीने उसके भाई ब्लड बैंक में बेचकर दस हजार कमाता था। जब पत्नी को पति का यह चरित्र मालूम होता है तो वह अपने को धिक्कारती हुई कहती है कि–''मै। इतने दिन ऐशो आराम से रही। खुशियाँ मनाती रही, रंगीन कपड़े पहनती रही। न जाने किस–किस तरह की अनाप–शनाप खर्च भी करती रही, यह सोचकर कि यह रूपए छोटे बाबू के द्वारा दिया गया है, जिसके पास रूपए की कमी नहीं, लेकिन आज मुझे पता हुआ कि तुमने हमसे यह बात छुपा रखी। तक निसार कहता है–''तुम क्या सुनती बेगम ? मैं अपने दर्द और पीड़ा को अपने आप में ही सिमट कर रखना अच्छा समझा। जब मेरा खून ही मेरा नहीं हो सका।''[12] इस कथा का यदि विश्लेषण किया जाय तो स्त्री–विमर्श का यह दृष्टिकोण स्पष्ट होता है कि लेखक यह हकीकत अत्यधिक बेबाकी से बयान करते हैं कि पारिवारिक चरित्रों के उदातवादी मोह में स्त्रियों की अवधारणा अब पारिवारिक आदर्शों के प्रतिकूल हैं। 'राख की सौगंध' कहानी इसी विमर्श को और आगे बढ़ाने का काम करती है। 'राख की सौगंध' कहानी में लेखक नीतू दी नामक महिला की कहानी बयां करते हैं जो राज से प्यार करती है लेकिन राज की माँ सामाजिक जड़ता से ग्रसित महिला है जिसे पसंद नहीं कि उसका बेटा नीच लड़की से विवाह करें। वह अपने बेटे को धिक्कारती हुई कहती है कि –''तुम्हें शर्म नहीं आती, एक नीच लड़की के पीछे पड़े रहते हो, इससे बेहतर होता कि मैं तुमको जन्म

ही ना देती। तुम कुल के कलंक हो, राज कलंक। जाति, संस्कृति के लिये कलंक। क्या तुमने कभी सोचा कि एक माँ जो आज तक तुम्हारे लिये हरेक वर्ष छठव्रत करती रही, उसके दिल में छूरा भेक दोगे। ..... .....मैं चाहती हूँ तुम डूब मरो, फांसी लगा लो, जहर खा लो, और नहीं तो, लो माचिस की तिल्ली से जल मरो। कहानी में स्त्री–अभिव्यक्ति की उच्छृंखलता कहानीकार ने इतने में ही नहीं दर्शाया बल्कि माँ के कहने पर माँ की खुशी के लिए जब राज अपने शरीर में आग लगा लेता है तो घावों में सड़न और दुगंध होने पर उसकी माँ राज को दूर से अपना मुँह ढककर देखती है। उसवक्त में नीतू ही राज के जख्मों को साफ करती है अस्पताल में उसकी सेवा करती है, पर एक्जाम देने जाने के कारण राज को आखिरी बार नहीं देख पाती और श्मशान में उसके चिते की ठंढी राख को ताबीज बनाकर उसे आजीवन गले में धारण कर लेती है।[13] यहाँ लेखक ने एक माँ के रूप में ना लेकर प्रेमिका के रूप में एक स्त्री की महानता को प्रदर्शित किया है। 'ख्वाहिश', कहानी में एक बेटी अंजुषा अपनी उस माँ के प्रति अपनी भावनाओं को उकेरती है जो उसे दुधमूहाँ छोड़कर किसी जवान लड़के के साथ भागकर ब्याह रचा लेती है।[14] स्त्री–विमर्श भी इस बात को स्पष्ट करता है कि स्त्रियाँ सामाजिक दांस्ता के रूढ़िवादिता से खुद को निकालकर एक अलग पहचान स्थापित करना चाहती है लेकिन अलग पहचान स्थापित करने के नाम पर पुनः सामाजिक व्यवस्था के रूढ़िवादिता से ग्रस्त हो जाती है। डॉ. हनीफ की कहानियां कल्पना की उपज न होकर जीवन की वास्तविकता से लबरेज हैं जो चीख–चीख कर सामन्तवादी विचारधारा में लिप्त स्त्रियों के दुर्दांत व्यथा को सुनाते हैं।

डॉ. हनीफ के ''सलाखों में बंद'' नामक तीसरी कहानी संग्रह में भी कुल 9 कहानियाँ हैं जिनमें–प्रभाव, स्पर्श, सलाखों में बंद, यात्रा की अनोखी खुशी, आँचल, आँगन, अपनों का दर्द, वापस लौट आ..., कोई तो कहानी... इत्यादि अंतराष्ट्रीय फलक पर छपी हुई कहानियाँ हैं। ये सभी कहाानियाँ पुरूषवादी लेखन–शैली के स्त्री–विमर्श में शामिल की जा सकने वाली कहानियाँ हैं जिसमें वे समाज के आदर्श, प्रेम, समपर्ण, कुचक्र में संलिप्तता, मानसिक जड़ता, आत्महीनता सभी के द्वंद्व स्त्री–पात्रों में दिखाने में सफल हुए हैं। 'अपनों का दर्द' कहानी के एक संवाद पर स्त्री–विमर्श इस तरह स्थापित की जा सकती है– अपनों का दर्द : तुम नर जाति न, बहुत ही धूर्त होते हो। पहले ही यह वादा करा लेते हो कि 'बोलो, कोई तकलीफ तो नहीं होगी .....किसी को बोलोगे तो नहीं.....बात तो मान लोगे....बुरा तो नहीं मानोगे.... वगैरह...वगैरह....ताकि बेवकूफ बनाने की कोई कसर बाकी न रहे और मोटीवेट करने का अच्छा मौका मिल जाये।' इस कदर की फिजूल बातों से कुछ भी होने वाला नहीं है। तुम नाहक ही दोष देती हो। अगर इतना ही दोषपूर्ण होते हैं ये नर जाति तो फिर इसी के लिए क्यों इतनी मारा मारी होती है। स्मार्ट, नौकरी, तो कभी इंटेलिजेंट, की तलाश क्यों करती हैं, लड़कियाँ.....?[15] उपरोक्त कहानियों के संदर्भ में डॉ. मोहम्मद हनीफ ने स्त्री विमर्श को सामाजिक चेतना और मानवीय रिश्तों के प्रति समझदारी में दूरअंदेशी और उन में साथ न निभाने जैसे फैसलों से स्त्री–जीवन में जो दिशाहीनता का बोध होता है, उसे बखूबी दर्शाया है। एक अन्य कहानी 'स्पर्श' में कहानीकार संवाद सथापित करते है, उसपर भी विचार करना आवश्यक है–.....लेकिन इंसान भी कितनी जल्दी और किस कदर बदल जाता है, उसका एहसास तो सुप्रिया को तब होने लगा था जबकि यू.पी.एस.सी. का फाईनल रिजल्ट आया और अमित फाइनली कंपीट कर गया और वह कुछ अंक से पीछे रह गई। .....आज वह खुश भी थी और नाखुश भी। नाखुश इस बात से कि उसी के नोट्स और डिस्कशन के साथ हौसला अफजाई के बावजूद खुद असफल थी और खुश इस बात से कि उसका अमित अब केवल उसका था, जिसके साथ वह अब जीवनसंगिनी बनकर रहनेवाली थी। इसके विपरीत अमित अब किसी भी तरह से कोई बहाना बनाकर सुप्रिया से अलग रहना चाह रहा था। वह सोचता.....देहली जैसे शहरों में यह महज एक एंटरटेनमेंट ही माना जाता।''[16] अर्थात् इस कहानी का स्त्री–विमर्श यह है कि जैविक आधार और सामाजिक संरचना की विशिष्टता के साथ ही आर्थिक व्यवस्था भी स्त्री के यथार्थ को प्रभावित करती है।

**समीक्षात्मक अध्ययन के अहम बिन्दु** : डॉ. मोहम्द हनीफ की कहानियों में सदियों से चली आ रही सामाजिक विचारधारा के स्वर हैं तो उसकी जड़ता को तोड़ने का संदेश भी मिलता है। इन कहानियों में डॉ. हनीफ ने स्त्रियों के पात्रों द्वारा जीवन में घटित अनेक छोटे–बड़े हादसों के मध्य स्त्री–पात्रों की रचना इस रूप में की है जिसमें कहानी पढ़कर पाठक समझ सकता है कि पुरूषवादी लेखन–शैली में स्त्री–विमर्श अवश्य सम्मिलित है लेकिन उनकी सोंच उनके विचार उनके अपने अनुभवों पर आधारित है न कि किसी स्त्री के अनुभव के आधार पर।

अर्थात् किसी भी तरह की पारिवारिक, सामाजिक, आर्थिक अथवा घटनाओं का स्त्रियों पर किसी न किसी रूप में प्रभाव अवश्य पड़ता है। उनके कहानियों को पढ़कर स्पष्ट किया जा सकता है कि पुरूषों और स्त्रियों की जैविक या मनोवैज्ञानिक संरचनाओं की रूढ़िबद्ध धारणाएँ निराधार भी हो सकती है। फिर भी देखा गया है कि इन रूढ़ियों को स्त्रियों के विरूद्ध भेदभाव करने का प्रायः आधार बनाया जाता है। इन कहानियों में स्त्री–विमर्श का औचित्य को सुप्रसिद्ध विचारक पेपनेक के कथन के अनुसार इस प्रकार समझा जा सकता है कि सामाजिक लिंग स्त्री तथा पुरूष से सम्बन्धित है, जो स्त्री–पुरूष की भूमिकाओं को सांस्कृतिक आधार पर परिभाषित करने का प्रयास करता है एवं स्त्री–पुरूष के विशेषाधिकारों से सम्बन्धित है। सांस्कृतिक तथा ऐतिहासिक आधार पर लिंग सामान्यतया शक्ति सम्बन्धों का कार्य तथा असमानता का सामाजिक संगठन है।

**निष्कर्ष :** साहित्य में सामाजिक विचारधारा को दर्शाने में पहले की तुलना में सकारात्मक बदलाव तो आया ही है, किसी का पितृसतात्मक टेक्सट लिखकर अन्त करना अब उतना सरल नहीं रहा है। उस टेक्सट के पितृसत्तात्मक रेशों की कड़ी आलोचना होती है। लेकिन यहाँ प्रश्न यह भी है क्या स्त्री लेखक स्वयं को लेकर पहले से ज्यादा प्रगतिशील हुई है या नहीं ? क्या पुरूषवादी लेखन–शैली में एक औरत का पात्र दूसरी औरत के पात्र से अपने हक की बात करने में खुद को सहज महसूस कर सकती है। ठीक वैसे ही जैसे स्त्रीवादी लेखन–शैली में। मेल–फीमेल के प्रश्न पर कोई भी साहित्य समाज पर कोई गहरा प्रभाव तब ही छोड़ सकता है जब वह मात्र नारीवादी विचारधारा से प्रेरित साहित्य न होकर, उसे लांघकर, उसके आगे जाकर खुद को मुक्कमल कृति में तब्दील कर सके। अच्छी साहित्यिक कृति विचारधारा के खिलाफ नहीं है। बल्कि कई विचारधाराओं को अपने अंदर स्थान देती हुई चल सकती है। डॉ. मोहम्मद हनीफ अपने समाज के मुद्दों को तो उठाते ही हैं, उन मुद्दों को रखने के लिए वे एक जीवित संसार को यथार्थवादी तरीके से बुनते हैं। उनका बुना हुआ वह बहुपरतीय संसार उनकी लेखन–शैली की द्योतक हैं।

पुरूषवादी लेखन–शैली में नारीवादी साहित्य धीरे–धीरे कागजों से निकलकर समाज पर भी व्यापक प्रभाव डाल रहा है, जो लिखा जा रहा है, जो रचा जा रहा है वह कहीं न कहीं इसी समाज का हिस्सा है। पुरूषों ने केवल लेखन में ही नहीं, बल्कि सामाजिक विचारधारा में स्त्री विमर्श में भी अपनी महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। इस संदर्भ में हिंदी जगत में यदि पुरूषवादी लेखन–शैली में स्त्री–विमर्श की चर्चा आवश्यक हो तो डॉ. मुहम्मद हनीफ की कथा–संग्रहों को अवश्य पढ़ा जा सकता है।

**संदर्भ सूची**


1. Blogger.com https:// subodh-sannidhya.blogpot.c.. सिंह, सुबोध कुमार : ''साहित्य में नारी का अभिव्यक्ति पक्ष'' 31 October 2016
2. https:// instituteeducation1.blogpost.com>
3. पाटील, लेफ्टनेंट डॉ. रविंद्र : ''महिला उपन्यास लेखन एवं स्त्री विमर्श'' साभार समकालीन हिन्दी साहित्य : विविध विमर्श'' प्रधान संपादक, प्रो. सीताराम के. पवार, अमन प्रकाशन कानपुर, 2018
4. https:// www.thoughtco.com >ideo....Theories of Ideology
5. भेंटवार्ता : दिनांक 14 नवंबर 2024
6. भेंटवार्ता : दिनांक 18 नवंबर 2024
7. डॉ. मो. हनीफ : ''हवस'', 'कुछ भूली बिसरी यादें'; कथा संग्रह से साभार, आयुष्मान पब्लिकेशन हाउस, नई दिल्ली 2016
8. सिंह, डॉ. अमिता : ''लिंग एवं समाज'', विवेक प्रकाशन'', जवाहर नगर, नई दिल्ली 2019
9. डॉ. मो. हनीफ : ''अनकरीब'', कहानी 'कुछ भूली बिसरी यादें'; कथा संग्रह से साभार, आयुष्मान पब्लिकेशन हाउस, नई दिल्ली 2016
10. डॉ. मो. हनीफ : ''हल्दी के रंग'', कहानी 'कुछ भूली बिसरी यादें'; कथा संग्रह से साभार, आयुष्मान पब्लिकेशन हाउस, नई दिल्ली 2016
11. सिंह, डॉ. अमिता : ''लिंग एवं समाज'', विवेक प्रकाशन'', जवाहर नगर, नई दिल्ली 2019
12. डॉ. मो. हनीफ : ''दर्द कहूँ या पीड़ा'', कहानी, ''दर्द कहूँ या पीड़ां'; कथा संग्रह से साभार, आयुष्मान पब्लिकेशन हाउस, नई दिल्ली 2018
13. डॉ. मो. हनीफ : ''राख की सौगंध'', कहानी, ''दर्द कहूँ या पीड़ां'; कथा संग्रह से साभार, आयुष्मान पब्लिकेशन हाउस, नई दिल्ली 2018

14. डॉ. मो. हनीफ : ''ख्वाहिश'', कहानी, ''दर्द कहूँ या पीड़ां'; कथा संग्रह से साभार, आयुष्मान पब्लिकेशन हाउस, नई दिल्ली 2018
15. डॉ. मो. हनीफ : ''अपनों का दर्द'', कहानी, ''सलाखों में बंद'; कथा संग्रह से साभार, आयुष्मान पब्लिकेशन हाउस, नई दिल्ली 2019
16. डॉ. मो. हनीफ : ''स्पर्श'', कहानी, ''सलाखों में बंद'; कथा संग्रह से साभार, आयुष्मान पब्लिकेशन हाउस, नई दिल्ली 2019

-www.bohalshodhmanjusha.com Bohal Shodh Manjusha ISSN: 2395-7115
Impact Factor:8.642 January 2025 Page No. : 58-62
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

# हिंदी साहित्य में स्त्री-विमर्श की अभिव्यक्ति

**डॉ. बिंदु कनौजिया,** सहायक प्राध्यापक, हिंदी विभाग
प्रयाग महिला विद्यापीठ डिग्री कॉलेज प्रयागराज (उ.प्र.)

विमर्श का अर्थ- विचार, विवेचन, समीक्षा, परामर्श है। स्त्री जीवन संदर्भ में लिखा गया साहित्य स्त्री-विमर्श है। साहित्य समाज का दर्पण है। स्त्री और पुरुष समाज रुपी रथ के दो पहिये हैं। सृष्टि के आरंभ से ही सृष्टि के निर्माण और संचालन में नारी की महत्त्वपूर्ण भूमिका रही है। मानव जाति की सभ्यता एवं संस्कृति के विकास का मूल आधार नारी को ही माना जाता है।

सृष्टि की रचना में पुरुषों की तुलना में नारी का योगदान अधिक है। गर्भ धारण से लेकर संतान का जन्म एवं उसके पालन पोषण का कार्य स्त्री ही करती है। इसीलिए नारी को सृष्टि का आधार कहा गया है। आज नारी अपना स्वतंत्र अस्तित्व और महत्ता चाहती है। शिक्षा और आत्मर्निरता से उसका आत्मविश्वास बढ गया है। इसलिए वह पति को परमेश्वर नहीं बल्कि मित्र बनाना चाहती है। नारी विमर्श एक ऐसा आंदोलन है जो नारी को उसके अधिकारों के प्रति सचेत करता है।

स्त्री-विमर्श का मुद्दा आज के समय में बहुत महत्वपूर्ण है, स्त्री-विमर्श के प्रश्न में बहुत से नये आयाम जोड़े गये है, स्त्री मुक्ति जिसमें एक महत्वपूर्ण प्रश्न है, स्त्रियों ने अपनी आवाज उठायी है और उन पर प्रश्न चिन्ह लगाये हैं। जो केवल रूढ़ि रही है, उनका की औचित्य हमारे समाज में नहीं रहा उनको तर्क की कसौटी पर कसा है। स्त्री अस्मिता के प्रश्न में स्त्री जीवन के विविध पहलुओं राजनीति, परिवार, समाज, धर्म, राष्ट्र और संस्कृति अर्थव्यवस्था में उनकी सीमा का पुनःनिर्धारण की वकालत की जानी चाहिए। जो आज नारी की स्थिति है उसका कारण उनकी जैविका क्षमताओं से नहीं बल्कि समाज की संस्कृति, विचारधारा से है। जिसमें स्त्रियों को कमतर आँका गया है। स्वतंत्रता आंदोलन में भी महिलाओं ने बढ़-चढ़कर भाग लिया है। जिसमें सरोजनी नायडू का नाम प्रमुख है। भारतीय संविधान सभा में महिलाओं की भूमिका महत्वपूर्ण रही है।

स्त्री की मुक्ति के लिए वैश्विक और भारतीय स्तर पर अनेक सामाजिक परिवर्तन और आंदोलन हुए। जिससे महिलाओं में जागृति आई सबसे पहले शिक्षा की जरूरत है।

शिक्षा के द्वारा स्त्रियों को उनके महत्व के बारे में पता चला और वह अपने लिए हो रही असमानता को एक आवाज दे सकती है। कुछ स्त्रियों ने साहित्य लेखन कर महिलाओं के बारे में लिखा और समाज की सच्चाई दिखाई जिससे स्त्री विमर्श को एक हवा मिली और उनसे लोगों की विचारधारा में बदलाव आया। स्त्री-विमर्श का मुख्य मुद्दा लिंग ही रहा है। स्त्री-विमर्श आधुनिक युग की देन है, लेकिन इसका महत्व इतिहास में भी बराबर रहा है। प्रभा खेतान के अनुसार 'नारीवाद न मार्क्सवाद है और न पूँजीवाद स्त्री हर जगह है। हर वाद में है फैलाव में है मगर संस्कृति कि विस्तृत फलक पर आज भी वह वस्तुकरण की इस पारंपरिक प्रक्रिया को पुरुष दृष्टि से देखने और समझने की जरूरत है।' स्त्री-विमर्श पितृसत्तामक सोच को हटाकर स्त्री और पुरुष को समानता के रूप में देखता है।

स्त्री-विमर्श का उद्देश्य महिलाओं में चेतना, आत्मविश्वास और साहस पैदा करना है! जिससे महिलायें अपने आप को समझ सके और अपनी बात को बखूबी रख सके और अपने अधिकारों की माँग कर सके। समाज, परिवार उन्हें कहाँ-कहाँ छल रहा है। उसका पता लगा सके और उसका प्रत्युत्तर दे सके। मानसिक रूप से सुदृढ़ हो स्त्री अपने भीतर सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक परिवर्तन ला सके। भक्तिकाल में मीराबाई भी झूठी मान-मर्यादा को नहीं मानती थी। मीराबाई ने पर्दा प्रभा पर गहरी चोट की है। यदि परदा करना है तो अपने घर को ढक लो मैं तो बौरानी हूँ, मुझे पर्दा नहीं करना है। यह नारी का प्रथम अभिव्यक्ति है जो पर्दा प्रथा पर है। आज भी यह हमारे समाज में है। महिलाओं को बचपन से ही भेदभाव सहन करना होता है।

स्त्री-विमर्श ने हजारों वर्षों से चले आ रहे पितृसत्तात्मक समाज के सिद्धांतों को चुनौती दी है, और वे सिद्धांत पुरुष समाज द्वारा निर्मित थे। स्त्री विमर्श ने ही पितृसत्तात्मक सिद्धांतों में निहित उन प्रचंड अन्तर्विरोधों विरोधाभासों को सामने रखा है। जो स्त्री विरोधी थे। "पुरुष कभी भी स्त्री विमर्श को खुले मन से स्वीकृति नहीं देता सीमोन द वोउवार, बैटी करीडन, जूठिथ बदार, जूलिया क्रिस्टिवा, गायत्री चक्रवर्ती, स्वीपवाक आदि स्त्री लेखिकाओं ने उस पितष्क साहित्य-शास्त्र सिद्धांतों में इन अन्तर्विरोधों को सामने रखा है तथा पितृसत्तामक सिद्धांतों में निहित विरोधाभासों को तोड़ते हुए स्त्री-विमर्श को प्रासंगिक बनाया है।"[1] स्त्री विमर्श की जो वर्तमान स्थिति है। उसकी शुरुआत पश्चिम के नारी मुक्ति आन्दोलन से संबंधित है, बाद में नौकरी के क्षेत्र में घरेलू कार्यकलापों में, कानून संबंधों में और सांस्कृतिक प्रथाओं के साथ-साथ मूलभूत लैंगिक समानता के एक आमूल परिवर्तनकारी आन्दोलन के रूप में उभरकर आया है। "जब तक नारी केवल नारी है, व्यक्ति नहीं तब तक वह पुरुष की दासता के लिए अभिशप्त है।"[2] यह काम स्त्री विमर्श का है कि स्त्री को कैसे व्यक्ति बनना है। "जिस दिन समाज स्त्री शरीर का नहीं, उसकी मेधा और श्रम मूल्य देना सीख जायेगा सिर्फ

उस दिन स्त्री मनुष्य के रूप में स्वीकृत होगी।"[3] साहित्य समाज का दर्पण होता है। लेकिन जब साहित्य के द्वारा समाज में सकारात्मक बदलाव होने लगे तब साहित्य का उद्देश्य पूरा होता है। भारत में स्त्री विमर्श के प्रभाव में है और भारत में स्त्री जागरण का काल उन्नीसवीं शताब्दी नवजागरण आन्दोलन से शुरू हुआ जिसमें सती प्रथा, बालविवाह, बहुपत्नी प्रथा, पर्दाप्रथा, अशिक्षा, कन्या वध जैसी समस्याओं पर ध्यान केन्द्रित किया। जिसमें ईश्वरचन्द्र विद्यासागर, राजा राममोहन राय, स्वामी विवेकानन्द आदि ने शुरुआत की थी। नारी विमर्श पर आधुनिक साहित्य में बहुत लिखा गया है। जिसमें स्त्री लेखिकाओं ने बहुत सारे प्रश्न उठाए हैं। उन पर समाज को विचार करना होगा।

रामवृक्ष बेनीपुरी के रेखाचित्र व्यक्ति केन्द्रीय रहे हों, अपितु उनमें सामाजिक चेतना कूट-कूटकर भरी हुई होती है। उनके 'रजिया' रेखाचित्र से गुजरते समय तत्कालीन सामाजिक जीवन की कई तस्वीरें उभरती हैं। जैसे कि हमारे भारतीय समाज में व्यक्ति के नाम से ही उसकी जाति, धर्म, वर्ग, लिंग, व्यवसाय आदि की पहचान निर्धारित होती थी। इसके प्रभाव से रजिया का चरित्र भी बच नहीं पाया। रजिया यह एक मुस्लिम परिवार की लड़की थी। भारत में साधारणताः मुस्लिम समाज की स्थिति दयनीय, अविकसित और अशिक्षित वर्ग के रूप में रही है। यह समाज अपनी कमजोर आर्थिक स्थिति और कट्टरपंथी धार्मिक अनुशासन के कारण शिक्षा की अपेक्षा व्यवसाय से अधिक जुड़ा रहा है। इसकी प्रतीती रेखाचित्र पढ़ने से होती है, चूंकि रजिया को पढ़ाई का अवसर नहीं मिला और वह अशिक्षित रहकर अनायास ही इस अपने पारिवारिक व्यवसाय से जुड़ गई। रजिया के परिवार का पारंपरिक व्यवसाय चूड़ियाँ पहनाने का रहा है। इसीलिए उसकी पहचान एक चुड़िहारिन के रूप में होती है। चुड़िहारिन के व्यवसाय में वह कई तरह के सामाजिक अनुभवों से गुजरती है। जब बचपन में वह अपनी माँ के साथ रेखाचित्रकार के घर चूडियों लेकर गई थी, तब उसे छुआछूत के सामाजिक बंधन का पालन करना पड़ता है। उसकी माँ उसे यह कहकर आगे बढ़ने से रोक देती है कि बबुआ का खाना छू मत देना। तब तक तो वह यह भी नहीं जानती थी कि किसी के हाथ का खाना किसी के निकट पहुँचने से छू जाता है। यह हमारे समाज का सामाजिक यथार्थ है, जिसमें छुआछूत की अमानवीय रूढ़ि का पालन किया जाता रहा है। रेखाचित्रकार ने ऐसी अनिष्ट सामाजिक रूढ़ि पर इस प्रसंग के माध्यम से कड़ा प्रहार किया है। इतना ही नहीं, इस मानसिकता का भी चित्रण हुआ है जिसमें हिंदू लड़का मुस्लिम लड़की से विवाह करने की कल्पना भी नहीं कर सकता। यह हमारे सामाजिक विभाजन का सटीक चित्र प्रस्तुत करता है। सामजिक विभाजन का एक और प्रसंग प्रस्तुत रेखाचित्र में तब मिलता है। इसलिए रजिया जैसे खानदानी पेशेवालों को बड़ी

दिक्कत हो गई है। जाहिर है कि सामाजिक विभाजन भी हमारे समाज का कटू यथार्थ है। इससे सामाजिक एकता को ठेस पहुँचती और भाईचारे की भावना कम होती है।

रामवृक्ष बेनीपुरी ने प्रस्तुत रेखाचित्र में हमारे समाज की दमित, विलासी और सशकिति पितृसत्तात्मक मानसिकता का भी भंडाफोड़ किया है। रजिया चुड़िहारिन जब जवान होती है, तब उसके लिए कितने नौजवानों के दिल में कसमसाहट होती है। जब वह बहनों को चूड़ियाँ पहनाती है. तब कितने भाई तमाशे देखने वहीं एकत्र हो जाते हैं। उन्हें रजिया के प्रति आकर्षण खींच लाता है। जब वह बहुओं को चूड़ियों पहनाती है. तब उनके पतिदेव अपनी पत्निओं की कलाइयों को देखना छोड़कर रजिया की पतली उँगलियों को ताकते रहते हैं। स्पष्ट है कि हमारे पुरुष वर्चस्ववादी सामाजिक संरचना में स्त्री की ओर केवल उपभोग की दृष्टि से देखा जाता है। इससे भी बढ़कर वह स्त्री चरित्र को संशकिति नजरों से देखता है। रजिया का मजाक में यह कहना कि शादी के कई सालों बाद भी पति हसन उसका पीछा नहीं छोड़ता है, पुरुषों की संशकित मानसिकता को उजागर करता है। इसीलिए रेखाचित्रकार पुरुषों की कुंठित मानसिकता पर तीखी टिप्पणी करता हुआ दिखाई देता है।

स्त्री-विमर्श का बहुत बड़ा प्रश्न यह है कि विवाह संस्था में दोनों की बराबर साझेदारी रहे जिससे दोनों को निर्णय लेने का बराबर अधिकार हो। ऐसा न हो कि एक के विचार दूसरे पर थोपे जाए चाहे वो गलत हों या सही हों यदि निर्णय विचार- विमर्श के बाद हो तो ज्यादा अच्छा निर्णय ही लिया जायेगा। स्त्री लेखिका अनामिका अपने उपन्यास 'अवांतर कथा' में लिखती है। "कितनी भी तेज भूख हो सबके सामने हड़बड़ा के मत खाना कुड़-कुड़ी चीज मिले तो उसे दाल में डुबोकर....खाना नहीं तो सब हँस पड़ेंगे।"[4] यह भी एक तरह की घुटन है। जिसमें स्त्री को अपने ही घर में खाने की स्वतंत्रता नहीं है और स्त्री को बासी रोटी खाने को मिले जो बच गयी थी। यह भी एक महत्वपूर्ण प्रश्न है। जिसका समाज पर ध्यान नहीं जाता है। उसे केवल लज्जा, शर्म और मान-मर्यादा का पालन करना होता है।

चित्रा मुदगल जी अपने उपन्यास 'एक जमीन अपनी' में कहती है। "नारी अधिकार या स्त्री मुक्ति से आशय मानव माने जाने की आकांक्षा है। अतः नारी को केवल एक वस्तु की तरह न देखकर एक जीवित प्राणी समझा जाए और उसकी भावनाओं का ख्याल रखा जाए।"[5] लड़की समाज में इसीलिए उपेक्षित शोषित रही है, क्योंकि अपने घर में मात्र कर्त्तव्य होती है... कर्त्तव्य से उऋण हो उसे पराया मान लिया जाता है। हमारे समाज की सबसे बड़ी विडंबना यह है कि विवाह में लड़की का कन्यादान किया जाता है और कुछ दहेज देकर लड़की को हमेशा के लिए घर और जायदाद से पराया मान लिया जाता है। फिर वह हमेशा के लिए पति और ससुराल पर आश्रित हो जाती है और उसका शोषण हो सकता है। सरकार ने इसके लिए कानून बनाए है। लेकिन

धरातल पर यह कितना कारगर है। यह कहना कठिन है और आगे वह कहती है। "मैं वैवाहिक व्यवस्था को दो व्यक्तियों के साहचर्य और आत्मसम्मान पूर्ण साझेदारी के रूप में देखती हूँ।"[6] समाज में स्त्री और पुरुष एक गाड़ी के दो पहिये है, जब दोनों ठीक और बराबरी पर चलेंगे तभी समाज की तरक्की होगी। स्त्री विमर्श स्त्रियों को उपेक्षित से सशक्तिकरण की तरफ ले जाने का काम रह रहा है। स्त्री-विमर्श के प्रश्नों ने समाज को नई विचारधारा से सोचने के आयाम दिये है। जिससे समाज में एक नई ऊर्जा आयेगी जो केवल समानता पर आधारित होगी। स्त्री विमर्श में समय के साथ नये प्रश्न जुड़ते जा रहे है, उनको हल करना हमारा दायित्व है।

स्त्री विमर्श में महिलाओं को केंद्र में रखकर उनकी जागृति और अधिकार को महत्व दिया जाता है। स्त्रियाँ जो पहले से पीड़ित और शोषित थी, वे अपने आपको व्यक्त कर रही है। समाज को सच्चाई से अवगत करा रही है। स्त्री-विमर्श आज बहुत व्यापक क्षेत्र में आ चुका है। सती प्रथा, बाल विवाह, विधवा विवाह से शुरू होकर स्त्री-विमर्श आज पुरुष के समकक्ष समान अवसर, समान नौकरी, समान वेतन, यौन स्वतंत्रता, घरेलू कामकाज में स्त्री-पुरुष के बराबर योगदान पर पहुँच चुका है।

निष्कर्षतः भारतीय नारी ने न केवल स्वयं आत्म-विश्लेषण किया बल्कि अपनी परंपराओं और अपने रीतिरिवाजों के तहत अपनी अस्मिता की खोज की है। उसका यह विमर्श स्वतंत्रता, समानता की माँग करनेवाला है। इसीलिए कहा जा सकता है कि मानवता के विकासक्रम में स्त्री अधिक मानवीय है और सभ्यता और संस्कृत के विकास में उसका स्थान पुरुष से भी ऊँचा है। आज स्त्री स्वावलंबी आत्मनिर्भर बन गई है। उसका स्वाभिमान जागृत हो चुका है, अधिकारों के प्रति सचेत हो चुकी है। अतः नारी पुरुष के साथ समानतावाली माँग करती है। आज स्त्री विभिन्न क्षेत्रों में अपना नाम कमा रही है, साहित्य के क्षेत्र में भी स्त्री-लेखिकाओं ने सराहनीय योगदान दिया है।

**संदर्भ ग्रंथ :-**


1. कुमार राकेश, नारीपादी विमर्श, आधार प्रकाशन पंचकूला हरियाणा, सं.2004, पृ.75
2. रजवार डॉ. शीला, स्वातंत्र्योत्तर कथा साहित्य में नारी के बदलते संदर्भ, दिल्ली इस्टर्न बुक लिंकर्स, पृ.74
3. नसरीन तसलीमा, औरत के हक में, वाणी प्रकाशन दिल्ली, सं.1993 पृ.99
4. अवान्तर कथा, अनामिका, प्रकाशन किताबघर नई दिल्ली, पृ.87
5. डॉ. शशिकला त्रिपाठी, उत्तरशती के उपन्यासों में स्त्री, विश्वविद्यालय प्रकाशन वाराणसी, प्रथम सं.2006 पृ.90
6. एक जमीन अपनी, चित्रा मुदगल पृ.214



ईमेल- soniprofessor@gmail.com मो. 9454392278, 9415633697

-www.bohalshodhmanjusha.com Bohal Shodh Manjusha ISSN: 2395-7115
Impact Factor:8.642 January 2025 Page No. : 63-64
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

# बौद्ध धर्म में स्तूप का महत्व–भरहुत व साँची के विशेष सन्दर्भ में

**मौ0 सलमान,** शोधकर्ता,
**डा0 मनसूर अहमद सिददीकी,** असिस्टेंट प्रोफेसर,
प्राचीन इतिहास व संस्कृति विभाग, गांधी फ़ैज–ए–आम स्नातकोत्तर महाविद्यालय
शाहजहाँपुर (उ0प्र0)

**सारांश**
बौद्ध धर्म में स्तूप एक महत्वपूर्ण स्मारक है जो बुद्ध के जीवन और शिक्षाओं का प्रतीक है। बौद्ध धर्म में तथागत बुद्ध से लेकर आगे आने वाले महत्वपूर्ण भिक्षु आदि के धातु अवशेष सुरक्षित है। बौद्ध अनुयायी इन स्तूपों को पवित्र मानकर उनकी पूजा करते हैं स्तूप वरन भारत में ही नहीं विदेशों जैसे कोरिया, थाईलैंड, कंबोडिया आदि में विद्यमान है। जब भगवान बुद्ध का महापरिनिर्वाण हुआ था तो देश के विभिन्न 8 स्थानों पर उनके अस्थि अवशेष पर स्तूप बनाए गए थे स्तूप स्मृति के रूप में बनाये जाते थे इस शोध पत्र में बौद्ध धर्म के स्तूप विशेष रूप से साँची व भरहुत का अध्ययन किया जायेगा।

**मुख्य शब्दः–** स्तूप, बौद्ध, भिक्षु, पूजा, धातु, संत

## प्रस्तावना

बौद्ध धर्म में स्तूप एक पवित्र स्थान है जहां बौद्ध धर्म के संत व महत्वपूर्ण व्यक्तियों के अवशेष एवं अन्य महत्वपूर्ण वस्तुएं रखी जाती है। स्तूप का निर्माण बुद्ध के बाद शुरू हुआ और धीरे–धीरे यह बौद्ध धर्म का हिस्सा बन गया। सम्राट अशोक ने देश के विभिन्न स्थानों पर 84 हजार स्तूपो का निर्माण कराया। स्तूप शब्द का अर्थ होता है ढेर यह एक अर्ध गोलाकार टीला होता है जहां बौद्ध संतो व प्रमुख पुरूषों के धातु अवशेष रखे जाते है। स्तूप भी पांच प्रकार के होते हैं जिनमें शारीरिक, परिभौगिक, उद्देश्य, प्रतीकात्मक व मनौती आदि शामिल है ज्यादातर स्तूप ईटों के बने हुए हैं जिसमें सांची व भरहुत के स्तूप शामिल है स्तूप का निर्माण व रखरखाव बौद्ध समुदाय की एकता का प्रतीक है स्तूप की पूजा करना बौद्ध धर्म के मूल सिद्धातों में से एक है।

## साँची स्तूप

सांची का स्तूप मध्य प्रदेश के रायसेन जिले में स्थित है यहां पर तीन स्तूप है एक स्तूप बड़ा है तथा दो छोटे हैं प्रथम में तथागत बुद्ध, द्वितीय में अशोक कालीन धर्म प्रचारक वही तृतीय में बौद्ध धर्म के प्रमुख सारिपुत व मौगदलायन की अस्थि अवशेष सुरक्षित है। स्तूप का निर्माण सम्राट अशोक ने करवाया था स्तूप का व्यास 126 फुट व ऊंचाई 54 फिट है सातवाहनों के समय यहां तोरण का निर्माण किया गया तोरण महात्मा बौद्ध के जीवन व जातक कथाओं के चित्रों से परिपूर्ण हैं स्तूप के तोरण पर विभिन्न प्रकार की आकृतियां जैसे सिंह, हाथी, धर्मचक्र उत्कीर्ण है ऐतिहासिक चित्रों में कौशल नरेश प्रसेनजीत का बुद्ध से भेंट करना, राजा शुद्धोधन का बाहर निकल कर बुद्ध का स्वागत करना, अशोक का बोधि वृक्ष के पास जाना शामिल है। बुद्ध के जीवन की विभिन्न घटनाओं का इसमें चित्रण किया गया है ऐसा माना जाता है कि इस स्थल का दक्षिण द्वार पहले बन गया था तथा अन्य द्वार बाद में जोड़े गए। भूमितल पर स्तूप के चतुर्दिक पत्थर का फर्श है जिस पर गोल वेदिका है वेदिका सादी व अलंकर रहित है यह स्तूप अपनी वास्तु से अधिक अलंकरणों के लिए प्रसिद्ध है। शुंग वंश के राजा

पुष्यमित्र शुंग ने इसको नष्ट कर दिया था बाद में उसके पुत्र अग्निमित्र ने इसा पुनःनिर्माण कराया था यूनेस्को ने 1919 में विश्व धरोहर में शामिल किया।

**भरहुत स्तूप**

भरहुत स्तूप शुंगकाल की कला का सर्वोत्तम नमूना है यह स्तूप मध्य प्रदेश के सतना जिला के भरहुत गांव में स्थित है। भरहुत स्तूप का निर्माण सम्राट अशोक ने करवाया था परन्तु बाद में के समय में शुंगों ने इसका पुर्ननिर्माण कराया था इसके अवशेष आज उस स्थान पर नहीं है इसके तोरण का एक भाग कोलकाता संग्रहालय व प्रयाग में सुरक्षित है। 1873 ई0 में कनिघम महोदय ने इसको खोजा था यह उस समय पूर्ण रूप से नष्ट हो गया था केवल एक भाग 10 फिट लंबा तथा 6 फिट ऊंचा ही शेष रह गया था। भरहुत स्तूप ईटों से बना हुआ है इसकी वेदिका में लगभग 80 स्तंभ है भरहुत स्तूप की वेदिक, स्तंभ तथा तोरण पटरो पर उत्कीर्ण मूर्तियां महात्मा बौद्ध के जीवन की घटनाओं, जातक कथाओं को प्रदर्शित करती है। यश–यक्षिणियों में कुबेर, चूलकोका, चन्द्रा, सुचिलोम आदि की आकृति खुदी हुई है। एक दृश्य में कौशल नरेश प्रसेनजित को रथ में बैठे हुए तथा दूसरे दृश्य में मगध नरेश अजातशत्रु को तथागत बुद्ध की वंदना करते हुए दिखाया गया है इसमें बुद्ध की मूर्ति कहीं नहीं मिलती अपितु उनके  अंकन धर्मचक्र, बोधि वृक्ष, चरण–पादुका आदि प्रतीक चिन्ह मिलते हैं यूनेस्को ने इसे सन 1989 में विश्व धरोहर स्थल में शामिल किया।

**उद्देश्य**

अध्ययन का उद्देश्य प्राचीन भारतीय परंपरा को आधुनिक भारतीय संदर्भ में उपयोगी सिद्ध करना है।

**निष्कर्ष**

स्तूप बौद्ध धर्म का एक महत्वपूर्ण हिस्सा है जो बुद्ध के जीवन व शिक्षाओं का प्रतीक है स्तूप का ऐतिहासिक विकास सांस्कृतिक महत्व और बौद्ध धर्म में भूमिका इसे एक महत्वपूर्ण स्मारक बनाता है।

**संदर्भ**


1. अहिरवार, रामकुमार–बौद्ध धर्म का इतिहास
2. बापट, बीपी–बौद्ध धर्म के 2500 वर्ष
3. श्रीवास्तव के सी–प्राचीन भारत का इतिहास तथा संस्कृति
4. दोरजी, पेमा–स्तूप व उसकी तकनीक
5. उपाध्याय, वासुदेव–प्राचीन भारतीय स्तूप गुहा एवं मन्दिर
6. Phramaha Jongyut Kittiyutto, (2024) Educational Administration: Theory and Practice 30 (6), 304-311
7. Young-jae Kim (2024) from stupa to pagoda Religion 15 (6),640, 2024

www.bohalshodhmanjusha.com Bohal Shodh Manjusha ISSN: 2395-7115
Impact Factor:8.642 January 2025 Page No. : 65-67
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

# समकालीन साहित्य और भूमंडलीकरण :किन्नर-विमर्श

**प्रो. सत्यनारयणप्पा,** सह प्राध्यपक,
नागार्जुना कालेज आफ़ मेनजमेंट स्टडिज, चिक्कमरलि,
चिक्कबल्लापुर कर्नाटक राज्य-562101

भूमिका :

मनुष्य ऐसा जिज्ञासु और बुद्धिजीवी प्राणी है जो अपनी जिज्ञासा को शांत करने के लिए निरंतर खोज व शोध करता रहता है। मानव की यह जिज्ञासु प्रवृत्ति जन्मजात होती है। साहित्य के क्षेत्र में चलने वाला अनुसंधान एक समाज के यर्थाथ को लेकर चलता है। साहित्यिक के दृष्टिकोण से आज अनेक विमर्शों की चर्चा की जा रही है। जैसे-स्त्री विमर्श, दलित विमर्श, अल्पसंख्यक विमर्श, आदिवासी विमर्श इत्यादि, इन सबके अंतर्गत समाज के अनेक उपेक्षित वर्गों पर साहित्य में चिंतन हो रहा है, किन्तु समाज बहिष्कृत, लिंग निरपेक्ष किन्नर समुदाय के विषय में कोई बड़ी चर्चा नहीं दिखाई दे रही है।

साहित्य के किसी भी विषय को जानने से पहले उसकी पूरी अवधारणा व उसके प्रत्येक प्रतिमान से परिचित होना पडत्ता है। हिजडों/ तृतीय लिंगियों के बारे में मेरी अवधारणा उन्हे दूर से देखने, सडकों के सिग्नल पर भीख मांगते हुए, घरो में संतान प्राप्ति के अवसर पर तथा विवाह आदि शुभ संस्कारों पर नाचते-गाते भीख मांगते। रुपये पैसे लेकर झगडा झंझट में उलझने में, रेलगाडियों में चढकर सुंदर किशोर वालकों को छेडकर पैसा ऐंठते ही दिखाता

किन्नर शब्द का अर्थ बताते हुए डा. पुनीत बिसारिया कहते है "किन्नर शब्द मूल रूप से संस्कृत से आवा है। यह एक तत्सम और पुल्लिंग शब्द है, जो 'कि और 'नर इन दो शब्दों के मेल से बना है। संस्कृत में 'किं' अर्थ है क्या और 'नर' का अर्थ है आदमी। शब्द में ही यह प्रश्न छिपा है कि क्य ये नर है।

आज" किन्नर"शब्द कई अर्थों में प्रचलित है। शब्दकोशों में भी इसके कई अर्थ प्राप्त होते है।

आधुनिक अर्थः तृतीय लिंग आज हिन्दी के किन्नर शब्द का तात्पर्य हिमाचल की जनजाति से नहीं है बल्कि किन्नर शब्द उस मानव वर्ग के लिए प्रचलित है जो पूर्ण रूपेण न स्त्री है न पुरूष । वस्तुतः जिसे जन सामान्य की भाषा में 'हिजडा' कहा जाता है। हिजडा शब्द में एक विशिष्ट भाव-भंगिमा, आचार-व्यवहार, रहन-सहन, चाल-ढाल वाले इंसानों की छवि उभर आती है जिन्हें परिमार्जित भाषा में 'किन्नर' कहा जाता है।

"किन्नर' शब्द तृतीय लिंग के लिए प्रचलित हो गया है। किन्नोरे प्रदेशियों को आजकल 'किन्नौर' कहते है। संविधान में भी वर्तमान किन्नौर में रहने वाले निवासियों को 'किन्नौर और किन्नर जनजाति का नाम दिया गया है।" इसी संदर्भ में यह उल्लेख करना अनुचित नहीं होगा कि 'किन्नर' शब्द के तृतीय लिंगियों के लिए प्रयुक्त होने से, किनौरे प्रदेश निवासी किन्नरों में यथेष्ट विरोधी प्रतिक्रियाएं परिलक्षित हुई। चूंकि किन्नौर-प्रदेश निवासी अपने नाम के पिछे 'किन्नर' लगाते थे (जैसे बेलीराम किन्नर)। वैसे ही तृतीय लिंगी भी अपने नाम के पिछे 'किन्नर शब्द का प्रयोग करते है जो उनका परिचय देता है। इसी कारण किन्नोर प्रदेशी इसे अपमानजनक और अपनी पहचान खोने का कारण मानते हैं।

आज तृतीय लिंगी 'हिजडों' की जो आवस्था है वह केवल अशिक्षा। यह बहुत बडा कारण है, पहले का समय कुछ और था, जब मानवता से बडा कोई धर्म नहीं था, लोगों में यह भावना थी कि ईश्वर ने उनपर कुछ कृपा नहीं की तो क्या हुआ हम सबकी इस समाज की जिम्मेदारी है, उनको दो वक्त की रोटी देने की मगर यह उनको भीख ना लगे। इसलिए जब वह हमारी खुशियों में शामिल होते तब हम शक्ति के अनुरूप उनको कुछ देते थे, समय बदला, भवनाए बदली, समाज भी बदला और हिजडे भी। आज ऐसा समय आ गया कि हम उनकी उपस्थिति को बिल्कुल पसंद नहीं करते।

*आधुनिक हिन्दी उपन्यासो में चित्रित भारतीय किन्नर-जीवन और समाज व कानून पर उनका प्रभाव :-

यह कहा जाता है की हिन्दी साहित्य और समाज की मानसिकता में अभी किन्नर विमर्श, को लेकर बेहद अपरिपक्व तथा पूर्वोग्रहपूर्ण स्थिति में है समाज की वैचारिकता। अभी इन्हें स्वीकार करने में हिचक रही है फिर भी यह तो मानना ही होगा कि दिन प्रतिदिन खुल रहे और विकसित हो रहे आधुनिक सामान्य वर्ग समाज ने अब इन्हें भी थोडा स्पेस देना शुरु कर दिया है और इसका बहुत कुछ श्रेय उन हिन्दी साहित्यकारों को जाता है जिन्होंने

लम्बे समय तक साहित्य में किन्नरो की दशा के बारे में छाई चुप्पी को तोडा और इस निषिद्दध वर्ग के दुख- कष्ट-संघर्ष कों सबके सामने लाने की हिम्मत की। जैसे कि उल्लेख किया जा चुका है कि अतित के साहित्य में 'पान्डेय बेचन शर्मा उग्र' की कहानियों में जिन लोंण्डेबाजो का उल्लेख मिला है वे पहले किन्नर थे मुख्य चरित्र के रूप में चित्रित नहीं है। किन्तु हिन्दी साहित्य में समकालीन कुछ कथाकारों ने 'त्तिय लिंगी' जीवन की और गंभीरता से ध्यान दिया और अपने उपन्यासों में थर्ड

जेडंर के जीवन के विश्लेषित करते हुए बहुत कुछ लिखा, जिसमें उनकी जैविक संरचनाओं के भिन्न-भिन्न पहलुओं को सामने लाने क प्रयास किया।

वर्ष 2002 में प्रकाशित नीरजा माधव का उपन्यास 'यमदीप' हिन्दी सहित्य जगत में हिजडों पर रचित पहला स्वतंत्र उपन्यास माना जाता है। यह उपन्यास लेखिका नीरजा माधव को एक ओर तो स्त्री-लेखक, दलित लेखक की भीड से अलग करता हे तो दूसरी ओर अस्मिता

और शोषित- उपजे वर्ग के उन अनछुए पहलुओं को भी सामने रखता है जिनकी और समाज तक कोई सजग लेखनी उन्मुख ही नहीं हुई समाज की दृष्टि इस ओर आकर्षित करता है।
ऐसी स्थिति में समाज की मुख्य धारा में जोडने, उनको भी एक सम्मान जीवन देने के लिए हमे ऐसा करना होगा कि वे अपना पेट भरने के लिए मनोरंजन या वसूली के लिए मजबूर ना हो। हमें उन्हें शिक्षा और घरेलू रोजगार के अवसर देने होंगे।
युरोप में इन हिजडों को बिलकुल आम आदमी की तरह ही देखा जाता है। हम सबकी तरह स्कूल जाते है, नौकरी करते है। क्या हम युरोप वालों से एक अच्छी आदत नहीं ले सकते, यह लोग भी हमारी तरह इंसन ही तो है।
इस प्रबंध में बहुत प्राथमिक स्तर पर इस समुदाय के साथ जुडे कई रूढियों और अंधविश्वासों का विश्लेषन किया है। उनकी बुनियादी मानव अधिकारों के संबंध में बातचित की है। इसके साथ ही जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में उनके विकास संबंधी उपायों को बतलाने और समुदाय के लोगों पर अकल्पनीय, भीषण हिंसा अत्याचारों, उनकी समाज में स्थिति को उजागर करते हुए यह बताया है कि यह समुदाय विभिन्न स्तरों पर समाज के विभिन्न वर्गों से एक मानसिक या शारीरिक स्तर पर, शोषण दुरुपयोग, सहानुभूति की कमी के अधिन किया गया है। कुल मिलाकर सामान्य लोगों में अधिक संवेदनशीलता और सहानुभूति पैदा करने की दिशा में समर्पित किया है।

निष्कर्ष :

किन्नर आधुनिक अर्थ, किन्नर का प्पर्याय और प्रचलित अर्थ 'हिजडा' नाम पड़ने के संभाव्य कारण उसकी परिभाषा, अवधारणाएं पर प्रकाश डाला गया है। थर्ड जेण्डर समुदाय के बारे में आज जब हम इस समाज को दूखते है तो पहला सवाल उठता है कि ये ऐसे क्यों है? ईश्वर ने इन्हें ऐसा क्यों बनाया है?यभी हमारे समाज की ही जेंडर आधारित निर्मिता का एक रूप है। जिस तरह समाज में स्त्री और पुरुष दो संरचनाएं मौजूद है और उनके अनुरूप उनका व्यवहार, क्रियाएं और प्रतिक्रियाएं हैं। उसी तरह समाज में इनके प्रति भी पूर्व धारणाएं मौजूद है। मैं ने इस में यह बताने का प्रयास किया है कि किन्नर से लेकर उनके भविष्य पर दृष्टि डालकर समाज का ध्यान इस पीडित वर्ग की ओर आकर्षित करे ताकि वर्षों से इनकी मानसिक, आर्थिक एवं सामाजिक दशा, सहते किन्नरों का दर्द
समझ सके।

Phone No:-8431758366 Email.ID: sathyappa156@gmail.com

www.bohalshodhmanjusha.com Bohal Shodh Manjusha ISSN: 2395-7115
Impact Factor:8.642 January 2025 Page No. : 68-71
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

# गिरिजा कुमार माथुर के काव्य में अस्वीकृति–बोध की अभिव्यक्ति

**डॉ. चोवाराम यदु,** सहा. प्राध्यापक (हिंदी),
दाऊ कल्याण सिंह सोनवानी महाविद्यालय जी जामगाँव, जिला–धमतरी (छ.ग.) 493770

**अस्वीकृति**–बोध का अर्थ है अस्वीकार करना अर्थात् स्वीकार नहीं करना। दूसरे शब्दों में कहा जा सकता है कि स्वीकार न करने, प्राप्त न करने, विचार न करके या साफ इंकार करके दूर हो जाना ही अस्वीकृति है। गिरिजा कुमार माथुर 'तारसप्तक' के युवा कवि हैं, उनकी कविताओं में विविधता दिखाई देती है। वे प्रेम और सौंदर्य के कवि के रूप में चीन्हें जाते हैं। कवि की कविताओं में वैयक्तिक जीवन की अनेक निजी बातें भी शामिल हैं। प्रेम, ममता, दाम्पत्य जीवन, व्यवहार, परिवार, दुःख, रोग आदि बातें मन को झकझोर कर रख देती हैं। यही सब कवि माथुर के साथ हुआ है। वहीं उनकी कविताएँ पारिवारिक, सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक, साहित्यिक आदि विविध परिस्थितियों से अवश्य प्रभावित रही है। कहा भी जाता है 'जैसे खाओगे अन्न वैसा होगा मन', 'जैसी पीओगे पानी वैसी होगी वाणी'। यह बातें अक्षरशः कवि की कविताओं में अभिव्यक्त हुई है। कवि का जीवन संघर्षपूर्ण रहा, जिनमें प्रमुख है– बचपन से ही माँ का प्यार न मिलना। वास्तव में जो मातृ–प्रेम से वंचित हो, वही व्यक्ति मातृ–प्रेम का महत्व समझ सकता है। कहा भी जाता है– 'जाके पैर न फटे बिवाई सो का जानै पीर पराई'। माँ के प्रेम से वंचित होना जिसका पछतावा कवि माथुर को जीवन भर रहा, जो उनके काव्य का विषय बना। कवि बाल्यावस्था से आगे जब वे कैशोर अवस्था में पहुँचे तो वहाँ भी उन्हें प्रणय में असफलता ही मिली।

साहित्य समाज का दर्पण होता है अतः साहित्य के माध्यम से कवि समाज को जगाने का कार्य करता है, कवि माथुर भी इनसे अछूते नहीं रहे। वे अपनी रचनाओं के माध्यम से सामाजिक चरित्र में उत्थान हेतु प्रयत्नशील दिखाई देते हैं। उनका विश्वास है कि एक ओर हमारा समाज विकास की ओर आगे बढ़ रहा है, वहीं हमारे सामाजिक चरित्र में लगातार गिरावट आ रही है, जिससे पतन हो रहा है। यह बातें उनकी कविताओं में खुलकर अभिव्यक्ति पाई है। हमारे धर्म–ग्रंथों में यह कहा गया है 'सत्यमेव जयते' अर्थात् सत्य की जय होती है, लेकिन वर्तमान परिवेश इतना बदल चुका है कि 'सत्यमेव हारे' कहें तो कोई अत्युक्ति नहीं होगी। देश जब गुलाम था तब चहुँओर भ्रष्टाचार, लूटपाट, कालाबाज़ारी का बोलबाला था, उस समय यह विश्वास हो गया कि जैसे ही देश आज़ाद होगा हमें सभी प्रकार की स्वतंत्रता मिल जाएगी अर्थात् भ्रष्टाचार, लूटपाट, कालाबाज़ारी समाप्त हो जाएगी, लेकिन यह दिन–प्रति–दिन सुरसा की तरह और भी बढ़ती जा रही है।

समाज में चहुँओर बेईमानों का राज है यही कारण है कि सत्य और ईमानदारी के पथ पर चलने वालों के बीच अनेक मुसीबतें हैं। समाज में बुद्धिजीवी वर्ग के बिकाऊ प्रवृत्ति पर कवि ने तीखा प्रहार किया है। कवि माथुर वर्तमान व्यवस्था से संतुष्ट नहीं है। कहा तो जाता है कि लोकतंत्र में जनता का शासन होता है, लेकिन ये केवल कहने मात्र का है। देश की राजनीति, लोकतंत्र, समाजवाद आदि पर अस्वीकृति–बोध के भाव परिलक्षित होते हैं। तभी तो कवि राजनीति, लोकतंत्र और समाजवाद को केवल एक शब्द माना है। एक अच्छा साहित्यकार समाज से अवश्य प्रभावित होता है। वह समाज के सुख– दुःख को करीब से देखता–परखता है, अनुभव करता है और अव्यवस्था को देखकर विरोध भी करता है। यही सब कवि माथुर के साथ हुआ है।

अस्वीकृति–बोध, समाज, राजनीति, वातावरण, परिवेश, साहित्य, लोकतंत्र, राजनेताओं, स्वतंत्रता, इतिहास, अंधेरा, सुनसान, उदासी, निराशा, पारिवारिक, सामाजिक, धार्मिक, सांस्कृतिक, अनुभूति, काल्पनिक, प्रमाणिकता, असफलता, नैतिक पतन, चरित्र हनन, अंधविश्वासों, रूढ़ियों, परंपरागत, संस्कारों, पाखण्डों, आस्था, अनास्था।

कवि माथुर ने जीवन में जो भोगा है, यही भोगा हुआ सत्य यथार्थ के रूप में काव्य में अभिव्यक्त हुआ है। बाल्यावस्था से जीवन–पर्यंत जो पाने का हकदार था वह भी नहीं मिला, इन्हीं तमाम भावों के कारण उसके मन में अस्वीकृति के भाव पनपने लगे। कवि माथुर आशा–विश्वास के कवि होते हुए निराशा के साथ अस्वीकृति–बोध को कमतर नहीं अपितु सबल रूप में अभिव्यक्त की है। अस्वीकृति–बोध के विषय में कैलाश बाजपेयी ा कथन सर्वथा उचित प्रतीत होता है– ''उनके मन में बराबर यह द्वंद्व चलता रहता था कि यह स्नेह सचमुच क्या उनका अधिकार है और इस द्वंद्व का परिणाम यह हुआ कि जो कुछ उन्हें उपलब्ध था उसे वे अस्वीकार करने लगे और अप्राप्त के लिए छटपटाने लगे।''[1] कवि माथुर ही नहीं किसी भी कवि के जीवन को प्रभावित करता है, ये बातें हैं– वातावरण और परिवेश। माथुर का जन्म ठेठ देहात में हुआ था, जहाँ अँधेरा, सुनसान, उदासी, विरानगी के मध्य उनका जीवन बीता। कैलाश बाजपेयी का कथन उल्लेखनीय है– ''टूटे खपरैल, सीले गलियारे, धुप्प अँधेरा, एकदम सुनसान परिवेश और उदासी यह था उनके बचपन का वातावरण..... उनकी आत्मा विद्रोह करती थी, किंतु आंतरिक भय के कारण वह इन सबके प्रति विद्रोह व्यक्त करने में असमर्थ था।''[2] इस प्रकार प्रारंभ से ही माथुर कई चीजों को अस्वीकार करते थे और यही अस्वीकृति बाद में उनकी कविताओं में समा गया।

कवि माथुर के जन्म के बाद उनकी माँ ऐसी बीमार हो गई कि तैंतीस साल तक चल–फिर सकने में असमर्थ रही। यही तमाम प्रभाव के कारण अस्वीकृति–बोध होने लगा। माथुर जी का परिवार बड़ा था, जिसमें उनके पिताजी सहित तीन भाई थे, लेकिन विडंबना यह थी कि इस परिवार में गिरिजा कुमार माथुर अकेले पुत्र थे। यही कारण है कि सभी का स्नेह उन्हें मिलता था, लेकिन वे इस स्नेह से नाखुश थे। वे बार–बार यह सोचते थे कि मैं इस स्नेह का अधिकारी नहीं हूँ। इस प्रकार उनके मन में द्वंद्व लगातार चलता रहा, जिसका परिणाम यह हुआ कि उन्हें जो कुछ मिला था उसे वे स्वीकार न करके अस्वीकार करने लगे और जो अप्राप्त था उसे पाने के लिए सदैव छटपटाने लगे। 'मंजीर' काव्य–संग्रह में द्वंद्व का चित्रण सरलता से देखा जा सकता है– ''तुम कैसे अद्वितीय हो, ओ मेरे साधक, जो तुम्हें प्राप्त हो सकता, उसे त्यागते हो... जो प्रिय तुमको, उसके प्रति भूले रहते हो, जो खो जाता, तुम मोती उसे मानते हो।''[3]

माथुर जी बहुआयामी प्रतिभा संपन्न कवि के रूप में दिखाई देते हैं। कवि माथुर के जीवन में एकरूपता न होकर विविधता के चलचित्र दिखाई पड़ती है। सही मायने में देखा जाए तो कवि माथुर के व्यक्तित्व निर्माण में विविध स्थान, विविध परिस्थितियाँ एवं विविध विचारधाराओं के गहरे प्रभाव परिलक्षित होते हैं। उनके हृदय में स्नेह की तरलता है, तो वहीं दूसरी ओर विद्रोह की आग भी है। एक ओर त्रस्त और उत्पीड़ित मानव के उत्थान के लिए असीम करुणा की अभिव्यक्किति हुई है, वहीं अन्याय और शोषण के प्रति आक्रोश भी है।

कवि माथुर की कविताओं में आधुनिक भाव–बोध की सफलतम अभिव्यक्ति परिलक्षित होती है। वे सही मायने में आधुनिक भाव–बोध के महत्वपूर्ण कवि माने जाते हैं। उनका काव्य–संसार अत्यंत व्यापक है। वे लंबे समय तक काव्य–यात्रा करते रहे। उनके काव्य का विषयवस्तु काल्पनिक न होकर यथार्थ की अभिव्यक्ति है। उन्होंने स्वयं भोगा है तथा दूसरों को भोगते हुए देखा है, जिसमें अनुभूति की प्रमाणिकता, सरलता, सहजता, स्वच्छता के साथ परिलक्षित होती है। बचपन में माँ का प्यार न मिलना, किशोरावस्था में प्यार में असफलता, प्रतिभा के बाद भी मनचाहा नौकरी न लगना, अपना ही नहीं और भी कई उदाहरण स्वयं से तथा मध्यवर्गीय समाज से देखे थे। इन तमाम परिस्थितियों के परिणाम स्वरूप उनके मन में अस्वीकृति–बोध का उदय हुआ। कवि माथुर मानव–जाति के विकास–पथ को सर्वोपरि मानते हैं। विजय कुमारी का कथन दृष्टव्य है– ''समाज के दलितों, पीड़ितों के प्रति कवि ने सच्ची सहानुभूति व्यक्त की है और शोषकों के नाश की कामना की है। मानव पर होने वाले अत्याचारों तथा युद्धों में होने वाले नरसंहार का कवि ने जहाँ विरोध किया है, वहीं चारों ओर फैले हुए अंधकार में मानव के नूतन विकास की आस्था भी व्यक्त की है।''[4]

बहुप्रतिभा संपन्न साहित्यकार कवि माथुर के पास योग्यता की कोई कमी नहीं थी, योग्य होते हुए भी उनकी नियुक्ति प्रोफेसर के रूप में नहीं हुई। जब नौकरी नहीं लगी तो स्वाभाविक रूप से उनके विचारों में बदलाव आया और यही बदलाव अस्वीकृति–बोध के रूप में दिखाई पड़ता है। इस संबंध में उन्होंने कहा है– ''मेरी तुलना में कम योग्यता होते हुए भी जिनकी पहुँच थी, प्रभाव था, पैरवीकार थे, दोनों जगह उनकी ही नियुक्ति हुई। अन्यायी व्यवस्था तंत्र के पक्षपात और संवेदनाशून्यता का यह मेरा कड़वा अनुभव था। तब

से लेकर जीवन भर हर जगह, हर कदम पर विकृत–तंत्र का यही अन्याय, प्रतिभा की अवहेलना, पक्षपात का यही खेल देखता रहा हूँ।''[5] यह स्वाभाविक ही है कि जो उपेक्षा का दंश कवि ने स्वयं देखा, परखा और अनुभव किया। इससे उनके मन में एक नया बदलाव आया और वह बदलाव अस्वीकृति–बोध के रूप में परिलक्षित होता है।

अस्वीकृति–बोध की सफल अभिव्यक्ति के लिए कवि माथुर प्रसिद्ध रहे हैं। उनके अधिकांश काव्य–संग्रहों में अस्वीकृति–बोध के भाव स्पष्ट रूप से झलकता है। उन्होंने सामाजिक विसंगतियों को दूर करने का अथक प्रयास किया है, वहाँ पर अस्वीकृति–बोध के माध्यम से भावों को व्यक्त किया है। इस संबंध में अजय अनुरागी के विचार उल्लेख्य है– ''गिरिजा कुमार माथुर ने परंपरागत रूढ़ियों, संस्कारों, पाखंडों, अंधविश्वासों तथा समस्त अवरोधक तत्वों से मुक्ति के स्वर बटोरे।''[6] कवि माथुर की कविताओं में ग्राम, नगर, महानगर, जीवन में व्यक्ति के साथ घटित होने वाली घटनाओं के कारण रिश्तों में जो परिवर्तन आ रहा है, ऐसी ज़िंदगी का यथार्थ वर्णन हुआ है। विशेषकर मध्यमवर्गीय जीवन की त्रासदी, लघुमानव की पीड़ा, अभाव से भरी हुई समस्याओं को लेकर रचना की है। ऐसी कविताओं में अस्वीकृति–बोध के स्वर दिखाई देते हैं।

'साक्षी रहे वर्तमान' काव्य–संग्रह में ईश्वर के प्रति अस्वीकृति दिखाई देता है। कवि का कथन उल्लेखनीय है– ''इसी तरह/कोई भी उसे नाम दो/हर बार/नयी नयी शक्लें धर वह पिशाच/बलि लेने आता है/हर बार/लोगों को मेढ़ों में बदल जाता है।''[7] इतना ही नहीं 'पशु परम्परा' शीर्षक में कवि ने इतिहास को झूठा कहा है। यह विचार निश्चय ही कवि के नवीन दृष्टि–बोध का परिणाम है। उनका यह मानना है कि इतिहास की कई बातें ऐसी भी हैं जो मानव के विकास में सहायक न होकर बाधक होता है। यही कारण है कि उन्होंने मानव के संपूर्ण विकास को महत्व देते हुए इतिहास को झूठा कहा है। उदाहरणार्थ ये पंक्तियाँ उल्लेख्य है– ''अब तक का लिखा इतिहास सब झूठा है। अब शुरू होगा/इतिहास हर चीज का/लोगों ने पिछली इमारतें गिरा दी।''[8]

आधुनिक–बोध के कवि माथुर आधुनिकता से प्रभावित है, यही कारण है कि उन्होंने कई रूढ़ियों का विरोध किया है। यही विरोध अस्वीकृति–बोध के रूप में चित्रित हुआ है। हमारे धर्म–ग्रंथों, वेद–पुराणों में देवताओं को अमर कहा गया है, लेकिन कवि ने देवताओं के मरने का ऐलान 'लटके हुए लोग' शीर्षक की कविता में किया है– ''देवता सब मर चुके/लाखों किसम के भूत/हर एक के पीछे लगा चुके।''[9] कवि माथुर अस्वीकृति–बोध के माध्यम से सामाजिक चरित्र में उत्थान हेतु प्रयत्नशील दिखाई देते हैं। वे यह स्वीकार करते हैं कि हमारा समाज एक ओर आगे तो बढ़ रहा है, लेकिन हमारे सामाजिक चरित्र में विकास न होकर गिरावट आ रही है, जिससे उत्थान न होकर पतन ही हो रहा है। प्राचीनकाल से हमारे सद्ग्रंथों ने यह बातें कही गई हैं कि 'सत्यमेव जयते' अर्थात् सत्य की जय होती है, लेकिन आज विडंबना है कि सत्य दण्डनीय है, अपराधी है। इस संबंध में भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने 'अंधेर नगरी' में लिखा है– 'साँच कहै तो पनही खावै, झूठे बहु विधि पदवी पावैं।' यह कथन अक्षरशः समाज में देखने को मिल रहा है, जिसका कवि ने विरोध किया है। 'साक्षी रहे वर्तमान' काव्य–संग्रह की ये पंक्तियाँ उल्लेखनीय हैं– ''सदा डरते हैं प्रखरता से/जहाँ सच्चाई दंडनीय हैं/सही बात कहने का साहस/संगीन अपराध है।''[10]

आस्था एवं विश्वासवादी कवि माथुर को पूरी आस्था एवं विश्वास है कि आजादी के बाद भ्रष्टाचार, लूटपाट, कालाबाज़ारी जैसी सुरसा का अंत हो जाएगा, लेकिन यह अंत न होकर और अनंत हो रहा है। आज समाज में जिस बुद्धिजीवी वर्ग को महत्व देते हैं, उसी वर्ग में बिकाऊ प्रवृत्ति दिखाई देती है। ऐसे बुद्धिजीवी वर्ग पर तीखे प्रहार में अस्वीकृति–बोध का भाव चित्रित हुआ है। समाज में चहुँओर बेईमानों का राज चल रहा है, यही कारण है कि ईमानदारी के पथ पर चलने वालों के बीच अनेक मुसीबतें हैं। सरकारी कर्मचारियों की कामचोरी की प्रवृत्ति भी आम बात हो गई है, जिसकी खुली अभिव्यक्ति 'अधनंगा आदमी' कविता में दृष्टव्य है– ''दफ्तर में कामचोर अफसर में/घिस्सैल क्लर्क में/कमेटियों की बेहिसाब चक्की में/पिसती रही देश में।''[11]

कवि माथुर की काव्य–यात्रा स्वतंत्रता के पूर्व एवं स्वतंत्रता के बाद दोनों रूपों में दिखाई देती है। स्वतंत्रता के बाद की अनेक कविताओं में आशा–निराशा, हर्ष–विषाद, व्यवस्था–अव्यवस्था आदि अनेक रूपों में दिखाई देते हैं। 'मैं वक्त के हूँ सामने' काव्य–संग्रह की कविता में अस्वीकृति–बोध के स्वर स्वतंत्रता के

बाद आज़ादी के नारे के रूप में इस्तेमाल करने वाली राजनीति के प्रति दिखाई देती है– ''सोच रहा हूँ/क्या आज़ादी है मेले–ठेले का नाम/सिर्फ तमाशा है परेड का ? सही झाँकियों का अभिराम ? आजादी का अर्थ, न कुर्सी/बंगला, अमला या धन–धाम।''[12] इस प्रकार कवि वर्तमान व्यवस्था से संतुष्ट न होकर असंतुष्ट दिखाई देते हैं। उन्हें देश की राजनीति, समाजवाद, लोकतंत्र पर जरा भी विश्वास नहीं है।

कवि समाज की दीन–हीन दशा को देखकर आक्रोशित हो जाता है, इसके लिए वह आधुनिक दल–बदलू राजनेताओं को दोषी मानते हैं। दल–बदलू राजनेताओं का भेद (कलई) खोलने में कवि को जरा भी हिचकिचाहट नहीं है। उन्होंने 'साक्षी रहे वर्तमान' में लिखा है– ''तेल पिया कोड़ा ले हाथ में/ठोकू एक साथ सारे दृश्य को/गाड़ी को घोड़ा को साईस को, सवार को।''[13] उन्होंने नेताओं को एक गैस भरा गुब्बारा कहा है। आज अनेक नेता चरित्रहीन हो गए हैं, ऐसे नेताओं को फटकारते हैं। उनका मानना है कि जब चुनाव का वक्त आता है, तो उनके द्वारा बड़े–बड़े वादे किए जाते हैं और चुनाव जीतने के बाद उस वादे से मुकर जाते हैं। ऐसे आधुनिक राजनेताओं पर कवि को भरोसा नहीं है। इतना ही नहीं आम जनता का मन भी खिन्न हो जाता है। नेताओं द्वारा लोगों को यह हमेशा कहा जाता है कि समय के साथ हम आगे बढ़ते जाएँगे पर यह आज का सच नहीं हुआ। 'साक्षी रहे वर्तमान' की ये पंक्तियाँ उल्लेख्य है– ''वक्त बहुत निकल गया/कुछ भी हुआ नहीं/ सौंपे हुए सोने के हंस/लोग हड़प गए/पत्ता तक हिला नहीं/वक्त बहुत बीत गया।''[14]

वर्तमान भौतिकवादी युग में अर्थ–लिप्सा एवं अर्थ–संग्रह की प्रवृत्ति बढ़ गई है। व्यक्ति जैसे–जैसे सुख–सुविधा भोगी बनता जाता है, वैसे–वैसे उसकी आर्थिक इच्छा भी बढ़ती जाती है, जिसके परिणाम स्वरूप आज मानव नैतिकता, ईमान, कर्तव्य, अधिकार, मूल्यों, आदर्शों आदि को छोड़ दिया है। कवि माथुर केवल धन को महत्व न देकर नैतिकता, ईमान, कर्तव्य, अधिकार, मूल्यों, आदर्शों को अधिक महत्व दिया है। कवि का विश्वास है कि विज्ञान चाहे कितनी ही तरक्की कर ले, सभी के जीवन में खुशियाँ नहीं आ सकती। सरकार द्वारा गरीबों के उत्थान हेतु अनेक जन–कल्याणकारी योजनाएँ चलाई जा रही है, लेकिन वास्तविक स्थिति यह है कि पात्र पीछे रह जाते हैं और अपात्रों को अधिक महत्व मिल जाता है।

कवि माथुर की कविताओं में विषय यथार्थ पर आधारित है। उन्होंने स्वयं सत्य को करीब से देखा, परखा एवं भोगा है। यही वजह है कि उनकी अधिकांश कविताओं में जन–कल्याण की भावना निहित है, जिसे दूर करने के लिए सतत अपनी कविताओं के माध्यम से व्यक्त किया है। जहाँ–जहाँ समाज–कल्याण की भावना निहित है, वहाँ की अव्यवस्था देखकर वे विरोध करते हुए नज़र आते हैं। वे समाज की तमाम विसंगतियों को उजागर कर भविष्य को सुंदर बनाने के लिए कई मान्यताओं को अस्वीकृत किया है। उनके अस्वीकृति–बोध में नैतिकता, ईमानदारी, मूल्यों, आदर्शों, सच्चरित्रों को अधिक महत्व दिया गया है।

**संदर्भ–सूची**


1. बाजपेयी, कैलाश. आज के लोकप्रिय हिंदी कवि; 7.
2. वही; 6.
3. माथुर, गिरिजा. मंजीर; 96
4. कुमारी, विजय. गिरिजा कुमार माथुर की कविता के परिप्रेक्ष्य में; 105.
5. माथुर, गिरिजा कुमार. मुझे और अभी कहना है; वक्तव्य.
6. अनुरागी, अजय. नयी कविता गिरिजा कुमार माथुर; 114.
7. माथुर, गिरिजा कुमार. साक्षी रहे वर्तमान; 77.
8. वही; 75.
9. वही; 44.
10. वही; 35.
11. वही; 12.
12. माथुर, गिरिजा कुमार. मैं वक्त के हूँ सामने; 36.
13. माथुर, गिरिजा कुमार. साक्षी रहे वर्तमान; 17
14. वही; 51.



मो. 9131990810 E-mail : yaduchowaram@gmail.com

-www.bohalshodhmanjusha.com Bohal Shodh Manjusha ISSN: 2395-7115
Impact Factor:8.642 January 2025 Page No. : 72-78
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

# "स्लम क्षेत्रों में किशोरों एवं वृद्धों में मादक पदार्थों के सेवन की प्रवृति" (नालन्दा जिला के बिहार शरीफ नगर के विशेष संदर्भ में)

**मो0 गयास सरवर,** शोधार्थी,
स्नातकोत्तर समाजशास्त्र विभाग, मगध विश्वविद्यालय, बोधगया

**सारांश :** मादक पदार्थों एवं नशीली दवाओं का सेवन और निर्भरता एक विश्वव्यापी सार्वजनिक संकट बन गया है। मादक पदार्थों का दुरूपयोग एक अंतर्राष्ट्रीय समस्या जो दुनिया के विकसित और विकासशील देशों के लगभग हर देश को प्रभावित करती है, लेकिन इसकी सीमा और विशेषताएँ एक क्षेत्र से दूसरे क्षेत्र में भिन्न होती है। गरीबी और मादक पदार्थों का सेवन दो गंभीर सामाजिक समस्याएँ है जिन्हें अक्सर परस्पर सम्बंधित माना जाता है। व्यसन और गरीबी के बीच का सम्बंध जटिल है। कम आय वाले लोगों को नशीली दवाओं या शराब के दुरूपयोग की संभावना थोड़ी अधिक होती है, लेकिन इसका मतलब यह नहीं है कि गरीबी मादक पदार्थों के व्यवसन का कारण बनती है। कुछ मामलों में, वित्तीय परेशानी मादक पदार्थ के उपयोग का परिणाम होती है। गरीब समुदायों को मादक पदार्थों के व्यसन की उच्च दर का सामना करना पड़ता है। वित्तीय अस्थिरता तनाव को बढ़ावा देती है। शिक्षा की कमी, भावनात्मक अस्थिरता भी व्यसन को बढ़ाते है। बेरोजगारी मादक पदार्थों की लत को प्रोत्साहित करती है। वर्त्तमान अध्ययन इस उद्देश्य के साथ किया गया था : बिहार शरीफ नगर के स्लम में रहने वाले किशोरों एवं वृद्धों के बीच नशीली दवाओं और मादक पदार्थों के सेवन के प्रसार और पैटर्न का अध्ययन करना। नालन्दा जिला के बिहारशरीफ नगर के स्लम क्षेत्र का सर्वेक्षण किया गया। 05 से 18 साल के 75 लड़के एवं 55 वृद्धों का सैंपल लिया गया। यह सर्वेक्षण नशे की आदत पर आधारित था। परिणाम बताते है कि स्लम क्षेत्र के 81.33% किशोर गुटखा, तम्बाकू, धूम्रपान, शराब, अफीम, गांजा, थिनर और मारिजुआना जैसे पदार्थों का इस्तेमाल करते है। 54.09% ने एक बार उपयोग करने की बात स्वीकार की, 34.43% ने कभी–कभी व्यसन करने को स्वीकार किया है; 16.39% बार–बार स्वीकार किया है और 8.19% ने स्वीकार किया कि उन्हें मादक पदार्थ की लालसा है, इसलिए मादक पदार्थ का सेवन बार–बार करते है। गुटखा 40.98% , तम्बाकू 42.62% , धूम्रपान 37.71% , और शराब 13.11% इस्तेमाल करते हैं, जो आम पदार्थ थे। 8.18% नशीले पदार्थों का सेवन करने वालों ने कई पदार्थों का इस्तेमाल किया। वृद्ध व्यक्ति में गुटखा 25.58% तम्बाकू 72.1% , धूम्रपान 39.53% और शराब 9.3% इस्तेमाल करते है। अध्ययन से पता चला कि किशोरों के बीच मादक पदार्थों का प्रचलन अधिक है लेकिन वृद्धों में कुछ मादक पदार्थों का प्रचलन अधिक पाया गया है। इस कारण इस आबादी में महत्वपूर्ण समस्या पैदा करता है। इसलिए इस बढ़े प्रचलन को कम करने के लिए उचित हस्तक्षेप की आवश्यकता है।

**शब्दकुँजी :** मादक पदार्थों का सेवन, आदत, झुग्गी निवासी, वित्तीय एवं भावनात्मक अस्थिरता, मादक पदार्थ का प्रसार

**परिचय :** गरीबी सामान्य तौर पर भोजन, वस्तु और आवास सहित बुनियादी जरूरतों को पूरा करने के लिए पर्याप्त धन न होना है। हालाँकि गरीबी कहीं अधिक है, पर्याप्त धन होने से अधिक है। विश्व बैंक संगठन ने गरीबी के सम्बंध में कहा :–"गरीबी भूख है। गरीबी अश्रय की कमी है, गरीबी बीमार हो रही है और डॉक्टर को दिखाने में सक्षम नहीं है। स्कूल न जाना और न पढ़ना ही गरीबी है। गरीब एक नौकरी नहीं है, भविष्य के लिए डर है, एक समय में एक दिन जीना हैं गरीबी के कई चेहरे है, जगह–जगह और समय–समय पर बदलते रहते है और इसे कई तरह से वर्णित किया गया है। अक्सर

गरीबी एक ऐसी स्थिति है जिससे लोग बचना चाहते है। गरीबो और अमीरों के लिए समान रूप से दुनिया को बदलने का आह्वान है ताकि बहुत से लोगों के पास खाने के लिए पर्याप्त हो, पर्याप्त आश्रय, शिक्षा और स्वास्थ्य तक पहुँच, हिंसा से सुरक्षा और एक आवाज उनके समुदाय में होता है।

पैसे की कमी के अलावा, गरीबी मनोरंजक गतिविधियों में भाग लेने में सक्षम नहीं होते, बच्चों को उनके सहपाठियों के साथ या जन्म दिन की पार्टी में एक दिन की यात्रा पर भेजने में सक्षम नहीं होता, बीमारी के लिए दवा का खर्चा नहीं उठाना, यह सभी गरीब होने की कीमत है। वे लोग जो भोजन और आश्रय के लिए मुश्किल से सक्षम होते है। वे इन खर्चों पर विचार नहीं कर सकते। जब लोगों को समाज से बहिष्कृत कर दिया जाता है, जब वे अच्छी शिक्षा प्राप्त नहीं किए रहते हैं और जब उनमें बीमारी की घटनाएँ अधिक होती है तो समाज के लिए नकारात्मक परिणाम होते है। गरीबी का कोई एक कारण नहीं होता है और इसके परिणाम हर मामले में अलग–अलग होते है। स्थिति के आधार पर गरीबी काफी भिन्न होती है। किसी देश की सीमाओं के भीतर अमीर और गरीब के बीच का अंतर बहुत बड़ा हो सकता है।

भारत जैसे विकासशील देश के शहरी क्षेत्र मध्यम और उच्च वर्ग के साथ–साथ गरीब, निराश्रित वर्ग के लोगों का घर बन जाते है। ग्रामीण क्षेत्रों के साथ शहरी क्षेत्रों की अवशोषण क्षमता की तुलना करने से यह देखा गया है कि शहरी क्षेत्र विकास केन्द्र होने के कारण रोजगार के अवसर और सभी स्तर के लोगों के लिए आजीविका के विकल्प है। शहरी विकास, शहरीकरण मलिन बस्तियों और शहरी गरीबी के सम्बंध में साहित्य से पता चलता है कि ग्रामीण गरीब प्रवासन प्रक्रिया द्वारा शहरी क्षेत्र में स्थानांतरित हो रहा है। मजदूरी दरों और मौजूदा सेवाओं पर तुलनात्मक नुकसान ग्रामीण गरीबों को अधिक कमजोर बनाते है। शिक्षित और बेरोजगार युवा अधिकांशतः शहर की ओर पलायन करते है। ग्रामीण क्षेत्रों से शहरी क्षेत्रों में स्थानांतरित होने पर ग्रामीण लोग आम तौर पर कम लागत वाले घर या कमरे की तलाश करते हैं जो केवल मलिन बस्तियों या आस–पास के क्षेत्रों में ही उपलब्ध हो सकते है। अकुशल श्रमिक प्रारंभ में किराए के मकान में रहते है। इसके लिए गंदे क्षेत्रों का भी चुनाव किया जा सकता है। इसलिए कहा जा सकता है कि शहरी गरीबी और मलिन बस्तियों की आबादी के बीच घनिष्ठ सम्बंध होता है।

जनसंख्या वृद्धि की तीव्र दर स्वाभाविक रूप से अक्सर सहायक सुविधाओं और बुनियादी ढ़ाँचे के प्रावधान से सुसज्जित नहीं होती हैं। जनसंख्या संसाधनों (आय की कमी) की सीमाओं के साथ–साथ जरूरतों और सुविधाओं और बुनियादी ढ़ाँचे की उपलब्धता के बीच अंतर है, इसके अलावा जनसंख्या की गतिविधियां स्वाभाविक रूप से जगह की आवश्यकताओं को बढ़ाती है, जहाँ विकास के लिए शहर की भूमि बहुत सीमित है। इसके विपरित, इसने झुग्गी बस्तियों (झुग्गी–झोपड़ियों और अवैध बस्तियों) का एक नीरस रूप, गतिविधियाँ से लेकर जीवन की आवश्यकताओं तक, मौजूदा शहरी सेवाओं द्वारा नहीं किए जाने की कमी को जन्म दिया है। समस्या भौतिक पर्यावरण के क्षरण की नहीं है। पर्यावरण क्षरण का रूप है, लेकिन यह सीमांत समुदाय की सामाजिक आर्थिक समस्याओं में भी विकसित होता है जो सामाजिक रोगों (सामाजिक विकृति) के लक्षण पैदा कर सकता है, यह पर्यावरण या अन्य कारकों के मानव व्यवहार विचलन का एक रूप है।

**"सुजियोनों सेवटोमों"** ने अपनी पुस्तक, **अर्बनाइजेशन टू सीटी डेवलपमेंट मार्फोलॉजी : लुकिंग फॉर डाइवर्ससिटी डेवलपमेंट कॉन्सेप्ट** में कहा है कि शहरी गरीबी, स्लम विकास और अनौचारिक क्षेत्र विकासशील देशों के बड़े शहरों में एक प्रमुख घटना के रूप में है। शहरी गरीबों की समस्या शहरी मलिन बस्तियों के समान है, क्योंकि अधिकांश शहरी गरीब झुग्गियों और अवैध बस्तियों में रहते हैं। उनमें से अधिकांश प्रवासी या शहरी लोग है जिनकी शिक्षा, ज्ञान और कौशल की कमी जैसी सीमाएँ हैं। **"टोडारों"** के अनुसार, यह समस्या प्रचुर मात्रा में शहरीकरण या अत्यधिक शहरीकरण का परिणाम है, इसका अर्थ है कि शहर अधिकांश आबादी के लिए पर्याप्त सामाजिक सुविधाएँ और रोजगार सेवाएँ प्रदान करने में सक्षम नहीं है, क्योंकि अधिकांश प्रवासियों को रोजगार प्राप्त करना या उपलब्ध रोजगार प्राप्त करना मुश्किल लगता है। वे विनम्र होने की कोशिश करते है। उनकी आय कम होती है, क्योंकि वे जहाँ काम करते हैं या नौकरी करते है, वहाँ उन्हें पर्याप्त मजदूरी नहीं दी जाती है। वे जहाँ काम करते हैं, उसके पास के गाँवों में रहते हैं। वे औपचारिक में काम करने में अक्षम होते हैं, इसलिए उनकी आर्थिक आवश्यकताएँ केवल अनौपचारिक क्षेत्रों के माध्यम से पूरी की जा सकती है जो कभी–कभी

उनके दैनिक जीवन को प्रदान करने के लिए होती है। अनौपचारिक क्षेत्रों में नौकरियों में मजदूर (राजमिस्त्री, बढ़ई, बेल्डर), परिवहन कर्मचारी (बस चालक, बस खलासी, बस कंडक्टर, रिक्शा चालक) बेटर, मजदूर या दुकानों होटल, रेस्तरां, कारखानों, स्थायी विक्रेता या यात्रा करने वाले (खाद्य स्टाल) के कर्मचारी शामिल है। इसके अतिरिक्त कियोस्क, घुमक्कड़, फेरीवाले भी इसमें शामिल है। वेशक, उनकी आय बहुत अधिक नहीं है, यहाँ तक कि यह अनुमान लगाया जाता है कि यह केवल उनकी दैनिक जरूरतों को पूरा करने के लिए पर्याप्त है। आय की वह राशि जो बहुत कम है और गरीबी रेखा से नीचे है, केवल अपने और अपने परिवार की दैनिक जरूरतों के लिए पर्याप्त है या अन्य व्यवसाय (दलाल, मैला ढोने वाला) जनसंख्या वृद्धि की तीव्र दर के कारण मलिन बस्तियों की उपस्थिति बढ़ती रहती हैं। आश्रय की आवश्यकता को पूरा करने के लिए वे केवल अपनी शक्ति और क्षमताओं के अनुकूल रहने के लिए एक जगह का निर्माण कर सकते है। वे उस भूमि पर बसते है जो आवासीय क्षेत्रों जैसे पूर्व कब्रिस्तान, गोदामों या दुकानों के पीछे अन्य लोगों की इमारतों की दीवारें, नदी के किनारे आदि। जहाँ आवास और बस्तियों के लिए बुनियादी ढ़ाँचे और सुविधाओं की स्थिति निश्चित रूप से उपलब्ध नहीं है, अगर उपलब्ध है भी तो निश्चित रूप से बहुत कम होती है।

सभी पृष्ठभूमि और वर्गों के लोग कई कारणों से मादक पदार्थ का सेवन करते है। इनमें आनंद के लिए, शारीरिक या भावनात्मक दर्द का इलाज करने के लिए, तनाव या चिंता के लिए, या उनके दोस्त ऐसा करते है। लेकिन कौन मादक पदार्थों की समस्या विकसित करता है और अन्य समस्याओं का सामना करता है, इसका पैर्टन नशीली दवाओं के दुरूपयोग और सामाजिक बहिष्कार के बीच एक करीबी सम्बंध दिखाई देता है। **"पार्कर"** (1986) ने तर्क दिया कि भौगोलिक व्यापकता में भिन्नता प्रत्येक क्षेत्र में पृष्ठभूमि अभाव स्तर के संकेतकों के साथ अत्यधिक सहसंबद्ध थी; जैसे बेरोजगारी दर, घर की किरायेदारी, भीड़–भाड़, बड़े परिवार, अकुशल रोजगार, तथा आवश्यकता तक पहुँच की कमी को सम्मिलित किया जा सकता है।

वे व्यक्ति जो मादक पदार्थों के सेवन की समस्या के विकास के जोखिम में सबसे अधिक है, वे है जो समाज के दहलीज पर है। वे ऐसे व्यक्ति है जो सामाजिक और आर्थिक रूप से हाशिए पर है और स्कूल, परिवार काम और अवकाश के मानक रूपों से अप्रभावित हैं। हालाँकि, इन कारकों एवं नशीली दवाओं के उपयोग के बीच रैखिक सम्बंध नहीं है। उदाहरण के लिए, हालाँकि अधिकांश मादक पदार्थ उपयोगकर्त्ताओं ने इनमें से कई समस्याओं का अनुभव किया है, लेकिन यह सही भी नहीं हो सकती है; अर्थात जो व्यक्ति आर्थिक और राजनीतिक/सामाजिक रूप से हाशिए पर है, जरूरी नहीं है कि वे समस्याग्रस्त मादक पदार्थ उपयोगकर्त्ता बन जाए। **"नेले"** ने सुझाव देते हुए कहा है कि आबादी के विशेष उप समूह जैसे कि बेघर, जो देखभाल में है और या स्कूल से बाहर है और जो अपराधिक न्याय प्रणाली या मानसिक स्वास्थ्य सेवाओं के संपर्क में है, वे विभिन्न जोखिम कारकों और मादक पदार्थों के प्रति संवेदनशील है। इन विशेष समूहों के बीच मादक पदार्थों का प्रचलन बहुत अधिक है। **"स्पूनर"** (2005) के अनुसार सामाजिक वातावरण स्वास्थ्य और सामाजिक परिणामों पर शक्तिशाली प्रभाव डालता है। इस संदर्भ में मादक पदार्थों के उपयोग और सम्बंधित समस्याएँ व्यक्ति और पर्यावरण के जटिल परस्पर क्रिया से उत्पन्न होती है जहाँ सामाजिक संस्थाएँ या संरचनाएँ पर्यावरण को इस तरह से प्रभावित कर सकती है जो मादक पदार्थों के उपयोग और सम्बंधित समस्याओं को प्रभावित कर सकती है। सामाजिक संरचनाओं में सरकार की नीतियाँ, कराधान प्रणाली, कानून और सेवा प्रणाली जैसे कल्याण, शिक्षा, स्वास्थ्य और न्याय शामिल है।

स्लम क्षेत्रों में लोगों की सामाजिक एवं आर्थिक परिस्थिति ऐसी होती है कि वे अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति करने में सक्षम नहीं होते है। उनमें चिंता एवं तनाव का माहौल पैदा हो जाता है। चिंता एवं तनाव से बचने के लिए स्लम क्षेत्रों के लोग मादक पदार्थों की ओर अधिक आकर्षित होते है। लोगों में शिक्षा की कमी के कारण लोगों में मादक पदार्थों के सेवन से होने वाली हानियों को समझने में सक्षम नहीं होते है। समाज में वातावरण ऐसा होता है कि लोग मादक पदार्थों का सेवन बड़ी संख्या में करने के कारण किशोरों पर इसका बुरा प्रभाव पड़ता है और बड़ी संख्या में किशोर मादक पदार्थों की ओर आकर्षित हो जाते है। स्लम क्षेत्रों में लोगो की आर्थिक स्थिति दयनीय होती है। यह गरीबी कई कारणों की जनक मानी जाती है जो लोगों को मादक पदार्थों की ओर ले जाती है। स्लम क्षेत्रों में गरीबी के कारण उनके प्रभावों को निम्नलिखित रूप में देखा जा सकता है।

**गरीबी तनाव बढ़ाती है :–** गरीबी के कारण स्लम क्षेत्र के लोग अपनी बुनियादी आवश्यकताओं की पूर्ति नहीं कर पाते है, जिसके परिणामस्वरूप लोगों में तनाव की स्थिति पैदा हो जाती है। जब लोग अपनी जरूरतों को पूरा करने के लिए संघर्ष कर रहे होते हैं तो लोग अपनी अस्थाई समस्याओं से बचने के लिए मादक पदार्थ या अल्कोहल का सेवन करने लगते हैं।

**गरीबी निराशा की भावना को बढ़ाती है** :– जब दैनिक आवश्यकताओं को पूरा करना मुश्किल होता है, कॉलेज जाने, घर खरीदने व्यवसाय आदि को पूरा करने के सपने असंभव होने लगते है। यह महसूस करना कि लोग अपने भविष्य के प्रति शक्तिहीन है तो लोग मादक पदार्थों के सेवन की चपेट में आ जाते हैं।

**गरीबी आत्म सम्मान को कम करती है** :– भौतिक संपत्ति और वित्तीय सफलता को महत्व देने वाली संस्कृति में, गरीब होना एक नैतिक असफलता की तरह महसूस किया जाता है। इससे अपराधबोद्य, शर्म और कम आत्म मूल्य की भावना पैदा होने की संभावना में वृद्धि हो जाती है। कम आत्मसम्मान से जूझ रहे लोगों में मादक पदार्थों के सेवन के बिकार विकसित होने की आशंका बढ़ जाती है।

स्लम क्षेत्रों में मादक पदार्थों के सेवन से सम्बंधित अनेक अध्ययन किए गए है। एक अध्ययन में पाया गया कि स्लम क्षेत्रों में 87% बच्चे मादक पदार्थों का सेवन करते थे, जिनमें से 83% लड़के और 17% लड़कियाँ थी। अध्ययन में यह भी पाया गया कि बढ़ती उम्र के साथ मादक पदार्थों के सेवन का एक उच्च सम्बंध पाया गया, जिसमें 5–8 वर्ष आयु वर्ग के 6.1% मादक पदार्थों का सेवन करते है, 9–12 वर्ष आयु वर्ग के 15% मादक पदार्थों का सेवन करते है और 13–18 वर्ष आयु वर्ग के 78.9% मादक पदार्थों का सेवन करते हैं। **"नंदी"** ने पश्चिम बंगाल के एक अध्ययन में पाया कि कुल जनसंख्या का 9.4% मादक पदार्थों का सेवन करते है। इसी तरह **"दुबे और हांडा"** ने उत्तरप्रदेश के अध्ययन में 22.8 प्रति 1000 शराब और नशीली दवाओं पर निर्भर थे।

**अध्ययन का उद्देश्य :** वर्त्तमान अध्ययन के सम्बन्ध में कुछ उद्देश्य है। जो निम्नलिखित हैं :–

1. किशोरों में विभिन्न मादक पदार्थों के सेवन का अध्ययन
2. वृद्धों में विभिन्न मादक पदार्थों के सेवन का अध्ययन
3. किशोरों और वृद्धों में मादक पदार्थों के सेवन की आवृति का अध्ययन
4. किशोरों और वृद्धों में मादक पदार्थों के सेवन की आवृति का तुलनात्मक अध्ययन

**अध्ययन पद्धति :** विषय सम्बंधित साहित्य के आधार पर प्रश्नावली का निर्माण किया गया। उसी आधार पर बिहारशरीफ नगर के स्लम क्षेत्रों से 130 उत्तरदाताओं का निदर्शन के आधार पर चयन किया गया, जिनमें 75 किशोर और 55 वृद्धों को शामिल किया गया। जिनसे साक्षात्कार के द्वारा तथ्यों का संकलन किया गया।

**अनुसंधान उपकरण :** इस अध्ययन में तथ्यों के संकलन के लिए प्रयुक्त उपकरण द्वारा अध्ययन प्रारूप का निर्माण किया गया था। उपकरण में प्रश्नावली के तीन खण्डों को शामिल किया गया था। अनुभाग (1) को मादक पदार्थों के सेवन के साथ सामाजिक जनसंख्यिकीय विशेषताओं से जुड़े उत्तरदाताओं की बुनियादी जानकारी प्राप्त करने के लिए डिजाइन किया गया था। अनुभाग (2) में मादक द्रव्य क्यों, कैसे और कब लेत हैं इस बारे में जानकारी प्राप्त करने के लिए डिजाइन किए गए संरचित प्रश्नों को शामिल किए गए थे। अनुभाग (3) में धूम्रपान और नशीले पदार्थों के दुरूपयोग जैसे अन्य आदतों की जानकारी प्राप्त करने के लिए प्रश्न डिजाइन किये गये थे।

**तथ्यों के विश्लेषण की विधि** :– वर्त्तमान अध्ययन में प्राप्त तथ्यों को तालिकाओं और क्रास सारणीकरण की मदद से सांख्यिकीय विश्लेषण किया गया है।

**तालिका – 01**

**शराब के सेवन के साथ सामाजिक जनसांख्यिकीय विशेषताओं का सम्बन्ध**

| | कुल | मादक आवृति (%) | गैर मादक आवृति (%) |
|---|---|---|---|
| किशोर | 75 (57.69) | 61 (81.33) | 14 (18.67) |
| वृद्ध | 55 (42.31) | 43 (78.18) | 12 (21.82) |
| आयु | | | |

| | | | |
|---|---|---|---|
| 5 – 8 | 13 (17.33) | 07 (53.85) | 06 (46.15) |
| 9 – 12 | 23 (30.67) | 18 (78.26) | 05 (21.74) |
| 13 – 18 | 39 (52.0) | 36 (92.31) | 03 (7.69) |
| 60 – 63 | 26 (47.27) | 24 (92.31) | 02 (7.69) |
| 64 – 67 | 23 (41.82) | 15 (65.22) | 08 (34.78) |
| 68 – 71 | 06 (10.91) | 04 (66.67) | 02 (33.33) |

तालिका – 02

किशोर में मादक पदार्थों की आवृति

| मादक पदार्थ | कुल | मादक आवृति (%) | गैर मादक आवृति (%) |
|---|---|---|---|
| गुटखा | 61 (81.33) | 25 (40.98) | 36 (59.02) |
| तम्बाकू | 61 (81.33) | 26 (42.62) | 35 (57.38) |
| धूम्रपान | 61 (81.33) | 23 (37.71) | 38 (62.29) |
| शराब | 61 (81.33) | 08 (13.11) | 53 (86.89) |
| अफीम | 61 (81.33) | 02 (3.28) | 59 (96.72) |
| गांजा | 61 (81.33) | 17 (27.87) | 44 (72.13) |
| थीनर | 61 (81.33) | 03 (4.92) | 58 (95.08) |

वृद्ध में मादक पदार्थों की आवृति

| मादक पदार्थ | कुल | मादक आवृति (%) | गैर मादक आवृति (%) |
|---|---|---|---|
| गुटखा | 43 (78.18) | 11 (25.58) | 32 (74.42) |
| तम्बाकू | 43 (78.18) | 31 (72.1) | 12 (27.9) |
| धूम्रपान | 43 (78.18) | 17 (39.53) | 26 (60.47) |
| शराब | 43 (78.18) | 04 (9.3) | 39 (90.7) |
| अफीम | 43 (78.18) | 02 (4.65) | 41 (95.35) |
| गांजा | 43 (78.18) | 06 (13.95) | 37 (86.05) |
| थीनर | 43 (78.18) | – | – |

**तालिका – 03**

**किशोर की मादक पदार्थों के सेवन के साथ व्यक्तिगत अनुभव**

| | कुल | मादक आवृति (%) | गैर मादक आवृति (%) |
|---|---|---|---|
| **एक सप्ताह में मादक पदार्थ के सेवन की आवृति :–** | | | |
| एक बार | 61 (81.33) | 25 (40.98) | 36 (59.0) |
| कभी–कभी | 61 (81.33) | 21 (34.43) | 40 (65.57) |
| बार–बार | 61 (81.33) | 10 (16.39) | 51 (83.61) |
| हमेशा | 61 (81.33) | 05 (8.19) | 56 (91.81) |
| **मादक पदार्थों के सेवन के साथ वृद्धों की व्यक्तिगत अनुभव :–** | | | |
| एक बार | 43 (78.18) | 13 (30.23) | 30 (69.77) |
| कभी–कभी | 43 (78.18) | 15 (34.89) | 28 (65.11) |
| बार–बार | 43 (78.18) | 09 (20.93) | 34 (79.07) |
| हमेशा | 43 (78.18) | 05 (11.63) | 38 (88.37) |

**तथ्यों का विश्लेषण :** वर्त्तमान अध्ययन में किशोर एवं वृद्ध को आयु के आधार पर विभिन्न आयु समूहों में विभाजित किया गया है। किशोर को तीन आयु समूह (5–8), (9–12) तथा (13–18) आयु समूह में विभाजित किया गया है जबकि वृद्ध को (60–63), (64–67) तथा (69–71) वर्ष आयु समूह में वर्गीकृत किया गया। सबसे अधिक 52% किशोर (13–18) आयु समूह में है जबकि सबसे अधिक 47.27% वृद्ध (60–63) वर्ष आयु समूह में है। किशोर में सबसे अधिक 92.31% मादक पदार्थों का सेवन करते है। जबकि वृद्ध में सबसे अधिक 92.31% (60-63) वर्ष आयु समूह के मादक पदार्थों का सेवन करते हैं। किशोर में मादक पदार्थों के सेवन की आवृति के विश्लेषण से स्पष्ट होता है कि किशोर में गुटखा के सेवन की आवृति 40.98% है जबकि वृद्ध में गुटखा के सेवन की आवृति 25.58% है। किशोर में तम्बाकू के सेवन की आवृति 42.62% है जबकि वृद्ध में तम्बाकू के सेवन की आवृति 72.1% है। किशोर में धूम्रपान के सेवन की आवृति 37.71% है, वृद्ध में धूम्रपान के सेवन की आवृति 39.53% है। किशोर में शराब के उपयोग करने की आवृति 13.11% है जबकि वृद्ध में शराब पीने की आवृति 9.3% है। किशोर में अफीम के उपयोग करने की आवृति 3.28% है जबकि वृद्ध का उपयोग करने की आवृति 4.65% है। किशोर में गांजा के उपयोग करने की आवृति 27.87% है जबकि वृद्ध में गांजा का उपयोग करने की आवृति 13.95% है। मादक पदार्थों के सेवन के साथ किशोर और वृद्ध के व्यक्तिगत अनुभव के विश्लेषण से स्पष्ट होता है कि 40.98% किशोर ने मादक पदार्थों का उपयोग एक बार किया है जबकि 30.23% वृद्ध मादक पदार्थों का उपयोग एक बार किया है। 34.43% किशोर मादक पदार्थों का उपयोग कभी–कभी करते हैं जबकि 34.89% वृद्ध मादक पदार्थों का उपयोग कभी–कभी करते हैं। विश्लेषण से स्पष्ट होता है कि 16.39% किशोर मादक पदार्थों का उपयोग बार–बार करते है जबकि 8.19% किशोर मादक पदार्थों का उपयोग हमेशा करते है। दूसरी ओर वृद्धों के मादक पदार्थों के उपयोग कि बारंबारता के विश्लेषण से स्पष्ट होता है कि 20.93% वृद्ध मादक पदार्थों का उपयोग बार–बार करते है तथा 11.63% वृद्ध मादक पदार्थों का उपयोग हमेशा करते है।

**निष्कर्ष एवं सुझाव :** अध्ययन में बिहार शरीफ नगर के स्लम क्षेत्र के बच्चों एवं वृद्ध के बीच मादक पदार्थों की बढ़ती घटनाओं पर जोर दिया गया है। अध्ययन में पाया गया कि मादक पदार्थों का सेवन वृद्धों की तुलना में बच्चों में अधिक है। मादक पदार्थों के सेवन पर ध्यान दिया जाए तो अध्ययन से स्पष्ट होता है कि मादक पदार्थों के सेवन की आवृति बच्चों में अधिक पाई गई है। स्लम क्षेत्रों में मादक पदार्थों के दुरूपयोग की रोकथाम और उपचार के लिए कार्यक्रम शुरू करने की अत्यधिक आवश्यकता है। मादक पदार्थों का उपयोग करने वाले बच्चों एवं वृद्धों के लिए विशेष उपचार सेवाओं की उपलब्धता

की आवश्यकता है। इसके लिए विशेष तौर पर सरकारी अस्पतालों में ये सुविधाएं मिलनी चाहिए। वहाँ बच्चों एवं वृद्धों के प्रति संवेदनशील और सुरक्षित होनी चाहिए। उपचार के समय पारिवारिक मुद्दों पर भी ध्यान देने की जरूरत है। बच्चों के पुनर्वास के लिए बच्चों के कौशल निर्माण और व्यावसायिक प्रशिक्षण पर ध्यान देना चाहिए। बच्चों द्वारा मादक पदार्थों के सेवन का उनके शारीरिक, मनोवैज्ञानिक, सामाजिक और मानसिक स्वास्थ्य पर हानिकारक प्रभाव पड़ता है, इसलिए तत्काल हस्तक्षेप की आवश्यकता है।

**संदर्भ ग्रंथ सूची** :–


1. सुगीनों सोएटोमो (1995) अर्बनाइजेशन टू सिटी मारफोलॉजी : लुकिंग टू डाइवर्ससिटी डेवलपमेन्ट कॉन्सेप्ट्स, प्रमोटर ऑफ डॉकटरल प्रोग्राम इन आर्चटेक्चर एण्ड अर्बन साइंसेज, डिपोनेरो यूनिवर्सिटी, इंडोनेशिया, पृष्ठ– 44
2. दुबे के.सी. (1972) "उत्तरी भारत में नशीली दवाओं का दुरूपयोग दिल्ली आगरा क्षेत्र को जोड़ने वाला अवलोकन, बुलनार्क पृष्ठ– 49–53
3. मोहन डी, प्रभाकर ए0के0 (1977) "दिल्ली विश्वविद्यालय के छात्रों के बीच नशीली दवाओं के दुरूपयोग की व्यापकता और पैर्टन, इंडियन जर्नल, मेड रेस, 66, पृष्ठ– 627–634
4. वर्मा, वी0 के0, सिंह ए (1977) "कॉलेज के छात्रों के बीच नशीली दवाओं का दुरूपयोग, भारतीय जर्नल मनोरोग, 19, पृष्ठ 1–15
5. सारंगी एल, आचार्य एच.पी (2008) "सब्सटेंस एब्यूज अमंग अडॉल्ससेन्टस इन अर्बन स्लम्स ऑफ संभलपुर, इंडियन जर्नल कम्युनिटी मेडिसिन, 07, पृष्ठ– 265–267
6. सेगादरी एस (1998) "ड्रग एब्यूज अमंग स्ट्रीट चिल्ड्रेन इन बैंगलोर, दि बैंगलोर फोरम ऑफ स्ट्रीट चिल्ड्रेन, जर्नल ऑफ प्रीवालेंस सोशल मेडिसिन 19, पृष्ठ– 156
7. कोकिवार पी0 आर0 (2011) प्रीवेलेन्स ऑफ सब्सटेन्स यूज अमंग मेल अडॉसेंटस इन अर्बन स्लम एरिया ऑफ करीमनगर डिस्ट्रिक्ट आंध्र प्रदेश, इंडियन जर्नल ऑफ पब्लिक हेल्थ, 55, पृष्ठ 42–45
8. रंजन, डी0पी0 (2010) "ए स्टडी ऑफ प्रीवेलंस ऑफ ड्रग एब्यूज इन एण्ड 15 इयर्स एंड एबव इन स्लम कम्युनिटी ऑफ मुम्बई, इंडियन जर्नल ऑफ प्रीवेलेन्स सोशल मेडिसिन, 41, पृष्ठ 117–126
9. कादरी एस, गोयल आर0 के0; प्रीवेलेंस एण्ड पैर्टन ऑफ सबस्टेंस एब्यूज अमंग स्कूल चिल्ड्रेन इन नार्थर्न इंडियाः ए रैपिड एसेसमेंट स्टडी, इंटरनेशनल जर्नल ऑफ मेडिकल साइंस ऑफ पब्लिक हेल्थ, 2, पृष्ठ– 273–282
10. कुमार सी, प्रभु जी आर (2006) "प्रीवेलंस ऑफ ड्रग एब्यूज अमंग मेल युथ इन त्रुपती, आंध्रप्रदेश, इंडियन, जर्नल ऑफ कम्युनिटी मेडिसिन; 31, पृष्ठ– 281



**Email Id :- gayassarwar786@gmail.com Mob No :- 9334682177**

www.bohalshodhmanjusha.com Bohal Shodh Manjusha ISSN: 2395-7115
Impact Factor:8.642 January 2025 Page No. : 79-84
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

# 'गया में एक अदद दलित' उपन्यास में चित्रित दलित चेतना एवं प्रतिरोध

**अंजिता जे. एम,** शोधार्थी,
केरल विश्वविद्यालय

**शोध सार :** प्रतिरोध साहित्य का उद्देश्य सामाजिक एवं सांस्कृतिक क्षेत्र में स्थापित हितों का विरोध करना है। अतः इसका स्पष्ट उद्देश्य एवं सामाजिक उत्तरदायित्व है। इसमें मुख्यधारा से हाशिएकृत और पहचान संघर्ष में पड़े सभी प्रकार की विचारधाराओं को एकजुट करते हैं। मोहनदास नैमिशराय का उपन्यास 'गया में एक अदद दलित' पहचान संघर्ष में शामिल ऐसे समूहों को संबोधित करता है। सांस्कृतिक प्रतिरोध का हिस्सा बनकर सांस्कृतिक पुनःनिर्माण का नमूना दिखाते हैं। " गया शहर का चरित्र बदलने लगा था। जड़ हुई धर्म नगरी में परिवर्तन के स्रोत उभरने लगे थे। किसी को तो सूत्रधार बना ही था।...आखिर दलित को ही नए पद का निर्माण करना था"1

**बीज शब्द:** प्रतिरोध, दलित संघर्ष , संस्कृति, अम्बेडकर, मार्क्स।

अनेकता में एकता भारतीय संस्कृति की पहचान है। इसने समय के साथ यहां आई सभी प्रकार की संस्कृतियों और मूल्यों को अपने में समाहित कर लिया है। लेकिन जातिगत जटिलताओं के भंवर में फंसे अपने ही लोगों को समानता और एकता का पाठ पढ़ाने में वह विफल रही। दलित समुदाय भारत की जातीय जटिलता का पूरी तरह से शिकार है। जिन्हें मुख्यधारा से हाशिये पर धकेल दिया गया है। एक ऐसा संविधान है जो स्वतंत्रता, समानता और भाईचारे की गारंटी देता है। लेकिन यहां की जातिगत और धार्मिक व्यवस्थाएं और रुढ़िवादी सामाजिक माहौल कानूनी व्यवस्था से मज़बूत हैं। 'भारतीय समाज में प्रतिरोध की परंपरा' में मैनेजर पांडेय की कथन है- "भारतीय समाज की एक विशेषता है जाति-व्यवस्था, जिसकी अभिव्यक्ति भारतीय संस्कृति में अनेक रूपों में होती रही है। इसका प्रभाव वैदिक साहित्य से लेकर आज तक के साहित्य पर है और जीवन-मूल्यों की व्यवस्था पर भी इसकी गुलामी और दमन के शिकार दलितों की दृष्टि से भारतीय संस्कृति पर विचार कीजिए तो सौन्दर्य और माधुर्य के बदले संत्रास का बोध होगा। महात्मा

फुले और डॉ. अम्बेडकर के चिन्तन और लेखन से भारतीय संस्कृति के यथार्थवादी समाजशास्त्र के विकास की सम्भावना बनी है।" 2

दलित लेखन अम्बेडकर द्वारा प्रस्तुत विचारों से प्रेरित है। हरिजन संबोधन के माध्यम से गांधी जी सहित अन्य नेताओं ने दलित लोगों को बुनियादी समस्याओं से भटकाकर राष्ट्रीय संघर्ष का हिस्सा बनाने का प्रयास किया। लेकिन अम्बेडकर देश की आजादी के साथ-साथ दलित मुक्ति भी चाहते थे। अम्बेडकर ने हरिजन सम्बोधन को अत्यंत अपमानजनक माना और उसे अस्वीकार कर दिया। दलित वह शब्द है जिसे अम्बेडकर के आह्वान पर उत्पीड़ितों द्वारा खुद को चिह्नित करने के लिए अपनाया गया था। दलित शब्द के अर्थ की गहराई पर डॉ. एन सिंह की राय है-

"हमारे विचार से दलित शब्द का अर्थ है जिसका दलन या उत्पीड़न किया गया हो। यह उत्पीड़न चाहे शास्त्र के द्वारा किया गया हो अथवा शस्त्र के द्वारा ! कुछ लोग दलित का अर्थ अनुसूचित जातियों तक सीमित करते हैं, जबकि शाब्दिक दृष्टि से उसमें भारतीय समाज के स्त्री तथा पिछड़े वर्ग के साथ सवर्ण जातियों के वे लोग भी आते हैं, जिनका किसी भी रूप में मानसिक या आर्थिक शोषण किया गया हो।"3

जनता और मूकनायक जैसी साप्ताहिक पत्रिकाओं के माध्यम से अम्बेडकर अपने समाज को लेखन की महानता का एहसास कराया। उन्हें समझाया गया कि साहित्य प्रतिरोध का अहिंसक लेकिन सबसे सशक्त माध्यम है। 'दलित साहित्य का सौंदर्य शास्त्र' में ओमप्रकाश वाल्मीकि का कथन है-

"दलित लेखन केवल दलितों के अधिकार एवं मूल्यों तक ही सीमित नहीं है बल्कि सामाजिक संदर्भों के साथ जुड़कर समूचे समाज की अस्मिता और मूल्यों की पहचान बनता है।"4

असल में दलित साहित्य का उद्देश्य समाजोद्धार है। वह असमानता पर आधारित अभिजात्यवाद और उसकी खोखली मानवीय प्रेम का खंडन करता है। इसलिए ही इसकी भाषा नकार और विद्रोह की है।

भाषा और साहित्य संस्कृति के वाहक हैं। यह संस्कृति को परोक्ष एवं आलंकारिक रूप से प्रतिबिंबित करता है। सांस्कृतिक प्रतिरोध एक रचनात्मक तरीका है। इसने सत्ता और वर्चस्व के संकेतों का मुकाबला करने के लिए संघर्ष की शैली अपनाई है। साथ ही, उसमें स्वतंत्रता और सामाजिक समानता की एक वैकल्पिक संस्कृति बनाने का एक प्रयास होता है। इसमें एक ही दिशा में आगे बढ़ने वाले विभिन्न विचारों का संग्रह पाते हैं। प्रत्येक लेखक सामाजिक रूप से प्रतिबद्ध होते है। उन पर सभी शोषित वर्गों को संघर्ष का हिस्सा बनाने और समाज को जागरूक करने की ज़िम्मेदारी है। इसप्रकार प्रत्येक व्यक्ति और समाज सांस्कृतिक प्रतिरोध का सहभागी बन सकता है। दलित, आदिवासी, महिलाएं, अल्पसंख्यक आदि सभी एक समान लक्ष्य के साथ संघर्ष का हिस्सा हैं। प्रतिरोध साहित्य इस मायने में अद्वितीय है कि यह कल्पना के बजाय वास्तविकता पर जोर देता

है। इसलिए, वे रचनाएँ मुख्यधारा के साहित्य की सौंदर्य अवधारणा से परे हैं। इसे ओमप्रकाश वाल्मिकी की इस कथन से समझा जा सकता है-

"एक दलित लेखक के अपने निजी अनुभव, उसके सामाजिक अनुभव कितने भयावह और कमज़ोर करने वाले होते हैं, इसका अंदाज दूर खड़ा कोई लेखक, आलोचक, संपादक नहीं लगा पाता है। अनुभवों का अंतःकरण में रूपांतरण उन भावनाओं में होता है, जो उसे संघर्ष, आक्रोश की ओर ले जाती है और अंततः करुणा, प्रेम के रास्ते कविता, कहानी और आत्म-कथा के रूप में सामने आती है। इन्हीं अनुभवों ने अनेक दलित लेखक पैदा किए हैं, जिनके अंतर्द्वद्ध उन्हें दूसरों से अलग करते हैं। कई बार यह भी होता है कि भीतर की बेचैनी, छटपटाहट, ठीक उस रूप में व्यक्त नहीं हो पाती है, जैसा वह रचनाकार चाहता है। यह एक स्वाभाविक प्रक्रिया है जो उसके आंतरिक पीड़ा से जुड़ी है।"5

मोहनदास नैमिशराय द्वारा लिखित उपन्यास 'गया में एक अदद दलित' निजी अनुभवों के माध्यम से सामाजिक उत्तरदायित्व के उद्देश्य से लिखा गया उपन्यास है। पुस्तक की शुरुआत में, उन्होंने उक्त उपन्यास लिखने के लिए अपनी प्रेरणा को स्पष्ट किया है। इसमें नवभारत टाइम्स में काम करने के दौरान हुए जातिगत भेदभाव का भी जिक्र है। संपादक उन्हें गया के सामाजिक-धार्मिक वातावरण और जीवन पर रिपोर्ट बनाने का काम देता है। फिर वह गया का दौरा करते हैं और वहां के जीवन और संस्कृति को समझकर एक रिपोर्ट तैयार करते हैं। उन्होंने निष्कर्ष निकाला कि बोधगया की संस्कृति मुक्ति की है और वहाँ की हिंदू संस्कृति बंधन की है। लेकिन नये आये संपादक को एक दलित रिपोर्टर का बोधगया और वहां के ब्राह्मणों की हकीकत लिखना अपराध लगता है। वे रिपोर्ट प्रकाशित करने से मना करते हैं और लेखक का अपमान भी करते हैं। इसका दूसरा कारण यह स्वार्थ है कि बाहरी दुनिया को उनके समाज की गंदी हकीकत का पता न चले। वह अपने लेखन कौशल से संपादक की इस कार्रवाई का प्रतिरोध करने का निर्णय लेता है। इसके लिए उन्हें जो टूल मिला वह है उपन्यास साहित्य।

यह उपन्यास दलित जीवन का यथार्थवादी चित्रण कहा जा सकता है। वैसे उपन्यास का मुख्य पात्र रमेश विद्रोही नामक पत्रकार है। उपन्यास में कुछ बिंदुओं पर लेखक स्वयं ही उक्त पात्र बन जाता है। शुरुआती खुलासों के साथ पढ़ने पर विचाराधीन संदर्भों को लेखक के वास्तविक अनुभव के रूप में समझा जा सकता है।

उपन्यास में संपादक और रमेश विद्रोही के बीच हुई उक्त बातचीत इस प्रकार है- "आखिर तुम्हें इन सब पर लिखने का अधिकार किसने दिया?... क्यों क्या तुम शंकराचार्य हो, किसी मंदिर के पुजारी हो, ओझा हो, पण्डे हो, ज्योतिषी हो? फिर तुम किसी ब्राह्मण परिवार से भी नहीं हो।" संपादक के इन घिनौने सवालों का जवाब वह इस प्रकार देते हैं- " हां मैं इनमें से कोई भी नहीं हूं और ना ही इनमें से कुछ बनना चाहता हूं। पर मुझे लगता है कि आपके भीतर संपादक को छोड़कर

यह सब चरित्र छटपटा रहे हैं।"6  इसके साथ ही वह एक आदर्श संपादक का कर्तव्य उन्हें समझाने का प्रयास भी करता है।

गया भी में रमेश विद्रोही को क्रूर जातिगत भेदभाव का सामना करना पड़ता है। दलित होने के कारण धर्मशाला के अधिकारी उसे आधी रात में बाहर निकाल देते हैं। "हरिजनवाओं के लिए हमार धर्मशाला नई।.. गया नगरी तो पंडो की है, म्लेच्छों की नाही।"7

वह अपने और अपने द्वारा छुई गई चीजों के प्रति हुए भेदभाव से गहरे सदमे में पड़ जाता है। वह पुलिस केस दर्ज करता है। लेकिन पुलिस की ओर से कोई खास कार्रवाई नहीं की गयी। वहां से भी उसे अप्रिय अनुभव होता है। जैसा कि धर्मशाला के मैनेजर ने कहा, गया पंडितों का शहर है। आज तक वहां के थाने में इस तरह का कोई मामला दर्ज नहीं हुआ है। क्योंकि स्टेशन पर कभी निचली जाति का अधिकारी नहीं रहा। "ठीक ही कहते हैं। अधिकांश रिपोर्ट तो इसलिए ही दर्ज नहीं होती हैं कि जिसके खिलाफ रिपोर्ट लिखवाई जाती है, रिपोर्ट लिखने वाला उसी की जाति का होता है।" 8

प्रतिनिधित्व की कमी भेदभाव के अज्ञात और अप्रलेखित होने का एक बड़ा कारण है। उपन्यास हमें यही समझाता है। ऐसे अधिकारी के आने पर स्थिति बदल जाती है। तब मामले की जांच होती है और रमेश विद्रोही को न्याय मिलता है।

गया के ब्राह्मणों की वास्तविकता के उपन्यासीकरण के पीछे लेखक का कोई निजी स्वार्थ नहीं है। अपने ही समाज द्वारा अस्वीकृत एक समूह को सांस्कृतिक पुनःनिर्माण में भागीदार बनाने का सामाजिक दायित्व ही है। गया के ब्राह्मण समाज शिक्षा के खिलाफ है। परंपरा कायम रखने के नाम पर। वे अपने ही समाज में उच्च शिक्षितों का बहिष्कार करते हैं। महिलाएं इसकी सबसे ज्यादा शिकार होती हैं। आधुनिक शिक्षा के साथ पारंपरिक शिक्षा भी उनके लिए वर्जित है।  क्योंकि पूजाकर्म विशेष रूप से पुरुषों के लिए आरक्षित हैं। उपन्यास में मुख्यधारा के समाज में महिलाओं के साथ होने वाले भेदभाव का भी चर्चा होता है। उपन्यास में एक संवाद उल्लेखनीय है - "क्योंकि ब्राह्मण समाज सदा से ही परिवर्तन का विरोधी रहा है। वही समाज अपनी बेजान और मरी हुई संस्कृति को सीने से लगाए घूमता है। लड़कियों को घर से बाहर निकलने का समर्थक नहीं है, वह समाज । उन्हें पढ़ने नहीं देना चाहता। वे पढ़ती हैं तो हल्ला करता है। जैसे पढ़-लिखकर बामनों की लड़कियां उनकी नाक कटा देंगी। पूरे देश में जहां परिवार नियोजन का अभियान छिड़ा है, वहीं पण्डा समाज परिवार नियोजन के खिलाफ है। वह बच्चे पैदा करता है और मन्दिरों में छोड़ देता है। संस्कृत पढ़ाता है, अंग्रेजी नहीं, मंत्रों का उच्चारण सिखलाता है, व्यावहारिक बातों से दूर रखता है। जीवन में बदलाव के दृष्टिकोण से पहचान नहीं कराता।"9

उपन्यास उन सकारात्मक बदलावों के बारे में भी बात करता है जो शिक्षा लोगों के दृष्टिकोण में लाती है। यहां पर जीवनलाल नामक पत्र उल्लेखनीय है। परंपराओं और रूढियों के विरोध करके

वह अपनी बेटी को शिक्षित करता है। अपने द्वारा अर्जित ज्ञान के माध्यम से, वह सभी मनुष्यों को समान मानता है और इसके लिए काम करता है।

लेखक अम्बेडकर के प्रति मुख्यधारा समाज के अस्वीकार्य रवैये पर भी निराशा व्यक्त करते हैं। भारत का मुख्यधारा समाज उन विश्व नेताओं को तक जानता है जिन्होंने सामाजिक सुधार के लिए काम किया। वे गांधी, मार्क्स और लेनिन पर चर्चा करते हैं। लेकिन वे अम्बेडकर को भूल जाते हैं जो भारतीय सामाजिक इतिहास में परिवर्तन का चेहरा बने। उपन्यास का संदर्भ इस प्रकार है - "रमेश जी, उसका बड़ा कारण तो हमारे संस्कार ही हैं। बाबा साहेब डॉ अम्बेडकर को तो हमारे समाज ने अछूत माना ही साथ ही उनकी पुस्तकों को भी अछूत बना दिया था।"10

ब्राह्मणशाही व्यवस्था पर आधारित समाज अम्बेडकर को कभी स्वीकार नहीं कर सकता। अम्बेडकर उन सभी दर्शनों के विरोधी थे जो लोगों को अलग करते हैं। उपन्यास में एक पत्रकार का पेशा रमेश विद्रोही को समाज में स्वीकार्य बनाता है, तो अगले ही पल उसका दलित होना उसे घृणित बना देता है। अर्थात्, पेशेवर स्थिति उसे वर्ग पदानुक्रम के शीर्ष पर रखता है। जातिगत पहचान उसे सामाजिक पदानुक्रम से बाहर कर देती है। यह अहसास दुखद है कि किसी की प्रतिभा और मेहनत से हासिल की गई कोई भी चीज उसे समाज की नजरों में प्रतिष्ठा नहीं दिलाती। वर्ग उत्पादन अर्थात आर्थिक स्थिति पर आधारित होता है। इसलिए मुख्यधारा का समाज एक ही जाति के भीतर वर्ग भेद को पहचान सकता है। लेकिन वे जाति व्यवस्था को बनाए रखते हुए वर्ग संघर्ष का हिस्सा बनने की कोशिश करते हैं। यही कारण है कि भारत में मुख्यधारा का समाज मार्क्स को जानता है और जानबूझकर अम्बेडकर को भूल जाता है।

उपन्यास के चरमोत्कर्ष पर सांस्कृतिक पुनर्निर्माण का संकेत मिलता है। एक लेखक की सामाजिक प्रतिबद्धता और स्वतंत्रता की भावना वैकल्पिक साहित्य को आकार दे सकती है जो सत्ता को चुनौती देती है। यह हर उस कड़ी को ऊर्जा देता है जो सांस्कृतिक प्रतिरोध का हिस्सा है।

निष्कर्ष : प्रतिरोध साहित्य विभिन्न तरीकों से सत्ता के प्रतीकों से निपटता है। लेकिन यह सशस्त्र क्रांति जितनी प्रत्यक्ष नहीं है। पाठक पाठ को अनुभव की परिचित दुनिया में देखता है। यह सामाजिक परिवर्तन की शुरुआत करता है। इस प्रकार देखें तो मोहनदास नैमिशराय का उपन्यास एक उत्कृष्ट उदाहरण बनता है।

सन्दर्भ ग्रंथ सूची :

1. पृ. 99, गया में एक अदद दलित, मोहनदास नैमिशराय, हिंदी बुक सेंटर, 2016
2. पृ.26, भारतीय समाज में प्रतिरोध की परंपरा, मैनेजर पांडेय, वाणी प्रकाशन, 2013
3. पृ. 68, दलित साहित्य के प्रतिमान, डॉ.एन. सिंह, वाणी प्रकाशन, 2012
4. पृ. 25, दलित साहित्य का सौंदर्य शास्त्र, ओमप्रकाश वाल्मीकि, राधा कृष्ण प्रकाशन, 2001
5. पृ. 68, मुख्य धारा और दलित साहित्य, ओमप्रकाश वाल्मीकि, सामयिक प्रकाशन, 2010

6. पृ. 51, गया में एक अदद दलित, मोहनदास नैमिशराय, हिंदी बुक सेंटर, 2016
7. पृ. 21, वही
8. पृ. 25, वही
9. पृ. 35, वही
10. पृ. 36, वही

www.bohalshodhmanjusha.com Bohal Shodh Manjusha ISSN: 2395-7115
Impact Factor:8.642 January 2025 Page No. : 85-90
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

# साहित्य का आधार लोकसाहित्य

**डा0 डी0 सी0 पाण्डेय,** सहायक प्राध्यापक, हिन्दी विभाग
राजकीय महाविद्यालय हल्द्वानी शहर, किशनपुर गौलापार
कु0 वि0 वि0 नैनीताल, उत्तराखण्ड. – 263139

**सारांश**

गीर्वाणवाणी साहित्य में 'साहित्य, संगीत कला विहिन : साक्षात पशुपुच्छ विषाणहीन :' पक्तियाँ मात्र ग्रन्थों की शोभा नहीं, जीवन की शोभा को रेखांकित करते हैं। जीवन के बिना साहित्य की कल्पना असम्भव है, और साहित्य की समृद्वि के बिना जीवन एवं समाज का सम्यक विकास असम्भव है। प्रेमचन्द जी ने साहित्य को 'जीवन की आलोचना' यूँ ही नहीं कहा होगा किसी भी समाज राष्ट्र की भाषा–साहित्य से उसके सभ्यता, संस्कृति व सतत् सूचकांकों का प्रथम दृष्टया गहन आँकलन सम्भव है। जिस साहित्य में सत्य की साधना, शिवत्व की कामना और सौन्दर्य की अभिव्यंजना है वह कालजयी है। साहित्यकार जिस समाज से जीवन की ठोस सामाग्री, संवेदना, मूल्य, परम्परा आदि का संचयन–संकलन करता है वह है वहाँ का आम बहुसंख्यक जनमानस और उसकी दैनिक वास्तविक जीवन शैली और इसे चित्रित–वर्णित करने का क्षेत्र लोकसाहित्य ही किसी भी समाज के साहित्य की आधार भूमि कहा जा सकता है। सम्भवतः इसी कारण लोकसाहित्य को भारतीय साहित्य का निश्छल और विकारविहिन सृजन कहा जाता है। लोक संस्कृति के विशाल वट–वृक्ष की एक शाखा लोकसाहित्यान्तर्गत लोकगीत, लोकगाथा, लोककथा आदि कई स्र्वणपर्ण सुशोभित हैं। साहित्यकार इन्हीं से पोषण प्राप्त कर सुसंस्कृत व सभ्य स्वरूप में अपनी रचना अथवा साहित्य को आत्मानन्द के साथ सृजित कर पाता है। साहित्य जो है और जो होना चाहिए के मध्य का यदि सेतु है तो लोकसाहित्य उस सेतु का आधार स्तम्भ है।

**बीज शब्द**

साहित्य, लोकसाहित्य, लोकसंस्कृति, हिन्दी साहित्य, लोकसाहित्य के समीक्षक, वैश्वीकरण, भौतिकतावाद।

**भूमिका**

जिसमें समस्त प्राणिमात्र के हित की भावना निहित हो उसे ही साहित्य कहा गया है अर्थात् 'सहितस्य भावः साहित्यं', भाषा, लिपि, कल्पना, विचार एवं भावों से आकार लेता साहित्य का भवन कलात्मक उपादानों से विभूषित होकर पाठकों, दर्शकों अथवा सुधी श्रोतागणों तक अपने उद्देश्य को परिलक्षित करता चलता है। विभिन्न वादानुयायी भले ही साहित्योद्देश्य पर एकमत न हो किन्तु इतना निश्चित है कि साहित्य कभी भी निरूद्देश्य नहीं होता। अनुभूति के गहन लहरों में आलोड़ित, अभिव्यक्ति की उदात्त शब्दावली से विलोड़ित भाव–विचारों का ज्वार कृतिकार को जिस परमानन्द का आस्वादन कराता है वह अकथनीय है। कालजयी रचनाएँ पाठकों के मानसपटल, स्मृति संसार में सदैव में चिरस्मरणीय एवं नित नवीन रूप में विद्यमान रहते हुए नूतनानन्द में सहायक होती हैं। पाठक जब इन रचनाओं से साधारणीकरण की सीमा को स्पर्श करता है तब उसके समस्त सुख–दःख इसमें तिरोहित हो जाते हैं। रचनाकार की विस्तीर्ण चिन्तनधारा, कल्पना की उड़ान के साथ वह स्वयं को एकाकार कर पाता है। साहित्य मनुष्य को सामाजिक व समाज को मानवतावादी दृष्टि प्रदान करता है। अपने समय, समाज, पृष्ठभूमि के भूत भविष्य व वर्तमान पर साहित्य की पैनी दृष्टि रहती है। इसमें सन्देह नहीं कि साहित्य सूचना पर नहीं संवेदना से संचालित होता हैं। कृत्रिम बुद्विमता एवं डिजिटल

जीवन शैली के दौर में सम्भव है कि समाज को साहित्य की आवश्यकता न हो या कम हो पर साहित्य, समाज से प्राणवायु संजीवनी की तरह आत्मसात कर अभिव्यक्ति करता रहेगा।

साहित्य के लौकिक व अलौकिक उद्देश्य में रसानुभूति सर्वोपरि रही है। भारतीय साहित्यकार धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष में विलक्षणता और कीर्ति तथा प्रीति की प्राप्ति साहित्य का लक्ष्योद्देश्य मानते आये हैं। संस्कृत साहित्य के आर्चाय मम्मट ने अपने प्रसिद्व ग्रन्थ 'काव्यप्रकाश' में काव्य के छः प्रयोजनों का उल्लेख किया है :–

**काव्यं यशसेर्थकृते व्यवहारविदे शिवेतरक्षयतये।**
**सद्यः परिनिवृत्तये कान्ता सम्मिततयोपदेशयुजे।।**

अर्थात् साहित्य सृजन से यश, अर्थ, शिष्ट व्यवहार कल्याण, अलौकिक आनन्द व प्रियतमा के मधुर प्रेमपूर्ण कथन के समान आनन्दकारी लाभप्राप्ति होती है। समाज की मुख्य विचारधारा से विमुख अपनी ढपली अपना राग सुनाता साहित्य अपने आश्रयदाता के महिमामण्डन अथवा राजदरबारी ठकुरसुहाती में लिप्त आकण्ठ निमग्न, कनक–कामिनी, सुरा–सुन्दरी की चासनी से बाहर नहीं निकल पाता। अर्वाचीन एवं प्राचीन–भारतीय साहित्य के समान ईरानी, अवेस्ता, वेबोलिनियल अमर महाकाव्य गिल्गैमिश मिश्री साहित्य में मेम्फाइट ड्रामा 'अभिषेक नाटक', 'सिंदबाद की कहानी', रोमन साहित्यकारों सिसरो, वर्जिल, हॉरेस, हिब्रुओं का 'ओल्ड टेस्टामेंट', पोतभंग नाविक की कथा, यूनानी होमर की 'इलियड', 'ओडिसी', हेसिअड की रचना दि वर्क्स एण्ड डेज, चीनी कन्फयूशस का शीचिंग, शू चिंग, चुनचिड एवं चु युआन की कृति ति–शाओ तथा लाओत्से की कृति ताओवे–चिंग या फिर भवभूति, भास, भारवि, बाण, शूद्रक, मम्मट, शंकुक, लोल्ल्ट, कालिदास सहित चेखव, मोपासा, रोमांरोला, चार्ल्स डिकेन्स, लियो टालस्टॉय, मैक्सिम गौर्की, शेक्सपियर, वर्डसवर्थ, मिल्टन, कीट्स या प्रसाद, प्रेमचन्द प्रभूत साहित्य में निरूपित तत्कालीन युग सन्दर्भ के लोकजीवन के चित्र जीवन्त बन पड़ें हैं।

सुदूर अतीत के यूनानी, भारतीय और मिश्री साहित्य अपने समय और समाज का प्रतिनिधित्व और संचालन करने वाले प्रभु वर्गों के जीवन के संतोष, विलास और विकास के संघर्ष चित्र होते थे। संस्कृत–पश्चिमी साहित्य में भी प्रायः साधनहीन वर्ग का चित्रण न्यूनतम स्तर पर ही दिखता है। यह साहित्य तत्कालीन अभिजात प्रभुवर्ग के जीवन का ही दर्पण था। उस समय उस साहित्य में किसानों और मेहनतकशों के लिए 'क्लाउन' या 'क्लाडहोपर' जैसे शब्दों का प्रयोग किया जाता था।[01] अर्थात अभिजात वर्ग की मान्यताएँ ही समाज की नैतिकता और न्याय थे। किन्तु प्रभु वर्ग के अतिरिक्त दूसरे सामान्य साधनहीन वर्ग भी थे जो कि अपेक्षाकृत अशिक्षित, तथाकथित अविकसित अनपढ., गँवार, अशिष्ट व असभ्य शब्दों द्वारा भी नामित किया गया, पर इनकी संख्या कम नहीं थी अतः इनका भी कुछ न कुछ मनोरंजन का आधार व साधन अवश्य था जो कहीं –कहीं शिष्ट साहित्य से भी बेहतर रूप में दिखता है। अतः बहुजन की चेतनाभिव्यक्ति और समाज में बौद्विक वर्ग की साहित्यिक व लोकसाहित्यिक रचनाओं का गूढ़–गुम्फन व सह–सम्बन्ध देखने को मिलता है।

निःसन्देह साहित्य सृजन के क्षेत्र में भारत की सांस्कृतिक विरासत अत्यन्त समृद्व रही है किन्तु लोक साहित्य की कर्णपरम्पराओं के मौखिक साहित्य को आधारशिला के रूप में देखा–समझा जा सकता है। चारों वेद, ब्राह्मण, सूत्र, वेदांग, पुराण, स्मृतियाँ जहाँ वैदिक साहित्य 'आगम' ग्रन्थों में जैन धार्मिक साहित्य समाहित है। महाकाव्य लेखन के अन्तर्गत 'रामायण' तथा 'महाभारत' जैसी कालजयी कृतियों का सृजन साहित्य की चिर संचित पूँजी है। पाणिनी की 'अष्टाध्यायी' वात्स्यायन का 'कामसूत्र' कालिदास का 'मेघदूत', मालविकाग्निमित्रम् 'ऋतुसंहार', 'विक्रमोर्वशीयम', विशाखदत्त, कृत 'मुद्राराक्षस', भारविकृत 'किरातार्जुनीयम', शूद्रककृत 'मृच्छकटिकम', कल्हणकृत 'राजतरंगिणी', तुलसीककृत 'रामचरितमानस', सूरकृत 'सूरसागर', बिहारीकृत 'बिहारीसतसई', रवीन्द्रकृत 'गीतांजलि' आदि साहित्यिक कृतियों के अतिरिक्त असमिया, उर्दू, तमिल, तेलगू, कन्नड़, मलयालय, गुजराती, मराठी, उड़िया, बंगला आदि भाषा में भी विशाल मात्रा में साहित्य सर्वविदित है। जिसमें अपने देश–प्रदेश की समृद्व साहित्यिक – सांस्कृतिक, सामाजिक परिवेश का दृश्यांकन पग–पग पर देखा जा सकता है। पर क्या इसमें आम जनमानस का चित्रण या विविध रचनाकारों द्वारा इस साहित्य लेखन की प्रेरणा में लोकसाहित्य के तत्व विद्यमान नहीं है ? निश्चित रूप में अनिवार्यतः इनकी भावभूमि में लोकसाहित्य की मौखिक कर्णपरम्परा देखी जा सकती है बस लोकसाहित्य लिपिबद्व नहीं रहता, शिष्ट साहित्य लिपिबद्व, मानक, प्रकाशित, प्रचारित व पठित रहता हैं। प्रत्येक समाज का अपना लोकसाहित्य मौलिकता लिए हुए होता है।

**लोकसाहित्य**

लोकमानस की सहज और स्वाभाविक अभिव्यक्ति लोक साहित्य बहुधा अलिखित ही रहता है और अपनी मौखिक परम्परा द्वारा एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी तक आगे बढ़ता रहता है। लोकसाहित्य के रचयिता का नाम अज्ञात रहता है लोक का प्राणी जो कुछ कहता–सुनता है उसे समूह की वाणी बनकर और समूह में घुलमिल कर ही कहता–गाता है। लोकभाषा के माध्यम से लोकचिंता की अकृत्रिम अभिव्यक्ति लोकसाहित्य का प्रधानगुण है। लोक शब्द का प्रयोग सर्वप्रथम ऋग्वेद के पुरूष सूक्त में प्राप्त होता है, जहाँ इसे सामान्य जन अथवा स्थान विशेष के रूप में ही प्रयुक्त किया है यथा :

**नाभ्या आसीदन्तरिक्षं शीर्ष्णो द्यौः समवर्तत।**
**पदभ्यां भूमिर्दिशः श्रोतान्तथा लोकॉ अकल्पयन।।**[02]

अर्थात् : पुरूष की नाभि से अन्तरिक्ष, शिर से द्यौ (स्वर्ग) चरणों से भूमि, श्रोत से दिशाएं आदि भुवन (लोक) बनाये गये।

सृष्टि के विकास के साथ ही लोकसाहित्य का उद्भव माना जाता है। इस प्रकार लोकसाहित्य मानव समाज के क्रमिक विकास की कहानी हमारे सामने रखता है। लोकसाहित्य, लोकरंजनी साहित्य है जो सर्वसाधारण समाज की मौखिक रूप में भावमय अभिव्यक्ति करता है। लोकसाहित्य, वर्तमान उन्नत एवं कलात्मक साहित्य का जनक है। आज का सुसंस्कृत एवं परिष्कृत साहित्य व्यक्ति की महत्ता को स्वीकार करता है। लोकसाहित्य में जनता ही सब कुछ होती है व्यक्तिगत जैसा कुछ नहीं होता है। उसमें समस्त समाज की आत्मा प्रतिविम्बित होती है। अंग्रेजी भाषा का Folk literature का अनुवाद लोक साहित्य है। ऋग्वेद में 'देहिलोक' शब्द का प्रयोग भी मिलता है। 'लोक' शब्द की व्युत्तपत्ति के सम्बन्ध में हिन्दी साहित्य के वृहद् इतिहास में लिखा है, लोक शब्द संस्कृत के लोकदर्शन धातु से 'घञ' प्रत्यय करने पर निष्पन्न हुआ हैं।[03] जिसमें ग्रामीण और नगरी दोनों संस्कृतियाँ सम्मिलित हैं। लोक साहित्य सहज, सरल, स्वछन्द अभिव्यक्ति का नाम है जो किसी प्रकार के शास्त्रीय नियमों का बन्धन स्वीकार नहीं करता और अनपढ़, अकृत्रिम तथा कलात्मक अभिव्यक्ति से कोसों दूर रहता है।

डा0 कृष्णदेव उपाध्याय के शब्दों में लोक साहित्य का विस्तार अत्यन्त व्यापक है, साधारण जनता जिन शब्दों में गाती है, रोती है, हँसती है उन सबको लोक साहित्य के अन्तर्गत रखा जा सकता है। सन्तान जन्म से लेकर मृत्यु तक जिन षोड्स संस्कारों का विधान हमारे प्राचीन ऋषियों ने किया है प्रायः उन सभी संस्कारों के अवसर पर गीत गाए जाते हैं, कही बहुधा प्रिय व्यक्ति की मृत्यु के अवसर पर भी गीत गाने की प्रथा प्रचलित है। विभिन्न ऋतुओं में प्रकृति में जो परिवर्तन दिखाई पड़ता है उसका प्रभाव जन साधारण के हृदय पर पड़े बिना नहीं रहता । अतः वाह्य जगत में इस परिवर्तन को देखकर जो उल्लास या आनन्द की अनुभूति होती है वह लोकगीतों में प्रकट होती है। खेतों में बुआई, निराई, गोड़ाई, आदि के समय भी गीत गाए जाते हैं। जनता अपने पूर्व पुरूषों के शौर्यपूर्ण कार्यों को गा–गाकर आनन्द प्राप्त करती है। उनका यशोगान कर श्रोत्राओं के हृदय में वीर रस का संचार करती है । ये गीत लोक गाथाओं की कोटि में रखे जा सकते हैं।[04]

डा0 हजारीप्रसाद द्विवेदी, डा0 सत्येन्द्र, डा0 रवीन्द्र भ्रमर, डा0 धीरेन्द्र वर्मा, डा0 त्रिलोचन पाण्डेय आदि अनेक विद्वानों ने भी लोकसाहित्य को परिभाषित करने का प्रयास किया है। कर्नल जेम्स टॉड ने राजस्थान राज्य के रेजिमेन्ट रहते हुए सन 1829 ई0 में वहाँ की रीति–रीवाज, वेश–भूषा का गहन अध्ययन किया । 'ऐनल्स संड ऐंटीक्विटीज ऑफ राजस्थान' नामक ग्रन्थ में इस क्षेत्र के अध्ययन का आधारभूत ग्रन्थ माना जा सकता है। 'लोक वेद ते विमुख भा अधम को बेनु समान'।[05] तुलसीदास कृत श्री रामचरितमानस की उक्त–निम्न पक्तियों में लोक शब्द की महत्ता निर्विवाद है। 'लोकाभिरामं श्रीराम.....'।

**साहित्य और लोकसाहित्य में अन्तर्सम्बन्ध**

जिस तरह ज्ञान, विज्ञान का आधार है। संस्कृति, संस्कृत की नींव है। व्यापार से पूर्व बाजार है। न्याय व्यवस्था से पूर्व पंच–परमेश्वर प्रणाली हमारे तन्त्र में विद्यमान रही है। उसी तरह साहित्य से पहले लोकसाहित्य की यत्र–तत्र विखरी सम्पदा सर्वविदित है। उस विखरी सम्पदा को परिमार्जित, परिष्कृत व परिनिष्ठित रूप में सुसंस्कृत सभ्य व क्रमबद्व ढंग से मानकानुसार व्याकरण के साँचे–ढाँचे में सुधी पाठकों के सम्मुख रखने का कार्य साहित्य करता है। साहित्य का लोक साहित्य से वैसा ही अन्तर्सम्बन्ध है जैसा नागरिक सभ्यता युक्त समाज का जन सामान्य के समाज के साथ। प्रसिद्व रूसी साहित्यकार मैक्सिम गोर्की ने लिखा है, शिष्ट समाज इस कच्चे माल को कला के प्रति सजग होकर

बौद्विक विचारों से मंडित करता हुआ शिष्ट साहित्य रूपी पक्के माल का रूप देता है। इसमें –सन्देह नहीं कि शिष्ट साहित्यकार अपनी रचना को कान्तिमय बनाने के लिए लोक साहित्य के उपवन में परिक्रमा करते हुए देखे जा सकते हैं। इसके सकारात्मक परिणाम भी सामने आये हैं। लोक साहित्य की अकूत सम्पदा से अपने विषय शीर्षक की अतिप्राथमिक सामग्री को लेकर उसे परिष्कृत रूप में प्रस्तुत करने में अनेक उदाहरण विश्व के विभिन्न साहित्य में सरलता से देखे जा सकते हैं। स्वयं हिन्दी साहित्येतिहास के प्रारम्भिक युग के साहित्य को धरातलीय भावभूमि में लोक साहित्य की भूमिका को नकारा जा सकता है क्या ? मौखिक परम्परा से पीढ़ी दर पीढ़ी प्राप्त निरन्तर चली आ रही रासो परम्परा के ग्रन्थ इसके प्रमाण हैं। जैसे पृथ्वीरासरासो के कृतिकार चन्दबरदाई का काव्य भवन राजस्थनी लोकगायकों की सुदृढ़ आधारशिला पर निर्मित है। खुसरो की पहेलियाँ, मुकरियाँ, कबीर के झूलने, रेख्ते, साखी, सबद, रमैनी क्या लोक साहित्य से प्रभावित नहीं हैं? तुलसी की श्रीरामचरितमानस प्रसाद की कामायनी का प्रथम सर्ग चिन्ता या भारतेन्दु जी की रचना 'भारत दुर्दशा' नाटक का एक लावनी उदाहरण देखिए :–

**'आवहु सब जुरि–मिलि कै रोवहु भाई ।**
**हा ! हा ! भारत–दुर्दशा न देखी जाई '।।**

हिन्दी के स्वर्णयुग की वैषयिक भावभूमि का आधार लोक धरा ही है। रीतिकाल के रीति सिद्व, रीति बद्व एवं रीति मुक्त कवियों के अतिरिक्त अन्य कवियों की शिष्ट रचनाओं के मूलाधार यही लोकसाहित्य है। बस उसे परिमार्जित स्वरूप देकर सभ्य समाज के समक्ष प्रस्तुत किया गया है। विश्व के प्रत्येक भाषा के साहित्य की जीवंतता, सजगता एवं जनानुभूति को उत्तरोत्तर द्वढ़ बनाने हेतु लोक से आदान अनिवार्य है तथा लोक साहित्य को द्रुत गति प्रदान करते हुए गौरवान्वित करने के लिए शिष्ट साहित्य को गहनता से श्रवण, मनन, वाचन, पठन-पाठन आवश्वयक है। साहित्य एवं लोकसाहित्य के मध्य स्थापित आत्मीय अन्तर्सम्बन्ध अन्तत्वोगत्वा लोकानन्द, लोकमंगल की अनुभूति कराता है। परस्पर एक दूसरे का सम्मान कर साहित्य व लोकसाहित्य की यात्रा सुगमता से सम्पादित हो सकती है, तब जबकि लोक साहित्य की अब लिखित, टंकित, अंकित, रिकार्ड आदि संग्रहणीय रूप में आने लगा है।

चूँकि लोकसाहित्य में लोक संस्कृति, लोकजीवन और रीति–रिवाजों के अनमोल कोहिनूर अटे, भरे पड़े हैं। जिन्हें अविरल अनुसंधानित करने की नितान्त आवश्वकता बनी हुई है। इसी महत्व को समझते हुए अनेक स्वदेशी–विदेशी विद्वानों ने अपना सम्पूर्ण जीवन समर्पित कर दिया। जैसे विदेशी लोक–साहित्य मर्मज्ञ कर्नल जेम्स टॉड, जे0 ऐबट, रेवरेण्ड एस0 हिल्सम, मिस फ्रेयट चार्ल्स, ई ग्रोवर, डाल्टन, आर. सी. कालवेल, एफ. टी. कोल, जी. एच. डेसेंट, आर. सी. टेम्पुल, श्रीमती स्टील, ई. जे. राबिन्सन, सर जार्ज ग्रियर्सन, विलियम कुक, जे. डी. एण्डरसन, आर. एम. लोप्रोनेस, स्विनर्टन एफ. हान. थर्स्टन, डब्ल्यू टी. डेमस, ई. स्टेक, सी. एच. बेायन्स, सेलिगमैंन, पादरी शेक्सपीयर, सी. ए. बक, डा. बेरियर, एल्बिन, आदि तथा स्वदेशी विद्वानों में प. रामगरीब चौबे, ए. जी. आगरकर, डा. हीरालाल, डा. दिनेश चन्द्र सैन, आशुतोष मुखर्जी, शरच्चन्द्र राव, झबेर चन्द्र मेघाणी, रामनरेश त्रिपाणी, देवेन्द्र सत्यार्थी, प. बनारसीदास चतुर्वेदी, डा. कृष्णदेव उपाध्याय, प. ब्रजमोहन व्यास, श्रीकृष्ण दास, विद्याधरी देवी, बैजनाथ कैड़िया, जगदीश सिंह गहलौत, गणपति स्वामी, डा. बाबूलाल सक्सेना, सत्यव्रत अवस्थी, डा. त्रिलोकीनारायण दीक्षित, नर्मदाप्रसाद गुप्त, प. शिवसहाय चतुर्वेदी, प. गौरी शंकर द्विवेदी, डा. शकंरदयाल उपाध्याय, डा. कृष्णलाल हंस, महापंडित राहुल सांकृत्यायन, सत्य गुप्ता, सीता देवी एवं दमयन्ती, दुर्गाशंकर प्रसाद सिंह, डा. सत्यव्रत सिन्हा एवं डा. उदयनारायण तिवारी प्रभृत लोकसाहित्य मर्मज्ञों ने इसके विविध पक्षों की सांगोपांग समीक्षा, विवेचना भिन्न–भिन्न लोकसंस्कृतियों की दृष्टि से समय–समय पर की है।

स्वाभाविकता, स्वच्छन्दता तथा सरलता युक्त, कृत्रिमतायुक्त जनता का जनता के लिए जनता द्वारा मौखिक कर्णपरम्परा या आंशिक लिखित रूप से प्रवाहित अजस्र लोकसाहित्य जिसके रचियता की जानकारी न हो वह चाहे लोककथा, लोकगीत, लोकगाथा, आदि रूप में हो अन्तोत्वागत्वा शिष्ट साहित्य, काव्य एवं महाकाव्य की सर्जना के प्रेरक व अवलम्बाधार बन जाते हैं। रामायण–महाभारत जैसे कालजयी ग्रन्थों के बीज हम लोकवार्ताओं में, लोकसाहित्य में सरलता से पा सकते हैं। शिष्ट साहित्य की आधारशिला या स्वर्णिम नींव में लोकसाहित्य का महत्व निर्विवाद है। आधुनिकतम लोकप्रिय विधा हिन्दी भाषा सहित विविध सिनेमाई गीतों के शब्दों–बोलों एवं धुनों में लोकसाहित्य के लोकगीतों को क्या

नकारा जा सकता है ? जिसमें निर्माता–निदेशक कभी श्रृंगार तो कभी देशभक्ति का तड़का लगाकर पाठकों के लिए प्रस्तुत करते आये हैं। जैसे 'गदर' फिल्म में जे. पी. दत्ता जी ने..... 'घर आ जा परदेशी तेरी मेरी एक जिंदणी' गीत में वाद्ययन्त्रों से लेकर धुन – शब्द चयन का मूल स्रोतादि में राजस्थानी लोकगीत की पृष्ठभूमि को आधार बनाया गया है। लोक साहित्य कानन कुसुम है तो साहित्य राजप्रासादों का सुमन। जंगल की झाड़–झंखाड़ व हिंसक पशुओं के मध्य वन–प्रान्त का फूल, राजभवनों के गमलों से खिले–फूल सें अधिक सुन्दर, स्वस्थ व सुदृढ़ देखा गया है।

देश के विविध भाषा–बोलियों के लोकसाहित्य में वहाँ की परम्पराएँ, लोकाचार, मान्यताएँ, रीति–रिवाज, नृत्य, मेले, तीज–त्यौहार, धर्म, प्रवृत्ति–प्रकृति, खाद्यान्न, शुभा–शुभ विचार, मनोवैज्ञानिक, सामाजिक अन्तर्सम्बन्ध आदि की दीर्घ तालिका देखी–पढ़ी जा सकती है। 'ससुराल गेंदाफूल' जैसी लोकप्रिय गीत पक्तियों का आधार लोक साहित्य ही है। व्रज, अवधी, भोजपुरी, बुन्देलखण्डी, कुमाउनी–गढ़वाली आदि लोकसाहित्य की समृद्व धरोहर को इसके एक छोटे से उदाहरण के रूप में देखा जा सकता है। निःसन्देह लोकसंस्कृति ही लोक साहित्य की आत्मा है। साहित्यकार को खाद–पानी यहीं से प्राप्त होता है। परिवर्तित होते भू–सामाजिक परिदृश्य की दृष्टि से सांस्कृतिक सम्पर्क, नवप्रवृत्तियाँ, उदारीकरण, निजीकरण और वैश्वीकरण की बयार का प्रभाव लोक साहित्य पर पड़ना स्वाभाविक है। विशेषज्ञ इसे लिपिबद्व करने के साथ ही पेटेंट कराने की आवश्यकता व्यक्त करते आ रहे हैं।

अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर लोक साहित्य को बौद्विक सम्पदा के तौर पर सुरक्षित रखने के प्रयास किये जा रहे हैं। फोकलोर फैलोज नेटवर्क नाम के अनुसंधान सम्बन्धी न्यूजलैटर (हेलसिंकी 2001) से इस बात की पुष्टि हो जाती है।

**(क)** परम्परा के उपासक के रूप में लोकसाहित्य की जानकारी रखने वालों का संरक्षण उनकी गोपनीयता और निजता की सुरक्षा।

**(ख)** पुरातात्विक साम्रागी का संग्रह करने वालों के हितों की रक्षा ।

**(ग)** संग्रहीत सामग्री के दुरूपयोग को रोकने के उपाय करना तथा

**(घ)** लोक संस्कृति से सम्बन्धित पुरातात्विक सामाग्री के महत्व को समझना।[06]

यह लोकसाहित्य की गहन महत्ता को ही दर्शाता है कि आज सिनेमा, नाटकों, सांस्कृतिक कार्यक्रमों, रेडियों, टेलीविजन, राजनेताओं के भाषणों, विज्ञापनों, प्रशासकों, खिलाडियों, बाजार आदि भी लोकसाहित्य के पनघट पर प्यासे मडराते देखे जा सकते हैं। इक्कीसवी सदीं के पूर्वाद्व में मानकों, प्रतीकों, बिम्बों, उदाहरणों में परिवर्तन सहजता से देखे जा सकते हैं। भौतिकवाद की चकाचौंध से साहित्य–लोकसाहित्य भला प्रभावित क्यों न हो ? लोकसाहित्य प्रेमी शुतुर्मुर्गी रवैया नहीं अपना सकते। साहित्यकार लकीर का फकीर नहीं बन सकता है। नये जमाने के धन्ना सेठों रूपर्ड मर्डोक, वार्न ब्रदर्स, एलन मस्क, बिल गेट्स, स्टीव जॉब्स, अडानी, अम्बानी की मायावी दुनिया में ड्रीम इलेवन, के. बी. सी., बिग बोस, नैस्डैक, डाउजोन्स, निक्केई, के साथ ही क्रिप्टोकरेंसी, कृत्रिम बुद्विमता, यूनीकोड, डाटा विज्ञान, रोबोटिक विज्ञान आदि में अकल्पनीय सच्चाईयाँ हैं। गगनयान, चन्द्रयान शिवशक्ति, आदित्य विज्ञान, विक्रम, व्योममित्र, वाइटल इन्फलुन्शर, सोशल मीडिया, सहजीवन, किराये की कोख, प्री वेडिंग सूट जैसी वस्तुस्थितियों के मध्य साहित्य–लोकसाहित्य भी देशकाल परिस्थितियों के साथ कदम ताल मिलाता दिखता है। इसे नवसृजित साहित्य एवं उदयीमान लोकगीतों में आसनी से देखा–सुना जा सकता है 'महंगाई डायन खाये जात है.....'।

**उपसंहार**

बाजारवाद की आँधी में साहित्य, समाज को भविष्य के प्रति सजग करता चलता है। बारूद के ढेर पर बैठी नवमानव सभ्यता को जीवन के वास्तविक उद्देश्य का ध्यानाकर्षण करता साहित्य वास्तव में समाज की आखों का विस्तार है। 'मेरी मर्जी' वाली संस्कृति पर चलने वाला समाज शीघ्र ही इतिहास का पृष्ठ बन जाता है। वैश्वीकरण की खुली हवा के लिए खोली गई अपने घर की खिड़की से बाहर की हवा अवश्य आये पर अन्दर की मौलिकता व वास्तविक तथ्यपरक मूल्यों का तिरोहित हो जाना चिंता का विषय है। हमारे परम्परागत स्वस्थ मूल्यों का वाहक लोक साहित्य जिस भीनी–भीनी मृदा सुगन्ध जो हमारी मानस चेतना को झंकृत करता है क्या उसे हम तथाकथित आधुनिकता की आड़ में विस्मृत कर दें ? यह सम्भव नहीं है। साहित्य–लोकसाहित्य शेयर बाजार के संवेदी सूचकांक की तरह नहीं हो सकता

जहाँ उतार–चढ़ाव ही परिचय है न कि चित्तवृत्ति, मनोवृत्ति, अभिरूचि का लोकअभिमुखीकरण। उपन्यास सम्राट मुंशी प्रेमचन्द ने कहा है, '' साहित्य ज्ञान की मशाल लेकर आगे चलने वाला क्रांतिदूत है न कि राजदरबार की याचना–परिक्रमा चिरौरी करने वाला''। साहित्य को प्रतिपक्ष की पवित्र भूमिका में जन–मन की लोकवाणी की प्रस्तुत करते हुए देखना उसकी प्रतिष्ठा में वृद्वि करता है। साहित्य एवं लोकसाहित्य के चोली–दामन के साथ को प्रत्येक भाषा–संस्कृति में देखा जा सकता है।

## सन्दर्भ सूची


1. **यशपाल,** लेखक का दायित्व और सामाजिक न्याय, यू. क. टा., समसामयिक आधु. वि. स., 12 मार्च, लेन इलाहाबाद – 2. उ. प्र. पृ. स. 13।
2. **ऋग्वेद (भाग 4) दशममण्ड़ल –** 90 वाँ सूक्त–पुरूष सूक्त– 14, रूपेश ठाकुर प्रसाद, प्रकाशन वाराणसी – भारत प्रेस पृ. 283।
3. **सिद्वान्त कौमुदी** (हिन्दी साहित्य का वृहद् इतिहास) पोड़स भाग पृ. 417, पृ. 01।
4. **उपाध्याय, कृष्णदेव डॉ.** – लोक साहित्य की भूमिका, पृ.स. 23–24।
5. **श्रीरामचरितमानस–** अयोध्याकांड– तुलसीदास, पृ. स. 228, गीताप्रेस गोरखपुर, बहत्तरवा पुनर्मुद्रण (83)।
6. **समाज और लोक साहित्य –** ग्लोबल कै. वि. नि. स., सम्पा. एल. एस. मिश्रा, पृ. स. 102 : 20 न्यू मम्फोर्ड गंज इलाहाबाद –2।



**ई. मेल.** drdcpandey3075@gmail.com
**दूरभाष संख्या : 9411319412**

www.bohalshodhmanjusha.com Bohal Shodh Manjusha ISSN: 2395-7115
Impact Factor:8.642 January 2025 Page No. : 91-96
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

# योगाभ्यास का शैक्षिक उपलब्धि पर प्रभाव : साहित्य का अवलोकन

**राशी तिवारी,** शोधार्थी, शिक्षाशास्त्र साइंस,सीहोर
**संतोष जागवानी,** सह-आचार्य, शिक्षाशास्त्र,
श्रीसत्य साई यूनिवर्सिटी ऑफ टेक्नॉलजी एण्ड मेडिकल साइंस,सीहोर

**सार** - आधुनिक दुनिया में प्रतिस्पर्धा बढ़ती जा रही है । यह प्रतिस्पर्धा हर क्षेत्र में व्याप्त है चाहे वह सामाजिक हो, आर्थिक हो या शैक्षिक । बालक के माता-पिता और शिक्षक यही चाहते हैं कि बालक विद्यालय में बेहतर प्रदर्शन करें जिससे वह जीवन मार्ग में सफल हो सके । प्रस्तुत अध्ययन में योगाभ्यास का शैक्षिक उपलब्धि पर प्रभाव से संबंधित साहित्य का अध्ययन किया गया है । संबंधित शोध साहित्य के अध्ययन से यह ज्ञात हुआ है कि योग से शैक्षिक उपलब्धि में वृद्धि होती है।

**कुंजी शब्द**- योगाभ्यास, शैक्षिक उपलब्धि/ निष्पति, प्रदर्शन

**प्रस्तावना-** शिक्षा मानव विकास का मूल साधन है। इसके द्वारा बालक की जन्मजात शक्तियों का विकास होता है। जिस ज्ञान को विद्यार्थी विद्यालयों में विभिन्न विषयों के अध्ययन द्वारा प्राप्त करते है वह शैक्षिक उपलब्धि है। वास्तव में शैक्षिक उपलब्धि विद्यालय द्वारा अपनाए गए मानदंडों के आधार पर विद्यार्थियों की स्थिति दर्शाता है जिससे यह ज्ञात होता है कि विद्यार्थी ने कितना ज्ञान या कौशल प्राप्त किया| यह विद्यार्थियों को मेहनत करने और सीखने के लिए प्रोत्साहित करता है।

आज के समय योग एक महत्वपूर्ण भूमिका निभा रहा है। यह एक ऐसी पद्धति है जिसके द्वारा मनुष्य अपनी इच्छा शक्ति पर नियंत्रण कर सकता है । योग भारत की एक प्राचीन विरासत में से एक है। योग भारत द्वारा पूरे विश्व को दिया गया एक महान योगदान है| योग अभ्यास मनुष्य को शारीरिक, मानसिक और आध्यात्मिक रूप से विकसित करता है| आज के समय योग अधिक लोकप्रिय है, योग के द्वारा तनाव को काम किया जा सकता है और मानसिक स्वास्थ्य को बेहतर बनाया जा सकता है|

योग एक अनुशासन है | जिसमें शारीरिक, मानसिक और आध्यात्मिक अभ्यास पर ध्यान दिया जाता है | इसकी उत्पत्ति प्राचीन भारत में हुई है और आज पूरे विश्व में इसका

अभ्यास किया जाता है| आजकल विद्यालयों में छात्रों को योगाभ्यास कराया जाता है | विद्यार्थी के लिए योगाभ्यास अत्यंत आवश्यक है क्योंकि वे विभिन्न प्रकार के दबाव और तनाव में रहते हैं | विभिन्न प्रकार की परीक्षाएं, कार्य, शैक्षिक उपलब्धि पर ध्यान देना तथा अपने प्रदर्शन को प्रभावी बनाने के लिए कार्य करना पड़ता है जिससे उनमें तनाव उत्पन्न होता है | आज के समय विद्यालयों में योग शिक्षा को अनिवार्य कर दिया गया है | यह शरीर को तनाव मुक्त रखता है इसके साथ ही यह शरीर को लचीला एवं ध्यान को केंद्रित करता है इसके साथ ही विद्यार्थियों में योगाभ्यास के अन्य लाभ भी है | यह कार्य को प्रभावी बनाने में तथा कक्षा में बेहतर प्रदर्शन करने में सहायक है | शिक्षा मनुष्य के शारीरिक एवं मानसिक विकास पर बल देती है और योग इस पर और अधिक बल देता है|

**संबंधित साहित्य-**

**कोट्स, अमित व अन्य (2009)** ने तनाव के संबंध में शैक्षिक उपलब्धि पर योग के प्रभाव का अध्ययन किया निष्कर्ष रूप में पाया कि योग करने वाले विद्यार्थियों में बेहतर शैक्षिक उपलब्धि देखी गई । **गज्जर, निलेश (2012)** ने शैक्षिक उपलब्धि, स्मृति और तर्क क्षमता पर योगाभ्यास के प्रभाव का अध्ययन किया अपने निष्कर्ष में बताया कि योगाभ्यास उपलब्धि में वृद्धि करता है । शहरी और ग्रामीण विद्यालय के विद्यार्थियों में से नियंत्रित समूह की अपेक्षा प्रयोगात्मक समूह के विद्यार्थियों में उच्च शैक्षिक उपलब्धि देखी गई । **ओमिडी, मोबाउड व अन्य (2012)** ने मैसूर जिले के हाई स्कूल के रसायन विज्ञान के विद्यार्थियों की शैक्षिक उपलब्धि पर योग तकनीक के प्रभाव का अध्ययन किया और निष्कर्ष रूप में पाया कि योग आसन का शैक्षिक उपलब्धि पर महत्वपूर्ण प्रभाव पड़ता है और आसान तकनीक का छात्रों की रसायन शास्त्र की उपलब्धि पर सकारात्मक प्रभाव देखा गया। **उमाथिया, ए. रफीकवाही (2013)** ने माध्यमिक स्तर के छात्रों पर शैक्षिक उपलब्धि पर योग अध्ययन का प्रभाव देखा और निष्कर्ष रूप में पाया कि छात्रों की शैक्षिक उपलब्धि के प्री टेस्ट व पोस्ट टेस्ट के अंकों के बीच में महत्वपूर्ण अंतर है । योग अभ्यास छात्रों की शैक्षिक उपलब्धि में सुधार लाता है । **करक, कालिदास व अन्य (2016)** ने विद्यालय जाने वाले विद्यार्थियों में शैक्षिक प्रदर्शन पर योगासन के प्रभाव पर अध्ययन किया और निष्कर्ष में पाया कि नियंत्रित समूह की अपेक्षा प्रयोगात्मक समूह का शैक्षिक प्रदर्शन बेहतर रहा । तनाव को दूर करने में ध्यान महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है । **स्टर्नवर्ग, एलेन सी.(2017)** ने विशेष शिक्षा कक्षा में मिडिल स्कूल के छात्रों पर दैनिक योग अभ्यास का शैक्षिक संलग्नता और उपलब्धि पर प्रभाव का अध्ययन किया निष्कर्ष रूप में देखा कि दैनिक योग भागीदारी छात्रों में उच्च स्तर की संलग्नता और शैक्षिक उपलब्धि बनाए रखती है और साथ ही छात्रों की संतुष्टि का स्तर भी बड़ा है| **ईश्वरी, मर्यादा वारालक्ष्मी (2018)** ने शैक्षिक प्रदर्शन की वृद्धि में ध्यान और योग के प्रचलित प्रभावों का अध्ययन किया निष्कर्ष रूप में पाया कि ध्यान प्रशिक्षण से पहले ध्यान समूह के औसत मान गैर ध्यान समूह से कम थे और ध्यान प्रशिक्षण के बाद ध्यान समूह का औसत स्कोर गैर ध्यान समूह से अधिक पाया गया ।

**ममता (2018)** ने पी. जी. विद्यार्थियों की शैक्षिक उपलब्धि पर योग के प्रभाव का अध्ययन किया निष्कर्ष रूप में देखा कि योग तकनीके और सुपर ब्रेन योग विद्यार्थियों के शैक्षिक उपलब्धि वृद्धि में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है । **पाइल, के. बी. (2018)** ने कॉलेज विद्यार्थियों के शैक्षिक प्रदर्शन पर योग और प्राणायाम के प्रभाव पर अध्ययन किया और देखा कि योगाभ्यास करने वाले छात्रों का शैक्षिक प्रदर्शन बेहतर रहा । **क्रिस्टल, जेबा एन. (2018)** ने हाई स्कूल के छात्रों पर योग और शैक्षिक उपलब्धि के प्रभाव पर अध्ययन किया निष्कर्ष रूप में देखा कि दैनिक योग छात्रों में उच्च स्तर की सहभागिता और शैक्षिक उपलब्धि बनाए रखने में सहायक है । **पी. पी., शीला जॉइस व अन्य (2018)** ने फिजियोलॉजी के मेडिकल छात्रों में शैक्षिक उपलब्धि पर योग और ध्यान के प्रभाव का अध्ययन किया और निष्कर्ष में पाया कि नियंत्रित समूह की अपेक्षा योग और ध्यान समूह में शैक्षिक प्रदर्शन के सार्थक बदलाव देखे गए यह परिणाम योग और ध्यान प्रशिक्षण के कारण व्यक्तिगत विकास एकाग्रता और तनाव में कमी के कारण प्राप्त हुए । **सीमा व अन्य (2019)** में माध्यमिक स्तर के विद्यार्थियों के शैक्षिक प्रदर्शन पर योग के प्रभाव का अध्ययन किया और निष्कर्ष रूप में देखा कि 12 सप्ताह के योग प्रशिक्षण के बाद प्रयोग समूह के शैक्षिक प्रदर्शन में सुधार देखा गया और नियंत्रित समूह के शैक्षिक प्रदर्शन में कोई बदलाव नहीं आया। **शर्मा, सुरभि व अन्य (2019)** में हाई स्कूल के छात्रों पर मानसिक स्वास्थ्य और शैक्षिक उपलब्धि प्रयोग के प्रभाव का अध्ययन किया और निष्कर्ष रूप में देखा कि योग छात्रों की शैक्षिक उपलब्धि बेहतर करने में मदद करता है । **कुमार, रोहित (2019)** ने शैक्षिक प्रदर्शन पर योगासन का विश्लेषण पर अध्ययन किया निष्कर्ष रूप में पाया कि 12 सप्ताह तक प्रयोगात्मक समूह को योग करने के बाद शैक्षिक प्रदर्शन में सुधार देखा गया। **सिंह, कमलप्रीत (2019)** में तनाव और शैक्षिक प्रदर्शन पर योग के प्रभाव का अध्ययन किया और निष्कर्ष रूप में पाया कि योग मॉड्यूल को न करने वाले विद्यार्थियों की अपेक्षा योग मॉड्यूल को करने वाले विद्यार्थियों ने संपूर्ण शैक्षणिक में बेहतर प्रदर्शन किया । **स्वरूप, शांति व अन्य (2021)** में स्मृति और शैक्षिक उपलब्धि पर योग अभ्यास के प्रभाव पर अध्ययन किया और निष्कर्ष में पाया कि यूपी बोर्ड के विद्यार्थियों की अपेक्षा सीबीएसई बोर्ड के विद्यार्थियों में योग अभ्यास के कारण उच्च शैक्षिक उपलब्धि देखी गई । **एंथोनी, एन.वी. (2022)** ने माध्यमिक स्कूल के विद्यार्थियों में शैक्षिक उपलब्धि पर योग की प्रभावशीलता का अध्ययन किया । अध्ययन के लिए जीव विज्ञान के विद्यार्थियों को लिया गया और निष्कर्ष रूप में देखा कि योग अभ्यास से छात्रों के विषय को सीखने की क्षमता में वृद्धि हुई और शैक्षिक उपलब्धि में भी सुधार हुआ । **राठौर, कविता (2022)** ने अल्मोड़ा के विद्यार्थियों की शैक्षिक उपलब्धि पर योग की प्रभावशीलता पर अध्ययन किया निष्कर्ष रूप में पाया कि योग संचालन के बाद शैक्षिक उपलब्धि में कोई सार्थक अंतर नहीं है | **शर्मा, भारती (2022)** ने सीखने के सीखने में अक्षम बच्चों की गणित उपलब्धि पर प्राणायाम के प्रभाव का अध्ययन किया निष्कर्ष रूप में पाया कि प्राणायाम गणितीय उपलब्धि में सार्थक सुधार लाता

है। **तिरुमालंबा, के. व अन्य (2022)** ने माध्यमिक विद्यालय के विद्यार्थियों में शैक्षिक उपलब्धि पर योग के प्रभाव का अध्ययन किया इन्होंने अपने निष्कर्ष में पाया कि महिला छात्रों ने पुरुष छात्रों की तुलना में शैक्षिक उपलब्धि पर योग के प्रभाव के प्रति अधिक आत्मीयता पाई गई । **वारालक्ष्मी, एम. (2023)** में माध्यमिक स्तर के विद्यार्थियों पर शैक्षिक तनाव व शैक्षिक उपलब्धि पर योग की प्रभावशीलता का अध्ययन किया अपने निष्कर्ष में पाया कि जिन छात्रों ने योग अभ्यास किया उन्होंने शैक्षिक उपलब्धि में बेहतर प्रदर्शन किया और शैक्षिक तनाव में कमी देखी गई । योग से तनाव को नियंत्रित करके शैक्षिक प्रदर्शन मे सुधार किया जा सकता है |

**निष्कर्ष-** योग अभ्यास से विद्यार्थियों की शैक्षिक उपलब्धि में वृद्धि होती है| आज के समय विद्यार्थियों में अनेक शारीरिक एवं मानसिक समस्याएं देखने को मिलती है ऐसी स्थिति में विद्यार्थी जीवन में योगाभ्यास करने से शरीर और मन स्वस्थ होते हैं और शैक्षिक उपलब्धि में वृद्धि होती है| प्रस्तुत अध्ययन में पूर्व में हुए योगाभ्यास का शैक्षिक उपलब्धि पर प्रभाव से संबंधित विभिन्न शोध पत्रों और लेखों को प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया है और इससे अनुसंधान कार्य में भी सहायता प्राप्त होती है।

**संदर्भ ग्रंथ-**


1. कारक,कालिदास; घोषाल, अभिजीत व मोहम्मद, एस.के. रशीद (2016), इफ़ेक्ट ऑफ़ योग आसन ऑन एकेडमिक परफॉर्मेंस ऑफ स्कूल गोइंग स्टूडेंट्स, इंटरनेशनल जनरल ऑफ फिजिकल एजुकेशन स्पोर्ट्स एंड हेल्थ,3(4), 194-197
2. कुमार,रोहित (2019), एनालिसिस ऑफ योगासन ऑन इफेक्टिव एकेडमिक परफॉर्मेंस, इंटरनेशनल जनरल ऑफ़ फिजियोलॉजी, न्यूट्रिशन एंड फिजिकल एजुकेशन, 4(1), 2269-2271
3. वारालक्ष्मी, एम. (2023), एफिकेसी ऑफ योगा ऑन एकेडमिक स्ट्रेस एंड एकेडमिक अचीवमेंट अमंग सेकेंडरी स्कूल स्टूडेंट, इंटरनेशनल जनरल ऑफ़ मल्टीडिसीप्लिनरी एजुकेशन रिसर्च, वॉल्यूम-12, इश्यू -5(4), 118-123
4. शर्मा, सुरभि व दुआ, बिंदु (2019), इफ़ेक्ट ऑफ़ योग ऑन मेंटल हेल्थ एंड एकेडमिक अचीवमेंट ऑफ़ हाई स्कूल स्टूडेंट्स, इंटरनेशनल जनरल ऑफ़ मल्टीडिसीप्लिनरी रिसर्च, 5(11), 160-165
5. क्रिस्टल, जेब एन. (2018), ए स्टडी ऑन इंपैक्ट ऑफ़ योगा एंड एकेडमिक अचीवमेंट ऑन हाई स्कूल स्टूडेंट्स, इंटरनेशनल जनरल ऑफ़ रिसर्च ग्रंथालय, 6(7), 23-27
6. कोट्स, अमित व शर्मा, नीलम (2009), इफ़ेक्ट ऑफ़ योग ऑन एकेडमिक परफॉर्मेंस इन रिलेशन तो स्ट्रेस, इंटरनेशनल जनरल ऑफ योगा, 2(1), 39-43
7. एंथोनी, एन. वी. व अन्य (2022), इफेक्टिवनेस ऑफ योगा ऑन एकेडमिक अचीवमेंट ऑफ़ सेकेंडरी स्कूल स्टूडेंट्स, जनरल ऑफ़ पॉजिटिव स्कूल साइकोलॉजी, 6(3), 5422- 5427

8. ईश्वरी, मर्यादा वारालक्ष्मी (2018), एनहैंसमेंट ऑफ एकेडमिक परफॉर्मेंस: इन्वेस्टिगेशन ऑफ प्रेवेलिंग इफ़ेक्ट ऑफ़ मेडिटेशन एंड योगा, इंटरनेशनल जनरल ऑफ़ इंजीनियरिंग एंड टेक्नोलॉजी, 4(2), 291-295
9. गज्जर, निलेश (2012), इफ़ेक्ट ऑफ़ योगा एक्सरसाइ ऑन अचीवमेंट मेमोरी एंड रीजनिंग एबिलिटी, इंटरनेशनल जनरल फॉर रिसर्च इन एजुकेशन, 1(1), 34-53
10. सीमा व दलाल, सुमन (2019), इफ़ेक्ट ऑफ़ योग ऑन एकेडमिक परफॉर्मेंस ऑफ सेकेंडरी स्कूल स्टूडेंट, इंटरनेशनल जनरल ऑफ़ रिसर्च इन इकोनामिक एंड सोशल साइंस, 9(1), 352-364
11. उमाथिया, ए. रफीकभाई (2013), इफ़ेक्ट ऑफ़ योग स्टडी ओं एकेडमिक अचीवमेंट फॉर सेकेंडरी स्कूल स्टूडेंट, इंटरनेशनल जनरल ऑफ़ रिसर्च इन ह्यूमैनिटीज एंड सोशल साइंसेज 1(3), 49-51
12. पाइल, के.बी. (2018), एन इफ़ेक्ट ऑफ़ योगा और प्राणायाम ऑन एकेडमिक परफॉर्मेंस ऑफ कॉलेज स्टूडेंट, इंटरनेशनल रिसर्च जनरल ऑफ़ इंजीनियरिंग एंड टेक्नोलॉजी, 5(3), 1633-1635
13. राठौर, कविता (2022), अल्मोड़ा के विद्यार्थियों की शैक्षिक उपलब्धि पर योग की प्रभावशीलता पर अध्ययन, शिक्षण संशोधन: जनरल आफ आर्ट्स, ह्यूमैनिटीज एंड सोशल साइंसेज, 5(8), 26-29
14. स्टर्नवर्ग, एलेन सी. (2017), द इफ़ेक्ट ऑफ़ डेली योगा प्रैक्टिस ऑन द एकेडमिक इंगेजमेंट एंड अचीवमेंट्स ऑफ़ मिडिल स्कूल स्टूडेंट इन ए स्पेशल एजुकेशन क्लासरूम, रोवान यूनिवर्सिटी, मास्टर इन आर्ट इन स्पेशल एजुकेशन
15. तिरुमालांबा, के. व कुमारी, नागराज (2022), ए स्टडी ऑन द इंपैक्ट ऑफ़ द एकेडमिक अचीवमेंट ऑफ़ सेकेंडरी स्कूल स्टूडेंट, इंटरनेशनल जनरल ऑफ़ अर्ली चाइल्डहुड स्पेशल एजुकेशन, 14(8), 2726-2732
16. ममता (2018), इफ़ेक्ट ऑफ़ योग ऑन एकेडमिक अचीवमेंट ऑफ़ पीजी स्टूडेंट्स, इंटरनेशनल जनरल ऑफ योगा एंड एलाइड साइंस, 7(2), 135-140
17. शर्मा, भारती व मौर्य, विद्यासागर (2022), इफ़ेक्ट ऑफ़ प्राणायाम प्रैक्टिस ऑन मैथमेटिक्स अचीवमेंट्स ऑफ़ चिल्ड्रन विथ लर्निंग डिसेबिलिटी, जर्नल ऑफ पॉजिटिव स्कूल साइकोलॉजी, 6(6), 3011-3017
18. स्वरूप,शांति व माहौल, मधु (2021), इफ़ेक्ट ऑफ़ योगा एक्सरसाइ ऑन मेमोरी एंड एकेडमिक अचीवमेंट, इंटरनेशनल जनरल ऑफ़ क्रिएटिव रिसर्च थॉट, 9(4), 2568-2571
19. सिंह, कवलप्रीत (2018), इफ़ेक्ट ऑफ़ योग ऑन स्ट्रेस एंड एकेडमिक परफॉर्मेंस, एजुकेशनल क्वेस्ट: एन इंटरनेशनल जनरल ऑफ़ एजूकेशन एंड अप्लाइड सोशल साइंस, 9(2), 169-173

20. पी. पी., शीला जॉइस, मानिक, के. ए. व के. एन., मारुति (2018), इन्फ्लुएंस का योगा एंड मेडिटेशन ऑन एकेडमिक अचीवमेंट ऑफ़ मेडिकल कॉलेजेस स्टूडेंट इन फिजियोलॉजी, इंटरनेशनल जनरल ऑफ़ फिजियोलॉजी, 6(3), 36-39
21. ओमिडी, मोबाउद, अज़ीज़मलैरी, कुमार्स व जाफरी, इब्राहिम मीरशाह (2012), इफ़ेक्ट ऑफ़ योग टेक्निक्स ऑन एकेडमिक अचीवमेंट ऑफ़ हाई स्कूल केमिस्ट्री स्टूडेंट इन मैसूर-इंडिया, जनरल ऑफ़ अमेरिकन साइंस, 8(10), 124-128

www.bohalshodhmanjusha.com Bohal Shodh Manjusha ISSN: 2395-7115
Impact Factor:8.642 January 2025 Page No. : 97-101
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

# 'संस्कृत साहित्य में वर्णित पांच विकारों का वर्णन'

**डॉ. मीनू तलवाड़**, विभागाध्यक्षा संस्कृत,
हंसराज महिला महाविद्यालय, जालंधर

मानव की जीवन यात्रा का गन्तव्य है परमानन्द की प्राप्ति एवम् चित्त की प्रसन्नता। मानव के सांसारिक क्रिया-कलाप भी इसी प्रसन्नता को प्राप्त करने के ही प्रयास है परन्तु आज के समय की त्रासदी यह है कि अनन्त भौतिक उपलब्धियों के बावजूद भी मनुष्य मानसिक धरातल पर असंतुष्टि के अनन्त संघर्ष में जी रहा है जहां से यह दुष्चक्र शुरू होता है। तनावों के संसार में समस्त प्राणियों में 'मानव'सर्वश्रेष्ठ प्राणी है परन्तु उस श्रेष्ठता को धारण करने हेतु हमारे संस्कृत साहित्य ने अपनी कमजोरियों पर विजय प्राप्त कर आगे बढ़ने की प्रेरणा के लिए बहुत से मार्ग दिखाए हैं। मात्र उनको समझना और उन पर चलना आवश्यक है। मनुष्य जीवन ईश्वर प्रदत्त दिया गया एक अमूल्य भण्डार है। इस अनमोल जीवन को विकारों से रहित कर कल्याणकारी और प्रेरणादायी बनाया जा सकता है। हमारे धर्म ग्रन्थों में पुरुषार्थ चतुष्ट्य धर्म अर्थ, काम, मोक्ष पाने के लिए काम, क्रोध, लोभ, मोह और अहंकार इन विकारों के त्याग को बहुत महत्त्व दिया गया है।

पुरुषार्थ का प्रधान लक्ष्य है मनुष्य के भौतिक एवम् आध्यात्मिक जीवन में संतुलन बनाना। हमारे धर्म ग्रन्थों में धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष पाने के लिए काम, क्रोध, लोभ, मोह और अहंकार इन पांच विकारों के त्याग को बहुत महत्त्व दिया गया है। भगवद्गीता में भी इन्हें प्रबल मनोवृत्तियां बताते हुए इनके उचित रीति से निग्रह करने की शिक्षा दी गई है। इन्हें मनुष्य के विनाश का कारण बताया गया है। गीता में श्रीकृष्ण ने अपने स्वरूप का वर्णन करते हुए कहा है, हे अर्जुन! प्राणिमात्र में धर्म के अनुकूल जो 'काम' है, वही 'मैं हूं।[1] मनु ने भी कहा है कि जो अर्थ और काम धर्म के विरुद्ध है, उसे त्याग देना चाहिए। आज सारा विश्व भौतिक उन्नति की राह पर तीव्र गति से बढ़ रहा है परन्तु मनुष्य मन बेचैन है। इसका मूल कारण यही है कि हम अपने विकारों पर विजय प्राप्त नहीं कर पा रहे हैं जबकि हमारे महर्षियों ने 'योग-साधना' रूपी ऐसे मार्ग बताएं हैं जिन पर चलकर हम अपनी इन्द्रियों पर विजय प्राप्त कर सकते हैं।[2] विकार शब्द को व्या□यायित करते हुए विभिन्न विद्वानों ने विभिन्न परिभाषाएं दी हैं। योग एवम् दर्शनशास्त्र के अनुसार 'विकार' का अर्थ है 'परिवर्तन' संस्कृत शब्दावली में 'व्युत्पन्न रूप: विकार:' वही कालिदास कृत

कुमारसंभवम् में 'प्रथममुखविकारै-रहस्यमास गूढम'[3] मन या उद्देश्य के परिवर्तन को विकार कहा गया है।

'मूर्च्छन्व्यमि विकारा: प्रयेर्णशर्व्य-मत्तेषु' आयुर्वेद में विकार से तात्पर्य रोगों से है परन्तु समझने की बात यह है कि क्या यह विकार पूरी तरह वर्याज्य है? क्या सचमुच मनुष्य को इन विकारों को छोड़ देना चाहिए? क्या यह करने में मनुष्य सक्षम है। श्रीमद्भगवदगीता में काम (वासना), क्रोध, लोभ, मोह मत्स्य (ईर्ष्या) मद (गर्व, उच्छृंखलता) आदि का वर्णन करते हुए सोलहवें अध्याय में इनको आसुरी स्वभाव वाला बताकर इसे दुश्मन की भांति तुरंत छोड़ देने के लिए कहा गया है।[4] सिक्ख धर्म-ग्रन्थ 'श्री गुरु ग्रन्थ साहिब' में भी इन पांच विकारों का वर्णन है, वहां काम (Lust) क्रोध (Rage or Uncontrolled Anger) लोभ (Greed), मोह (Attachment or Emotional Attachment), अहंकार (Ego)[5] के रूप में वर्णित है। विदुर नीति के अनुसार जिस व्यक्ति के अंदर ईर्ष्या, घृणा, क्रोध, असन्तोष, दूसरों पर शक करना, दूसरों पर आश्रित रहना यह छ: दोष होते हैं। वह सुख भोगकर भी सुखी नहीं रह सकता।[6] साहित्य हमें यही सन्देश देता है कि पांच विकारों को अपने अन्तस्थल से हटाकर आत्मा के सात गुणों पवित्रता, शांति, प्रेम, प्यार, शक्ति, खुशी, ज्ञान, गंभीरता की तरफ आगे बढ़ना चाहिए। गीता के सोलहवें अध्याय के प्रथम तीन श्लोकों में ही अन्त:करण की शुद्धि, इन्द्रिदमन, तप, सरलता, अहिंसा, सत्य, अक्रोध, शान्ति, लोभ-लालसा रहित, क्षमा धैर्य, पवित्रता, द्रोह न करना, अति अभिमानी न होना आदि सात्विक गुणों की चर्चा की गई है।[7] वेदों में मानव की ईश्वर के प्रति की गई स्तुतियां एवं प्रार्थनाएं आत्मशुद्धि के साथ-साथ आत्मिक ज्ञान प्रदान करती हैं। जिससे मनुष्य काम, क्रोध जैसे शत्रुओं पर विजयी हो सकता है जैसे वेद मन्त्र में 'इदं न मम'यह मेरा नहीं है। विश्व में जो कुछ भी है, उस ईश्वर का ही है, इससे 'मैं 'मेरा'की भावना खत्म हो जाती है।[8] अब प्रश्न यह है कि क्या मनुष्य इतना सक्षम है कि वह इन विकारों को छोड़ सके या इनका उचित रूप में क्या प्रयोग है, वह कर सके क्योंकि इन भावनाओं का प्रयोग जीवन में उचित रूप से ही करना आना चाहिए जैसे आग का उपयोग करना हमें आना चाहिए और इस आग से बचने के क्या उपाय हैं, यह भी हमें पता होने चाहिए। काम, क्रोध जैसे मन के वेग मनुष्य के शत्रु हैं, परन्तु कब? जब यह अपने वश में न रहें। सृष्टि क्रम जारी रखने के लिए उचित मर्यादा के अन्दर काम, क्रोध बहुत जरूरी है।

**काम :** सांसारिक सुख भोगने के लिए और सन्तानोत्पत्ति के लिए 'काम' मनुष्य की महत्वपूर्ण जरूरत है। काम जीवन का महत्त्वपूर्ण मूल्य है। पुरातन काल में मनुष्य धर्मस□मत काम को ही धारण करते थे। काम का अनुसरण करके ही गृहस्थी लोग जहां एक तरफ सृष्टि निर्माण में अपना योगदान देते थे वहीं संतान पैदा कर पितृऋण से भी मुक्ति पाते थे। श्रीकृष्ण ने श्रीमद्भगवद्गीता में धर्मयुक्त 'काम' को प्रमुख स्थान दिया है।[9] हमारे ग्रन्थों में भारतीय चिन्तन में भी 'काम' को मात्र ऐन्द्रिक सुख या यौन संतुष्टि के अर्थ में नहीं लिया गया जबकि मानसिक प्रक्रिया और रागात्मिकता वृत्ति के रूप में भी स्वीकार किया गया। इसीलिए कहा गया है कि जब काम धर्म से

संयुक्त होता है तो मोक्ष प्राप्ति में सहायक होता है परन्तु अगर यही भावना बहुत अधिक मात्रा में धर्म से हीन हो तो मनुष्य अपनी इच्छाओं की पूर्ति के लिए दूसरों को दु:ख पहुँचा सकता है जिससे उसका जीवन अशान्त, अस्थिर और अपूर्ण रह सकता है।

**क्रोध -** क्रोध जैसी भावना मनुष्य को नकारात्मक बना देती है। यह भावनाएं उसके मन में असंतोष, कष्ट और असमंजस का कारण बनती हैं जो इन्सान इन बुरी भावनाओं पर काबू पाकर इनसे दूर रहता है तो उसके जीवन में सकारात्मकता आती है। जिससे वह आत्मनिर्भर, आत्मविश्वासी और संयमित बनता है। गीता में भी यह कहा गया है कि क्रोध से भ्रम पैदा होता है, भ्रम से बुद्धि भ्रष्ट होती है, जब बुद्धि भ्रष्ट हो जाती है तो व्यक्ति का पतन हो जाता है।[10] महाभारत के शान्ति पर्व में भी काम-क्रोध आदि को योगदोष कहा गया है जिसका समूल नाश करना ही धर्म है।[11] तुलसीदास भी कहते हैं क्रोध ही पाप का मूल है।[12] जब इन्सान इन सभी विकारों को वश में कर लेता है, इनका वशी नहीं रहता तो मन की सारी चंचलता दूर हो जाती है और उसके सतोगुण प्रकट होने लगते हैं।

**लोभ -** लोभ व्यक्ति के जीवन में सबसे बड़ा अभिशाप है। कहा भी गया है 'तृष्णा न जीर्णा व्यमेव जीर्णा:' हम बूढ़े हो जाते है परन्तु हमारी इच्छाएं कभी बूढ़ी नहीं होती।[13] ईशोपनिषद् के पहले ही मंत्र में लोभ न करने हेतु कहा गया है कि किसी के धन का लालच मत करो।[14] आज के इस भौतिकवादी युग में प्रत्येक आदमी ज्यादा से ज्यादा पैसा कमाने की होड़ में लगा हुआ है और पैसा कमाना चाहता है। उसके जीवन का मु□य गौरव बिन्दु केवल मात्र 'धन'बन गया है। पैसे से अधिकाधिक वस्तुओं का संग्रह करके अकेले अपने लिए ही उनका प्रयोग करना यही जीवन की दौड़-धूप है जबकि वेद मार्ग कभी भी मनुष्य को यह शिक्षा नहीं देता। अर्थोष्णा, कार्येषणा, लोकैषणा को छोड़ ज्ञानैषणा, न्यायैषणा और लोक कल्याण मे ही जीवन की चरितार्थता है, इसीलिए कहा गया है।[15]

**अहंकार -** जब इंसान के अहंकार को ठेस पहुंचती है तो उसको गुस्सा आता है। अपने मन को योगमार्ग द्वारा वश में करके उस पर विजय प्राप्त कर सकते हैं। अहंकार की भावना ने मनुष्य को बिखेर कर रख दिया और सामाजिक व्यवस्था को भी बिगाड़ के रख दिया। कोई पैसे के नशे में चूर, कोई जमीन, कोई पद जबकि हमारी संस्कृति में वेदों के ज्ञाता शिव-भक्त रावण जो कि सोने के महल में रहता था, उसका पतन भी उसके अहंकार ने ही किया। गीता में भी यही कहा है-दंभ, घमण्ड, अभिमान, क्रोध, कठोरता और अज्ञान ये सब असुरी संपदा को लेकर उत्पन्न हुए पुरुष के लक्ष्ण है। इससे छूटने का उपाय ध्यानयोग बताया है और उस व्यक्ति को ब्रहम्प्राप्ति का पात्र कहा गया है।[16]

**मत्सर -** मोह वास्तव में एक तरह का आकर्षण है, मोह व्यक्ति को लेना-देना इकट्ठा करना ही सिखाता है। वो देने का भाव नहीं समझता। मत्सर दूसरों से जलन, द्वेष अपनी लाईन को बड़ा करने की अपेक्षा दूसरों की लाईन को छोटा करने की कोशिश में लगे रहना। यह पांच विकार ऐसे

पांच घोड़े हैं अगर वो घोड़े आपको चला रहे हैं तो वह आपका सब कुछ छीन सकते हैं। अगर यह आपके वश में हैं तो यह आपको सब कुछ प्राप्त भी करवा सकते हैं ।

पाश्चात्य संस्कृति के अंधानुसरण के कारण आज युवा पीढ़ी दिशाहीन होकर कामवश ऐसी कुरीतियों में फंसती जा रही है जिस कारण क्या करने लायक है और क्या करने लायक नहीं है का विचार न करके मानव इस मायाजाल में फंसता चला जा रहा है। साहित्य हमेशा यही सन्देश देता है कि अपने अन्तस को इन पांच विकारों से हटाकर अपने अन्तस को आत्मा के सात गुण पवित्रता, शान्ति, प्रेम, प्यार, शक्ति, खुशी, ज्ञान, गंभीरता की तरफ लगाए और जीवन को सफल बनाएं। दु:ख मानव जीवन का अभिन्न अंग है। इन पांच विकारों के कारण दु:ख मनुष्य के जीवन में आते हैं। यदि प्राणी इन विकारों से मुक्ति पा लेते हैं तो दु:ख मनुष्य को छू भी नहीं सकता। सभी धर्मग्रन्थों में इन चार अवगुणों से पूर्णतया मुक्त रखने का उपदेश दिया है। चेतना के स्वर ऊपर उठाकर मन को निर्मल कर इन पांच विकारों पर विजय प्राप्त की जा सकती है। यह सारभूत उपाय है।

**संदर्भ सूची :**


1. धर्माविरुद्धो भूतेषु कामोऽस्मि भरतर्षभ (गीता 7.11)
2. योगश्चित्तवृत्ति निरोध:, तदा द्रष्टु: स्वरूपेऽवस्थानम् (योग-दर्शन 1/1/2)
3. महाकवि कालिदास विरचित कुमारसंभवम् (7.95)
4. दंभो दर्पोभी मीमानश्च च क्रोध: पौरुष्यम् एव च अज्ञानं
   चाभिजातस्य पार्थ संपदाम् आसुरीम् (श्रीमद्भगवद्गीता 16.4)
5. ਇਸ ਦੇਹੀ ਅੰਦਰਿ ਪੰਚ ਚੋਰ ਵਸਹਿ ਕਾਮ, ਕਰੋਧ, ਲੋਭ, ਮੋਹ, ਅਹੰਕਾਰਾ
   Is Dehi Ander Panch Chor Vaseh Kam, Krodh, Lobh, Moh, Ahankar.
   i. (श्रीगुरु ग्रंथ साहिब पृष्ठ 600)
6. ईष्र्या घृणो न संतुष्ट: क्रोधनो नित्यशंक्ति:।
   परम भाग्योपजीवी च षडेते नित्य दु:खिता:।। (विदुरनीति 1.15)
7. अहिंसा सत्यमक्रोधस्त्यग: शान्तिरपैशुनम्।
   दया भूतेष्वलोलुप्त्वं मार्दवं ह्रीराचापलम् (गीता 16.1.3)
8. 'इदं न मम' (ऋग्वेद 3.60)
9. ये चैव सात्विक भाव राजसस्तामसाश्च ये।
   मत्त एवेति तान्विद्धि न त्वहं तेषु ते मयि।। (गीता 7.12)
10. क्रोधाद् भवति स□मोह: संमोहात्स्मृति विभ्रम:।
    स्मृति भ्रंशाद बुद्धिनाशो बुद्धिनाशात्प्रणश्यति।। (गीता 2.63)
11. योगदोषान्समुच्छिद्य पंच यान्कवयो विदु:

कामं क्रोधे च लोभं च भयं स्वप्नं च पंचयम् (महाभारत शान्तिपर्व)

12. 'क्रोध पाप का मूल है, पाप मूल अभिमान
    तुलसी दया न छाडिए, जब लागि घट में प्राण'
13. तृष्णा न जीर्णा व्यमेव जीर्णा:। (भर्तृहरि वैराग्य शतक)
    श्लोक संख्या 7
14. मा गृध: कस्यसिवद्धनम्। (ईशोपनिषद्।)
15. सर्वे भवन्तु सुखिन:। (तैतीरीय उपनिषद्)
16. अहंकार बलं दर्प कामं क्रोधं परिग्रहम्।
    विमुच्य निर्मम: शान्तो ब्रह्मभूयाय कल्पने ।। गीता (8.53)

-www.bohalshodhmanjusha.com Bohal Shodh Manjusha ISSN: 2395-7115
Impact Factor:8.642 January 2025 Page No. : 102-105
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

# यमुना के बागी बेटे उपन्यास में सामाजिक–सांस्कृतिक चेतना

**ऐपिन सिंह,** सहायक प्राध्यापक हिंदी,
राजकीय महाविद्यालय चौखुटिया, अल्मोड़ा, उत्तराखंड

**शोध–सार :–**

समकालीन कथाकार विद्यासागर नौटियाल का 'यमुना के बागी बेटे उपन्यास' गढ़वाल रियासत में 30 मई, 1930 ई0 में हुए जन–विद्रोह की ऐतिहासिक घटना को उद्घाटित करता है। सामंती शासन के अमानवीय वन–कानून के प्रतिरोध में होने वाले इस ढंढक (विद्रोह) ने रियासत में स्वराज की भावना को स्पंदित किया। दरबार के अहलकारों ने प्रमुखतः रवांई व जौनपुर परगने में उपजे इस जनांदोलन के दमन के लिए षड्यंत्र रचा। शांतिप्रिय के रवांल्टों ( रवांई के वासी) को दरबार के द्वारा प्रताड़ित किया गया। ढंढक करने वालों पर गोलियां चलाई गयीं। इतिहास में इस घटना को 'तिलाड़ी गोलीकांड' के नाम से जाना जाता है। कथाकार ने इस उपन्यास में तत्कालीन क्षेत्र विशेष के समाज और संस्कृति का यथार्थ, सजीव एवं मर्मस्पर्शी चित्रण किया है। उपन्यासकार ने उस समय के समाज और संस्कृति के परिवेश को पुनर्जीवित और प्रभावोत्पादक बनाने के लिए प्रतीकात्मक पौराणिक प्रसंगों का भी प्रश्रय लिया है। उपन्यास का समाजिक व सांस्कृतिक परिदृश्य का जीवंत स्वरूप इस उपन्यास में देखा जा सकता है।

**सामाजिक चेतना**

कथाकर विद्यासागर नौटियाल का उपन्यास 'यमुना के बागी बेटे' सामाजिक सरोकारों से संपृक्त है। साधारण अर्थों में जहाँ मनुष्य समुदाय में रहकर निवास करते हैं, उसे समाज कहते है। भारतीय समाज में वर्ण और जातियों का विशिष्ट स्थान रहा है। "भारतीय समाज उन तत्वों के ताने–बाने से निर्मित हुआ है, उनमें वर्ण और जातियों का विशिष्ट स्थान है। समय–समय पर कितनी ही मानव–मंडलियां इस देश में आती रहीं जिनमें अपने–अपने धर्म–विश्वासों, रीति–रस्मों आचार–विचार पद्धतियों के संस्कार तथा अभ्यास थे।"[1] इस कथन के परिप्रेक्ष्य में तत्कालीन सामाजिक–व्यवस्था को समझें तो रवांल्टों की मानव मंडलियाँ ईश्वर के प्रति आस्थावान हैं। वे शांतिप्रिय समाज में जीवन व्यतीत करने के आकांक्षी रहें हैं। अनके आचार–विचार और संस्कार में प्रकृति–प्रेम और कृषक जीवन के साथ पशुपालन की वृत्ति प्रमुख है। राजनीतिक परिस्थिति इतनी विकट थी कि सामाजिक दशा उत्तरोत्तर दयनीय होने लगी। रियासती शासकों ने रवांई क्षेत्र को शिक्षा से वंचित रखा। विविध असह्य लगान ने रवांल्टों की आर्थिक स्थिति दयनीय हो गई थी। बावजूद इसके परिश्रमी रवांईवासी सामाजिक सौहार्द को बनाने के लिए प्रयासरत रहे।

विवेच्य उपन्यास के संदर्भ में तत्कालीन समय में शासक व सामंतों की शोषण–भावना ने रवांई में सामाजिक स्तर पर असंतुलन की स्थिति पैदा कर दी थी। इस समय रवांई में मुख्य दो वर्ग दिखाई देते हैं– शोषक एवं शोषित। निश्छल और अधिकांशतया कम पढ़े–लिखे और अशिक्षित रवांई वासियों की शासक के प्रति अगाध निष्ठा थी। रियासत का शासक उनके लिए साक्षात् 'बदरी विशाल' के सदृश हैं। पर शासक व सामंतों के लिए प्रजा मात्र तुच्छ प्राणी! जब महाराजा टिहरी से नरेंद्रनगर राजधानी स्थानांतरित करने की तैयारी करते हैं; तब टिहरी दरबार की ओर से 'शुभ समाचार' सुनाया गया। समाचार इतना शुभ था कि प्रजा भयाक्रांत हो उठी,– "अबसे आगे ओडाथली को ओडाथली बोलना जुर्म माना जाएगा, ऐसा हुक्म आया है। उसकी जगह अब नरेंद्रनगर बोलना होगा। सबसे पहले ऋषिकेश से राजधानी तक मोटर सड़क बनाई जाएगी। उसकी खुदाई करने के लिए हरेक मर्द को दशमी पैता (विजयदशमी) के दिन पंद्रह दिनों का अपना बरा

(राशन) बांधकर ऋषिकेश में हाजिर होना होगा। जो हाजिर नहीं हो पाएगा, उस पर जुर्म ठोक दिया जाएगा।"[2] राजा के आदेश इतने कठोर होते थे कि यदि उनकी पालना न हो पाए, तो प्रजा को पशुवत् दण्ड मिलता था। प्रजा का जीवन नारकीय हो गया था।

सामंती समाज में प्रजा स्वयं के लिए नहीं जी सकती थीं। वह यांत्रिक जीवन व्यतीत कर रहे थे। उन्हें मूलभूत सामाजिक अधिकार– शिक्षा, स्वास्थ्य, वन–संपदा आदि से वंचित रखा गया। दण्ड स्वरूप भूमिहीन करने का भी प्रावधान था। प्रजा के लिए महाराजा के आदेशों का पालन करना ही सर्वोत्तम धर्म होता था। स्वच्छंद जीवन उनके भाग्य में न था! चतुर्दिक नैराश्य का आवरण था। "वे अपने राजा के लिए जीते और मरते थे। राजा का उनके सुख–दुःख से कोई वास्ता नहीं होता था। राजा स्वेच्छाचारी होता था। उसके हर ऐब की तारीफें की की जाती थी।.... जाहिर है कि कोई भी राजा अकेले प्रजा पर शासन नहीं चला सकता था। उसका राज छोटे–छोटे सामंतों के द्वारा संचालित होता था। वे प्रजा की खून–पसीने की कमाई की लूट–खसोट कर उसकी कीमत पर ठाठ करते थे और ऐयाशी में डूबे रहते थे।"[3] विद्यासागर नौटियाल का यह कथन तत्कालीन रियासत वासियों की दुर्दशा को उद्घाटित करता है। राजा और उसके सिपहसालार अनियंत्रित रूप में समय–समय पर उनका शोषण करते रहते थे। राजा की सेवा को प्रभु–सेवा माना जाता। पारिवारिक–सामाजिक उत्तरदायित्व के लिए अवकाश न था। राजभक्ति के प्रश्रय को ईश्वरीय वरदान माना जाता था।

उपन्यास में वर्णित रवांई–जौनपुर परगने के निवासियों के लिए सदैव ही वनों का सर्वाधिक महत्व रहा है। उनकी आजीविका का मुख्य स्त्रोत कृषि और पशुपालन है। भवन–निर्माण, पशुपालन सब वनों पर ही निर्भर था। समाज में वनों की उपयोगिता थी। लेकिन महाराजा की छत्रछाया में हाकिमों के कुत्सित कार्य से स्थानीय निवासियों को वनों से बेदखल करने का सुनियोजित षड्यंत्र रचा गया। अमानवीय वन–कानून क्रियान्वित हुआ। वन अब पूर्ण रूपेण राजदरबार के अधीन हो गए। सदियों से वनों के मध्य रहने वाले रवांल्टों के लिए यह वज्रपात के सदृश था। कठोर वन–कानून के लिए दीवान चक्रधर जुयाल ने दरबार के प्रति स्वामिभक्ति दिखाई। उसके मतानुसार रियासत का खजाना खाली पड़ा है और प्रजा के निठल्ले बकरवाल और चरवाहे जंगलों का उपभोग कर रहे हैं। पद्मदत्त रतूड़ी उनका पूरा साथ देते हैं,–''मैं वनों के अंदर शाख तराशी तक बंद करवा दूंगा, हुजूर! वनों के भीतर दाखिल होने वाले को टिहरी जेल की हवा खिलवाने का इंतजाम करवा दूंगा।"[4] इसी क्रम में रवांई समाज के साथ रियासत के सभी लोगों के लिए यह कठोर आदेश था। यमुना और टौंस डिविजन पर दरबार का पूर्ण नियंत्रण होने लगा।

**सांस्कृतिक चेतना**

संस्कृति समाज की आत्मा होती है। संस्कृति से समुदाय विशेष के वैविध्यमयी संरचनात्मक आयामों का बोध होता है। ये वृत्तियाँ युगानुरूप संशोधित परिष्कृत भी होती रहती हैं। यह समाज की विचारधारा, संस्कार, आचार–विचार, रहन–सहन, परंपरित मूल्य, धार्मिक–तत्व, विविध विश्वास, भाषा, वेश–भूषा आदि का समुच्चय होती है। 'यमुना के बागी बेटे' उपन्यास में वर्णित परगना रवांई हिमालयी क्षेत्र में अपनी विशिष्ट, समृद्ध संस्कृति के लिए ख्यात है। यहाँ परंपराएँ आज भी उदात्त रूप में दृष्टिगत होती हैं। नदी, निर्झर, हरे–भरे पहाड़, उत्तुंग हिमाच्छादित पर्वत–शिखर उर्वर भूमि, मंदिर, मेले त्योहार आदि यहाँ की संस्कृति को विशिष्टता प्रदान करते हैं। परंतु कथाकार विद्यासागर नौटियाल ने इस उपन्यास में युगीन संदर्भों में सांस्कृतिक–तत्वों का रेखांकन किया है। सामंती शासन संकीर्ण और दकियानूसी मानसिकता को उद्घाटित कर ऐतिहासिक जन–विद्रोह को वाणी देने का काम उपन्यासकार ने किया है। उपन्यास आकार में भी लघु है। यद्यपि वस्तु–वर्णन में सांस्कृतिक चित्रण के लिए पर्याप्त अवकाश नहीं था, फिर भी प्रसंगवश जिन सांकृतिक तत्वों का चित्रण हुआ है, वे बड़े प्रभावक हैं।

उपन्यास में मुख्यतः कृषि, पशुपालन, जंगल, खेत आदि विषय सांस्कृतिक उपादानों के रूप में चित्रित है। परंपराएँ वेश–भूषा, मेले–त्योहार, आचार–विचार आदि का चित्रण देखने को मिलते हैं। कुछ सांस्कृतिक दृश्य पौराणिक व आभिजात्य वर्ग के हैं। उपन्यासकार विद्यासागर नौटियाल लोक–लेखक हैं, इसलिए उन्होंने लोकरुच्यानुरूप ऐतिहासिक तत्वों की सांस्कृतिक भूमि को समझाने के लिए पुराख्यानों का आश्रय लिया है। दासत्व के उस प्रतिकूल काल में सामंती शासन के वर्चस्व ने निम्न वर्गीय मानी जाने वाली प्रजा पर नाना प्रकार की कठोर अन्यायपूर्ण बंदिशें लगा रखी थीं। राजा ईश्वरतुल्य और उसके अहलकार ईश्वर के दूत समझे

जाते थे। प्रजा का कोई स्वच्छंद सामाजिक जीवन न था तथा सांस्कृतिक क्रिया–कलापों पर दरबार की वक्र–दृष्टि रहती थी। रवांल्टों का जीवन अंधकारमय–सा हो गया। दरबार द्वारा दमन चरम पर था,– "उस समाज के साहित्य और संस्कृति पर भी सामंती संस्कारों की जकड़ कायम रहती थी। साहित्य, नाटक व लोकगीतों में विद्रोह का स्वर नहीं उठाया जा सकता था।"[5] प्रजा के सरोकार महाराजा से संबद्ध थे, ना कि अपने समाज से। महाराज की आज्ञा शिरोधार्य होती। समृद्ध सांस्कृतिक परंपरा को अभिव्यक्त करने के उनके सम्मुख कम अवसर रहते।

फिर भी उपन्यासकार नौटियाल जी ने अभिजन और आमजनों की विभाजक सांस्कृतिक रेखा को सफलतापूर्वक उकेरा है। टिहरी रियासत की राजधानी में भव्य उत्सव की तैयारी देख लोग स्तब्ध हो उठते हैं,– "महाराजा साहब ने कैसी चमचमाती आलीशान राजधानी बनाई है।.....हिंदाव के चार दिन का लंबा सफर तय कर उस पट्टी के गाने–बजाने वाले मशहूर बेड़ा–बेड़नियों की टोलियां बुलाई गई थी। ढोल–नगाड़ों के अलावा वे अनेक वाद्य यंत्रों रणसिंगा और तुरही आदि भी साथ लेते आए थे।"[6] यहाँ हम टिरहरी रियासत के तद्युगीन संस्कृति की झलक देख पाते हैं। उस समय बेड़ा–बेड़नियाँ नृत्य–संगीत के कलावंत होते थे। उत्सवधर्मी रियासत के लोग भी उन्हें आमंत्रित करते रहते। गढ़वाल में नृत्य–गीत–संगीत का विशेष महत्व रहा है। यह यहाँ का प्रमुख सांस्कृतिक वैशिष्ट्य है। रवांई में आज भी समृद्ध सांस्कृतिक परंपराएँ जीवित हैं। उपन्यास में वन और पशु रवांई, जौनपुर और मलेथा क्षेत्र के संस्कृति के आधार–स्त्रोत के रूप में वर्णित हैं। वनों से ही उनका अस्तित्व साकार हो पाया। भावशून्य अहलकारों ने जब रियासत के जंगलों को अपने नियंत्रण में लिया, तो रवांई–जौनपुर वासी कुपित हो गए। ढंढक हुआ। वे वीर रवांल्टे आज भी लोक–मन में जीवित हैं। यह संस्कृति की ही ताकत है। संस्कृति ने ही उन योद्धाओं को अनुवर्ती पीढ़ियों में जीवंत बनाए रखा। इस मायने में 'यमुना के बागी बेटे' अनुपम उपन्यास है। अल्प सांस्कृतिक चित्रण होने पर भी, इसमें सांस्कृतिक शक्ति की प्रतिष्ठा हुई है।

सूर्यपुत्री, यमभगिनी यमुना माई रवांई की संस्कृति की मुख्य नदी है। यमुना का जल रवांल्टों की संस्कृति को ऊर्जा देता है। यमुनोत्री से हरिपुर कालसी तक यह रवांई घाटी को एक सूत्र में बाँधने का कार्य करती है। रवांई के जन–विद्रोह में भी इस पावन–पवित्र सरिता का अन्यतम उल्लेख है। उपन्यासकार रवांई की संस्कृति का पौराणिक संस्कृति से घनिष्ठ संबंध स्पष्ट करते हुए कहते हैं,– "यमुना के मायके की मनोरम घाटी। हरी–भरी पट्टी। पूरे धान में सर्वाधिक उपजाऊ क्षेत्र। पिता जमदग्नि का तपोवन आश्रम उसमें काफी नजदीक– गंगाणी। यमुना के किनारे। यमुनोत्री की राह में बड़कोट गाँव के पास।"[7] यहाँ यमुना, ऋषि जमदग्नि, गंगाणी, पौराणिक हैं। यमुना नदी, गंगाणी आदि आज भी रवांई की संस्कृति के अभिन्न अंग हैं। ऋषि जमदग्नि के तपोबल से गंगाणी (अब गंगनानी) में गंगा की जल–धारा उत्पन्न हुई, जो आज कुंड के रूप में सुशोभित है।

समीक्ष्य उपन्यास में वर्णित संस्कृति–चित्रण से यह सिद्ध होता कि विद्यासागर नौटियाल सांस्कृतिक चित्रण में निपुण हैं। लोक विशेष की संस्कृति से वे भली–भांति परिचित हैं। इसलिए उन्होंने जितने भी पौराणिक प्रसंगों का उल्लेख किया है; उनका रवांई की संस्कृति से अभिन्न संबंध है। वे संस्कृति को वाह्य स्तर की अपेक्षा आभ्यांतरिक परंपरा में ढूँढने पर विश्वास करते हैं। वे संस्कृति के चित्रण में कुशल उपन्यासकर हैं। उपन्यास में संस्कृति का पौराणिक–ऐतिहासिक और युगीन चित्रण हुआ– जो अपने आप में अनूठा है। 19वीं शती के दूसरे–तीसरे दशक में टिहरी रियासत के अलावा अन्य रियासतों में भी साम्राज्यवाद–पूँजीवाद तथा सामंतवाद के प्रति विद्रोह–भाव था। 'तिलाड़ी गोलीकांड' रवांल्टों स्वाभिमान, अधिकार की लड़ाई की परिणति थी, लेकिन स्वाधीनता की लहर पूरे देश में चल रही थी– रियासतों में भी। "इस काल का चौथा प्रमुख घटनाक्रम यह था कि राष्ट्रीय आंदोलन रजवाड़ों तक भी फैल गया। इन राजवाड़ो में अधिकांश में आर्थिक, राजनीतिक और सामाजिक परिस्थितियाँ नरक जैसी थी। किसान दमन के शिकार थे।..... प्रेस की स्वतंत्रता तथा दूसरे नागरिक अधिकारों का शायद कोई मान हो। रजवाड़ो की आय का बहुत बड़ा भाग राज और उसके परिवार के भोग–विलास पर खर्च होता था।"[8] वस्तुतः इस उपन्यास की समीक्षा से यह स्पष्ट है कि तद्युगीन परिस्थिति में रवांल्टों का जो जन–विद्रोह हुआ, वह समांती शासन के अत्याचारों का परिणाम था। यह स्वाभिमान, अधिकार और अस्तित्व की लड़ाई थी। संभवतः इस जनांदोलन को राष्ट्रीय आंदोलनों ने खाद देने का कार्य किया। इस परिदृश्य ने टिहरी गढ़वाल रियासत के रवांई–जौनपुर परगने की प्रजा को सामाजिक–सांस्कृतिक और राजनैतिक स्तर पर व्यापक रूप से प्रभावित किया।

निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि कथाकार विद्यासागर नौटियाल ने 'यमुना के बागी बेटे' उपन्यास में जिस ऐतिहासिक–पौराणिक, राजनीतिक, सामाजिक व सांस्कृतिक पृष्ठभूमि का रूपांकन किया है, वह यथार्थ के निकट है। उपन्यास में वर्ग–संघर्ष के माध्यम से सामाजिक–सांस्कृतिक चेतना का मार्मिक उद्‌घाटन हुआ है। घटनाएँ व कथा–प्रसंग इतिहास–पुराण–सम्मत हैं। वनों से बेदखल रवांई की जनता का आक्रोश और पीड़ा तथा दमन लोगों को आज भी विचलित कर देता है। तद्‌युगीन परिस्थितियाँ देश की स्वाधीनता के दौर को भी उजागर करती हैं, जिसकी छाया देशी रियासतों पर भी पड़ती है।

**संदर्भ–सूची**


1. डॉ नगेंद्र, हिंदी साहित्य का इतिहास (संपा0), मयूर पेपरबैक्स, नौएडा, तैंतीसवां संस्करण 2017, पृ0–94–95.
2. नौटियाल, विद्यासागर, यमुना के बागी बेटे, सामयिक प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण 2023, पृ0–33.
3. नौटियाल, विद्यासागर, मेरे साक्षात्कार, किताबघर प्रकाशन, नई दिल्ली,प्रथम संस्करण 2014, पृ0–78.
4. नौटियाल, विद्यासागर, यमुना के बागी बेटे, सामयिक प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण– 2023, पृ0–43.
5. नौटियाल, विद्यासागर, मेरे साक्षात्कार, किताबघर प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण, 2014, पृ0–78.
6. नौटियाल, विद्यासागर, यमुना के बागी बेटे, सामयिक प्रकाशन नई दिल्ली, संस्करण : 2023, पृ0–56.
7. वही, पृ0–78.
8. चंद्र, विपिन, आधुनिक भारत का इतिहास, ओरिएंट ब्लैस्वान, हैदराबाद, संस्करण : 2019, पृ0–315.

www.bohalshodhmanjusha.com Bohal Shodh Manjusha ISSN: 2395-7115
Impact Factor:8.642 January 2025 Page No. : 106-110
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

# समकालीन भारत मे न्यायिक सक्रियता : एक समीक्षा

**आर्या सिंह,** शोध छात्रा ( विधि विभाग )
चौधरी महादेव प्रसाद डिग्री कॉलेज, प्रयागराज

**सारांश**

सरकार के तीनो अंगो यानि न्यायपालिका, कार्यपालिका और विधायिका का अपने–अपने अधिकार सीमा में सुचारू रूप से कार्य करना, किसी भी देश के लिए जरूरी होता है। जहाँ न्यायपालिका का कार्य विधिक न्याय देना है वहीं सामाजिक आर्थिक न्याय की जिम्मेदारी कार्यपालिका और संसद की होती है, लेकिन जब संसद और कार्यपालिका अपनी विश्वसनीयता खोने लगती है तब न्यायपालिका की सक्रियता बढ़ जाती है और वह कार्यपालिका और विधायिका के मामलो में दखल देने लगती है। ये दखल कभी सामाजिक बदलावों का आधार बनती है, तो कभी–कभी संवैधानिक संकट को भी जन्म देती है। भारत में यह दखल ज्यूडिसियल एक्टिविज्म, ज्यूडियिल ऑवररीच तथा ज्यूडिसियल प्रोएक्टिविज्म के रूप में देखी जा सकती ळें

**प्रस्तावना**

ज्यूडिसियल एक्टिविज्म/न्यायिक सक्रियता की अवधारणा अमेरिका में पैदा और विकसित हुई। यह शब्दावली पहली बार 1947 में आर्थर शेल्सिंगर जूनियर, अमेरिकी इतिहासकार एवं शिक्षाविद् द्वारा (उनके आलेख ''दि सुप्रीम कोर्ट; 1947'') द्वारा प्रयुक्त हुई। शुरूआत में भारत मे न्यायिक सक्रियता का इस्तेमाल मौलिक अधिकारो को लागू करने के लिए किया गया, लेकिन धीरे–धीरे शासन सम्बन्धी विषयों पर भी न्यायपालिका ने अपने फैसले सुनाने शुरू कर दिए। मोटे तौर पर सन् 1970 से सन् 2000 के दौरान न्यायपालिका का यह पक्ष देखने को मिलता है। इस दौरान जनहित याचिका और स्वतः संज्ञान उपकरणो का इस्तेमाल कर न्यायपालिका ने संविधान की बुनियादी संरचना, अनुच्छेद–21 के विस्तार, कैदियो के मानवाधिकार तथा पर्यावरण संरक्षण जैसे कई अहम फैसले सुनाए। हाल ही में ज़ारता (धारा 497 भा0द0सं0) को असंवैधानिक घोषित करने का मामला हो[1] या सबरी माला प्रकरण में किसी भी उम्र के महिलाओं को प्रवेश देने का मामला[2] या फिर कोविड 19 महामारी के दौरान मुक्त चिकित्सकीय परीक्षण[3], महामारी में मृत लोगों का गरिमा पूर्वक दाह संस्कार[4], प्रवासी श्रमिकों को सुविधा प्रदान करने का निर्देश[5]। इन सभी मामलो में माननीय सर्वोच्च न्यायालय की सक्रियता परिलक्षित होती है।

**न्यायिक सक्रियता का अर्थ –**न्यायिक सक्रियता का आशय नागरिकों के अधिकारो के संरक्षण के लिए तथा समाज में न्याय को बढ़ावा देने के लिए न्यायपालिका द्वारा आगे बढ़कर भूमिका लेने से है। दुसरे शब्दों में न्यायिक सक्रियता का अर्थ है ''न्यायपालिका द्वारा सरकार अन्य दो अंगो (विधायिका एवं कार्यपालिका) को अपने संवैधानिक दायित्वो के पालन के लिए बाध्य करना।''

न्यायिक सक्रियता को निम्न प्रकार से परिभाषित किया जाता है :–

**ब्लैक के लॉ डिक्शनरी के अनुसार –** ''न्यायिक सक्रियता न्यायिक शक्ति के उपयोग का एक तरीका है। जो कि न्यायाधीश को प्रेरित करता है कि वह व्यवहरत सख्त न्यायिक प्रक्रियाओ एवं पूर्व नियमो को प्रगतिशील एवं नयी सामाजिक नितियों के पक्ष में त्याग दें। इसमें ऐसे निर्णय देखने में आते है जिसमें सामाजिक अभियंत्रण अथवा इंजीनियरिंग होता है, अनेक अवसरो पर विधायिका एवं कार्यपालिका सम्बन्धी मामलो में दखलंदाजी भी होती है।''[6]

**मेरियस वेल्सटर्स डिक्शनरी ऑफ लॉ के अनुसार –** ''न्यायिक सक्रियता न्यायपालिका का वह चलन है जिसमें व्यक्ति के अधिकारो को ऐसे निर्णयो द्वारा संरक्षित या विस्तारित किया जाता है जो कि पूर्व नियमो

या परिपाटियो से अलग हटकर होते है, अथवा वांछित या करणीय संवैधानिक या विधायी इरादे से स्वतंत्र अथवा उसके विरूद्ध हो।[7]

न्यायमुर्ति जे0एस0 वर्मा के शब्दो में "Judicial activism must necessarily mean the active process of implementation of the rule of law essential for the preservation of a functional democracy."[8]

भारत के पूर्व मुख्य न्यायाधीश श्री पी0एन0 भगवती ने न्यायिक सक्रियता पर अपना अभिमत व्यक्त करते हुए कहा है कि ''जिन व्यवस्थाओं में न्यायिक पुनर्विलोकन का अधिकार है उसमें न्यायिक सक्रियता होगी ही लेकिन अन्तर यह है कि न्यायिक सक्रियता कहीं तकनीकी स्तर की होती है और कही सामाजिक सक्रियता के रूप में एवं परिवर्तन के दौर में न्यायिक सक्रियता का सामाजिक सक्रियता के रूप में रूपांतरित होना स्वाभाविक है।[9]

**न्यायिक सक्रियता का औचित्य –** डॉ0 बी0एल0 वघेरा के अनुसार न्यायिक सक्रियता के लिए निम्नलिखित परिस्थितियाँ उत्तरदायी है :–

1. उत्तरदायी सरकार उस समय लगभग ध्वस्त हो जाती है जब सरकार की शाखाएँ विधायिका एवं कार्यपालिका अपने–अपने कार्यो का निष्पादन नहीं कर पाती, परिणामतः संविधान और लोकतंत्र में नागरिको का विश्वास टुटता है। नागरिक अपने अधिकारो एवं आजादी के लिए न्यायपालिका की ओर देखते हैं, परिणामतः न्यायपालिका पर पीड़ित जनता को आगे बढ़कर मदद महुँचाने का भारी दबाव बनता है।
2. **न्यायिक उत्साह** अर्थात न्यायाधीश भी बदलते समय के समाज सुधार में भागीदार बनना चाहते है। इससे जनहित याचिकाओं को हस्तक्षेप के अधिकार के तहत प्रोत्साहन मिलता है।
3. **विधायी निर्वात** अर्थात कई ऐसे क्षेत्र हो सकते है। जहाँ विधानो का अभाव है। इसलिए न्यायालय पर ही जिम्मेदारी आ जाती है कि वह परिवर्तित सामाजिक जरूरतो के हिसाब से न्यायालयी विधायन का कार्य करें।
4. भारत के संविधान में स्वयं कुछ ऐसे प्रावधान है, जिनमें न्यायपालिका को विधायन यानि कानून बनाने की गुंजाइश है, या एक सक्रिय भूमिका अपनाने का मौका मिलता है।

इसी प्रकार सुभाष कश्यप ने ऐसी ही कुछ आकस्मिकताओं की चर्चा की है जब न्यायपालिका अपने सामान्य क्षेत्राधिकार को लांघकर ऐसे क्षेत्र में दखल दे, जो कि विधायिका या कार्यपालिका का हो सकता है।[10]

1. जब विधायिका अपने उत्तरदायित्व का निर्वहन करने में विफल हो गयी हो।
2. एक हंक (Hung) विधायिका, जिसमें किसी दल को बहुतम न मिला हो की स्थिति में जब सरकार कमजोर और असुरक्षित हो और ऐसे निर्णय लेने में अक्षम हो जिससे किसी जाति या समुदाय या अन्य समूह अप्रसन्न हो सकता है। सत्तासीन दल सत्ता खाने के भय से इमानदार और कड़ा निर्णय लेने से डर सकता है और इसी कारण से समय लगने और निर्णय लेने में देरी करने अथवा न्यायालयो पर कठोर निर्णय लेने सम्बन्धी दुर्भावना डालने के लिए जन मुद्दो को सन्दर्भित कर दिया जाता है।
3. जहाँ की विधायिका और कार्यपालिका नागरिकों के मूल अधिकारो जैसे– गरिमापूर्ण जीवन, स्वास्थकर परिवेश का संरक्षण करने में विफल हो अथवा कानून एवं प्रशासन को एक इमानदार, कार्यकुशल एवं न्यायपूर्ण व्यवस्था देने में विफल हो।
4. जहाँ कि विधि के न्यायालय का मजबूत, सर्वसत्तावादी संसदीय दलवाली सरकार द्वारा गलत नियत या उद्देश्यों से दुरूपयोग हो रहा हो जैसा कि आपातकाल के दौरान हुआ।
5. कभी–कभी न्यायालय जाने अनजाने एवं मानवीय प्रवृत्तियों, लोकलुभावन वाद, प्रचार, मीडिया की सुर्खियाँ बटोरने आदि का शिकार हो जाता है।

**न्यायिक सक्रियता को लेकर आशंकाएँ –**

न्यायविद् उपेन्द्र बक्शी ने ही उस भय का भी जिक्र किया है, जो न्यायिक सक्रियता से उत्पन्न होता है। वे कहते है ''तथ्य यह है कि अनेक प्रकार के भय इसको लेकर व्याप्त है। यह आवाहन भारत के सबसे कर्तव्यनिष्ठ एवं ईमानदार न्यायाधीशों के अन्दर भी एक घबराहट भरी यौक्तिकता लाता है।'' वे निम्नलिखित प्रकार के भय की चर्चा करते है[11]:–

1. **विचारात्मक भय –** क्या वे विधायिका, कार्यपालिका या नागरिक समाज की अन्य स्वायत्त संस्थाओं की शक्ति हड़प रहे है ?
2. **मीमान्सात्मक भय –** क्या वे अर्थशास्त्र में मनमोहन सिंह, वैज्ञानिक मामलो में परमाणु उर्जा प्रतिष्ठान तथा औद्योगिक अनुसंधान परिषद के कप्तानो के स्तर का ज्ञान रखते हैं ?
3. **प्रबन्धन सम्बन्धी भय –** इस प्रकार के वादो का अतिरिक्त कार्यभार लेकर क्या वे न्याय कर पा रहे है, एक ऐसी परिस्थिति में जबकि पहले से बकाया मामलो का ढेर सामने है ?
4. **वैधता सम्बन्धी व्यय –** क्या वे अपने प्रतीकात्मक प्राधिकार की ही क्षति नहीं कर रहे है जनहित याचिकाओं में आदेश पारित करके, जिनकी कि कार्यपालिका अनदेखी भी कर सकती है ? क्या इससे न्यायपालिका में लोगो का विश्वास कम नहीं होगा ?
5. **लोकतंत्र सम्बन्धी भय –** क्या जनहित याचिका वास्तव में लोकतंत्र का पोषण कर रही है या भविष्य की इसकी सम्भावनाओं को समाप्त कर रही है ?

**4.5 न्यायिक सक्रियता के रूप –**

न्यायाधीशों के दृष्टिकोण को ध्यान में रखकर न्यायिक सक्रियता को दो वर्गो में विभक्त किया गया है।

1. रूढ़िवादी या अनुदारवादी न्यायिक सक्रियता
2. उदारवादी न्यायिक सक्रियता

**(क) अनुदारवादी न्यायिक सक्रियता –**

इस प्रकार के न्यायिक सक्रियता के अन्तर्गत न्यायालय संसद या विधायिका द्वारा पारित प्रगतिशील नीतियो को अवैध घोषित कर देते हैं। संयुक्त राज्य अमेरिका में 1930 के दशक के न्यायिक निर्णय तथा भारत में 1950 और 1960 के दशक के न्यायिक निर्णय अनुदारवादी न्यायिक सक्रियता के स्पष्ट उदाहरण है। भारतीय उच्चतम न्यायालय ने बंगाल लैण्ड डेवलपमेन्ट एण्ड प्लानिंग एक्ट, 1948 को उचित एवं समतुल्य प्रतिकर प्रदान न करने के कारण **पश्चिम बंगाल बनाम श्रीमती बेला बनर्जी**[12] के मामले में अवैध घोषित कर दिया। इस निर्णय के फलस्वरूप संविधान का चतुर्थ संशोधन अधिनियम पारित कर प्रतिकर की पर्याप्तता को अन्याय्य (Non Justiciable) बनाया गया।

परन्तु पुनः **पी0 बज्रवेल बनाम स्पेशल डिप्टी कलेक्टर**[13] के मामले में बाजार मूल्य के अनुसार प्रतिकर निर्धारण की अपेक्षा जारी रखी गयी। यही स्थिति **भारत संघ बनाम मेटल कार्पोरेशन**[14] के मामले में जारी रही। **आर0सी0 कपूर बनाम भारत संघ**[15] के मामले में भी उचित सिद्धान्तो के आधार पर प्रतिकर निर्धारित न किये जाने के कारण बैंको के राष्ट्रीयकरण सम्बन्धी विधि को अवैध माना गया।

अन्ततोगत्वा संविधान के 25 वें संशोधन अधिनियम, 1971 द्वारा अनुच्छेद–31(2) के अन्तर्गत प्रयुक्त ''प्रतिकर'' शब्द की जगह ''राशि'' रखा गया। इस तरह उच्च न्यायालय ने अनुदार सक्रियतावाद का सहारा लेकर यथास्थितिवाद को कायम रखने की भूमिका निभाई। इस प्रकार न्यायिक सक्रियता का नाकारात्मक रूप सम्पत्ति अभिमुख्य और यथास्थितिवादी रहा है, जिसके द्वारा सरकार की प्रगतिशील नीतियों को अप्रभावकारी बनाया गया है।

**(ख) उदारवादी न्यायिक सक्रियता –** उदारवादी न्यायिक सक्रियता का स्वरूप सकारात्मक रहा है। न्यायिक सक्रियता का उदारवादी स्वरूप गैर आर्थिक अधिकार उन्मुख रहा है। जिसे सकारात्मक सक्रियता का नाम दिया जा सकता है। सकारात्मक सक्रियतावाद वितरणात्मक न्याय और मानवाधिकारो को लागू करने के लिए बनाया गया है। 1970 के दशक के उपरान्त भारतीय न्यायपालिका द्वारा दिए गए अधिकांश निर्णय उदारवादी न्यायिक सक्रियता के उदाहरण कहे जा सकते है। मुख्य न्यायाधीश वारेन ने साकारात्मक सक्रियतावाद के औचित्य को स्पष्ट करते हुए कहा है कि **''न्यायालय जानबूझ कर विधिक निर्माण नहीं करता है। यह कांग्रेस की भूमिका को हथियाने के उद्देश्य से नहीं करता है बल्कि हमारे कार्यों की प्रकृति के कारण हमें ऐसा करना पड़ता है। जब दो वादकारी न्यायालय में आते है एक यह हता है कि कांग्रेस के अधिनियम का आशय यह है, दूसरा कहता है कि कांग्रेस के अधिनियम का आशय उसके विपरीत है, और हम कहते है कि कांग्रेस के अधिनियम का आशय कतिपय या तो दोनों में से एक या दोनो के बीच का है। हम कानून का निर्माण करते है क्या हम ऐसा नहीं करते ?**[16]

**कोविड–19 महामारी के दौरान सर्वोच्च न्यायालय की भूमिका :–**

## सर्वोच्च न्यायालय की सक्रियता

मुक्त चिकित्सकीय परीक्षण | प्रवासी श्रमिक | मृत शरीर का दाह संस्कार

| आदेश की तारीख | वाद का नाम | न्यायाधीश का नाम | महत्वपूर्ण बिन्दू |
|---|---|---|---|
| 08 अप्रैल 2020<br>मुक्त चिकित्सकीय परीक्षण | शशांक देव सुधी बनाम भारत संघ[17] | श्री अशोक कुमार भूषण एवं रविन्द्र भट्ट जी | लैब टेस्ट (सार्वजनिक अथवा नीजि केन्द्रो पर मुक्त हो) बाद में संशोधित |
| 31 मार्च 2020<br>प्रवासी श्रमिक | अलख आलोक श्रीवास्तव बनाम भारत संघ[18] | श्री शरद अरविन्द बोबडे एवं श्री एल0 नागेश्वर राव | प्रवासी श्रमिको के साथ दयालूता पूर्वक व्यवहार किया जाना चाहिए। |
| 28 मई 2020<br>प्रवासी श्रमिक | इन री प्राब्लम्स एण्ड मिसरीज ऑफ माइग्रेन्ट लेबर्स[19] | श्री अशोक भूषण<br>श्री संजय किशन कौल श्री एम0आर0 शाह | प्रवासी श्रमिको को सुविधा प्रदान करने के लिए दिशा निर्देश |
| 09 जून 2020<br>प्रवासी श्रमिक | इन री प्राब्लम्स एण्ड मिसरीज ऑफ माइग्रेन्ट लेबर्स[20] | श्री अशोक भूषण<br>श्री संजय किशन कौल श्री एम0आर0 शाह | प्रवासी श्रमिको को सुविधा प्रदान करने के लिए अतिरिक्त दिशा निर्देश |
| 12 जून 2020<br>मृत शरीर का दाह संस्कार | इन री प्रापर ट्रिटमेन्ट ऑफ कोविड–19 पेशेन्ट्स एण्ड डिग्नीफाइड हैण्डलिंग आफ डेडबॉडी[21] | श्री अशोक भूषण<br>श्री संजय किशन कौल श्री एम0आर0 शाह | इन वाद में माननीय न्यायालय ने कोविड–19 महामारी से मृत लोगो का दाह संस्कार गरीमा पूर्ण तरीके से करने का आदेश दिया |

**निष्कर्ष –**

उपरोक्त संदर्भो को देखते हुए हम निष्कर्ष रूप में कह सकते है कि न्यायालय की सक्रियता ने राज्य के शेष संस्थानो को न केवल अपने कर्तव्यो के निर्वहन के निर्देश दिए है, बल्कि भ्रष्टाचारियों एवं कानून का उल्लंघन करने वालो को कटघरे में खड़ा कर दिया है। न्यायालय की सक्रियता वास्तव में प्रशंसनीय है और इससे यह प्रत्याशा उत्पन्न हुई कि यदि न्यायालय इसी तरह सक्रिय रहा तो कुछ हद तक कार्यपालिका और इसके अभिकरण अपने कर्तव्यों का निर्वहन करने को बाध्य होंगे और विधि के शासन की स्थापना में उल्लेखनीय प्रगति होगी।

**संदर्भ सूची**


1. जोसेफ शाइन बनाम भारत संघ, रिट याचिका (अपराधीक) संख्या 194 / 2017
2. इण्डियन यंग लॉयर एसोशिएशन बनाम केरल राज्य, रिट याचिका (सिविल) संख्या 373 / 2006
3. https://main.sci.gov.in/supremecourt/2020/10816/10816-2020_0_8_21591_order_8-Apr-2020.pdf
4. https://main.sci.gov.in/supremecourt/2020/12672/12672_2020_36_319_22526_order_12-Jun-2020.pdf

5. https://main.sci.gov.in/supremecourt/2020/11706/11706_2020_34_1501_22499_order_9-Jun-2020.pdf
6. एम0लक्ष्मीकान्त; भारत की राजव्यवस्था, मैक–ग्रो हिल एजूकेशन प्राइवेट लिमिटेड, नई दिल्ली, पंचम संस्करण, (2015), 28.1
7. एम0लक्ष्मीकान्त; भारत की राजव्यवस्था, मैक–ग्रो हिल एजूकेशन प्राइवेट लिमिटेड, नई दिल्ली, पंचम संस्करण, (2015), 28.1
8. प्रज्ञा साहू ; "Public Intrest litigation and judicial activism", Vol-2, Pen Acclaims, (2018), पेज–2
9. उपलब्ध– http://shriprbhu.blogspot.com/2011/07/blog-post_23.html?m=1,last visited_20 July 2020
10. सुभाष सी0 कश्यप ; ज्युडिशियरी लेजिसलेचर इटरफोन इन पोलिटिक्स इण्डिया, नई दिल्ली, पेज–34
11. उपेन्द्र बक्शी ; ज्यूडिशियल ऐक्टिविज्म : लीगल एजुकेशन एण्ड रिसर्च इन ग्लोबलाइजिंग इण्डिया, मेनस्ट्रीम, नई दिल्ली, 4 फरवरी 1996, पेज–16
12. ए0आई0आर0 1954 सु0को0 170
13. ए0आई0आर0 1964 सु0को0 1017
14. ए0आई0आर0 1970 सु0को0 564
15. 349 यू0एस0 295 (1955)
16. डॉ0 फरहत खान; न्यायिक प्रक्रिया, अमर लॉ पब्लिकेशन, इन्दौर, (2018), पेज–202
17. https://main.sci.gov.in/supremecourt/2020/10816/10816-2020_0_8_21591_order_8-Apr-2020.pdf
18. https://www.scobserver.in/wp-content/uploads/2020/03/Alakh-Alok-Srivastava-v-UoI.pdf
19. https://main.sci.gov.in/supreme court/2020/11706/11706_2020_34_24_22239_order_28-may-2020.pdf
20. https://main.sci.gov.in/supremecourt/2020/11706/11706_2020_34_1501_22499_order_9-Jun-2020.pdf
21. https://main.sci.gov.in/supremecourt/ 2020/12672/12672_2020_36_319_22526_order_12-Jun-2020.pdf

E-Mail : aryasingh.du@gmail.com Mob. No. +91-9628553784

-www.bohalshodhmanjusha.com Bohal Shodh Manjusha ISSN: 2395-7115
Impact Factor:8.642 January 2025 Page No. : 111-114
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

# भारतीय संघवाद एवं इसका बदलता स्वरूप

**प्रवीण कुमार,** सहायक आचार्य राजनीति विज्ञान,
प्रतापसिंह भाटी महाविद्यालय नाणा (पाली)

**प्रस्तावना** :– संघ वाद मूल अर्थ में केन्द्र एवं इकाइयों के शासन प्रणालियो के वर्गीकरण का मूल आधार यह है कि पूरे देश के लिए सिर्फ एक केन्द्रीय सरकार काम करती है या फिर राजनीतिक शक्ति केन्द्रीय शासन तथा विभिन्न प्रान्तीय सरकारों के मध्य बंटी हुई है। अर्थात् शक्ति विभाजन या शक्तियों का बटवारा संघ व इकाइयो के मध्य संघवाद को परिभाषित करता है।

संघवाद शब्द लैटिन भाषा के fodusसे बना है जिसका शाब्दिक अर्थ है ''सन्धि या समझौता'' अर्थात इकाईयॉ के आपसी समझौता का परिणाम। अतः शब्द उत्पत्ति के दृष्टिकोण से समझौता द्वारा निर्भित राज्य संघ राज्य कहा जाता है जिसमे अनेक स्वतंत्र राज्य अपने कुछ सामान्य उद्देश्यों की पूर्ति के लिए संघ सरकार से समझौता करते है और शेष विषय अपने पास स्वतंत्र रूप से सुरक्षित रखते है।

इसीलिए रिकर ने अपनी पुस्तक ''federalism origins operations significance" में संघीय व्यवस्था को तार्किक चयन के आधार पर अध्ययन किया है। इसके तहत रिकर कहते है कि ''जहा संघ की क्षेत्र विस्तार की इच्छा पूरी होती है, वहीं इकाईयों की ''सैन्य सुरक्षा'' की इच्छा पूरी होती है''।

इस प्रकार सामान्य हितो के विषय संघ सरकार के हाथ में रहता है और क्षेत्रिय महत्व के विषयों का इकाइयो के पास रहते है दोनो सरकारे अपने अपने विषय क्षेत्र में स्वतंत्र रहती है। वर्तमान में भारतीय राजनीति के बारे कहा जा रहा है संघ सरकार राज्यों के विषय को एकिकृत कर रहा है जिसके कारण राज्यो व संघ के मध्य समय समय पर टकरार बड रही है।

**संघ की स्थापना के कारण या आधार**

1. इकाईयों की स्वाायत्तता की इच्छाः– संघ अक्सर कई स्थापित राजनीतिक समुदायों या इकाईयों के साथ आने से बनते है लेकिन वे अपनी स्वतंत्र पहचान व स्वायत्तता बनाए रखना। एक संघीय ढॉचे ने जर्मनी के 38 राज्यों के केन्द्रीय नियत्रंण की आशंकाओं को दूर करने में मदद की जिसने लम्बे समय तक राजनीतिक स्वतंत्रा का आनन्द लिया।
2. अर्न्तराष्ट्रीय भूमिका में वृद्धि :– संघो के गठन के प्रभावित करने वाला दूसरा कारक बाहरी खतरो का होना है या अन्तर्राष्ट्रीय मामलो में अधिक प्रभावी भूमिका निभाने की इच्छा है उदाहरण के लिए छोटे या कमजोर राज्यों के पास व्यापक राजनीतिक सम्बन्धो में प्रवेश करने के लिए यह एक शक्तिशाली तरीका है।
3. भौगोलिक आकार :– दूनिया के कई भौगोलिक रूप से बडे राज्यों में संघीय व्यवस्था को अपनाया जैसे कि यू.एस.ए., कनाडा (1867 से संघबद्ध) ब्राजील (1891), आस्ट्रैलिया (1901), मैक्सिको (1917), भारत (1950) भौगोलिक रूप से बडे राज्य सांस्कृतिक रूप से विविधता लिए होते हैं और मजबूत क्षेत्रीय परम्पराएं रखते हैं।
4. जातीय बहुलता का समायोजन :– संघवाद को अपनाने के लिए प्रोत्साहित करने वाला अंतिम कारक जातीय विषमता है संघवाद सामाजिक विभाजनों और विविधताओं के लिए संस्थागत प्रतिक्रिया रही है।

**भारतीय संघात्मक व्यवस्था का विकास** :– लोकतंत्र व संघवाद भारतीय सवैधानिक सरचना के प्रमुख संस्थान है संघवाद केन्द्र व इकाईयो के बीच शक्ति के वितरण को सुनिश्चित करता है। जबकी लोकतंत्र जन सहभागिता को सुनिश्चित करता है।

आजादी के बाद भारत सघात्मक व्यवस्था को अपने के विषय पर आम सहमति थी लेकिन किस प्रकार की संघीय व्यवस्था को अपनाया जाए इस पर गहरे मतभेद थे।

भारतीय संघीय व्यवस्था का क्रामिक विकास ब्रिटिश शासन काल के प्रारम्भ में ही हो गया था सरकारी तौर पर संघीय संघीय व्यवस्था लॉर्ड मेयो (1870) की विकेन्द्रीकरण की नीति में पाया गया है।

औपचारिक तौर 1919 में सर्वप्रथम माटेग्यू चेम्सफोर्ड रिर्पाट में अप्रत्यक्ष रूप से संघीय व्यवस्था के पक्ष मे अपना मत प्रकट जिसमें द्वैध शासन प्रणाली ने संघीय विचार धारा के विकास में महत्वपूर्ण योगदान दिया।

1919 के माटेग्यू चेम्सफोर्ड अधिनियम द्वारा प्रान्तो की व्यवस्थापिका सीमित आर्थिक उतरदायी सरकार का पहला प्रयोग था एवं प्रान्तीय शासन को दो भागो में बाटा गया (1) हस्तातरित विषय के प्रशासन हेतु प्रान्तीय विधानमण्डल उतरदायी होगा जबकि (2) सरक्षित विषयो का प्रशासन गवर्नर के हाथ में रखा गया इस अधिनियम वायसराय को परामर्श देने के लिए 8 फरवरी 1921 में दिल्ली में भारतीय राजाओ को साम्राज्य का भागीदार बनाने के लिए नरेन्द्र मण्डल की स्थापना कर बीकानेर के महाराजा गंगासिंह को चैबर ऑफ प्रिसेस के प्रथम चांसलर (नेरन्द्र मण्डल) बनाया गया।

भारत में संघीय शासन का प्रयोगः– 1935 के अधिनियम के तहत किया गया था पर रियासती राजाओं ने इस संघीय व्यवस्था सिरे नही चढि साइमन कमीशन (1927–28) व बटलर समिति (1927–30) दोनो ने समूचे भारत के लिए फेडरल संघ का समर्थन किया।

केबिनेट मिशन प्लान (1946) ने एक ढीले–ढीले संघ का प्रावधान था जिसमे संघ की बजाए राज्यों के पास ज्यादा शक्तिया बाद में तात्कालिक परिस्थतियों को देखते हुए संघीय व्यवस्था का निरूपण किय जिसमे शक्तियो का पलडा राज्यों की बजाए संघ की और झुका हुआ है

भारतीय स्वतंत्रता अधिनियम (1947) में नेहरू ने उद्देश्य प्रस्तावना (Objective Resolution) इस संकल्प का उद्देश्य एक ऐसा संघ बनाना था जिसमें घटक राज्य अवशिष्ट शक्तियो के साथ स्वायत इकाइयो की स्थिति बनाए रखेगे

एस.आर.बोम्बई बनाम भारत संघ 1994 में सवौच्च न्यायालय ने कहा भारतीय संविधान संघीय है और यह इसका मूल ढाँचा है। यह उसकी मूल विशेषता है इसका अर्थ यह नही है कि राज्य केन्द्र पर निर्भर रहेगे राज्यो का अपना सवैधानिक अस्तित्व है ये केन्द्र के उपग्रह या एजेन्ट नहीं है। अपने क्षेत्र में सवौच्च है।

**भारत मे दलीय स्वरूप के आधार पर संघवाद का बदलता स्वरूप**

1. केन्द्रीकृत संघवाद :– 1950 में संविधान लागू होने और 1952 में प्रथम चुनाव से 1967 तक केन्द्र और राज्यों में काग्रेस की सरकार थी एवं दलीय प्रभुत्व ने शक्ति केन्द्रीकरण को बढावा दिया।
2. सहयोगी संघवाद :– 1967 के चुनाव के बाद गैर–काग्रेसी मिश्रित सरकारें बनी जिसके कारण साझा सरकारे बनी इस संघवाद ने क्षैतिज सम्बन्ध स्थापित करते हुए एक दूसरे की सहायता की।
3. एकात्मक संघवाद– 1971 के चुनाव के बाद इन्दिरा गांधी के नेतृत्व में एकदलीय प्रभुत्व उभर कर सामने आया जिसके परिणाम स्वरूप 42वा संशोधन (1976) हुआ राज्य के काग्रेसी मुख्यमंत्री कठपुतली बन गये न्यायपालिका टक्करार जिसके कारण एकात्मक संघवाद में बदला।
4. सौदेबाजी का संघवाद – जहॉ राज्यो की तुलना मजबूत होती है परिणाम स्वरूप राज्य के लिए विशेष मांग, विशेष दर्जा, बजट आवटन, अधिक संसाधनो की मांग, मंत्रिमण्डल के अधिक स्थान परिणाम स्वरूप 1990 से स्पष्ट बहुमत न मिलने के कारण गठबंधन सरकारों का दौर आरम्भ हुआ।

5. प्रतिस्पर्धा मूलक संघवाद – 2014 के 16 वीं लोकसभा के गठन के साथ ही एक नया क्षेत्र परिवर्तित हुआ जिसमें मोदी सरकार ने सहकारी सघवाद का नारा दिया एवं नीति आयोग की गठन किया, मानव संसाधन के विभिन्न मापदण्डो पर रैकिंग, स्वच्छता सर्वेक्षण इज डू इंग बिजनेस जैसे प्रतिस्पर्धी माहौल तैयार किए गया।

**भारतीय संविधान संघवाद से सम्बन्धित प्रावधानः–**

- भाग 11 में अनुच्छेद 245 से 255 राज्यों के विधायी सम्बन्धो का उल्लेख है
- भाग 11 में अनुच्छेद 256 से अनु. 263 में प्रशासनिक संबंध उल्लेख है
- भाग 12 में अनुच्छेद 264 से अनु. 293 में वितीय सम्बन्धो का उल्लेख है
- अनु. 371 एवं 371A से 371J में विशेष राज्यो का उल्लेख है

**वर्तमान संघवाद को प्रभावित करने वाले कारक**

1. राज्यपाल की नियुक्ति व भूमिका तथा अनुच्छेद 356 विवाद का पहला मुद्दा 1967 में राजस्थान मोहनलाल सुखाडिया को डा. सम्पूर्णानंद ने सरकार बनाने के लिए आमंत्रित्र किया, पश्चिम बंगाल में राज्यपाल धर्मवीर, आन्धाप्रदेश 1984 में राज्यपाल रामलाल, हरियाणा में जे.डी. तपासे, पश्चिम बंगाल ममता बनर्जी व जगदीश धनखड का विवाद, महाराष्ट्र में भगतसिंह कोसियारी का विवाद
2. राज्यों में केन्द्रीय बलो की नियुक्ति
3. योजना आयोग की भूमिका तथा राज्यों को अनुदान
4. राज्यपालो की नियुक्ति व बर्खास्तगी
5. राज्यपालो का पाटीवादी व पक्षपातपूर्ण रवैया
6. अनुच्छेद 356 का दुरूपयोग
7. राज्य विधेयको को राष्ट्रपति की स्वीकृति के लिए राज्यपाल द्वारा आरक्षित
8. राज्यों के वितीय आंवटन में केन्द्र द्वारा भेदभाव
9. सी.बी.आई. व ई.डी. का दुरूपयोग
10. अनुच्छेद 246 A(1) GST (GOOD & SERIVES TAX)
11. केन्द्रीय कर सेवा कर उत्पादकर, सीसा शुल्क
12. नागरिकता सशोधन अधिनियम (CCA 2019)
13. किसान आन्दोलन–राज्य सरकार का कहना है विधानमण्डल कानून बना सकता है संसद नही
14. कोविड महामारी– संघ सरकार राज्यों के लिए लॉकडाउन, कन्टेनमेन्ट, जॉन को लेकर ''तदर्थ बाध्यकारी निर्देश'' जारी किए जिसका राज्यों ने विरोध किया
15. क्षेत्रवाद
16. भाषावाद
17. नदी जल बंटवारा विवाद

**संघवाद विकास के लिए सुझाव**

1. राज्यपाल की नियुक्ति दुसरे कार्यकाल के लिए योग्य नही माना जाता चाहिए आरोपो की जॉच SC की कैमेंटि रिर्पाट के बाद हटाना चाहिए
2. राज्य सभा में जनसख्या को आधार नहीं मानकर समान राज्य प्रतिनित्व देना चाहिए
3. केन्द्रीय बलो को उसी राज्यों में तैनात करना चाहिए राज्य के अनुरोध या सहमति हो
4. राज्य के नाम परिवर्तन आदी राज्यों की आवश्यक सहमति होनी चाहिए
5. संघ सरकारा वित्तिय वितरण के लिए उच्चतम न्यायालय के निर्देशन में कमेटि का गठन होना चाहिए।
6. जल बटवारे के मुद्दे का हल आर्थिक एवं भौतिक आवश्यता के आधार शान्तिपूर्ण ढंग से करना चाहिए जो सवौच्च न्यायालय के निर्देशन में हो
7. केन्द्रीय केबिनेट का गठन इस प्रकार करना चाहिए जिसमें क्षेत्रिय प्रतिनिधित्व को ध्यान में रख कर करना चाहिए – राजनैतिक आधार पर नहीं

8. अनुच्छेद 368 के तहत संविधान सशोधन विशेष बहुमत के तहत राज्यों से अनुमोदन के लिए साधारण बहुमत के स्थान पर 2/3 बंहुमत से अनुमोदन कि प्रक्रिया करने चाहिए
9. अनुच्छेद 154 को संशोधन कर राज्यपाल कि नियुक्ति में राज्य केबिनेट से अनिर्वाय परामर्श लिखना चाहिए।
10. अनुच्छेद 156 में राज्यपाल के कार्यकाल में राष्ट्रपति के प्रसाद को हटाकर 5 वर्ष कार्यकाल संशोधन करना चाहिए
11. राज्यपाल पद के लिए योग्यता में शिक्षाविद् विशेष क्षेत्र, समाज सेवी, महिला हितो में विशेष कार्यकरने वाले विधि के जानकार आदी व्यक्तियों कि नियुक्ति करनी चाहिए न कि राजनैतिक समायोजन के लिए

**निष्कर्ष**

पूर्वगामी चर्चा के आधार पर इस बात का निष्कर्ष निकाला जा सकता है संविधान में उल्लेख संघ राज्यों को सौपे गये क्षेत्रो के आधार पर कानून बनाने के लिए स्वतंत्रत है हालाकि कुछ स्थितियों केन्द्र की और झुका हुआ दिखाई देता है दोनो के मध्य गतिरोध होने पर न्यायपालिका महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है भारतीय संघवाद का रूप प्रारम्भ से ही बदलता हुआ देखा जा रहा है कुछ गठबन्धन व मजबुरियो कि वजह से कुछ संघ और राज्य सरकारों को आपस में समझोते करने पढते है। लेकिन दोनो को सामान्य उद्देश्य को प्राप्त करने के लिए अपनी तत्परता व्यक्त करनी चाहिए और सांमजस्यपूर्ण सहअस्तित्व के मार्ग पर आगे बढना होगा। यदि दोनो सरकारो के सघर्ष में पीडा जनता को भुगतनी पडती है दोनो सरकारे जनता के मुद्दो को ध्यान में रखते हुए साझे क्षेत्र में एक साथ काम करती है इसलिए वर्तमान समय में सहयोगत्मक भाव से देश को आगे बढाने का काम हो रहा है।

**सन्दर्भ सूची :–**


1. बसु दुर्गादास –comparative federalism
2. प्रभुराम मीणा – विकास अधिकारी सुमेरपुर एल.आई.सी. सुमेरपुर
3. डा. दिनेश गेहलोत – सहायक आचार्य जयनारायण व्यास विश्वविद्यालय (जोधपुर)
4. डा. लक्ष्मी नारायण बेनीवाल – सहायक आचार्य राजस्थान विश्वविद्यालय (जयपुर)
5. महावीर सिंह चौहान – प्रधानाचार्य राजकीय उच्च माध्यमिक कुमटिया बाली (पाली)



मो. 9928914776 ई–मेल– praveensena776@gmail.com

www.bohalshodhmanjusha.com Bohal Shodh Manjusha ISSN: 2395-7115
Impact Factor:7.523 January 2025 Page No. : 115-117
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

# मातृभाषा बनाम हिन्दी की उपभाषाएँ और बोलियाँ : वर्तमान और भविष्य

**डॉ. अनामिका सिंह,** असिस्टेंट प्रोफेसर हिन्दी,
पूर्णियाँ विश्वविद्यालय, पूर्णियाँ

हिन्दी भाषा में साहित्य लेखन का आरम्भ भले ही आदिकाल से मिलता हो पर हिन्दी को सुदृढ़ करने में आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी का योगदान अतुलनीय है। भारतेन्दु युग और उसके बाद विशेषकर द्विवेदी युग में हिन्दी परिनिष्ठित और परिमार्जित होकर पाठकों तक पहुँची। 14 सितंबर 1949 से हिन्दी को राजभाषा का दर्जा प्राप्त हुआ तब से लेकर आजतक हिन्दी के प्रति लोगों का रुझान बढ़ता देखा जा सकता है। हिन्दी को जब से राजभाषा का दर्जा दिया गया उसके बाद से हिन्दी तो उत्तरोत्तर समृद्ध होती चली गयी किन्तु हिन्दी की उप भाषाएँ एवं क्षेत्रीय बोलियों के प्रयोग में गिरावट दर्ज की जाने लगी। कारण यह कि आज के दौर में रोजगार की तलाश में प्रत्येक व्यक्ति अपने घर और समाज से कट गया। परिणामस्वरूप क्षेत्रीय बोलियों एवं मातृभाषाओं के प्रयोग में कमी आने लगी। यदि इस विषय पर गंभीरता पूर्वक विचार करें तो हम देखेंगे कि जो बच्चे संयुक्त परिवारों में रहकर भली-भाँति मातृभाषा का व्यवहार करते थे आज एकाकी परिवार में पालन-पोषण होने के कारण उन्हें मातृभाषा सीखने और बोलने के लिए पर्याप्त अवसर नहीं मिल पाता। आज से 30-40 वर्ष पूर्व जब भारत में अधिकांश तौर पर संयुक्त परिवार की अवधारणा थी तब बच्चे अपने घर-परिवार व आस-पास से मातृभाषा के बहुत से शब्द अनायास ही सीख लेते थे। जिससे उन्हें मातृभाषा सीखने में कोई कठिनाई नहीं होती थी। सोशल मीडिया में हिन्दी ने जिस तरह पैर पसारे है उसे देख ऐसा प्रतीत होता है कि आने वाले कुछ वर्षों में कई मातृभाषाएं दम तोड़ देंगी। वर्तमान समय में लोग हिन्दी को उत्कृष्ट समझकर अपनी मातृभाषा में बात करने में शर्म का अनुभव करते हैं। इसके लिए कुछ हद तक हम स्वयं उत्तरदायी है। घर में छोटे बच्चे जब अपने माता-पिता से टूटी-फूटी भाषा में बात करते हैं या ठीक-ठीक मातृभाषा नहीं बोल पाते तो वे उनके लिए मनोरंजन का साधन बन जाते हैं। इस प्रकार हम अपनी ही मातृभाषा का तिरस्कार करते हैं। भाषाएँ संस्कृति की वाहक होती हैं। हर भाषा की अपनी अलग संस्कृति और पहचान होती है। हिन्दी एक ऐसी भाषा है जो लोगों को एकसूत्र में पिरोने का कार्य करती है

जबकि मातृभाषा भारत की विविधता में एकता की पहचान है । यह भारतीय संस्कृति को अखण्ड एवं अक्षुण्ण बनाए रखने व उसे जीवित रखने में सहयोग देती है इसलिए हिन्दी का व्यवहार करना आवश्यक है किन्तु क्षेत्रीय बोलियों एवं मातृभाषा को उत्कृष्टता पर स्थापित करना भी हमारा ही कर्तव्य है ।

भाषा का स्वरुप परिवर्तनशील रहा है । समय के अनुसार भाषा परिवर्तित होती रहती है । हिन्दी भाषा के इतिहास पर यदि विचार करें तो यह पाएंगे कि सब भाषाओं में वहीं एक ऐसी भाषा है जिसने समूचे राष्ट्र पर एकछत्र अपना साम्राज्य कायम किया है । भारतेंदु हरिश्चंद्र के प्रयासों से खड़ीबोली हिन्दी को पहचान मिली तो आगे चलकर आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी ने खड़ीबोली हिन्दी को परिष्कृत एवं परिमार्जित कर उसे शुद्धता प्रदान की । हिन्दी भाषा के व्यावहारिक पक्ष पर बात करें तो देखेंगे कि आज हिन्दी बाजार की भाषा बन चुकी है । उसके बिना व्यापार सम्भव नहीं । यह व्यावहारिक भाषा होने के साथ ही भारत की सम्पर्क भाषा है । हिन्दी भाषा आज जितनी तेजी से अपना स्थान बना रही है कि उसने मातृभाषाओं के अस्तित्व पर प्रश्न चिह्न लगा दिया है। हिन्दी भाषा को उन्नत बनाने में सबसे अधिक योगदान हिन्दी सिनेमा और हिन्दी विज्ञापनों का है । हिन्दी की उपभाषाओं या क्षेत्रीय भाषाओं के पिछड़ेपन का सबसे बड़ा कारण है उसका हिन्दी सिनेमा तक पहुंच न बना पाना । सिनेमा मनोरंजन का माध्यम है । आजकल की भाग दौड़ भरी जिंदगी में फुर्सत के क्षणों में मनोरंजन के लिए टेलीविजन के सामने घंटों समय बिताना मनोरंजन की तलाश करना ही है । सिनेमा, समाचार और विज्ञापन ये सभी आज हिन्दी भाषा में अधिकांश रूप से देखे व सुने जाते हैं । जबकि अन्य भाषाओं में यह ना के बराबर है । इससे यह स्पष्ट होता है कि हिन्दी भाषा का भविष्य उज्ज्वल है किन्तु इससे क्षेत्रीय भाषाओं का भविष्य अन्धकारमय दिख रहा है । भारत की लगभग 250 जनजातीय एवं क्षेत्रीय बोलियाँ पिछले 50 वर्षों में विलुप्त हो चुकी हैं । यूनेस्को (UNESCO) की "एटलस ऑफ द वर्ल्ड्स लैंग्वेजेस इन डेंजर" रिपोर्ट के अनुसार, भारत में 197 भाषाएँ ऐसी हैं जो विलुप्त होने के खतरे में हैं। इनमें से कुछ भाषाएँ पहले ही विलुप्त हो चुकी हैं। इन बोलियों को विलुप्तप्राय होने से बचाने के लिए सर्वप्रथम मातृभाषाओं के माध्यम से शिक्षण को बढ़ावा देना चाहिए । यदि हमें क्षेत्रीय भाषाओं को जीवित रखना है तो पहले उसे क्षेत्रीयता के आधार पर पहचान दिलाना होगा । उसे प्राथमिकता देनी होगी । लोगों के भीतर अपनी मातृभाषा के प्रति सम्मान और प्रेम जागृत करना होगा । प्राथमिक स्तर पर स्कूलों में इसके अध्ययन-अध्यापन पर बल देना होगा । विद्यालयों में भी उसी क्षेत्र के शिक्षकों की नियुक्ति शिक्षक के रूप में करने के लिए सरकार से अपील करनी होगी ताकि विद्यार्थी अपनी मातृभाषा और क्षेत्रीय भाषा को सुगमतापूर्वक सीखने के लिए तत्पर रहें । उनमें अपनी मातृभाषा को सीखने के लिए किसी भी प्रकार की हीनता का बोध न हो । साथ ही क्षेत्रीय बोलियों को मातृभाषा के रूप में अधिकाधिक प्रयोग करने के लिए लोगों को प्रेरित करना चाहिए । यदि समय रहते इसपर विचार नहीं किया जाएगा तो इन बोलियों का भविष्य अंधकारमय

है और इन्हें विलुप्तप्राय होने से बचाना भी एक चुनौती होगी । सरकार को भी इस दिशा में कोई ठोस कदम उठाना चाहिए तभी हिन्दी की उपभाषाओं, क्षेत्रीय बोलियों एवं मातृभाषा के प्रति लोगों का रुझान बढ़ सकेगा एवं इसकी स्थिति को बेहतर बनाया जा सकेगा ।

**संदर्भ सूची**


1. रामविलास शर्मा ; महावीर प्रसाद द्विवेदी और हिन्दी नव जागरण
2. डॉ. हरदेव बाहरी ; हिन्दी भाषा
3. डॉ. रामविलास शर्मा ; हरिश्चंद्र और हिन्दी नव जागरण की समस्याएँ
4. द्वारिकाप्रसाद सक्सेना ; भाषा विज्ञान के सिद्धान्त और हिन्दी भाषा

-www.bohalshodhmanjusha.com Bohal Shodh Manjusha ISSN: 2395-7115
Impact Factor:8.642 January 2025 Page No. : 118-123
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

# राम की शक्ति–पूजा और निराला के काव्य सौन्दर्य

**डॉ0 प्रशांत केतु,** हिन्दी विभाग
मगध विश्वविद्यालय, बोधगया

**सारांश**

महाप्राण निराला विरोधाभाष के कवि रहें हैं। उनकी समस्त रचनाओं में युगबोध, जातीय जीवन का तेवर और वैयक्तिक यातना का अद्‌भुत मिश्रण देखने को मिलता है। भाषा और संवेदना के जितने रंग और स्तर निराला में है, उतने किसी अन्य कवि में नहीं। निराला का काव्य आत्म संघर्ष का काव्य रहा है। जग–जीवन से लेकर निज मन तक का संघर्ष उनकी रचनाओं में निरंतर दिखाई देता है। "राम की शक्ति–पूजा" एक ऐसी ही 312 पंक्तियों की लम्बी कविता है। जिसमें राम का कभी बाहरी परिवेश से संघर्ष है तो कभी स्वयं का आत्म संघर्ष। राम का यह आत्म संघर्ष स्वयं निराला के व्यक्तित्व और सृजनशीलता का संघर्ष है।

प्रस्तुत आलेख में निराला की कालजयी कविता "राम की शक्ति–पूजा" के माध्यम से राम के आत्म संघर्ष तथा काव्य सौन्दर्य दोनों पर प्रकाश डाला गया है।

**प्रस्तावना**

महाप्राण निराला की "राम की शक्ति–पूजा" महाकाव्योचित औदित्य से संपन्न लंबी कविता है। यह आधुनिक काल में महाकाव्य का उत्तरोत्तर सूक्ष्म होता विधान है। पुराण–कथा, प्रतीकात्मकता और आधुनिक संवेदना के कई स्तरों पर कविता एक साथ प्रवाहित होती है। छायावाद को शक्तिकाव्य कहने में 'कामायनी' के साथ 'राम की शक्ति–पूजा' मिलकर आधार बनाती है। 'राम की शक्ति–पूजा' के विधान में एक–एक शब्द सुचिंतित जैसै जूडा हूआ है। फिर स्थान–स्थान पर नाटकीय मोड़ कविता के विन्यास में एकरसता नही आने देते। महाकाव्य की उदात्तता और नाटक की गति ये दोनों मिलकर 'राम की शक्ति–पूजा 'को एक अपूर्व रूप प्रदान करते है। परिकल्पना की विराटता और चित्रण की सूक्ष्मता का संयोजन 'कामायनी' की ही तरह 'राम की शक्ति–पूजा' के विधान की भी विशेषता है। राम का अंकन यूगीन संवेदना के अनुकूल यहाँ पूरी तरह माननीय धरातल पर हुआ है। सामान्य मनुष्य की तरह वे भी विषम परिस्थिति में दुखी और निराश होते है और उनकी आँखों से आसू गिर पड़ते है। निराला लिखते है–

अन्याय जिधर, है उधर शक्ति। कहते छल–छल
हो गये नयन, कुछ बूँद पुनः ढलके दृग जल,

**अन्तर्वस्तु :**

'रवि हुआ अस्तः ज्योति के पत्र पर लिखा अमर रह गया राम रावण का अपराजये समर' (राम की शक्ति–पूजा)'' सूर्य डूब गया और प्रकाश के पत्रों पर राम–रावण के अपराजये समर का इतिहास सनातन सत्य बन कर अंकित हो गया। इस युद्ध का वर्णन–कौशल निराला है। राम रावण के युद्ध में राक्षसों के पदचाप से धरती हिल उठी। लंकापति रावण वानरी सेना का मानर्मदन कर चुका है। रामजी की वानरी सेना 'हूह' शब्द करती हूई राक्षसो पर टूटती है। सुग्रीव, अंगद, नलनील सबके सब मूर्च्छित हो गए है। संध्या होने पर राम और रावण दल अपने–अपने शिविर में लौटते है। राक्षसों की विजय से रावण अट्टहास कर रहा है। राम के धनुष की प्रत्यँचा ढीली पड़ गई है। उनका जटा– मुकुट खुलकर पीठ, बाहु और बक्ष

पर इस तरह फैल गया है जैसै दुर्गम पर्वत पर रात्रि का अंधकार फैलता है। निराशा के इस घोर अंधकार में सिर्फ राम के दो नेत्र दिप्र हो रहे है। अमावस्या की भयंकर काली स्याही रात और गरजता हुआ विशाल समुद्र। चारों ओर अंधकार ही अंधकार और प्रकाश का नामोनिशान नही। राम का जो मन आजतक पराजय स्वीकार नही किया था वही आज असर्मथ होकर अपनी पराजय स्वीकार कर रहा है। इसी क्षण निराश और हताश राम को अचानक स्वयंवर के दिनों की जानकी स्मरण हो आती है। जानकी की वह पुष्प वाटिका, राम और सीता का वह प्रथम मिलन नयनों से नयनों का संगोपन और संभाषण का स्मरण होते ही राम निराशा की उस भयावह पृष्ठभूमि से भाग निकलते है और उनका पराक्रमी हाथ एक बार फिर शिव–धनुष भंग करने के लिए अपने–आप उठ जाता है। इसी क्षण राम को वे सभी दिव्य अस्त्र–शस्त्र याद आते है, जो देवदूत के समान उड़ते हुए ताड़का, खरदुषण, मारीच आदि को भस्म कर चुके थे लेकिन इसी क्षण उन्हें महाशक्ति की विराट मूर्ति की भी याद आती है राम के नेत्रों में एक क्षण सीता के राममय नेत्र अंकित होते है तो दूसरे क्षण अंकित होते है महाशक्ति की गोद में बैठकर पापी रावण अट्टहास कर रहा है।

**कुछ क्षण तक रहकर मौन सहज निज कोमल स्वर,**
**बोले रघुमणि–मित्रवर, विजय होगी न, समर**
**यह नहीं रहा नर–वानर का राक्षस से रण,**
**उतरी पा महाशक्ति रावण से आमंत्रण,**

इस दैन्यसिक्त परिस्थित में राम की आँखों सें मोती जैसै दो अश्रु–विन्दु ढुलक पड़ते है। हनुमान राम के चरणो को देख रहे है। वे राम की आँखों सें टपकने बाले अश्रु–मोती को देखकर व्याकुल हो उठे''।[3]

''फिर तो हनुमान अट्टहास कर पापी रावण के इष्टदेव शिव के निवासस्थान 'महाकाश'को निगलने के लिए एकादश रूद्र मे पहुँच गए। इस महानाश को देखकर शिव भी घबड़ा गए। शिव जी शक्ति का स्मरण करने लगे। तब महाकाश में अंजना के रूप मे शक्ति का उदय होता है। अंजना हनुमान की माता है। वह मीठी–मीठी बोली में हनुमान को फटकारती है। अंजना की मधूर फटकार सूनकर हनुमान धीरे–धीरे महाकाश से धरती उतर आते है।''[4] ''उधर विभिषण चिंतित है। उनकी मुख्य चिंता यह है कि राम यदि इसी निराश और हताश मनःस्थिति में रह गए तो वह लंका का राजा कैसे बनेगा ? विभिषण ने राम को उत्साहित करने के लिए लंबा भाषण दिया, परंतु उस भाषण का स्थित प्रज्ञ राम पर कोई प्रभाव नही पड़ा। तब जामवंत राम को सही मंत्र दे ने आए।

जामवंत ने राम को कहा कि पापी, अत्याचारी रावण यदि साधना द्वारा महाशक्ति को अपने पक्ष में कर सकता है तो क्या राम सच्चीपूजा और उपासना द्वारा 'महाशक्ति' को अपने पक्ष में नही ला सकते? जामवंत ने राम को सलाह दिया कि 'शक्तिपूजा' द्वारा ही रावण को पराजित किया जाय। जामवंत के इस सलाह को सुनकर राम के निराश मन में आशा का संचार हुआ। राम के आदेशनुसार हनुमान एक सौ आठ कमल ले आए। सामने विराट पर्वत की फैली प्रकृति को ही 'महाशक्ति' का प्रतिरूप मानकर राम उनकी अराधना में लीन हो गए। राम शक्ति की अराधना में लीन है। सवेरा हुआ। सूर्य की प्रथम रश्मि फूटी। अन्य दिनो की तरह समर भूमि मे फिर दोनो दलो का कोलाहल एवं संग्राम शुरू हो गया लेकिन राम अपने मन को एकाग्र करके शक्ति की अराधना में लीन थे। शक्ति–पूजा करते–करते पाँच दिन बीत गए और तब छठे दिन राम का मन योगियों के आज्ञाचक्र पर पहुँच गया। अब तो राम के जप के महाकर्षण से शिव का 'महाकाश'भी थर–थर काँपने लगा। देवी को प्रत्येक जप के बाद कमल अर्पित करते हुए राम एक ही आसन पर बैठे रहे। अब पूजा का आठवाँ और आखिरी दिन भी आ पहुँचा। इस दिन राम का मन सहस्रार पर पहुँच गया। देवी को अर्पित करने के लिए मात्र एक कमल बचा हुआ है। इसे अर्पित करते ही रात की साधना पुर्ण हो जाएगी। रावण भय से अब संसार मूक्त हो जाएगा और जानकी का उद्धार भी निश्चित, मगर हाय रे नियति का क्रूर और निर्मय व्यंग्य! रात की दोपहरी बीतते ही स्वयं महाशक्ति दुर्गा महाकाश के नीचे उतर आयी और पूजा का अंतिम इन्दीवर (कमल) चुरा ले भागी। राम का तपःपुत हाथ जब इन्दीवर (कमल) लेने के लिए बढ़ता है तो वह शुन्य से टकराकर लौट आता है। कमल नही–अब क्या होगा? राम यदि आसन से उठते है तो उनकी संपूर्ण साधना विफल हौ जाती है और अंतिम कमल नही चढ़ा पाते है तब भी साधना अधुरी रह जाती है। राम बिलख पड़ते है– हाय ! अब जानकी (सीता) का उद्धार कैसे हो सकेगा ? इसी क्षण गंभीर विपत्ति की बेला में रात को अपनी माँ कौशल्या याद आती है। उन्हें याद आता है

कि माँ कौशल्या तो सबदिन मुझे 'राजीव नयन' कहकर ही पुकारती थी। अभी तो राम के पास दो और नीलकमल (दो आँखे) शेष है। एक कमलनयन (आँख) ही चढ़ाकर वे शक्ति की पूजा कर लेंगे। राम तुरंत ही निश्चय कर लेते है– निराला लिखते हैः–

**"कहती थीं माता मुझे सदा राजीव–नयन**
**दो नील–कमल हैं शेष अभी, यह पुरश्चरण**
**पूरा करता हूँ देकर मातः एक नयन।"**

''राम लक–लक करता हूआ ब्रह्मसार निकालकर दाहिने आँख की ओर बढ़ा देते है। उन्होने अपना दाहिना नेत्र दुर्गादेवी को अर्पित कर लेने का निश्चय किया। जैसे ही राम का तपःपूत हाथ कातर आँख की ओर बढ़ा वैसे ही महाशक्ति दुर्गा ने साक्षात प्रकट होकर राम के हाथ को पकड़ लिया। राम आँखें खोलकर महाशक्ति का दर्शन करते है और राम का विनम्र प्रणाम स्वीकार कर दुर्गा ( महाशक्ति ) वरदान देती है–'होगी जय। होगी जय। ओ पुरूषोत्तम नवीन।'विजय का वरदान देकर महाशक्ति राम के वदन में लीन हो गई।''6

**'राम की शक्तिपूजा' में रूद्रावतार हनुमान**

''राम की शक्तिपूजा' में हनुमान की अर्न्तकथा का प्रारंभ राम के गहन अन्तर्द्वन्द्व के चित्रण के बाद हुआ है। इस अन्तर्द्वन्द्व की दशा में राम के मन को बार–बार संशय हिला रहा है और रावण की जय का भय भी उन्हें रह–रह कर आंदोलित कर रहा है। राम की संकल्प शक्ति को दबाता हुआ यह संशय क्रमशः बढ़ता ही जाता है और अंत में ऐसी दशा आती है कि संशय – ग्रस्त राम को रावण का अट्टहास सुनाई पड़ता है। इसके बाद राम की आँखों से आँसू की दो बूँदें टपक कर उन्हीं के चरणों पर गिर जाती है। राम के इन अश्रु–बिन्दुओं को चरणसेवी हनुमान देख लेते है और विकल हो जाते है। सर्वशक्तिमान भगवान राम की आँखों के आँसू! इसी उन्मधित विकलता की दशा को अंकित करते हुए निराला ने हनुमान की अन्तर्कथा प्रारंभ की है।''7

इस अन्तर्कथा के प्रारंभ होने के पहले भी राम की शक्तिपूजा, में हनुमान का उल्लेख दो बार मिलता है। हनुमान का पहला उल्लेख वानर सेनापतियों के साथ किया गया है, जो सुबेल पर्वत पर 'प्रात के रण का समाधान करने के लिए' इकट्ठे हुए थे –

आये सब शिविर, सानु पर पर्वत के, मंथर
सेनापति दल–विशेष के अंगद, हनुमान![8]

दूसरी बार हनुमान का उल्लेख सेवक की भूमिका में किया गया है, जहाँ वे श्वेत शिला पर बैठे हुए रघुकुल–मणि के कर–पद–प्रक्षालनार्थ, निर्मल जल ले आते है –

बैठे रघुकुलमणि श्वेत शिला परए निर्मल जल
ले आये कर–पद–क्षालनार्थ पटु हनुमान।[9]

**भाषा शैली**

''कविता के आस्वादन का मतलब है–उसकी भाषा के प्रति संवेदनशील होना। यह बात कितनी उल्टी क्यों न लगे, लेकिन यह सत्य है कि कविता अंततः भाषा है। जो भाषा के प्रति संवेदनशील नही, वह उसका आनंद नही ले सकता। यह इससे भी प्रमाणित है कि कविता को उसकी भाषा से अलग नही किया जा सकता। वस्तुतः कविता और गद्य का असली अंतर यही है कि गद्य की कोई रचना अपनी भाषा से अलग होकर भी किसी हद तक जीवित रह सकती है, लेकिन कविता नही। इसका कारण यह है कि गद्य में जहाँ भाषा बहुत कुछ साधन होती है, वहाँ कविता में साधन भी और साध्य भी। आकस्मिक नही कि फ्रांसीसी कवि मलोर्म ने कविता को यह कह कर परिभाषित किया था कि कविता उसे कहेगे जिसका अनुवाद न किया जा सके। दिनकर जी ने एक जगह लिखा है कि कविता की सारी आलोचना वस्तुतः उसकी भाषा की आलोचना है। भारतीय काव्यशास्त्र का साक्ष्य ले, तो उसमें बहुलांश में काव्यभाषा में विश्लेषण है। अलंकार, रीति, वक्रोक्ति और ध्वनि भाषा की ही तो विशेषताएँ है। स्वभावतः निराला की 'शक्ति–पूजा सबसे पहले मुझे अपनी भाषा के लिए प्रिय है। इस भाषा के अनेक स्तर इस कविता में देखने को मिलते है। युद्धवर्णन की शब्दावली आगपूर्ण है, तो पुष्पवाटिका के प्रसंगें वर्णन की माधर्यपूर्ण। सरल

भाषा के नमुने 'लौट युग दल। राक्षस–पड़ताल पृथ्वी टलमल, विंध महोल्लास से बार–बार आकाश 'विकल से लेकर 'द्विपहर रात्रि, साकार हुई दुर्गा छिपकर,। हँस उठा ले गई पूजा का प्रिय इंदीवर' तक बिखरे हुए है। बीच–बीच में 'है अमानिशा, उगलता गगन घना अंधकार', 'लांछन कां लें जैसे शंशाक नभ में अशंक', 'फिर खोले पलक कमल–ज्योतिर्दल ध्यान–'लगन बोले भावस्थ चंद्रमुख–निंदित 'रामचंद्र अथवा 'दक्षिण गणेश, कार्तिक बाएँ रण–रंग–राग,–जैसी पंक्तियाँ मिलती है, जो कविता को तरह–तरह के स्वर से निनादित करती चलती है। भिन्न संदर्भ में प्रयुक्त मुक्तिबोंध का एक शब्द लेकर कहें तो यह कविता 'शत–ध्वनि–संयम–संगीत' है। इस द्रष्टि से खड़ीबोली की कोई कविता इसके समकक्ष नही रखी जा सकती।''[10]

' 'शक्तिपूजा की भाषा की एक बड़ी विशेषता इसका अनगढ़पन है, एक लापरवाहीए जो निराला ने उसे रचने में बरती है। निराला मे पांडित्य भी था और वे 'सजग कलाकार' भी थे। उनकी अनेक रचनाएँ इसका सशक्त प्रमाण उपस्थित करती है। लेकिन 'शक्तिपूजा' से जैसे वे अपने काव्य में एक नई शुरूआत करते है, जिसकी परिणति आगे चलकर 'देवी सरस्वती'–जैसी लंबी कविता और अंतिम दौर के उनके गीतो में होती है। यहाँ कवि का ध्यान भाषा के माध्यम से अधिकतम मात्रा में अपने को अभिव्यक्त करने पर है, उसके परिष्कार या ढलाव पर नही। अनगढ़पन और लापरवाही 'शक्तिपूजा' की भाषा की जान है। एक–दो उदाहरणों से ही यह बात स्पष्ट हो जाएगी। इस कविता के आरम्भ में ही निराला संस्कृत के 'व्युह', 'समुह' और प्रत्युह' के साथ हिन्दी के ठेठ ध्वनिसूचक

'हूह'शब्द का प्रयोग करते है वह भी समस्त पद में 'क्रुद्ध–कपि–विषय–हूह'। कहने की आवश्यकता नही कि यहाँ 'हूह' शब्द ने जो काम किया है। वह संस्कृत का कोई तत्सम शब्द नही कर सकता था। इसी तरह 'है अमानिशा' वाले वर्णन में उन्होंने संस्कृत शब्दो के बीच अरबी के 'मशाल' शब्द का प्रयोग किया है–'भूधर ज्यों ध्यान मग्न, केवल जलती मशाल।' इस शब्द के साथ 'उगलता गगन घन अंधकार में जो 'उगलता' है, हिन्दी का ठेठ ही नही, भदेस प्रयोग, उस पर भी हमारा ध्यान जाना चाहिए। ये दोनो ही शब्द यहाँ बहुत ही समर्थ है। निराला अच्छे संस्कृतज थें, लेकिन भाषा के मामले मे शुद्धतावादी नही। उनकी मम्यता थी कि कोई भी जुबान नायाक नही होती। इसी कारण यह संभव हुआ कि 'शक्ति–पूजा' में अरबी फारसी के शब्दों से लेकर हिन्दी के भदेस शब्दो तक का प्रयोग कर सके।''[11]

**निष्कर्ष**

''हिन्दी में इसको लेकर लगभग आम सहमति है कि निराला की कविता 'राम की शक्ति–पूजा' खड़ीबोली की सर्वश्रेष्ठ कविता है। आलोचक तो इस बात को मानते ही है, भिन्न–भिन्न संवेदना के रचनाकार भी मानते है। निराला दिनकर और अज्ञेय की काव्य–रूचि के कभी अनुकुल नही रहे, पर इन रचनाकारो की दृष्टि में भी यह कविता हिन्दी की एक अद्वितीय रचना है।''[12]

''राम की शक्तिपूजा' महाकवि निराला की श्रेष्ठ कविता है। सन 1936 ई0 (23 अक्टूबर) मे रचित यह कविता निराला के पौरूष, प्रज्ञा, प्रपति और भक्ति की काव्यकला–कुशल अभिव्यक्ति है।''[13] निराला की राम की 'शक्तिपूजा' पाँच खंड़ो में बँटी हुई है। पहले खंड़ में युद्ध से लौटती हुई राम की सेना का वर्णन है। दुसरा खंड़ रात्रि–वर्णन से प्रारंभ हुआ है, जिसके अर्न्तगत स्मृत्यभास शैली में युद्ध–पूर्व रामकथा का संकेत प्रस्तुत किया गया है–है अमानिशा उगलता गगन घन अंधकार भक्ति नयनो से संजल गिरे दो मुक्तादल। ('राम की शक्तिपूजा') तीसरे खंड में हनुमान की अर्न्तकथा है। चौथे खंड में विभीषण के द्वारा चिंता से आतुर राम का उत्साहर्वद्धक किया गया है और इसी खंड में जाम्बवान ने राम के समक्ष शक्तिपूजन का प्रस्ताव रखा है। अंत में पाँचवाँ खंड है, जिसके अंतर्गत राम के द्वारा शक्ति की मौलिक कल्पना, शक्ति को अराधना और कृपामयी शक्ति का विजय–वरदान वर्णित है। 'राम की शक्ति–पूजा' की संपूर्ण कथा–यब्टि पर विचार करने से ऐसा प्रतीत होता है कि तीसरे खंड में हनुमान की अंर्तकथा के जुड़ जाने से 'राम की शक्तिपूजा' का काव्य–वैभव बढ़ गया है। ''ध्वनि प्रवाह की गति के आधार पर 'राम की शक्तिपूजा' की विशिष्टता स्पष्ट करते हुए डॉ0 रामविलास शर्मा ने उसकी तुलना 'तुलसीदास' से इस रूप में की है–'तुलसीदास के विभिन्न अंशों में इस प्रवाह की गति में प्रायः एक सी रहती है, 'राम की शक्तिपूजा, के विभिन्न अंशों में इस गति में बड़ा भेद है। कही उद्धत उददाम प्रवाह है, कही स्थिर–सा निर्मल जल।

अर्थ की वक्रता, मूर्तिविधान का घनत्व 'राम की शक्तिपूजा' में 'तुलसीदास' से अधिक है।''[14] ''राम की शक्तिपूजा' अपनी कल्पना में अदभुत ऊँचाई तक जाती है। राम के व्यक्तित्व और मन में जो नयी शंका भरी गयी है, उद्वेग और तनाव भरे गये है वे ही 'राम की शक्तिपूजा' को महान कृति बनाते है।''[15]

बंगाल में (शक्तिपूजा के प्रदेश या क्षेत्र में) शक्ति आराधना पर वैसी उर्जास्थित रचना नही लिखी गयी, जैसी 'राम की शक्तिपूजा' है। इस तथ्य की और ध्यान आकृष्ट करने के साथ डॉ0 रामस्वरूप चतुर्वेदी ने टिप्पणी की है–''रवीन्द्रनाथ में प्रकृति और राष्ट्रीयता के विविध रूप है, श्रृगार और अध्यात्य का सूक्ष्म चित्रण है, प्रार्थना की गहराई है, पर शक्तिकाव्य का वह रूप नही जो प्रसाद या निराला में मिलता है। इसी क्रम में डॉ0 चतुर्वेदी ने 'राम की शक्तिपूजा' और 'कामायनी' के बीच यह समानता भी निर्दिष्ट की है–''परिकल्पना की विराटता और चित्रण की सुक्ष्मता का संयोजन 'कामायनी' की तरह 'राम की शक्तिपूजा' के विधान की विशषेता है।'' उन्होनें 'राम की शक्तिपूजा' के महत्व का एक कारण यह माना है कि युगीन संवेदना के अनुकुल राम का चरित्र यहाँ मानवीय धरातल पर अंकित हुआ है। इसी दृष्टि से विचार करते हुए अनेक चिंतक इस निर्ष्कष पर पहुँचे है कि राम का संशय, भय, पराजय बोध वस्तुतः निराला का ही संशय, भय, या पराजय बोध है। तात्पर्य यह है कि निराला ने राम के कठिन संघर्ष के साथ तादात्म्य स्थापित कर लिया है।

जीवन का रथ सुख की चाँदनी और दुःख की अमावस्या दोनो को अपना चक्र बनाकर आगे बढ़ता है। साहित्य यदि जीवन का प्रतिबिंब है, तो इस कसौटी पर निराला की साहित्य साधना उपलब्धि के शिखर पर प्रतिष्ठित मानी जाएगी। श्री सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला' जी हिन्दी के निराले कवि है। 'राम की शक्तिपूजा' निराला जी का गौरव – कलश तो है ही, इसे आधुनिक हिन्दी– कविता की सर्वश्रेष्ठ माननी चाहिए।

राम की शक्तिपूजा' 'निराला' जी के कवि–जीवन की सुरभि है, जिसकी आरती करने के लिए युग–युग का पाठक आतुर रहेगा। यह कविता महाकाव्यात्मक गरिमा धारण करती है। भारतीय भाषा के अनेक कवियो ने राम को ईश्वर के रूप में प्रतिष्ठित किया है परंतु सुख–दुःख और राग–विराग से प्रभावित होने वाले मनुष्य के रूप में राम का चरित्रांकन पहली बार 'निराला' जी ने किया है। 'निराला' जी आशा के चंदन चर्चित प्रकाश में प्रस्तुत कविता को समाप्त करते है। विवेच्य कविता अपने उत्कृष्ट शिल्पविधान के कारण पाठको को अंधकार से निकाल कर प्रकाश के क्षितिज पर खड़ा देती है। इसलिए निराला की 'राम की शक्तिपूजा' कविता हिन्दी कविता के काव्यकलश पर युग–युग तक चंदन चर्चित चाँदनी बरसाती रहेगी। अंधकार और निराशा का वृत फैला कर उसमें उजाला और आशा का रंगीन फूल खिला देने वाले श्री सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला' इसलिए तो हिन्दी के निराले कवि माने जाते है।

डॉ0 नंदकिशोर नवल ने लिखा है ''राम की शक्तिपूजा' के रचनाकाल से लेकर आज तक हिन्दी में कई काव्योदोलन आए है और कविता का फैशन लगभग पूरा बदल चुका है। फिर भी यह कविता अपनी जगह पर कायम है, बल्कि जैसे–जैसे समय बीतता जाता है, असकी रंग और सुगंध से पंखुड़ियाँ खुलती जाती है। यदि इसे एक वृक्ष माने, तो हर पाठ में इसमे नए नए कोपल फूटते है, नए नए पत्ते निकलते है। 'शक्तिपूजा' का कोई पाठ पूरा अथवा अंतिम नही हो सकता, क्योंकि हर अगले पाठ में महसूस होता है कि पिछली बार कुछ छूट गया था।

हर बार अनेक शब्दों से अर्थ की नई–पई झंकृतियाँ फूटती है और संदर्भो से नए–नए संकेत प्रकट होते है। गेटे कि यह उक्ति प्रसिद्ध है कि सिद्धातं पीला पड़ता है, लेकिन जीवन का वृक्ष हमेशा हरा रहता है। 'राम की शक्तिपूजा' नायक निराला की यह कविता जीवन नही है, उसकी अनुकृति या प्रतिकृति है, लेकिन इतनी सटीक है कि यह जीवन की तरह ही सदाबहार है।''[16]

उपर्युक्त विलक्षण विशेषताओं के कारण निराला की 'राम की शक्तिपूजा' शीर्षक कविता एक कालजयी कविता बन गई है।

**संदर्भ–सूची**

1. हिन्दी साहित्य और संवेदना का विकाश', लेंखक रामस्वरूप चतुर्वेदी, लोकभारती प्रकाशन, महात्मा गाँधी, मार्ग इलाहाबाद, प्रयुक्त संस्करण 2004, पृ – 122.

2. वही, पृ॰ 122 – 123.
3. 'राम की शक्तिपूजा का काव्यसौन्दर्य', लेंखक – डॉ0 दिलीप कुमार झा, उदय पत्रिकाए जुलाई 2002, पृ – 45.
4. वही, पृ॰ 46.
5. वही, पृ॰ 46.
6. वही, पृ॰ 46.
7. 'परिषद पत्रिका', डॉ0 कुमार विमलए बिहार राष्ट्रभाषा परिषद, आचार्य शिवपूजन सहाय मार्ग, पटना, जुलाई 1998, पृ॰ 39, (34 अंक 1–4).
8. 'अनामिका' द्वितीय संस्करणए सूर्यकान्त त्रिपाठी षनिरालाष्ए पृष्ठ 149.
9. वही, पृ॰ 150.
10. 'परिषद पत्रिका', डॉ0 नंदकिशोर नवल, बिहार राष्ट्रभाषा परिषद, आचार्य शिवपूजन सहाय मार्ग, पटना, जुलाई 1998, पृ॰ 54.
11. 'परिषद पत्रिका', 'राम की शक्तिपूजा' एक व्यक्तिगत प्रतिक्रिया लेखक डॉ0 नंदकिशोर नवल, जुलाई 1998, पृ 55.
12. वही, पृ 53.
13. 'परिषद पत्रिका' लेखक डॉ0 कुमार विमल, पृ 38.
14. 'कविता का पाठ और काव्य–मर्म', लेखक परमानंद श्रीवास्तव, अभिव्यक्ति प्रकाशन, विश्वविद्यालय मार्ग, इलाहाबाद, प्रथम संस्करण : सितम्बर 1992, पृ 34.
15. वही, पृ 36.
16. 'परिषद पत्रिका' लेखक डॉ0 नंदकिशोर नवल, जुलाई 1998, पृ॰ 52.

www.bohalshodhmanjusha.com Bohal Shodh Manjusha ISSN: 2395-7115
Impact Factor:8.642 January 2025 Page No. : 124-130
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

# Online Buyer Behavior: Factors Affecting Online Purchasing Choices

**Sarabjit Kaur Panesar,** Assistant Professor, Commerce,
Guru Tegh Bhadur National College, Dakha, Ludhiana.

**Abstract:**

Recent studies have indicated a desire to learn more about the factors influencing consumers' decisions to shop online. We still don't know what aspects affect consumers' decisions when they shop online. This study aims to give a general overview of the decision-making process involved in online buying by contrasting offline and online decision-making and determining the elements that influence online shoppers' decisions to make purchases or not. Consumer decisions made offline and online are observed to follow different processes when it comes to marketing communication. Online retailers are built with managerial implications to enhance their website.

**Keywords:** Decisions made when shopping online, behaviour of internet shoppers

## Introduction:

Our daily lives have been greatly impacted by the internet since it allows us to communicate with individuals who live on the other side of the planet, send and receive emails constantly, seek for information, play games with others, and even make purchases. In the meantime, buying goods and services online has become a common practice. In the world of the Internet, it has grown in popularity. Additionally, it offers consumers greater variety, convenience, and a simpler way to locate anything online. They can also compare products and prices. It has been demonstrated that modern consumers seeking speed and convenience are more satisfied when they shop online. However, some customers continue to find it awkward to make purchases online. For example, a lack of trust appears to be the main barrier preventing customers from making online purchases. Before making a purchase, customers could also feel the urge to see and handle the goods in person, as well as connect with friends and gather further feedback. These elements could have a detrimental effect on customers' decisions to shop online. The theoretical and conceptual foundation of this study first highlights the distinctions between the processes of offline and online consumer behaviour. Next, we ascertain a few fundamental elements that influence customers' decisions to make purchases through online channels or not. Lastly, we discuss the management ramifications of this knowledge for online retailers looking to enhance their online storefronts to attract more customers.

## Background Theory

### Process of Making Consumer Decisions Offline and Online

Whether a consumer is making a decision offline or online, the process is relatively similar. However, two significant distinctions are the marketing communication and the buying

environment. The conventional consumer decision model states that a consumer's decision to buy usually begins with need awareness, followed by information search, consideration of alternatives, decision to buy, and post-purchasing behaviour.

When it comes to internet communication, banner adverts and other promotions may catch consumers' attention and prompt them to inquire about certain products that they may find intriguing. They will require more information to assist them before they decide to buy. In the event that they lack sufficient knowledge, they will look through internet resources such as websites, online catalogs, and search engines. Customers will need to compare such options for goods or services once they have access to sufficient information. They may seek for consumer feedback or product reviews during the search phase. They will discover which business or brand best meets their needs and expectations. In this phase, a well-structured website and an appealing design are crucial in attracting customers' interest in purchasing the good or service. Furthermore, the type of information sources can affect consumer behaviour. The most beneficial aspect of the internet is its ability to assist with the pre-purchase phase by allowing users to compare various possibilities . Product selection, sales services, and information quality appear to be the most crucial factors in assisting customers in choosing which product to buy or from which seller during the purchasing stage. After an online purchase, post-buy behaviour will become increasingly significant. Sometimes, customers wish to exchange or return the item they have purchased because they have an issue or worry about it. Thus, at this point, return and exchange services become increasingly crucial.

Risks and trusts are external factors that impact all five of the stages mentioned above. A big part of what customers do when they shop online is search. The source risk arises during the information search and evaluation phase since errors may be present in the data on websites. Before accessing their website, visitors to certain websites must register. Therefore, consumers confront information security risk in addition to product risk.

Customers assume the risk associated with internet shopping because they are unable to see the product before making a purchase. Additionally, consumers assume the danger of having to divulge sensitive information, such as their credit card number, during the purchase process. Due to the possibility of personal information misuse, security issues persist even after a transaction has been made.

An Online Consumer Decision Framework created a paradigm that contrasts online and offline consumer decision-making and suggests that a general consumer behaviour framework has to be modified to account for new aspects.When buyers wish to purchase a product, they will consider the brand and features of item or service. Certain things, like software and books, can be readily ordered online and sent. However, some products are difficult to choose through an internet channel. According to the suggested framework, other factors include website characteristics, firm capabilities, marketing communication stimuli, and consumer skills. When buyers wish to purchase a product, they will consider the brand as well as the features of the good or service.

Certain things, like software and books, can be readily ordered online and sent. However, choosing certain things through an internet channel can be challenging. A website's feature is one of the key elements that might persuade customers to make an online purchase. Online retailers, for instance, might leverage cutting-edge technology to enhance their websites and sway consumers' opinions about the online environment. Customers' inclination to try or purchase things from a website will suffer if it is excessively slow, difficult to use, or unsafe. Online shopping habits are also influenced by customer experience with online shopping and consumer

skills, which refer to the product knowledge that consumers possess. Another factor that becomes more significant in the internet environment is clickstream behaviour. It describes the practice of customers searching multiple websites simultaneously for information, going to one website, one page, and ultimately deciding to make a purchase. Due to all of these influences, people develop particular attitudes and behaviours toward online shopping as well as a belief that they have control over their online surroundings.

**Factors Affecting Online Purchasing Decisions**

**Reasons for consumers to make online purchases**

There are numerous justifications for internet shopping. Customers can purchase anything at any time without having to visit a store, for instance; they can compare prices on multiple websites at the same time to find a better deal on the same product; occasionally, they want to avoid pressure when interacting face-to-face with salespeople; they can avoid traffic jams in stores, etc.

Four categories can be used to characterise these factors: information, cost and time efficiency, available products and services, and convenience.

Practicality: According to empirical studies, one factor influencing consumers' propensity to make online purchases is how easy the internet is. Unlike traditional stores, which are open 24 hours a day, 7 days a week, online stores are open around the clock for clients. According to research, 58 percent of respondents said they preferred to buy online because it allowed them to do it after hours, when traditional stores are closed, and 61 percent said they did so to avoid crowds and long lineups, particularly during the holiday shopping season. Customers search for online services in addition to merchandise. Some businesses offer round-the-clock online customer support.

Customers can thus ask questions and receive the help or assistance they need even beyond work hours, which has made them more convenient.

Because they feel pressured or uneasy talking with salesmen and don't want to be influenced and controlled in the marketplace, some customers use internet channels as a means of avoiding face-to-face interactions.

This is particularly true for clients who either wish to be left alone to make their own decisions without the presence of salespeople or who may have had a bad experience with them.

**Information:**

**T**he internet has made it simpler to access data. Online merchants typically offer more product information that customers can utilise when making a purchase because they rarely have the opportunity to touch and feel products and services before making a selection. Consumers give content that satisfies their information wants more weight. Customers can gain knowledge from the website as well as from other customers' reviews of the products. Before deciding, people can peruse those reviews.

**Products and services available:**

Online retailers assist customers by offering a greater selection of goods and services, which has made transactions easier than in the past. Customers can find a wide variety of products from around the globe, some of which may only be accessible online. Regardless of whether they have a physical store or not, the majority of businesses have their own websites where they may sell goods and services online. In an effort to cut expenses associated with selling or to give customers greater options in terms of features, colors, and sizes, many traditional merchants sell some products that are exclusively available online. For example, Boccia Titanium is not present in Connecticut, although it is in many other states. The business

provides a website in order to connect with and satisfy Connecticut clients' desire to place orders online. Similarly, the French business Yves Rocher does not operate a flagship location in the United States. It provides a website where American consumers can simply add items to their virtual shopping carts and have them delivered right to their homes. Furthermore, clients can occasionally find decent options and payment arrangements when they shop online.
Consumers are free to select the payment date and amount that works best for them.

**Cost and time efficiency:**

Customers can purchase the same thing at a lesser price when they shop online because they are frequently presented with a better bargain. Because internet retailers provide clients with a wide range of goods and services. According to Lim and Dubinsky, customers have increased opportunities to compare costs across multiple websites and identify products that are more affordable than those found in local retail locations. Some platforms, like Ebay, allow users to bid up to 10% or choose the best offer so they may get a decent price for their goods. Additionally, it turns shopping into a fascinating and entertaining game of chance and treasure hunt. Once again, because internet shopping is convenient and can be done from anywhere at any time, consumers' lives are made easier by not having to deal with traffic jams, find parking, stand in long checkout lines, or deal with crowded stores. Because of this, clients frequently discover that purchasing from a website that offers ease can lower their psychological expenses.

**Elements that Prevent Customers from Online Purchasing**

A few of the main things that stop people from shopping online are: insecure payment methods, sluggish shipment, undesired merchandise, viruses or spam, inconvenient emails, and technical issues.
Companies need to be aware of these significant issues that cause customers to be unhappy when they shop online.
Security: Since credit cards are typically used for online purchases, buyers occasionally pay attention to the seller's information to be on the safe side. Consumers typically purchase goods and services from reputable sellers or well-known brands. One of the most important is online trust.
problems that have an impact on online shops' success or failure. Online shoppers appear to be deterred from doing so by concerns about security. due to their concern that the internet retailer will defraud them or abuse their personal data, particularly their credit card. As per the Federal Trade Commission research, there exists a significant concern among 70% of web users in the US regarding the security of their transactions, personal information, and misuse of private consumer data.
Product intangibility on the internet: Due to the intangible character of some things, internet purchases are less likely to occur. For instance, consumers are less likely to purchase clothing online as they cannot try on or inspect the physical item. Consumers may react differently to a product when they see it on a computer screen than when they see it in person. In conclusion, when using an internet channel, buyers are unable to see, hear, feel, touch, smell, or sample the goods of their choice. Customers frequently choose to inspect products before deciding whether or not to purchase them. Some individuals believe that the product information on a website is insufficient for decision-making. If the product information does not live up to the expectations of online shoppers, they will be disappointed.

**Social contact:**

While some consumers are unlikely to be under pressure from salespeople, many internet shoppers would find it difficult to decide and would become irate if they did not receive the

expert guidance of an experienced salesman. Furthermore, some consumers have strong social networks and base their purchasing decisions on the advice of others. Some customers also occasionally shop at traditional stores in order to satisfy their demands for social interaction and amusement, which are not always supplied by internet retailers.

**Unhappiness with online buying:**

Consumers' decisions about what to buy in the future are frequently influenced by their prior online shopping experiences. For instance, when individuals shop online, customers could receive undesirable or low-quality goods even when the items match what is expected or advertised.

The product might be defective, brittle, or nonfunctional. Even when the client did not desire the things, some internet retailers could refuse to issue a refund. Another factor influencing online purchase decisions is delivery. For example, customers will stop shopping online if the shipping is slow or delayed.

**Implications for Managers**

One significant e-commerce business strategy is online shopping. Online retailers must understand the factors that influence online purchasers' decisions to make purchases if they hope to convince and keep these customers. Sellers can enhance or develop an efficient marketing program for their customers by better understanding the online shopping habits of their customers. A business or seller has a few options for encouraging individuals who do not shop online to show more interest and, ultimately, become potential customers.

Following an examination of the primary driving forces behind online shopping, online retailers ought to bear these concerns in mind and make every effort to meet the needs of their clients. Furthermore, comprehension Sellers should look for ways to lessen the factors that deter some customers from shopping online in order to increase their client base. Some ideas include creating websites that are more aesthetically pleasing, functional, trustworthy, and safe, providing online customer support, and providing more options.

a more reliable and secure website The trust that customers have in providing personal information and the security of credit card transactions influence their propensity to purchase and use an online store. When making purchases online, they are also concerned about data security and transaction security. One option to increase a website's trustworthiness is to obtain an approved certificate from a company like eTrust. A website will become more secure as a result, boosting customer confidence and increasing sales. For instance, the most reputable brand on the internet, VeriSign, provided an SSL Certificate to Scribendi, an English language editing and proofreading service; at that point, sales increased by 27% for website visitors who saw the green address bar. When businesses possess this certificate, their website's address bar turns green and starts with https://, alerting users to the website's security and reliability.

Carrying name-brand products on the website or even having its own brand name, like Amazon, is another thing sellers may do to allay customers' fears about risk while making purchases online. Having and offering to sell name-brand goods might raise the website's credibility. One of the most crucial factors influencing a customer's purchasing decision is brand name.

Online businesses must make it clear in their customer privacy policies that they will never utilise their customers' information for other purposes. At minimum, this will allay customers' worries over the protection of their identity. Online retailers may employ integrated mechanisms to increase consumer confidence in the security of their personal data and prevent credit card payment misuse.

**User-friendly Website:** When choosing which website or seller to buy from, customers may be swayed by the appearance of the website. Businesses should design their secure website to be more visually appealing and functional as well. Online retailers have the power to convert shoppers into buyers provided they offer a wide selection of products, helpful product information, excellent customer support, and an intuitive website. Their websites ought to contain just the right amount of information without becoming overbearing.

Reducing internet usefulness and ease of use can be achieved by including unstructured or worthless material on the website. Additionally, businesses and vendors ought to carefully review every word on their website to prevent errors and client misunderstandings. Repurchasing is significantly impacted by the quality of the information and the visual design. Online shoppers will be less likely to make purchases if the online business makes it difficult to find, compare prices, and stay up to date on products. Online retailers should design their websites so that customers may easily search for products and services. Creating unique, complex, and user-friendly web designs and portals is essential to drawing in visitors. Additionally, online retailers should make their websites faster and more functionally designed in order to turn visitors into buyers. This may be achieved by providing customers with an easy-to-use, logical, engaging, and hassle-free experience, as well as by using simple language. Another issue that needs to be addressed is the online payment process since it influences the willingness to pay (Wang et al., 2005). Online retailers should design their payment system to be as simple and safe as possible. as much as feasible. In conclusion, online retailers should focus on making their websites more user-friendly if they wish to see an increase in traffic.

**Online service:**

Customer service is just as crucial as website quality. 72 percent of online shoppers stated that customer service plays a significant role in their happiness with their online purchasing experiences, according to Hermes. Customers will believe that businesses are hiding something or are not willing to help them if customer service is not accessible or attainable. Online retailers ought to offer their clients extra value in the form of services and incorporate a customer feedback channel on their website.

The website should have interactive customer support so that users can get in touch with the seller at any time and from any location. Online retailers can employ a variety of tools to provide their online services, such as software downloads, e-form inquiries, order status tracking, customer comments, and feedback.

Extra option: Online retailers ought to provide their clients with a few more options, given that they are unable to physically touch or test things before making a purchase. One way to lessen clients' concerns, for example, is to offer a money-back guarantee. To lower the risk of a purchase, sellers may choose to provide a money-back guarantee policy that covers shipping costs as well. Additionally, online retailers may collaborate with other logistically-savvy businesses to enhance their distribution networks in order to prevent shipment delays and missing goods.

Online retailers can also leverage additional strategies to grow their business, such as providing a one-stop shopping experience or more flexible pricing and promotions. Online retailers could allow buyers finish their purchases by using a stored-value card or their bank account number. Additionally, it is suggested that online retailers might provide their customers with an electronic wallet that links their online bank account balance to the store's payment system. This might make it easier for vendors to close more deals with customers who wish to purchase goods or services online but lack a credit card or don't want to use one.

**References**


1. Amin, S., (2009),Why do so many people shop online? http://www.articlesbase.com/print/1335596,Articlebase.com
2. Anonymous, (2009),"How to shop online more safely," http://www.microsoft.com/ protect/fraud/finances/shopping_us.aspx, Microsoft.com.
3. Bigné -Alcañiz, E., Ruiz-Mafé, C., Aldás-Manzano, J. and Sanz-Blas, S, (2008), "Influence of online shopping information dependency and innovativeness on internet shopping adoption", Online Information Review, vol. 32, no. 5, pp. 648-667.
4. Bourlakis, M., Papagiannidis, S. and Fox, H, (2008), "E-consumer behaviour: Past, present and future trajectories of an evolving retail revolution", International Journal of E-Business Research, vol.4, no. 3, pp.64-67, 69, 71-76.
5. Broekhuizen, T. and Huizingh, E, (2009), "Online purchase determinants: Is their effect moderated by direct experience?" Management Research News, vol. 32, no. 5, pp. 440-457.
6. Butler, P. and Peppard, J, (1998), "Consumer purchasing on the internet: Processes and prospects",European Management Journal, vol. 16, no. 5, pp.600-610.
7. Chen, R. and He, F, (2003), "Examination of brand knowledge, perceived risk and consumers' intentionto adopt an online retailer", Total Quality Management & Business Excellence, vol. 14, no. 6, pp. 677.
8. Childers, T.L., Carr, C.L., Peck, J. and Carson, S., (2001), "Hedonic and utilitarian motivations for online retail shopping behavior," Journal of Retailing, vol. 77, no. 4, pp.511-535.
9. Comegys, C., Hannula, M. and Váisánen, J., (2009), "Effects of consumer trust and risk on online purchase decision-making: A comparison of Finnish and United States students", International Journal of Management, vol. 26, no. 2, pp. 295-308.
10. Constantinides, E., (2004), "Influencing the online consumer's behaviour: The web experiences",Internet Research, vol. 14, no. 2, pp.111-126.
11. Dickson, P.R., (2000). "Understanding the trade winds: The global evolution of production, consumption and the internet", Journal of Consumer Research, vol. 27, no. 1, pp. 115-122.
12. Federal Trade Commission, (2001), "Privacy Leadership Initiative," http://www.ftc.gov/bcp/workshops/glb/supporting/ harris%20results.pdf, FTC.gov.Federal Trade Commission,(2003), "Holiday shopping online?" http://www.ftc.gov/opa/ 2003/11/holidayshop.shtm, FTC.gov.
13. Goldsmith, R.E. and Flynn, L.R., (2005), "Bricks, clicks, and pix: apparel buyers' use of stores, internet, and catalogs compared", International Journal of Retail & Distribution Management, vol. 33,no. 4, pp.271-283.



Email:- sarabjitpanesar30@gmail.com

www.bohalshodhmanjusha.com Bohal Shodh Manjusha ISSN: 2395-7115
Impact Factor:8.642 January 2025 Page No. : 131-135
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

# చెలియలికట్ట - వివాహ వ్యవస్థ

**డా. కె. వి. శాంతకుమారి,తెలుగు అధ్యాపకులు,**
**ఎస్.ఆర్.ఆర్ & సి.వి.ఆర్. ప్రభుత్వ డిగ్రీ కళాశాల (స్వ)**
**విజయవాడ, ఎన్టీఆర్ జిల్లా, ఆంధ్రప్రదేశ్.**

సాహిత్యం సమాజాన్ని అనుసరించి తీరవలసిందే. ఇందుకు ఏ భాషా రచయితా మినహాయింపు కాదు. అయితే ఇందులో మారుతున్న సామాజిక విలువల్ని రికార్డు చేసే రచయితలు కొందరైతే, కొత్త సిద్ధాంతాలను ప్రతిపాదించే వారు మరి కొందరుంటారు. వీరే కాక మరోరకం రచయితలుంటారు. వీరు సమాజంలో నానాటికీ దిగజారుతున్న సామాజిక విలువలను చూసి, ఆందోళన చెంది, తన సమాజం యొక్క మూలతత్త్వాన్ని, విలువలనూ తెలియజేసి, తద్వారా తన సమాజం యొక్క గొప్పదనాన్ని నిలబెట్టుకొనే దీక్షా కంకణబద్ధు లైన రచయితలు. ఇటువంటి వారు అరుదుగా వుంటారు. అటువంటి అరుదైన కోవకు చెందిన వారే శ్రీ విశ్వనాథ సత్యనారాయణ గారు. వారి రచనలన్నింటిలోనూ ప్రత్యక్షంగా, పరోక్షంగా, అంతస్సూత్రంగా అంతటా ప్రవహించేది జాతి యొక్క సంస్కృతీ, సాంప్రదాయ వైభవాలే. ఈ విషయంలో రాజీ లేని రచన లాయ నవి. తోటి కవులు, విమర్శకులు ఎన్ని వ్యాఖ్యానాలు చేసినా వారి సాంప్రదాయ ప్రవాహాన్ని ఎవరూ ఆపలేక పోయారు. కనీసం దిశ కూడా మళ్ళించలేక పోయారు. వారి సాహితీ ప్రవాహం వివిధ సాహితీ ప్రక్రియల్లో అనేక పాయలుగా చీలింది అపతికి గమనం, గమ్యం మాత్రం సాంప్రదాయ పరిరక్షణే.

'చెలియలికట్ట' విషయానికొస్తే... దీనిలో వివాహ వ్యవస్థ, స్త్రీ పురుష సంబంధాలు, ప్రేమ...యీ మూడూ ప్రధాన అంశాలుగా కనిపిస్తాయి. వీటి పైన ప్రధాన పాత్రలైన రత్నావళి, రంగారావు ల మధ్య విస్తృతమైన చర్చ జరిగింది. రచయిత సమాజానికి బోధించదలచుకున్న సాంప్రదాయాన్నంతా యీ పాత్రల మధ్య చర్చల రూపంలో ప్రకటించారు.

" ప్రేమ ఎట్లు పుట్టును? దానియంతట నది కారణము లేకుండపుట్టునా? ...
కారణము లేకుండగనే పుట్టును "..... మనుష్యుల మీదనే పుట్టవ లయునా? **1**

కథా విషయానికొస్తే ప్రతిష్ఠానపురం అనే సముద్రపుటొడ్డున వుండే ఒక గ్రామం. సీతారామయ్య అనే సాంప్రదాయ బ్రాహ్మణుడు. తండ్రి తరంలోనే ఆస్థి అంతరించిపోగా, తండ్రి సంపాదించిన గౌరవానికి భంగం రాకుండా తంటాలు పడుతూ సంసారాన్ని ఈదుతున్న వాడు. పెద్ద వయసు తల్లి, భర్తను పోగొట్టుకున్న చెల్లెలు సరస్వతి,ఆమె

కొడుకు నీలాంబరుడు, తమ్ముడు రంగారావు. రంగారావు పూణేలో ఎల్.ఎల్.బి. చదు చదువుతున్నాడు. చదువు పూర్తయితే చేతికందివస్తాడనే ఆశతో సీతారామయ్య అప్పులు చేసి, చదివిస్తుంటాడు.

వీరు కాక సీతారామయ్య భార్య రత్నావళి. ఈమె ఇతనికి రెండవ భార్య. మొదటి భార్య చనిపోగా, యీమెను వివాహం చేసుకున్నాడు. ఈమె వయసు 15 సం.లు.. సీతారామయ్య వయసు 40 సం.రాలు.. మొదటి భార్యకు ఇద్దరు సంతానం. కుమార్తెకు వివాహం చేశాడు. కుమారుడు అమ్మమ్మ ఇంట పెరుగుతూ, కాలక్రమంలో అనారోగ్యంతో చనిపోతాడు. పట్నంలో చదువుతున్న రంగారావు అప్పడప్పుడూ సెలవులకు ఇంటికి వచ్చి నప్పుడు వదినగారిని చూసి, జాలిపడుతుంటాడు. అన్న వదినల మధ్య వయోభేదం ఎక్కువగా వుందనీ, అన్నయ్య పెద్ద అందగాడు కాడు, పెద్దగా చదువుకోలేదు, నాగరికత తెలియని అతన్ని పెళ్ళి చేసుకుని రత్నావళి అన్యాయమై పోయిందనీ ఆమెతో అంటూ వుంటాడు. అతడు నమ్మిన స్వేచ్ఛా ప్రణయి సిద్ధాంతాలను ఆమెకు బోధిస్తుంటాడు. ఇవన్నీ రత్నావళి మీద పనిచేసి, చివరి కామె మరిది పట్ల ఆకర్షితురాలవుతుంది. ఈ ఇద్దరి వ్యవహారమూ ఇంట్లోనూ, వూరిలోనూ తెలిసిపోతుంది. వీరందుకేమీ సంకోచపడరు. సీతారామయ్య ఇద్దరినీ వూరి నుండీ వెళ్ళగొట్టిగా, ఇద్దరూ మద్రాసు చేరుతారు అక్కడ కొన్ని ఆర్థిక, సామాజిక, ఆనారోగ్య సమస్యల నెదుర్కొంటారు . చివరకు సీతారామయ్య పంపిన డబ్బుతోనే మెల్లగా నిలదొక్కుకుంటారు. రత్నావళి సహజంగా తెలివైనదవడం వల్ల చదువులో బాగా ముందుకెళుతుంది. దానికి కావలసిన ఏర్పాట్లన్నీ రంగారావే చేస్తాడు. ఇలా కొంత జ్ఞానం, కొంతలోకానుభవం పొందిన తరువాత ఇద్దరూ తాము చేసింది తప్పని తెలుసుకుని, తిరిగి ప్రతిష్ఠాపురానికి చేరుతారు. ఊరంతా తుఫాను తాకిడి లో వుంటుంది. రత్నావళిని సీతారామయ్య, అతని మూడవ భార్య రాజ్యలక్ష్మి కూడా క్షమిస్తారు. సీతారామయ్య ఆమెను తిరిగి భార్యగా స్వీకరించడానికి కూడా సిద్ధపడతాడు. రాజ్యలక్ష్మి కూడా తన భార్య స్థానాన్ని సైతం త్యాగం చెయ్యడానికి సిద్ధపడుతుంది. అయితే రత్నావళితనకంతటి అర్హత లేదని, వారి బిడ్డతో తనకు ఆబ్దీకాలు మాత్రం పెట్టిస్తే చాలునని కోరుకుని, తాను సముద్రంలో కలసిపోతుంది. రంగారావు కూడా ఆమెనే అనసరిస్తాడు. ఈనవలలో స్థూలంగా కథ ఇది.

పూర్తి సాంప్రదాయవాది అయిన సత్యనారాయణ గారు యీ నవలలో ప్రవేశపెట్టిన అంశాలు పరిశీలిస్తే కొంత ఆశ్చర్యాన్ని కలిగిస్తాయి. దీనికి ఆనాటి సామాజిక పరిణామాలను కారణంగా చెప్పుకోవచ్చు. ఆంగ్ల విద్య, సాంకేతిక విద్య, సాంస్కృతిక పునరుజ్జీవనం, స్వాతంత్ర్య పోరాట వుద్యామాలు మొఅంశాలన్నీ సమాజాన్ని విపరీతమైన మార్పులకు గురిచేస్తున్న కాలం అది. ఆంగ్ల సాహిత్యంతో విద్యావంతులైన మధ్యతరగతి యువత ఆ ప్రభావంతో తెలుగులో రచనలు చెయ్యడం మొదలు పెట్టారు. వివిధ ప్రక్రియలు, సాంప్రదాయాలు, భావాలు తెలుగు సమాజంపై తీవ్ర ప్రభావం చూపుతున్న సందర్భం అది. స్వేచ్ఛా ప్రణయ సిద్ధాంతం ప్రధానంగా సాహిత్యాన్నేలుతున్న రోజులు. మరో వైపు తెలుగు సాహితీలోకాన్ని తన ప్రేమ, ప్రణయ సిద్ధాంతాల ఝుంఝూమారుతంలో వూపీస్తున్న చలం రచనలతో ప్రభావితమవుతున్న యువత మరోవైపు. ఇదంతా చూస్తూ ఆ సిద్ధాంతాలు మన సమాజానికి ఎంతవరకూ వుపకరిస్తాయన్న అంశాన్ని చర్చించే బాధ్యత సత్యన్నారాయణ గారు తన భుజానికెత్తుకున్నట్లుగాతోస్తుందీనవల చుడుతుంటే.

" కలసి షికారువచ్చుట, చెట్టుపట్టాల పట్టుకొనుట, ముద్దులు పెట్టుకొనుట, పరాచికములు లాడుకోనుట,… ఇవన్నియు స్త్రీలును, పురుషులును హేలగా, విలాసముగా నెవరైనను చేయవచ్చును. ఇవి స్త్రీలను ముసుగులో పెట్టి దాచుకుండ స్వేచ్ఛావిహారము గానుంచుటకు చేయవలసినపనులు " … **2**

ప్రపంచ దేశాల్లో భారతీయ వివాహ వ్యవస్థ వంటి పటిష్టమైన వివాహ, కుటుంబ వ్యవస్థలు యీనాటికీ ఏ దేశంలో లేవు. పాశ్చాత్య నాగరికతా ప్రభావంతో అవి బీటలువారడం మనం చూస్తూనే వున్నాం. అటువంటి వ్యవస్థలు చిన్నాభిన్న మైతే సమాజ పటిష్టత దెబ్బతింటుంది. కుటుంబ వ్యవస్థ పటిష్టంగా వుండాలంటే వివాహ వ్యవస్థ పటిష్టంగా వుండాలి. సామాజిక శాస్త్రవేత్తల ప్రకారం పాశ్యాత్య కుటుంబ వ్యవస్థ కేవలం 'పడకగది సాహచర్యానికి మాత్రమే పరిమితమైనది. కానీ భారతదేశంలో మాత్రం అది మరణానంతరం కూడా కొనసాగే వ్యవస్థగా ఈనాటికీ మనం చూడగలం.

ఈ నవలలో రచయిత చెప్పదలచుకున్నది కూడా అదే. ఒక్కో జాతికీ, సమాజానికీ ఒక్కో ధర్మం వుంటుంది. ఆధార్మాన్ని అది కోల్పోయి నట్లయితే ఆ జాతి చనిపోయినట్లు. ఒక్కో జాతికీ ఒక్కో నీతి, నైతిక ధర్మం వుంటాయి. అవి మరో జాతికి ధర్మం కాకపోవచ్చు . వారి ధర్మం మనకు ధర్మం కాకపోవచ్చు. ఎవరి ధర్మాన్ని, నీతిని, సాంప్రదాయాన్ని వారు పాటించ తీరని నాడు ఆ జాతి నశిస్తుంది.

ఈ నవలలో రంగారావు ప్రారంభంలో ఎలాంటి దురుద్దేశం లేకుండానే, తాను నిజమని నమ్మిన సిద్ధాంతానికి కట్టబడి, వదినగారిని సంసారమనే సుడి గుండంలోనుండీ రక్షించి, మరో తగిన వరుడికిచ్చి పెళ్ళి చేసి, ఆమె జీవితాన్ని బాగు చేయాలనుకుంటాడు. అది ఆ సిద్ధాంతం పట్ల అతనికున్న అవగాహనా రాహిత్యంగా కథా క్రమంలో రచయిత తన అభిప్రాయాన్ని తెలియజేస్తారు.

ఇక రత్నావళి-తనకున్న అందం పట్ల గానీ, తెలివితేటలు పట్లగాని ఏమీ అవగాహన లేని సామాన్యమైన స్త్రీ. కానీ కొత్త విషయాల పట్ల, జ్ఞానం పట్ల జిజ్ఞాసకలదీ, మార్పుని కాంక్షించేది అందుకే మొదట్లో తన భర్త కంటే రంగారావు అన్ని విధాలా అధికుడనుకుంది. ప్రేమించింది. కాలక్రమంలో తామిద్దరి మధ్య నున్నది వయసు ప్రభావంతో ఏర్పడిన శారీరక వాంఛ తప్ప, అది ప్రేమ కాదని తెలుసుకుంది. ప్రేమ కోసం సంసారాన్ని వదిలి వచ్చిన తాను ప్రేమ లేని మరిదిని పెళ్ళి చేసుకోవడంలో గానీ, అతనితో సంసారం చేయడంలో గానీ అర్థం లేదని వాదించింది. రంగారావు ద్వారా పరిచయమైన అతని స్నేహితులు, గురువు ముకుందరావు నేర్పిన జ్ఞానం దీనికుపకరించాయి. క్రమంగా తాము చేసింది తప్పని ఎప్పుడైతే గ్రహించిందో, తిరిగి ప్రతిష్ఠానపురం వైపు మనసు పరుగులు తీసింది. భార్మను కోల్పోయిన గురువు ముకుందరావు చేసిన ఆధ్యాత్మిక, వైరాగ్య బోధలు ఆమెను అపరకర్మల గురించి ఆలోచించేలా చేశాయి. తాను మరణిస్తే తనకు ఎవరు అపరకర్మలు చేస్తారని ఆలోచించింది. అందుకు బిడ్డల్ని కందామన్న రంగారావుని వద్దని వారించింది. ఈ సందర్భంలో రచయిత వర్ణసంకరం ప్రస్తావన తీసుకు వస్తారు. తమలాంటి వారికి పుట్టే సంతానం సంకర సంతాన మవుతుందనీ వారికి వివాహాలు జరగవనీ, మళ్ళీ వాళ్ళ సంతానం కూడా సంకరం కావలసివస్తుందనీ వాదిస్తుంది. చలం స్త్రీ పాత్రలు అలొచించని చర్చించని అంశం ఇది. చలం స్త్రీ పాత్రలో ఒక్క బ్రాహ్మణీకం నవలలోని సుందరమ్మ పాత్రకు తప్ప, మిగిలిన ఎదరకీ సంతానం వుండదు. బిడ్డ కారణంగానే ఆ

ఒక్క పాత్ర కూడా కట్టుబాట్ల నతిక్రమించవలసి వస్తుంది. అయితే విశ్వనాధవారి యీ విషయాన్ని కూలంకషంగా చర్చించారు. ఇక్కడ రంగడు రత్నావళి అనే స్త్రీ పురుషులిద్దరూ తల్లిదండ్రులుగా మారి ఆలోచించడం కనిపిస్తుంది. యీ సందర్భాన్ని తనవాదానికి బలం చేకూర్చు కోవడానికి ఉపయోగించుకున్నారు రచయిత.

రత్నావళి పాత్ర క్రమ పరిణామాన్నియీ నవలలో మనం చూడవచ్చు. కోరికల చాంచల్యంతో కొట్టు మిట్టాడి, లోకానుభవం గడించి, జ్ఞానసముపార్జన చేసి, తద్వారా రంగారావుకు ప్రేమ, కుటుంబ, వివాహ వ్యవస్థల ప్రాశస్త్యాన్ని విడమరచి చెప్ప గల స్థాయికి ఎదిగి, చివరికి భారతీయ సాంప్రదాయ భావాలకు లోనైన పాత్రగా మనం రత్నావళిని చూడవచ్చు.

" నా ఆబ్దీకాలు మీ పిల్లవాడు చేత పెట్టించండి.
మీరు ఒప్పుకుంటే మికాళ్లు వదిలి పెడతాను " **3**

ఒక సందర్భంలో రంగారావు పెళ్ళి చేసుకుందా మంటే, ఇప్పుడు కలిసే వుంటున్నాం కదా! ఇంకా పెళ్లి ఎందుకు? అంటూ రత్నావళి చేత ప్రశ్నింపజేయడంద్వారా యీ నాటి సమాజంలో ప్రాచుర్యంలోకి వస్తున్న ' సహజీవన సిద్ధాంతాన్ని కూడా ప్రస్తావింపజేశారు రచయిత.

మొత్తం మీద ఒక సమాజానికీ, ఒక జాతికి ఉద్దేశింపబడిన ధర్మం, నీతి ఏవైతే వున్నాయోవాటిని ఆయా జాతులు, సమాజాలు అనుసరించవలసిందే. అతిక్రమిస్తే ప్రళయం, వినాశనమే మిగులుతాయనే అంశాన్ని నవలా ప్రారంభంలోనే బైరాగి పాటలో సూచిస్తారు.

" మనసులో కలవరము వున్నది
కడలిలో కలవరము వున్నది
. మనసులోకపు హద్దులో విరుగున్
కడలి చెలియలి కట్టలో విరుగున్ …
… మనసు లోకపు కట్ట తెగితే
కడలి చెలియలి కట్ట తెగితే
మనను చచ్చిన ప్రేత కళలీనున్
కడలి భైరవు కాలి మువ్వల గున్ " **4**

అంటూ తను నమ్మిన సాంప్రదాయ సిద్ధాంతాన్ని ఎక్కడా అతిక్రమించకుండా చెలియలికట్టలో తన రచనా ప్రయాణాన్ని ఆసాంతం కొనసాగించిన కవి సామ్రాట్ శ్రీ విశ్వనాథ.

సముద్రానికి చెలియలికట్ట వున్నట్టే మనసుకు లోకమనే చెలియలికట్ట వుండాలి అంటారు. సమద్రమైనా, మనిషి యొక్క మనసైనా ఆ చెలియలికట్ట హద్దును దాటినట్లయితే వినాశనమే మిగులుతుందని లోకాన్ని హెచ్చరించారు కవి సామ్రాట్ శ్రీ విశ్వనాథ సత్యనారాయణ తన చెలియలికట్ట నవల ద్వారా !

**పాదసూచికలు:**

1. చెలియలికట్ట-విశ్వనాథ సత్యనారాయణ, పుట-89, ప్రచురణ-2013, శ్రీ.విశ్వనాథ పబ్లికేషన్స్ విజయవాడ 2013

2. చెలియలికట్ట-విశ్వనాథ సత్యనారాయణ,పుట-59, ప్రచురణ-2013, శ్రీ.విశ్వనాథ పబ్లికేషన్స్ విజయవాడ 2013
3. చెలియలికట్ట-విశ్వనాథ సత్యనారాయణ,పుట-199, ప్రచురణ-2013, శ్రీ.విశ్వనాథ పబ్లికేషన్స్ విజయవాడ 2013
4. చెలియలికట్ట-విశ్వనాథ సత్యనారాయణ,పుట-3, ప్రచురణ-2013, శ్రీ.విశ్వనాథ పబ్లికేషన్స్ విజయవాడ 2013

www.bohalshodhmanjusha.com Bohal Shodh Manjusha ISSN: 2395-7115
Impact Factor:8.642 January 2025 Page No. : 136-140
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

# मधु कांकरिया कृत उपन्यास 'सेज पर संस्कृत' में चित्रित नारी अस्मिता का संघर्ष

**मोनिका, शोधार्थी,** हिंदी विभाग,
हिमाचल प्रदेश विश्वविद्यालय,शिमला

**सारांश :--** सृष्टि के आरम्भ से ही सृष्टि के निर्माण एवं सञ्चालन में अत्यंत महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाने वाली स्त्री को सृष्टि का आधार स्वीकार कियागया है | दया, ममता, परोपकार एवं प्रेम जैसे उच्च मानवीय गुणों से संपन्न स्त्री ईश्वर की सुन्दरतम रचना है जो पुरुष की सहचारिणी तथा सहभागी बन कर उसके संघर्ष एवं प्रेरणा का स्रोत रही है | भारतीय संस्कृति में भी स्त्री को देवी मान कर उसे वन्दनीय माना गया है | किन्तु विडंबना यह है कि परिवार की धुरी, जगत् की जन्मदात्री तथा सम्पूर्ण विश्व की सृष्टा समझी जाने वाली स्त्री आज अपने ही अस्तित्व के लिए संघर्षरत है | नारी अस्मिता का संघर्ष एक दीर्घकालीन एवं जटिल प्रक्रिया है जो समय के साथ बदलती रही है | सदियों से हाशिये पर स्थित समाज में अपनी अस्मिता को तलाशती एवं उसके लिए संघर्षरत स्त्री वर्तमान समय में केंद्र में स्थापित हो गयी है | हिंदी साहित्य भी स्त्री अस्मिता के इस संघर्ष से अनभिज्ञ नहीं रहा है आधुनिक युग में यद्यपि स्त्री एवं पुरुष लेखकों ने न केवल स्त्री अस्मिता के संघर्ष को केंद्र में रख कर अपने उपन्यास की कथा वस्तु का निर्माण किया अपितु अपने उपन्यासों के माध्यम से उन सभी चुनौतियों एवं समस्याओं का चित्रण भी किया जिनका सामना पितृ- सत्तात्मक समाज में स्त्रियों को करना पड़ता है | वर्तमान समय की सशक्त लेखिका मधु कांकरिया ने अपने उपन्यास 'सेज पर संस्कृत' में धार्मिक आडम्बरों, अंधविश्वासों एवं कुप्रथाओं के चक्रव्यूह में फंसी हुई स्त्री काअपने अस्तित्व के लिए किये गये संघर्ष का, जो वीभत्स रूप उजागर किया है वह स्वयं को आधुनिक कहने वाले पितृसत्तात्मक समाज पर प्रश्न चिन्ह लगाता है | प्रस्तुत शोध पत्र में मैंने पुरुषवर्चस्व-वादी समाज में स्त्री को मात्र भोग की वस्तु मानने वाली पुरुष मानसिकता को,स्त्री की टूटन को तथा उसकी अस्मिता के प्रश्न को 'सेज पर संस्कृत' उपन्यास के माध्यम निश्चित रूप से संवेदना के धरातल पर उद्घाटित किया है

**मूल शब्द:--** अस्मिता, संघर्ष, धार्मिक शोषण, आत्मसम्मान, मानसिकता,आत्मसंघर्ष एवं पुरुषवर्चस्ववादिता

जीवन की सृजनात्मक शक्ति का प्रतीक 'स्त्री' जीवन के सभी पहलुओं में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाती है | स्त्री का अर्थ केवल शारीरिक अस्तित्व नहीं है, बल्कि वह भावनात्मक,बौद्धिक एवं सामाजिक दृष्टिकोण से भी अनुपेक्षणीय है | सहानुभूति,करुणा,स्नेह,प्रेम,धैर्य एवं सहनशीलता जैसे गुणों के माध्यम से स्त्री न केवल अपने जीवन को आकार देती है अपितु समाज एवं संस्कृति के विकास में भी योगदान देती है | स्त्री के मानवीय गुण,उसकेअधिकार एवं उसकी अस्मिता यद्यपि समाज में उसे मनुष्य के रूप में स्थापित करते हैं किन्तु दुर्भाग्यपूर्ण है कि स्त्री को पुरुष की अर्द्धांगिनी एवं जनसँख्या के आधे भाग की संज्ञा देने वाला पितृसत्तामक समाज स्त्री को मनुष्य तक के रूप में स्वीकार नहीं करता | प्राचीन युग से लेकर वर्तमान में विज्ञान एवं शिक्षा के प्रसार वाले अत्याधुनिक युग तकस्त्री अपनी स्वतन्त्रता एवं अस्मिता की खोज के लिए निरन्तर संघर्षशील है | 'अस्मिता' जिसके लिए स्त्री प्राचीन समय से संघर्षरत है वास्तव में उस अस्मिता का अर्थ क्या है ? अस्मिता स्वयं की पहचान, समाज में आर्थिक एवं सामाजिक अधिकारों की प्राप्ति तथा समाज में अपनी उपयोगिता को समझना एवं जानना ही अस्मिता है | डॉ० नीरु खींचा स्त्री अस्मिता के विषय में लिखती हैं " आत्मचेतना एवं आत्मसजगता का परिणाम है अस्तित्वबोध | समाज की एक इकाई के रूप में अपने होने के एहसास से ही अस्तित्व की पहचान होती है | किन्तु स्त्री अस्मिता का प्रश्न अपने होने,अपनी शक्ति तथा अपनी क्षमता की पहचान करने के मात्र से नहीं जुड़ा है–स्त्री को तो अपने व्यक्तित्व निर्माण की प्रक्रिया में एक लम्बी एवम् पुरानी स्थापित व्यवस्था को तोड़कर उससे हर पल जूझना है |"[1] नारी अस्मिता का संघर्ष उतना ही प्राचीन है जितना प्राचीन पुरुषवर्चस्ववादी समाज में उसके उत्पीड़न एवं दासता का अतीत है | स्त्री अस्मिता संघर्ष के विषय में आशा रानी वोहरा लिखती हैं " हमारे यहाँ स्त्री स्वतंत्रता का अर्थ पश्चिम के अर्थ में पुरुष की सत्ता से स्वतंत्रता कभी नहीं रहा,बल्कि यह अशिक्षा, अज्ञानता एवं आर्थिक अभावों के विरुद्ध है |"[2]किन्तु यह भी शाश्वत सत्य है कि वर्तमान स्त्री का यह अनुभवजन्य आक्रोश न तो किसी भौतिकवादी युग का परिणाम है एवं न ही किसी असहजता की क्षणिक प्रतिक्रिया ,वास्तविकता में पुरुषवर्चस्वादी समाज में परम्परा एवं रूढ़ियों के नाम पर मर्यादाओं की बेड़ियों में जकड़ी हुई स्त्री का अपनी स्वतंत्रता एवं समानता के लिए किया गया संघर्ष ही स्त्री अस्मिता का संघर्ष है | हिंदी साहित्य में अनेक ऐसी लेखिका रही हैं जिन्होंने स्त्री अस्मिता के संघर्ष को अपनी साहित्य विधा का विषय बना कर साहित्य सृजन किया जिनमें चित्रा मुद्गल, प्रभा खेतान, मन्नू भंडारी, कृष्णा सोबती, मधु कांकरिया, मालती जोशी तथा ममता कालिया जैसी अनेक लेखिकाओं के नाम उल्लेखनीय हैं | इन लेखिकाओं ने अपने उपन्यासों में नारी को केन्द्रित कर नारी जीवन के प्रत्येक पहलू को दुनिया के सामने लाकर उपन्यास सृजन में अपना मौलिक योगदान दिया | महिला उपन्यासकारों में अपने अद्वितीय व्यक्तित्व एवं यथार्थवादी उपन्यासों के

माध्यम से विख्यात 'मधु कांकरिया' ने नारी जीवन को प्रभावित करने वाले हर क्षेत्र को अपनी लेखनी का विषय बना कर अपनी बहुआयामी प्रतिभा प्रस्तुत की | लेखिका ने अपने उपन्यास 'सेज पर संस्कृत' में समाज एवं व्यवस्था से मिले कटु तथा तिक्त अनुभवों के कारण सहनशील,धैर्यवान एवं जुझारू से अंततः आक्रामक एवं विद्रोही हो चुकी स्त्री की आंतरिक वेदनाओं और पीड़ा का अत्यंत मार्मिक चित्रण किया है | पितृसत्तात्मक समाज में पुरुषविहीन गृहस्थी में एक स्त्री अपने एवं अपने परिवार के भविष्य के प्रति इस प्रकार भीरु एवं अधीर हो जाती है कि उसके ह्रदय का असुरक्षाबोध उसके परिवार के अस्तित्व को नष्ट कर के ही दम लेता है | एक पराजित एवं हताश मानसिकता से ग्रसितमाँ जैनधर्म की दीक्षा को अपने एवं अपनी बेटियों के सुरक्षित भविष्य के कवच के रूप में चुनने का निर्णय लेती है |शादी के विषय मेंवह कहती है, "कितनी वाहियात चीज़ है यह शादी | मैं नहीं चाहती कि तुम इसमें फंसो, मेरी ही तरह विधवा हो और तिल-तिलकर अपने बच्चों को मरते हुए देखो| संसार में रहने का मतलब ही है दुखों के दलदल में रहना |"[3]वास्तव में माँ पूर्णिमा देवी का यह असुरक्षाबोध, सांसारिकजीवन से पलायन,पुरुषवर्चस्ववादी समाज में सदियों से मिली हुई दासता एवं दमन का परिणाम है | लेखिका अपने उपन्यास में स्वयं इन प्रश्नों का उत्तर ढूंढते हुए नज़र आती है कि स्त्री को सृष्टि की सृजन शक्ति मान कर पूजने वाले संसार को पितृ सत्तात्मक संसार आखिर बनाया किसने  है ? निश्चित तौर पर वर्चस्वशाली पुरुषों ने समस्त अधिकारों पर अपनी एकमात्र सत्ता स्थापित कर इस संसार को पितृ सत्तात्मक समाज घोषित किया | उपन्यास में माँ पूर्णिमा देवी पितृसत्तात्मक समाज पर व्यंग करते हुए कहती हैं कि" घर की बिगड़ती हालत ओर बिना मर्द के अपना घर | यह आदमियों की दुनिया है, जो रोटी तो देगी पर बोटी नोच लेगी | फटी चदरी-सा यह घर अब न तुम्हारे संभले संभलेगा ओर न मेरे |"[4]लेखिका यहाँ यह स्पष्ट करते हुए कहती हैं कि कोई भी घर पुरुष के बिना नहीं चल सकता तथा समाज में स्त्री का अस्तित्व पुरुष के बिना नगण्य है | अपने सामाजिक उत्तरदायित्वों से घबराकर एवं समाज की दमनकारी रूढ़ियों से हताश हुई पूर्णिमा देवी में उसकी बड़ी बेटी एवं उपन्यास की नायिका संघमित्रा साहस एवं जोश भरने की कोशिश करती है किन्तु निराशा का अन्धकार इतना घना है कि माँ के लिए धर्मको छोड़ संसार में लौटना असंभव है | लेखिका ने पूर्णिमा देवी के माध्यम से इस कटु यथार्थ का चित्रण किया है कि पारम्परिक बंधनों एवं प्राचीन मानसिकता की शिकार भारतीय नारी अपने शोषण की मुक्ति धर्म में देखती है | इसे स्त्री का दुर्भाग्य कहा जाना चाहिए कि जिस धर्म में वह अपनी मुक्ति देखती है वही धर्म न केवल उसका शोषण करता है अपितु धार्मिक स्थलों में उसके प्रवेश, धर्म के क्षेत्र में उसके नेतृत्व एवं धार्मिक अनुष्ठानों में उसकी सहभागिता पर प्रतिबंध लगाते हुए उसके अस्तित्व को सिरे से ही नकार देता है | मधु जी का यह उपन्यास एक तरफ धर्म के क्षेत्र में स्त्रियों के शोषण को दिखाता है वहीं दूसरी तरफ वर्तमान में मानवीय संवेदना से रहित धर्म के वास्तविक स्वरूप को भी चित्रित करता ै | उपन्यास में संघमित्रा अपनी सहेली मालविका के साथ मिलकर अपनी छोटी बहन छुटकी की

दीक्षा को रोकना चाहती है इसलिए वह जैन मठाधीश से कहती है "गुरुदेव, जैसे एक वीणा वादक का सत्य उसकी वीणा में, नृत्यांगना का सत्य उनके घुंघरुओं में, कुम्हार का चाक में, पक्षी का उड़ान में, वैज्ञानिक का प्रयोगशाला में... क्योंकि यहीं वे अपनी आत्मा का सर्वश्रेष्ठ उड़ेलकर... अपना सर्वश्रेष्ठ मानवता को देकर मुक्त हो सकते हैं वैसे ही एक ग्यारह वर्षीय बालिका का सत्य तो उसके खिलौने और उसकी पुस्तक ही हो सकता है | उसके सत्य पर किसी और सत्य का आरोपण करना क्या उसके साथ बलात्कार नहीं होगा ? गुरुदेव! आपसे अपेक्षा है.... कि आप छुटकी मेरा मतलब है कि राशी विनायिका की बाल दीक्षा की अनुमति वापिस ले लें क्योंकि ये उनके हित के विरुद्ध होगा |"[5] किन्तुपितृसत्तात्मक एवं सामन्तीवाद का पक्षधर धर्म स्त्री को सदैव अपनी ही मर्यादाओं में जकड़े रखने तथा उसके व्यक्तिगत सरोकारों को नकारने का पक्षधर रहा है | इसलिए गुरुदेव छुटकी की दीक्षा को रोकने के लिए संघमित्रा द्वारा किये गये संघर्ष को विफल करना चाहते हैं | यद्यपि छुटकी ओर संघमित्रा का स्त्री अस्मिता को बचाए रखने का संघर्ष जीवन के अंत तक चलता रहता है | लेखिका ने धर्म के द्वारा स्त्री शोषण के विभिन्न स्तरों को इस उपन्यास में चित्रित किया है | जैन धर्म में दीक्षित होने के पश्चात् साध्वी दिव्यप्रभा बनी छुटकी को मठों की कुंठित मानसिकता के कारण वेश्यालय जाना पड़ता है | ये स्त्री शोषण की पराकाष्ठ है कि स्त्री अपनी अस्मिता की रक्षा के लिए जिस धर्म की शरण में जाती है उसी धर्म के ठेकेदार उसे अपनी हवस का शिकार बना कर न केवल उसे धर्म से निष्कासित करते हैं अपितु वेश्या का कलंकित जीवन जीने के लिए विवश भी करते हैं | लेखिका ने अपने उपन्यास में इस कटु सत्य को सभी के समक्ष उजागर किया है कि स्त्री को अपनी अस्मिता को बचाए रखने के लिए जीवन के प्रत्येक पग पर जिस संघर्ष का सामना करना पड़ता है उस संघर्ष की जड़ में पुरुष सत्तात्मक समाज के द्वारा बनाई हुई कुप्रथाओं तथा परम्पराओं का वो जटिल चक्रव्यूह है जिससे भारतीय स्त्री कभी निकल ही नहीं पाई | मार्क्सवाद के जनक कार्ल मार्क्सएवं एंगेल्स के मतानुसार "स्त्री दमन का मुख्य कारण स्त्री का अभिजात वर्ग के निजी क्षेत्र के भीतर ही उत्पादन तथा पुनरुत्पादन में सीमित होकर रह जाना है | स्त्री को तभी मुक्ति मिल सकती है जब वह उत्पादन के विकसित औद्योगिक क्षेत्रों में अपनी पहचान बनाए |"[6] किन्तु विडम्बना यह है कि स्वयं को आत्मनिर्भर बनाने के लिए जब स्त्रियाँ कार्यक्षेत्रों में जाती है तो वहां उन्हें यौन शोषण का शिकार होना पड़ता है | वास्तविकता में स्वभाव से कोमल सभी स्त्रियाँ यौन शोषण को सह नहीं पाती और स्वयं को कार्यक्षेत्र से बाहर कर लेती हैं | स्त्रियों का कार्यक्षेत्र से बाहर होने का अर्थ है आर्थिक रूप से स्त्री की पुरुष पर निर्भरता | यद्यपि उपन्यास की नायिका संघमित्रा जीवन से पलायन में नहीं अपितु जीवन की चुनौतियों से संघर्ष का समर्थन करती है इसीलिए अपने ऑफिस में यौन हिंसा की शिकार होने के पश्चात् वह अपने स्वाभिमान की लड़ाई लड़ती है तथा अपने मैनेजर मिस्टर मेहता की शिकायत कम्पनी के एम० डी० से करती है | किन्तु स्त्री को मात्र भोग की वस्तु मानने वाला पुरुष स्त्री की गरिमा को, उसके आत्मसम्मान को समझने में निष्फल रहता है | स्त्री के साथ हुए

अभद्र व्यवहार को सामान्य-सी बात  समझने वाली पुरुष की कुत्सित मानसिकता के विषय में संघमित्रा कहती है " ये इनका चारित्रिक पतन नहीं हल्का-फुल्का दिल बहलाव है और हमें इसका आदी हो जाना चाहिए | इसीलिए जिस अपमान ने मुझे अंदर तक हिला डाला, आपको एक हिचकी तक नहीं आई |"[7]मधु जी ने प्रस्तुत उपन्यास में स्त्री की उस दारुणिक कथा का चित्रण किया है जहाँ वह प्रत्येक पग पर संघर्ष करती नज़र आती है कभी अपनी अस्मिता के लिए, कभी अपने स्वाभिमान के लिए और कभी उस सम्मान के लिए जिसकी वह अधिकारिणी है | कभी न समाप्त होने वाला स्त्रियों का ये संघर्ष कभी परम्पराओं से है तो कभी अत्याधुनिक शैली से | यदि वे परम्पराओं का निर्वाह करती हैं तो घर पर तिरस्कृत होते हुए घरेलू हिंसा की शिकार होती हैं और यदि वे अत्याधुनिक शैली को अपनाकर आत्मनिर्भर होना चाहती हैं तो उन्हें कार्यस्थल पर अभद्र व्यवहार का शिकार होना पड़ता है | प्रसिद्ध फ़्रांसीसी लेखिका सिमोन के शब्दों में "स्त्री पैदा नहीं होती बनाई जाती है | स्त्री को बचपन से ही मानसिक तौर पर उसके स्त्री होने का एहसास दिलाया जाता है | कोई भी जैविक मनोवैज्ञानिक या आर्थिक नियति आधुनिक स्त्री के भाग्य की अकेली नियंता नहीं होती |"[8] लेखिका मधु कांकरिया का उपन्यास सेज पर संस्कृत वास्तव में स्त्री अस्मिता के संघर्ष को पूर्ण दृढ़ता, सुव्यवस्थित, सम्मानित एवं पूर्ण गरिमा के साथ प्रस्तुत करता है |

**निष्कर्ष :--**निष्कर्ष रूप में हम कह सकते हैं कि मधु कांकरिया ने प्रस्तुत उपन्यास में स्त्री के दमन,शोषण से लेकर उसके अस्मिता के संघर्ष की कथा को चित्रित किया है। मधु जी ने स्त्री जीवन से सम्बंधित विविध आयाम ,स्त्री जीवन के संघर्ष एवं पितृ सत्तात्मक समाज में स्त्री जीवन की चुनौतियों का यथार्थ चित्रण किया है | मधु जी के उपन्यास की मुख्य नायिका संघमित्रा ने अपनी अस्मिता को तलाशने के लिए जो सजग भूमिका निभाई है वह उसकी सजग बौद्धिकता का परिचायक है |  उनका उपन्यास आत्मविश्वास एवं नारी अस्मिता को जागृत करता है |

**संदर्भ सूची**


1. डॉ० नीरु खींचा, भारतीय समाज में नारी, प्रज्ञा शर्मा ( सं०) पृ० सं० 62
2. डॉ० आशा रानी वोहरा, भारतीयनारीदशा ओर दिशा, पृ० सं० 10
3. मधु कांकरिया, सेज पर संस्कृत,पृ० सं० 46
4. वही,पृ० सं०59
5. वही,पृ० सं०117
6. प्रभा खेतान, बाज़ार के बीच, बाज़ार के खिलाफ,पृ० सं० 63
7. मधु कांकरिया, सेज पर संस्कृत,पृ० सं० 159
8. सिमोन दबोउवार, अनुवादक प्रभा खेतान,( स्त्रीउपेक्षिता), पृ० सं० 121



**दूरभाष: 7018503963  Email : hindimonika07@gmail.com**

www.bohalshodhmanjusha.com Bohal Shodh Manjusha ISSN: 2395-7115
Impact Factor:8.642 January 2025 Page No. : 141-143
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

# आचार्य सोमानन्द द्वारा विरचित शिवदृष्टि में योगतत्त्व की अवधारणा

**टीना कुमारी,** शोधच्छात्रा,
जम्मू विश्वविद्यालय (जम्मू)

**जीवन परिचय–** काश्मीर शैव दर्शन में आचार्य सोमानन्द का महत्त्वपूर्ण स्थान है। आचार्य सोमानन्द ने शिवदृष्टि में अपने सम्बन्ध में महत्त्वपूर्ण परिचय दिया है, जिसके अनुसार वह सिद्ध संगमादित्य के वंशज थे। इनके पिता का नाम आनन्दाचार्य था, जो इनके गुरु भी थे। सोमानन्द को "सौम्य आनन्द" अथवा सौम्य प्रकृतिशील स्वभाव वाला, सुन्दर रूपवान आनन्द कहा जाता है। इसकी पुष्टि शिवदृष्टि के सप्तम आह्निक के श्लोक संख्या 120 में होती है।[1]

सोमानन्द की महानता का पता इससे चलता है कि उन्होंने साक्षात् शिव को आदि गुरु माना है। इनके शिष्य उत्पलदेव भी इनसे शिक्षा–दीक्षा ग्रहन कर गुरु रूप में प्रसिद्ध हुए और उनके पश्चात् भी उनके शिष्य, प्रशिष्य आचार्य पदवी से सुशोभित होते रहे।[2] सोमानन्द के अनुसार उनको "शिवमय विश्व" का ज्ञान शिव की कृपा से स्वप्न में हुआ था, जिसे उन्होंने शिवदृष्टि आदि के रूप में विकसित किया है। जिसमें बताया गया है कि प्रत्येक वस्तु शिवमय है।[3]

**स्थिति काल–** इतिहास में बहुत से प्रसिद्ध ऋषि मुनियों एवं महाकवियों ने अपनी गम्भीर अर्न्तदृष्टि के बल पर बहुत से ग्रन्थों की रचना की, परन्तु कहीं पर भी अपने जीवन परिचय एवं स्थिति काल के बारे में बताना उचित नहीं समझा, जिसके कारण परवर्ती इतिहासकारों को उनके स्थितिकाल को समझने में कठिनाई होती है, परन्तु फिर भी कुछ विद्वानों के अनुसार इनका स्थितिकाल 825–925 ई॰ माना गया है।

**कृतियाँ–** इनके सबसे महत्त्वपूर्ण त्र्यम्बकदर्शन, अद्वैत शैवदर्शन, पराद्वैतदर्शन, प्रत्यभिज्ञादर्शन आदि ग्रन्थ तथा अमूल्य कृति "शिवदृष्टि" है। आचार्य सोमानन्द की शिवदृष्टि ही काश्मीर शैवदर्शन की सर्वप्रथम दार्शनिक ग्रन्थ है। यह एक प्रकरण ग्रन्थ है जो सात आह्निकों में विभक्त है। इसके अतिरिक्त परात्रिंशिका विवृत्ति, शाक्त विज्ञानम् भी इनकी कृत्तियां हैं। बहुत सम्भव है कि सोमानन्द ने और भी उत्तम रचनाओं का निर्माण किया हो, परन्तु उनके सम्बन्ध में कोई पता नहीं चलता है। वर्तमान समय में केवल उनकी सर्वोत्तम और प्रमाणिक कृत्ति "शिवदृष्टि" पर ही निर्भर रहना पड़ता है।

**शिवदृष्टि में योगतत्त्व–** सिद्ध सोमानन्द की शिवदृष्टि अध्यात्म एवं लौकिक दृष्टियों से एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण तथ्य को सत्यापित करती है। जीव का कल्याण योग के अनुसरण से सहजरूप में हो सकता है। वह अपने सीमित रूप अथवा निजी व्यक्तित्त्व से असीमित (वैभव) सत्ता की अनुभूति इसके माध्यम से अनायास कर सकता है। परन्तु इस योग को समझने के लिए इसके आवश्यक तत्त्वों को जानना अति आवश्यक है, जो क्रमशः इस प्रकार हैं–

**परमशिव–** काश्मीर शैवदर्शन के अनुसार परमेश्वर या परमशिव ही एकमात्र परमसत्य है। वह शुद्धप्रकाशस्वरूप है। वह प्रकाश सूर्य या मणि के प्रकाश जैसा जड़ नहीं, अपितु चैतन्यस्वरूप है। इस परमेश्वर के दो स्वरूप हैं– विश्वोत्तीणे और विश्वमय। परमेश्वर एक ही साथ अपने दोनों स्वरूपों में शाश्वत एवं सतत् रूप में विराजमान् हैं। सभी पदार्थों में आत्मस्वरूप शिव का ही व्यवहार होना चाहिए, क्योंकि वे निर्वृतचित्स्वरूप हैं। वे ही सर्वत्र इच्छा, ज्ञान और क्रिया रूप में भासमान हैं।[4] शिवदृष्टि के अनुसार इच्छा शक्ति के विकास के उपरान्त ज्ञानशक्ति एवं ज्ञान शक्ति के बाद क्रिया–शक्ति का ज्ञान हाता है और इस

क्रियाशक्ति के प्राकट्य के परिणामस्वरूप सारा संसार स्थूलरूप में स्थित होता है, जिससे जगत् का निर्माण होता,[5] और इस स्थूलरूप से प्रत्येक प्राणी में रहने वाला शिवतत्त्व ही आत्मा है। यह चैतन्य स्वरूप है। परासंवित्, परमशिव, परमेश्वर इत्यादि इसी के अनेक नाम हैं। सूक्ष्म दृष्टि से जड़चेतन सब कुछ यही है। इच्छाज्ञान क्रियात्मक, यह शिव पूर्णानन्दस्वरूप है। विमर्शशक्ति इसका स्वभाव है। इस शक्ति के पाँच स्वरूप महत्त्वपूर्ण कहे गए हैं, चित्, आनन्द, इच्छा, ज्ञान और क्रिया। इसके बिना शिव और शिव के बिना यह शक्ति नहीं रह सकती। दोनों का अभेद होने पर ही परमशिव पूर्ण है। इस शक्ति में जब उन्मेष होता है, तब सृष्टि होती है और निमेष होने पर प्रलय होता है।

**जीव–** काश्मीर शैवदर्शन के मतानुसार जब परिशुद्ध चैतन्य पर सूक्ष्म एवं स्थूल तथा प†चकोश से परिवेष्टित हो जाता है, तब उसे जीव कहा जाता है। यद्यपि इसका परमार्थ स्वभाव पूर्ण स्वातन्त्र्य है, तथापि माया शक्ति के कारण यह स्वयं को आणव, मायीय एवं कार्यमलों के पाशों में बंधा हुआ समझने लगता है।[6] परमेश्वर के स्वातन्त्र्य से समुद्भूत ये मलत्रय वस्तुतः एक दूसरे में कार्यकारणभाव से सम्बद्ध हैं। जीव इन तीनों मलों से युक्त होने पर भी संसार बीज कार्ममल के प्राधान्य वाले होते हैं तथा "सकल" प्रमाता कहलाते हैं।[7]

**जगत्–** प्रत्यभिज्ञाशास्त्र के अनुसार जगत् का मूल चिदात्मा अर्थात् सच्चिदानन्द पूर्णाहन्तारूप स्वात्मारूप, अद्वितीय और परिपूर्ण स्वातन्त्र्यरूप परमशिव ही है।

शिवदृष्टि के अनुसार यह जगत् जड़ चेतनमय है। शिव जो कि इस जगत् का कारण है। योगीजन के समान जब जैसी आवश्यकता होती है, तब वैसा ही स्थूल या सूक्ष्म हो जाता है।[8] जिस प्रकार योगी, उसी प्रकार परमशिव भी इच्छामात्र से समस्त भाव जगत् एवं अनेक पशुरूप जीव के रूप में उल्लासित होता है। यह भाव विकारमय जगत् उसका दुग्धदधिवत् विकार नहीं है। क्योंकि यह उसकी इच्छामात्र है, जिसके द्वारा इष्टकार्य रूप जगत् प्रकट होता है।[9]

**बन्ध और मोक्ष–** काश्मीर शैव दर्शन के अनुसार बन्धन का कारण अज्ञान है।[10] अज्ञान का तात्पर्य यहां ज्ञान के अभाव से न होकर उस परिमित ज्ञान से है, जो सांसारिक जीवों में होता है। सांसारिक जीवों के ऐसे ही परिमित विषय–ज्ञान को शिवसूत्रों में बन्धन रूप कहा गया है।[11]

शिवदृष्टि के अनुसार ज्ञाता, ज्ञान और ज्ञेय की पृथक् प्रतीति ही भेद है और जब भेद–ज्ञान हो, तो यही अज्ञान है। शिवदृष्टि के अनुसार बन्ध और मोक्ष केवल प्रतीतिमात्र है।[12] अर्थात् शिव से भिन्नता की प्रतीति बन्ध है और अभिन्नता की प्रतीति मोक्ष है।

**मोक्ष के उपाय–** शिवदृष्टि में बन्ध एवं मोक्ष के उपरान्त मोक्ष के उपायों का वर्णन मिलता है जिसके अनुसार प्रमाता के स्वभाव–प्रकाश (शिवत्व) के अनुभव में बाधक बने हुए अपूर्णमन्यतारूप जो मत हैं उन्हें हटा देना ही उपायों का कार्य है और मलों के हट जाने पर प्राणी का स्वाभाविक शिवभाव मेघावरणरहित सूर्य की भान्ति स्वथमेव उसके परामर्श में चमकने लगता है। अतः उपासनाक्रम में मलों के प्रक्षालन के उपाय ही व्यवहार में मोक्ष के उपाय योग अथवा समावेश कहे जाते हैं। शिवदृष्टि में यह चार योग उपाय बताये गए हैं– अनुपाय योग, शाम्भव योग, शाक्त योग, आणव योग।

**अनुपाय योग–** प्रत्यभिज्ञादर्शन में साधकों के लिए अनुपाय का निर्देश है। इससे तात्पर्य है– सहजोपाय। इसे हम पारमार्थिक अर्न्तदृष्टि भी कह सकते हैं। यह सर्वथा अनुग्रह पर आश्रित है। बिना किसी जप–तप आदि कठोर अभ्यास के सहज ही स्वरूप ज्ञान कराने का सबसे सरल उपाय अनुपाय ही है। इसमें सिद्ध गुरु के कथनमात्र से निर्मल चित्र साधक "मैं शुद्ध संवित् हूँ" ऐसा परिपूर्ण शिवभाव का साक्षात्कार तत्क्षण ही कर लेता है, जैसे एक दीपक की ज्योति दूसरे में स्पर्शमात्र से संक्रान्त हो जाती है; इस तरह वह सिद्ध बन जाता है और समस्त विश्व को अपने से अभिन्न मानने लग जाता है।[13]

**शाम्भव योग–** उसमें चित्त को सर्वथा सभी मानसिक व्यापारों से शान्त कर, उसकी स्थिरता का अभ्यास किया जाता है।[14] यह प्रौढ़ एवं उन्नत साधकों के लिए है, जो शिवतत्त्व का निदिध्यासन करने से शिव–चेतनयुक्त हो जाते हैं।

**शाक्त योग–** इस योग में ज्ञान एवं भावना की ही प्रधानता होती है, अतः इसे ज्ञानोपाय, भावनोपाय, भेदाभेदोपाय भी कहते हैं। इस योग में शुद्ध विकल्पात्मक ज्ञान का अभ्यास करना पड़ता है– "मैं शुद्ध

संवित्, सर्वतः परिपूर्ण परमशिव ही हूँ", "सब कुछ मेरी ही अभिव्यक्ति है"– ऐसे परिपूर्ण शिवभाव भी भावना करना शाक्तोपाय कहलाता है।

**आणव योग–** आणव योग में साधक प्राण, बुद्धि शरीर अथवा बाह्य प्रमेयादि वस्तुओं को अपनी यौगिक क्रियाओं का आधार बनाता है। और इस भावना के उत्तरोत्तर विकास से उसे यह प्रतीति होने लगती है कि शिव की शक्ति ही सर्वत्र परिव्याप्त है और जड़–चेतन सभी उसी का स्फार है। इसे क्रियोपाय भी कहा गया है।[15] मालिनी विजय में कहा गया है कि उच्चार (प्राण–प्राणापनादि), कारण, ध्यान, वर्ग और स्थान प्रकल्पना से प्राप्त होने वाला समावेश आणवोपाय कहा जाता है।[16]

**सन्दर्भ ग्रन्थ सूची**


1. शिवदृष्टि, 7/120
2. शारदा तिलक टीका श्लोक–3
3. शिवदृष्टि, 7/106
4. शिवदृष्टि, 1/2
5. शिवदृष्टि, 1/21
6. शिवसूत्र विमर्शिनी पृष्ठ 12
7. ईश्वर प्रत्याभिज्ञा कारिका 3/2/10
8. शिवदृष्टि, 3/83
9. शिवदृष्टि, 3/34, 36
10. तन्त्रसार पृष्ठ 5
11. शिव सूत्र 1/2
12. शिव सूत्र पृष्ठ 16
13. शिवदृष्टि, 7/5–6
14. विज्ञानभैरव विवृत्ति पृष्ठ 19
15. तन्त्रालोक 3/59
16. मालिनीविजय 2/21



ई–मेल– teenakumari30797@gmail.com

www.bohalshodhmanjusha.com Bohal Shodh Manjusha ISSN: 2395-7115
Impact Factor:8.642 January 2025 Page No. : 144-150
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

# इक्कीसवीं सदी की हिंदी कविताओ में दलित चेतना

**श्री परवीज़ पाशा एस**, शोधार्थी,
**डॉ. प्रभुसेन**, शोध निर्देशक एवं विभागाध्यक्ष,
हिन्दी अध्ययन एवं अनुसंधान विभाग,
कर्नाटक राज्य मुक्त विश्वविद्यालय, मुक्तगंगोत्री, मैसूर- 570006

**प्रस्तावना:** दलित कविता का केंद्रीय विषय दलित चेतना है यानी सामाजिक व्यवस्था के प्रति विद्रोह। दलित कविता विषय और विस्तार दोनों दृष्टि से समृद्ध है। दलित कविता को अब एक नया आयाम प्राप्त हुआ है। पहले समाज का एक वर्ग ही साहित्य का सृजन करता था तथा पढ़ता सुनता था। दलित कविता समाज के निचले तबके की कविता है। यह पिछड़े वर्ग तक पहुँची है। दलित कविता दलित अस्मिता से परिचय कराती है और समाज में परिवर्तनकारी चेतना का संचार करती है। सदियों से पीड़ित दलित कवि का हृदय अब ज्वालामुखी बन गया है। इसलिए दलित कविता में सामाजिक व्यवस्था के प्रति विद्रोह का चित्रण हुआ है। जाति व्यवस्था के कारण दलित वर्ग की प्रगति अवरूद्ध हो गयी। दलितों का अतीत शोषण और प्रताड़ना का है। इसलिए दलित कवि अपने पुरखों की आग से ऊर्जा ग्रहण करते हैं और सामाजिक यथार्थ को कविता में अभिव्यक्त करता है।

सामाजिक यथार्थ से तात्पर्य वर्ण-जाति व्यवस्था, जातिगत भेदभाव, अस्पृश्यता, छुआछूत, अपमान और अन्याय को केंद्र में रखकर दलित कविता चलती है। धर्म शास्त्रों के अनुसार अच्छा कर्म करने पर उच्च जाति में जन्म मिलेगा ऐसी भ्रामक कथाएँ मिलती है। जो समाज में यह प्रचलित है। स्वर्ग प्राप्ति के लालच में स्वर्ग-नरक का भय दिखाकर दलित वर्ग का शोषण किया गया। जिसे भाग्यवाद भी कहा जाता है। ओमप्रकाश वाल्मीकि ने 'जाति' कविता के द्वारा दर्शाया है-

**"स्वीकार्य नहीं मुझे / जाना मृत्यु के बाद**
**तुम्हारे स्वर्ग में / वहाँ भी तुम पहचानोगे मुझे**

**मेरी जाति से ही।"[1]**

कवि जाति के निराकरन के जरिए सवर्णों के अधिकार पर प्रहार करते हैं। कविता जाति में आये भाग्यवाद, स्वर्ग, नरक आदि का विरोध करती है। सामाजिक रूढ़ियाँ समाज में दूरियाँ पैदा करती है। इस आधुनिक युग में भी लोगों में जातिवादी मानसिकता खत्म नहीं हुई है। इसी कारण समाज में असमानता अभी भी जस की तस बनी हुई है। दलित कवि ऐसी सामाजिक असमानता का खंड़न और विरोध करते हैं। जयप्रकाश कर्दम ने 'किले' कविता के माध्यम से सामाजिक असमानता का विरोध किया है-

**"फड़ने लगी है मेरी फुजाएं**
**फावडा कुल्हाडी और हथोड़ा पकड़े**
**मेरा हाथ / काट फेंकने को / उन हाथों की जिन्होंने**
**बरसाएं है अनगिनत कोड़े / मेरी नंगी पीठ पर**
**छीना है मेरे मुंह का ग्रास।"[2]**

निरंतर अन्याय, अत्याचार, पीड़ा, दमन, शोषण को सहते-सहते दलित कवि प्रतिशोध के लिए तैयार हुए हैं। कवि विरोध इसलिए करते हैं कि वर्ण-जाति व्यवस्था रूपी किला है, जो दलितों की बदौलत खड़ा है, इस किले पर सवर्ण समाज राज कर रहा है। इसलिए कवि जयप्रकाश कर्दम वर्ण-जाति व्यवस्था रूपी किले को देखकर रोष प्रकट करते हैं-

**"मेरे श्रम और शोषण से फले फूले हैं**
**मेरी हिंसा और अपमान पर खड़े**
**असमानता और अन्याय के ये किले।"[3]**

इस सामाजिक असमानता की जिम्मेदार वर्ण-जाति व्यवस्था ही है। सामाजिक स्थितियों को उलट-पुलट करने का आक्रोश व विद्रोह इस कविता में व्यक्त हुआ है। दलित कवि जिस व्यवस्था पर हमला करते हैं, उस व्यवस्था में भेदभाव को बढ़ावा दिया गया है। इसलिए दलित कवि शब्दों की धार को तेज करते हैं। कवि असंगघोष की कविता 'तुम भी' में वर्ण-जाति व्यवस्था के समर्थकों से ललकारते है-

**'वर्णवादियों के अंहकार तले / बेगार करता**
**सदियों से / एक अधूरा जीवन जी रहा**
**कहीं भी / भाग जाने को जी चाहता है**
**घर भर को गिरवी रख / हवेली में बेगार करता है**
**बेकाबू, / मन ही तो है / जातिवादी मकड़जाल को तोड़**
**मुक्त हो जाना चाहता है।"[4]**

आजादी के पिचहत्तर साल बाद भी संविधान लागू होने के बावजूद भी लोगों में जाति की मानसिकता नहीं गई है। दलित कवि मानते हैं कि वर्णाश्रम धर्म केवल विषमता और असमानता पर आधारित है। ओमप्रकाश वाल्मीकि का मानना है- "दलित कविता में आक्रोश उस भोगी हुई वेदना, अपमान और यातना के विरोध में है। जिसे दलित समाज हजारों साल की संघर्ष यात्रा में वहन करता रहा है। दलित कविता उसी अनुभव जगत की अभिव्यक्ति है।"[5] देश को आजादी मिलकर सत्तर साल बीत गए। भारत एक लोकतांत्रिक देश है। लोकतंत्र से तात्पर्य है जनता का जनता के लिए जनता के द्वारा बनाया गया शासन ही लोकतंत्र है। किंतु देश का बहुत बड़ा हिस्सा आज भी मानवीय अधिकारो से वंचित है। किसी विशेष जाति में जन्म होने के कारण पीढ़ी-दर-पीढ़ी तक मैला ढोने पड़ा है। उनके लिए लोकतंत्र कहाँ है। कवि ओमप्रकाश वाल्मीकि ने 'झाड़ूवाली' कविता में दलित स्त्री की व्यथा को विद्रोही भाषा में व्यक्त किया है-

**"सुबह पांच बजे / हाथ में थामे झाड़ू**
**घर से निकल पड़ती है / रामेसरी**
**लोहे की हाथ गाड़ी धकेलते हुए / खडंग-खडांग की कर्कश आवाज...**
**जब तक रामेसरी के हाथ में / खडांग-खडांग घिसटती लौहगाड़ी है**
**मेरे देश का लोकतंत्र / एक गाली है।"[6]**

कवि ओमप्रकाश वाल्मीकि ने दलित स्त्री की स्थिति पर लोकतंत्र पर सवाल उठाया है। यह कैसी सामाजिक व्यवस्था है, जिसमें दलित स्त्री को गंदगी साफ करने के बदले में केवल जूठन मिलता रहा है। वर्ण व्यवस्था में मनुस्मृति के आधार पर स्त्री को शिक्षा, स्वतंत्रता, संपति, शिक्षा, अधिकारों से वंचित कर दिया था। परंतु आज लोकतंत्र में बढ़ता भ्रष्टाचार, जातिवादी मानसिकता और राजकीय इच्छा शक्ति के अभाव में दलित वर्ग को हाशिये पर धकेला जा रहा है। दलित कवियों ने अपने काव्य संसार में दलित स्त्री मुक्ति के सवाल उठाये हैं। कवि जयप्रकाश कर्दम शोषणकारी सवर्ण समाज की तस्वीर को कविता 'दमन की दहलीज' के द्वारा दर्शाया है-

**"नोचे गए हैं निर्ममता से / बेबस स्त्रियों को उरोज और नितम्ब**
**उनकी योनियों में ठोके गए हैं / जातीय अहं के खूंटे**
**उनकी चीत्कारों पर गूंजे है अट्टास / मारी गयी है खाली पेटों पर**
**जूतों की ठोकरें / रौंदी गई हैं उनकी लाश**
**गांव हो या शहर / यही रहा है सब जगह / दलितों का हाल।"[7]**

हम आज इक्कीसवीं सदी में जीवन यापन कर रहे हैं। वैश्वीकरण, भूमंडलीकरण, उदारीकरण का राग अलापते हैं परंतु प्रतिदिन दलित स्त्री पर होने वाले शोषण को

देखकर नहीं लगता है कि क्या यही लोकतंत्र है, क्या हम लोकतंत्र में जी रहे है? ऐसे कई सवाल खड़े हो जाते हैं? दलित स्त्री की अस्मिता को चकनाचूर किया जाता है। दलित कवि को लगता है कि स्त्री मुक्ति के लिए संघर्ष ही मुक्ति का एक मात्र मार्ग है। संघर्ष से ही समानता और अधिकार का मार्ग खुलेगा। दलित कविता स्त्री की सभी आंकाक्षाओं को साकार करती है और साकार करने के लिए वह सभी शिकंजों की बैसाखियों को तोड़ने के लिए तैयार है।

दलित साहित्य दलित अस्मिता की तलाश करता है, उसका उद्देश्य दलित समाज में स्वाभिमान को जगाना और अस्मिता के लिए संघर्ष करना है। दलित कविता ने सामाजिक चेतना जगायी है। आज दलित समाज हर क्षेत्र में अपनी दस्तक देने लगा है। कवि जयप्रकाश कर्दम इसी चेतना को अभिव्यक्त करते हैं-

**"सदियों से / तुम्हारी यह साजिश**
**फलती-फूलती रही / तुम शोषक मैं शोषित**
**तुम श्रेष्ठ मैं हीन / तुम स्वामी मैं सेवक बना रहा**
**लेकिन आज / अंबेडकर के आह्वान ने**
**जागृत कर दी है / मेरी चेतना।"[8]**

समाज में स्वामी और सेवक नाम पर शोषण किया गया, जिसके मूल धर्म था हालांकि परिवर्तन संसार का नियम है। अब दलित, शोषित वर्ग जागरूक होने लगा है। वह अब अपने शोषकों को पहचान गया है। डॉ. अंबेडकर की विचारधारा से दलित, पीड़ित, शोषित समाज में एक नयी चेतना का संचार हुआ है। दलित समाज को इस कदर गुलाम बनाया गया था कि यह वर्ग हर प्रकार के शोषण को मूकता से सहता था। उसकी आँखें, कान बंद थे।

भारतीय संविधान ने मौलिक अधिकार दिए। बावजूद वर्तमान परिप्रेक्ष्य में दलित शोषण की घटनाएँ घट रही हैं। इसलिए दलित कवि समाज में वैचारिक बदलाव के लिए संघर्षरत है। दलित कवि सचेत है। कभी-कभी ऐसी घटनाएँ घटित होती है, जिससे पूरी सामाजिक व्यवस्था हिल जाती है। कवि ऐसी संवेदनहीन व्यवहार की जड़ें धर्म की संस्कृति में खोजते हैं। 'रामायण' में विद्वान शंबूक सिर काटा गया था। कवि ओमप्रकाश वाल्मीकि 'शम्बूक का कटा सिर' में कहते हैं-

**"मेरे शब्द पंख कटे पक्षी तरह / तड़प उठते हैं**
**तुम अकेले नहीं मारे गये तपस्वी**
**यहाँ तो हर रोज मारे जाते हैं, असंख्य लोग,**
**जिनकी सिसकियाँ घुटकर रह जाती है, / अंधेरे की काली पर्तों में।"[9]**

कवि भारतीय सामाजिक मूल्यों के प्रति विद्रोह करते हैं। हिसाब लेकर ही रहूँगा' कविता के माध्यम से ललकारते हैं-

**"तूने / अपनी इच्छानुसार / सब पाया**
**क्योंकि तू शातिर था / जानता था छल विद्या**
**और हमें छलता रहा / करता रहा हमारा शोषण**
**तुम्हारी कुटिलता / और छल के आगे/ मेरी इच्छाएँ ही / पत्थर हो गईं**
**लेकिन मेरी संघर्ष यात्रा / अब भी जारी है**
**एक दिन / देना ही होगा / तुम्हें !/ मेरे शोषण का हिसाब।"**[10]

दलित समाज पर अत्याचार-शोषण आज भी होता है। आज भी ग्रामीण क्षेत्र में दलित समाज की बस्तियों को जलाया जाता है, उन्हें भयभीत रखने के लिए अमानवीय अत्याचार किया जाता है। महापुरुषों की प्रतिमाओं का अपमान किया जाता है। दलितों को जिंदा जलाया जाता है, घोड़ी पर बारात निकालने पर पाबंदी लगा दी जाती है, घोड़ी पर बैठने पर मार भी दिया जाता है, तो कहीं बहिष्कार किया जाता है। मनुस्मृति को मानने वाले लोग देश में सामाजिक समानता और भाईचारा नहीं चाहते हैं। डॉ. आंबेडकर की प्रेरणा और संघर्ष से दलित समाज में चेतना आयी और शिक्षा का प्रचार-प्रचार होने लगा है। अब दलित समाज अपने अधिकार की बात करने लगा है। परिवर्तन संसार का नियम है। दलित वर्ग ने अब शोषकों को पहचाना है। कवि जयप्रकाश कर्दम सामाजिक परिवर्तन को अपनी कविता में दर्शाते हैं-

**"सदियों से / तुम्हारी यह साजिश / फलती-फूलती रही**
**तुम शोषक मैं शोषित / तुम श्रेष्ठ मैं हीन**
**तुम स्वामी मैं सेवक बना रहा / लेकिन आज**
**आंबेडकर के आह्वान ने / जाग्रत कर दी है / मेरी चेतना।"**[11]

कवि ने दलित जीवन की पीड़ा को पूरी गहराई व तीव्रता के साथ अभिव्यक्त किया है। सदियों से दलित सेवक, गुलाम और शोषित था परंतु अब वह सामाजिक गुलामी की बेड़ियों को तोड़ने के संघर्षरत हैं। उनकी प्रेरणा डॉ. आंबेडकर की विचारधारा है। जिसकी अभिव्यक्ति कवियों ने कवि के द्वारा कर समाज के सामने रखी है। अब दलित समाज जान गया है कि सम्मान से जीने के लिए उन्हें संघर्ष करना पड़ेगा। ओमप्रकाश वाल्मीकि कविता के द्वारा कहते है-

**"मेरी पीढ़ी ने अपने सीने पर / खोद दिया संघर्ष**
**जहाँ आँसुओं का सैलाब नहीं / विद्रोह की चिंगारी फूटेगी**

**जलती झोपड़ी से उठते धुएँ में / तनी मुट्ठियाँ तुम्हारे तहखाने में / नया इतिहास रचेगी।"**[12]

सामाजिक विषमता को ध्वस्त कर दलित कवि एक नई व्यवस्था का निर्माण करना चाहते हैं। वर्ण, जाति, वर्ग विहीन समाज निर्माण के प्रति प्रतिबद्ध है। कविताओं में स्पष्ट रूप से क्रांति का संदेश मुखरित है। मनुस्मृति आधारित समाज व्यवस्था में दलित समाज के लिए सारे रास्ते, दरवाजे बंद थे किंतु सदियों बाद देश में नया संविधान लागू हुआ, जिसमें सभी को अधिकार प्राप्त हुए। शिक्षा के कारण दलित पीढ़ी अब अपने इतिहास और स्तिथि को जान गई है।

पितृसत्तात्मक व्यवस्था स्त्री को कमजोर करने का एक शक्तिशाली हथियार है। सचमुच स्त्री की दासता पितृसत्तात्मक व्यवस्था के साथ ही खत्म हो सकेगी। इस पितृसत्ताक में व्यवस्था स्त्री का क्या अस्तित्व है? इस पर कवि असंगघोष ने 'तुझे रौंदूँगा' कविता के द्वारा कहा है-

**"मैंने झाँका / तेरे समाज के आइने में / वहाँ मेरा अक्श / मौजूद नहीं था**
**तेरी कुदृष्टि की मार से / आइना खण्ड-खण्ड विखण्डित हो**
**यत्र-तत्र फैला हुआ / दिखा।"**[13]

प्राचीन काल से ही स्त्री जीवन को खण्डित कर दिया गया था। आज दलित कवि इस व्यवस्था के खिलाफ आवाज उठाते हैं। जिस दिन इस व्यवस्था का निर्मूलन होगा उसी दिन स्त्री दासता खत्म हो जायेगी।

अत: दलित और स्त्री समाज के लिए ज्ञान और मानव जीवन के सभी अधिकार हमेशा के लिए बंद थे। उनका जीवन भंग हो चुका था, उनकी अभिलाषाएँ भस्म हुई थी। समाज में पशुओं से भी बदतर स्थिति थी, उनके लिए मानवीय अधिकार नकारे गए थे। मृत प्राय: वही दलित समाज और स्त्री वर्ग आज प्रतिभा की मशाल लेकर अपने अधिकार के लिए कदम आगे बढ़ा चुका है। सामाजिक दृष्टि से दलित कविता विद्रोह और क्रांति के स्वरों को उजागर करती है। वर्ण-जाति भेद, ऊँच-नीच, वर्ग-भेद, असमानता और शोषण के विरोध में स्पष्ट रूप से विद्रोह करती है। दलित कवि अपनी क्रांति धर्मिता के साथ समाजोन्मुखी है। इसलिए दलित कविताओं में दलित समाज के भीतर सदियों की ज्वालामुखी फूट पड़ रही है।

**संदर्भ :**


1. ओमप्रकाश वाल्मीकि - बस! बहुत हो चुका, पृ.सं. 74
2. जयप्रकाश कर्दम - गूंगा नहीं था मैं, पृ.सं. 16
3. जयप्रकाश कर्दम - गूंगा नहीं था मैं,. पृ.सं. 5

4. असंगघोष - हम गवाही देंगे, पृ.सं. 39
5. ओमप्रकाश वाल्मीकि - सदियों का संताप, पृ.सं. भूमिका से
6. ओमप्रकाश वाल्मीकि - सदियों का संताप, 31-32
7. जयप्रकाश कर्दम - गूंगा नहीं था मैं, पृ.सं. 38
8. जयप्रकाश कर्दम - तिनका तिनका आग, पृ.सं. 16
9. ओमप्रकाश वाल्मीकि - सदियों का संताप, पृ.सं. 26
10. असंगघोष - समय को इतिहास लिखने दो, पृ.सं. 15
11. जयप्रकाश कर्दम - तिनका-तिनका आग, पृ.सं. 16
12. ओमप्रकाश वाल्मीकि - सदियों का संताप, पृ.सं. 64
13. असंगघोष - हम गवाही देंगे, पृ.सं. 19

ई-मेल- parveezpashas4@gmail.com मोबाइल- 7829292988

www.bohalshodhmanjusha.com Bohal Shodh Manjush ISSN: 2395-7115
Impact Factor:8.642 January 2025 Page No. : 151-153
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

# समकालीन कथाकरो का तुलनात्मक अध्ययन- नारी संघर्ष

**मोनिका मेहता,** शोधार्थी,
**डॉ सुमन कौशिक**, मार्गदर्शिका,
सी.एम.आर विश्वविद्यालय बेंगलुरु

**प्रस्तावना**-साहित्य के इतिहास में कहानी का महत्वपूर्ण स्थान है। आलोचना एवं विचारधारा की दुनिया के लोगों ने जीवन को समझने के लिए कला और विद्या के रूप में लिया है। समाज के दो पहलू स्त्री और पुरुष एक दूसरे के पूरक हैं ।किसी एक के अभाव में दूसरे का अस्तित्व नहीं है। फिर भी पुरुष महिला को समान अधिकारों से वंचित रखता है। इस कारण अब शिक्षित नारी आंदोलन करने को मजबूर हो जाती है। आदिकाल से ही नारी की दशा बड़ी दयनीय और सोचनीय रही है। स्त्रियों की दशा के कारण समकालीन कथाकरो ने अपनी कहानियों के माध्यम से नारी के संघर्ष समर्पण भाव, अत्याचार, परिवर्तन, आधुनिकता, सभी विचारधारा को प्रस्तुत किया है।

- **समकालीन का अर्थ**
- एक समय में होने वाला या रहने वाला।
- एक ही समय में विद्यमान घटित या जीवित।
- एक ही समय से संबंधित।
- **समकालीन का पर्यायवाचीशब्द**-समसामयिक, समकालिक, युगपत्र और समकालिक।
- **समकालीन कथाकरो में तुलनात्मक अध्ययन**
- **एक ही विषय को लेकर अलग-अलग विचारों के माध्यम से प्रस्तुत करना।**
- **महिला कथाकार तथा पुरुष तथा कारों का नई संघर्ष के विषय में तुलनात्मक अध्ययन।**
- समकालीन कथाकारों की कहानियों में नारी संघर्ष-
- **मृदुलागर्ग**-

**मीरानाची** मैं सामाजिक भेदभाव तथा लड़के और लड़की क्या भेदभाव बताया गया है। उसकी मां उसे कोसती रहती है लड़की होने के कारण नियंत्रण में रखती है। तो मीरा अपने जीवन को खुलकर जीना चाहती है। जीवन की बंदिशें से मुक्ति चाहती। सामाजिक भेदभाव तथा लड़के और लड़की की कहानी है।

**अनाड़ी**-कहानी में निम्न वर्ग के उत्पीड़न की कहानी है। उनकी इच्छा व आंकाक्षाओं के अभाव के कारण संघर्ष करती है।12 वर्ष की सुवर्णा की कहानी है जो अपनी गरीबी के कारण संघर्ष करती है।अपने बचपन के पलों से दूर हो जाती है। इस तरह नारी के संघर्ष की कहानी है।

**कितनीकैद**- इस कहानी में नारी के पाश्चात्य सभ्यता को अपनाती हैं और विवाह से पूर्व ही कॉलेज के दिनों में उन्मुक्त सहवास करना, समवस्यक लड़कों के साथ घूमना ,नशा करना, आदि तृप्ति पाने के कारण एक बार उसके मित्र नशे में होने के कारण सामूहिक बलात्कार कर देते हैं। परिस्थितियों बदलती है। उसका विवाह मनोज के साथ हो जाता है। मनोज को सच्चाई का पता चलता है तो मनोज उसे अपना नहीं पाता है। इस तरह मृदुला गर्ग की कहानी में नारी के संघर्ष है। कई कहानियां जैसे- हरीबिंदी, एक और विवाह अगर यो होता, दुनिया का कायदा, आदि नारी के यौन संबंध को अलग-अलग स्थितियों में दर्शाया है।

- ❖ मैत्रेयी पुष्पा-

**पगला गई है भगवती**-एक कहानी नारी के शोषण की कहानी है। इस कहानी में समाज में उत्पन्न लड़की और लड़के के भेदभाव को व्यतीत करती है। बिना पुत्र ही जननी बने वह मां के गौरांवित होने के पद को स्वीकार नहीं करती। इसलिए तीसरी बार बेटे की प्रतीक्षा में गर्भवती बन गई थी। शोषण हो रही बिन्नी की कहानी। समाज तथा गांव में बेटी होने पर अत्याचार करना तथा बेटे की चाह में एक और बेटी पैदा हो जाने पर उसकी मां उसका पालन पोषण नहीं करती और दादी उसका पोषण करती है। इस तरह लड़की परिवार को समाज के लिए एक बोझ बन गई है। कहानी के माध्यम से लेखिका ने नारी संघर्ष को दिखाया है।

**सिस्टर**-इस कहानी में सिस्ट का पात्र डिसूजा जैसी अनब्याही समाजसेविका का है। निस्वार्थ सेवा करने पर भी समाज उसे अपने चंगुल में डालकर दर्द देता है। यह सिस्टम अकेली जीवन बिताती है और लोगों का भला करती है।सिस्टर जैसी नारियों का समाज में हमेशा अकेले ही रहना पड़ता है।

- ❖ **कमलेश्वर**-

कमलेश्वर की कहानियों में भी नारी संघर्ष को दिखाया है। कमलेश्वर की कई कहानियां जैसे- जॉर्ज पंचम की नाक, दिल्ली में एक मौत, खोई हुई दिशाएं, पराया शहर,एक रुकी हुई जिंदगी, तलाश, मांस का दरिया, आदि कहानियों में नारी की यातनाओं, संघर्ष, को दिखाया है।

**मांसकादरिया**-इस कहानी में देह व्यापार लड़कियों की पीड़ा को व्यक्त किया है। इस कहानी में कमलेश्वर यथार्थ की ऊंचाई को ग्रहण करते हैं। इस कहानी में कई लोगों ने अश्लील होने का दोष मढ़ा है। वेश्या के कोठे का चित्रण करते समय नारी की व्यथा दर्शाया है । इस कहानी में मुक्त बाजार व्यवस्था भूमंडलीकरण के मांस का दरिया के स्वभाव कोठे से लेकर बंगलो तक,फार्म हाउस तक सजा कर रख दिया है। वेश्यावृत्ति की असहाय अवस्था को बेबीसी का नरक कुंड कहा है।

- ❖ **मोहनराकेश-**

**जंगला**- मोहन राकेश की यह कहानी ग्रामीण पृष्ठभूमि के ग्रामीण क्षेत्र की सामंती दूर के जाती वार्ड भेदभाव की कहानी है। है जातिगत भेदभाव का प्रभाव 50 वर्षों पहले भी था और आज भी ग्रामीण क्षेत्र में दिखाई देता है ।कहानी में फूलकोर और उसके पति भगत के मानसिक द्वंद्व का चित्रण है। उनके बेटे विष्णु ने घर जाति की लड़की से शादी कर ली जिसके कारण उसे घर छोड़कर जाना पड़ा ।जगत और फूलकोर और अपने बेटे से प्रेम करते हैं उनके बिना घर सुना है ।मगर वह न रहकर भी घर में हर जगह है माता-पिता के प्रेम और सामाजिक मूल्य जनित संस्कार बहुत का दर्द सार्थक ढंग से व्यक्त हुआ है ।समाज जाति भेदभाव को मिटाया नहीं है।

**मिसपाल**-कहानी मोहन राकेश के द्वारा लिखित एक प्रसिद्ध कहानी है। कहानी मिसपाल के ईद की दुख घूमती है जो एक स्वतंत्र शिक्षित और नौकरी पेशा महिला है ।बचपन में ही परिवार प्यार से वंचित रहने के कारण दिल्ली आना पड़ता था। दिल्ली सूचना विभाग में कम बोलने वाली महिला के रूप में जानी जाती थी ।साधारण रूप रंग होने के कारण खुद को सजाने सवाने पर काफी खर्च करना पड़ता था। छोटे बाल रखना स्लीवलेस कमीज पहन कर अपने मोटापे को छुपाने की कोशिश करती थी। दफ्तर में उन्हें अक्सर कर्मचारियों के चुटकुले का सामना करना पड़ता था ।दफ्तर का माहौल काफी दम घुटने वाला था ।रंजीत उसका एकमात्र सहारा था जिससे वह खुलकर बात कर सकती थी। जब रंजीत अस्पताल में भर्ती होता है उन्हें दूध फल लेकर जाती लोग उनके बारे में अजीब बात करते थे ।इन भद्दे मजाक को से तंग आकर और दफ्तर के माहौल से घुटन महसूस कर मिसपाल नौकरी छोड़ने का फैसला कर लेती है।

**निष्कर्ष**-समकालीन कथाकरो ने नारी के बदलते स्वर तथा आधुनिकता के बोध को दिखाने का प्रयास किया है। मृदुला गर्ग और समकालीन कथाकारों ने समाज, परिवार, ग्रामीण, परिवेश, समाज के परिवेश के लिए अलग-अलग कहानी के माध्यम से अपने विचारों को प्रस्तुत किया है। बहूमुखी की प्रतिभा संपन्न महिला तथा पुरुष कथाकारों की नारी जीवन तथा सामाजिक सरोकारों से जुड़ी हुई है। कहानियों का विषय बहुत व्यापक है ।उन्होंने नारी के जीवन संघर्ष को अपने विचारों के माध्यम से समाज समक्ष प्राचीन तथा आधुनिकता को प्रस्तुत करने का प्रयास किया है ।अन्य कथाकारों ने समसामयिक जीवन की पीड़ाओं एवं संघर्षों को अपने उन्होंने अपनी कहानियों का विषय बनाया है ।कहानियों में कल्पनिकता से ज्यादा यथार्थ को प्रधानता दी है। नारी पात्रों का चित्रण बड़ी सूक्ष्मता से किया है। लेखक ने यहां पर कहानियों में नारी की पात्र में मां ,बहन पत्नी, सभी नारी के संघर्ष का वर्णन किया है। उन्होंने नारी को पुरुषों के साथ समानता का भाव रखने प्रयास किया है।

**संदर्भ सूची-**

1) कमलेश्वर मेरी प्रिय कहानियां
2) मोहन राकेश मेरी प्रिय कहानियां
3) मृदुला गर्ग - मृदुला गर्ग का कहानी संसार -श्रीमती कोंडा चंद्र।

- www.bohalshodhmanjusha.com Bohal Shodh Manjusha ISSN: 2395-7115
Impact Factor:8.642 January 2025 Page No. : 154-159
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

# "गांधी और हिंदी कथा साहित्य"

**निधि मिश्रा**, शोधार्थी हिन्दी विभाग,
दिल्ली विश्वविद्यालय दिल्ली

**शोध सार** - बीसवीं शताब्दी के दूसरे दशक में महात्मा गांधी ने भारतीय स्वतंत्रता संग्राम में सार्थक हस्तक्षेप किया। यह वह समय था जब समूचे विश्व में नई नई विचारधाराओं का उदय हो रहा था। महात्मा गांधी ऐसे समय में सत्याग्रह और अहिंसा की बात करते हुए स्वाधीनता आंदोलन को आगे ले जाने के हिमायती बने। आधुनिक हिंदी साहित्य को उन्होंने व्यापक रूप से प्रभावित किया। गौरतलब है कि विश्व में उदित हो रही तमाम नई विचारधाराओं ने युवाओं तथा साहित्यकारों को विशेष रूप से प्रभावित किया था। हिंदी साहित्य में इस समय मैथिलीशरण गुप्त, प्रेमचंद, जैनेंद्र, सच्चिदानंद हीरानंद वात्स्यायन 'अज्ञेय', विष्णु प्रभाकर, इलाचंद्र जोशी, जयशंकर प्रसाद, भवानी प्रसाद मिश्र, सुभद्रा कुमारी चौहान, रामनरेश त्रिपाठी, सियारामशरण गुप्त, माखनलाल चतुर्वेदी, फणीश्वरनाथ रेणु, इत्यादि रचनाकार सक्रिय थे। जहां हम इलाचंद्र जोशी और अज्ञेय जैसे रचनाकारों पर फ्रायड के मनोविश्लेषणवाद का प्रभाव देखते हैं, वहीं मैथिलीशरण गुप्त, प्रेमचंद, जैनेंद्र, विष्णु प्रभाकर, सियारामशरण गुप्त, फणीश्वरनाथ रेणु इत्यादि रचनाकारों की रचनाओं में गांधीवादी विचारों का प्रभाव स्पष्ट रूप से परिलक्षित होता है।

**शब्द संकेत** - अहिंसा, सत्याग्रह, स्वाधीनता आंदोलन, मानसिक बुनावट, विकेंद्रित विकास

**प्रस्तावना-** गांधीवादी दर्शन का मूल आधार है सत्य। सत्य, अहिंसा, प्रेम और सद्भाव उनके दर्शन के मूल में हैं। गांधीजी ब्रह्मचर्य, सद्भाव और सर्वोदय की बात करते हैं। हिंदी कथा साहित्य के पन्ने पलटने पर हमें यह ज्ञात होता है कि हिंदी कथा साहित्य ऐसी तमाम रचनाओं से लबरेज है जो इन विचारों का निरूपण करती हैं। महात्मा गांधी के विचारों से न सिर्फ साहित्यकार और रचनाकर प्रभावित हुए अपितु आम जनमानस पर भी उन्होंने अपनी एक अमिट छाप छोड़ी है। वे मानवीय स्वतंत्रता और समानता के पैरोकार हैं। गांधी जी के विचार और उनका दर्शन न सिर्फ भारत अपितु समूचे विश्व के मानव के लिए कल्याणकारी एवं उपयोगी है। बहुत से लोग आज भी उनके आदर्शों और सिद्धांतों में आस्था रखते हुए साहसपूर्वक ऐसा जीवन जीने का प्रयत्न करते दिखते हैं जो गांधी जी की जीवन पद्धति के अनुरूप है और उन मूल्यों का समर्थन करते हैं जो

गांधी को प्रिय थे।[i] भारतीय स्वाधीनता आनोलन के दौरान गांधी महज देश की आजादी के लिए प्राण-पण से नहीं जुड़े थे, अपितु इसके साथ ही अपने आदर्श के अनुकूल लोगों का मानसिक बनावट रचने का भी प्रयास कर रहे थे। गांधी प्रयासरत थे, एक ऐसे सम्पूर्ण-मनुष्य की रचना में जो भौतिक और आध्यात्मिक रूप से विकसित हो। ऐसे मनुष्यों से ही नई सभ्यता की संरचना निर्मित हो सकती थी। आध्यात्मिक रूप से श्रेष्ठ मनुष्य की रचना, गांधी के मुताबिक आधुनिक-सभ्यता में मुमकिन नहीं। इसलिए गांधी ने आधुनिक सभ्यता के बरक्स हर पहलू के बारे में सोचा और चिंतन इजहार किया। बड़े-बड़े कल कारखानों के समानांतर छोटे-छोटे उद्योग धंधे और नगर केन्द्रित विकास के बजाय गांव को केंद्र में रखकर विकेंद्रित विकास के ढांचे का प्रस्ताव, इसी मकसद का परिणाम था।"[ii]

इसी मानसिक बनावट को आकार देकर सुदृढ़ करने में साहित्य ने महती भूमिका निभाई है।

"गांधीजी हिंसा करके, अराजकता फैलाकर या किसी भी तरीके से षड्यंत्र का सहारा लेकर, स्वाधीनता हासिल नहीं करना चाहते। ऐसा कार्य करने वालों के स्वदेश प्रेम के प्रति आदर भाव रखते हुए भी, वे इसे भीरुता, कायरपन का लक्षण मानते थे। गांधी सभी भारतवासियों को स्वावलंबी, आर्थिक रूप से सुदृढ़ बनाना चाहते थे और आध्यात्मिक रूप से श्रेष्ठ। उनकी आत्मा से औपनिवेशिक प्रभुत्व के असर को कम करना चाहते थे। हिंसा, अराजकता या षड्यंत्र के जरिए यह संभव नहीं था।"[iii]गांधी का रास्ता अहिंसा का है। इसमें सबके लिए सेवा भाव है। गांधी की भाषा कोमल होती थी। यह सौम्यता की भाषा है। अपवादस्वरूप ही कठोर भाषा का प्रयोग दिखता है उनके लेखन या भाषण में।[iv] गांधी के कारण जो सबसे बड़ा परिवर्तन भारतीय जनमानस में आया, वह है उसमें निर्भय भाव का उदय। उनका मनुष्य की क्षमता में विश्वास था।[v]

जब हम विशेष तौर पर हिंदी कथा साहित्य की बात करते हैं तो गांधी से प्रभावित रचनाकारों में सर्वप्रथम प्रेमचंद का नाम उल्लेखनीय हो जाता है। उनके उपन्यास 'रंगभूमि' में सूरदास का संयम, उसका नैतिकताबोध, ईश्वर के प्रति श्रद्धा, शत्रु से भी आत्मीयता, मशीनीकरण का विरोध, आशावाद, पूंजीवादी संस्कृति के प्रति वितृष्णा और मृत्यु के प्रति निर्भीकता ऐसे गुण है जो उनके इस पात्र को गांधीवादी विचारों का जीवंत उदाहरण बना देते हैं। गांधी को यह आशा थी कि जमींदारों और किसानों का संबंध प्रेमपूर्ण हो सकता है। प्रेमचंद ने भी कुछ ऐसे ही विचार अपने उपन्यास 'प्रेमाश्रम' में व्यक्त किए हैं। उन्होंने लखनपुर ग्राम क्षेत्र में आदर्श राज्य की स्थापना की है। यह गांधी जी के आदर्श राज्य की परिकल्पना के अनुरूप है जहां प्रेम है, सद्भावना है, सत्य, अहिंसा इत्यादि की प्रतिष्ठा है। 'कर्मभूमि' में प्रेमचंद हरिजनोद्धार, सूत कातना, बुनाई इत्यादि का चित्र प्रस्तुत करते हैं। प्रेमचंद की रचनाओं में हृदय परिवर्तन के दृश्य बहुधा देखने को मिलते हैं।

इस कड़ी में अन्य उल्लेखनीय नाम जैनेंद्र का है। आपके उपन्यास 'सुनीता' और 'त्यागपत्र' एवं कहानियां 'फांसी', 'एक रात', 'पत्नी', 'वातायन', 'वे तीन', 'पाजेब', 'एक कैदी' इत्यादि

उल्लेखनीय हैं। हिंदी कथा क्षेत्र में जैनेंद्र ने जिस समय पदार्पण किया वह समय भारत के इतिहास में स्वाधीनता आंदोलन का था। एक रचनाकार का अपने समाज एवं समय के सत्य का उद्घाटन करने में अत्यधिक योगदान होता है। या तो वह अपने समाज की व्याख्या करने का प्रयास करता है या फिर उस में उपस्थित जटिलताओं और निहित अंतर्विरोधों को अपनी रचनाओं के माध्यम से सुलझाने का प्रयत्न करता है। जैनेंद्र अपनी रचनाओं के माध्यम से इन सभी पहलुओं पर विचार करते प्रतीत होते हैं। भारतीय स्वाधीनता आंदोलन में गांधी के विचार दर्शन से प्रभावित होकर उन्होंने अपनी रचना यात्रा प्रारंभ की थी।[vi] भारत की तत्कालीन राजनीति और गांधीजी का प्रभाव उन पर कुछ ऐसा पड़ा कि उन्होंने अपनी विश्वविद्यालयी शिक्षा को बीच में ही अधूरा छोड़ दिया। अपनी कहानियों के माध्यम से इन्होंने गांधीवादी विचारों और तत्कालीन भारतीय राजनीति का एक खाका हमारे समक्ष प्रस्तुत किया है। इस तथ्य की पुष्टि हेतु हम उनकी कहानी 'एक कैदी' का उदाहरण ले सकते हैं। इस कहानी में जैनेंद्र ने स्वाधीनता आंदोलन में फैले हुए वर्ग भेद को उद्घाटित किया है। सन 1930 में गढ़वाल रेजीमेंट के कुछ एक सिपाहियों ने एक अधिकारी के आदेश का उल्लंघन किया और उन लोगों पर गोली चलाने से साफ इंकार कर दिया जो लोग निहत्थे थे। सिपाहियों द्वारा की गई इस नाफरमानी के विरुद्ध अंग्रेजी हुक्मरान ने कानूनी कार्यवाही की। महात्मा गांधी ने सिपाहियों की इस नाफरमानी की आलोचना करते हुए अपने भाषण में कहा कि सिपाहियों को अपने अधिकारियों के हुक्म की तामील करनी चाहिए। अगर उन्होंने आदेश दिया है की गोली चलानी चाहिए तो सिपाहियों को गोली चलानी चाहिए। इतना ही नहीं उन्होंने ब्रिटिश सरकार द्वारा सैन्यानुशासन भंग करने के कारण सिपाहियों पर की जा रही कानूनी कार्यवाही को उचित ठहराया। जैनेंद्र ने न तो उनके भाषण का कोई विश्लेषण किया न ही इस घटना का। लेकिन यह घटना उनकी इस कहानी का मुख्य आधार बनी। उन्होंने इस कैदी को माध्यम बनाया जो कि एक सैन्यकर्मी है, और उस के माध्यम से भारतीय स्वतंत्रता संग्राम में व्याप्त विसंगतियों को उजागर किया।

जैनेंद्र के उपन्यास त्यागपत्र की नायिका में समाज द्वारा दी गई प्रताड़ना को चुपचाप बर्दाश्त करने की ताकत है। नगेंद्र लिखते हैं - "कष्ट के कारणों से घृणा न करते हुए, कष्ट की अनिवार्यता से त्रास न खाकर, उस में आनंद की भावना करना अहिंसा है। और अहिंसा यह सिखाती है कि अमुक्त वासना का वितरण ही उसकी सफलता है।"[vii]

सियारामशरण गुप्त के उपन्यासों पर गांधी दर्शन का बाह्य प्रभाव तो देखने को नहीं मिलता परंतु उन में अंतर्निहित तत्व गांधीवाद से ओतप्रोत अवश्य नजर आते हैं। वे समाज की कुरीतियों के बोझ के नीचे दबे व्यक्ति की मार्मिक दशा का चित्र खींचते हैं और उससे सहानुभूति रखते हैं। उन्होंने अपने पात्रों को गढ़ने में गांधीवादी सिद्धांतों की मदद ली है।

'गोद' में दुर्भाग्य से प्रताड़ित निरीह किशोरी को कठोर दण्ड भुगतना पड़ा। शोभाराम की मानवता भाभी के वात्सल्यपूर्ण आत्मीय भाव को पाकर जाग ही नहीं उठती, सक्रिय भी हो जाती

है। वह अपने भाई के खिलाफ विद्रोह का झंडा उठाती है। परंतु यह विद्रोह दयाराम के हृदय परिवर्तन के उपरांत पारस्परिक प्रेम की प्रगाढ़ अनुभूति में बदल जाता है।[viii]

सियारामशरण गुप्त एवं जैनेंद्र के विषय में नगेंद्र का कथन है -" दोनों व्यक्तियों का जीवनादर्श एक है- पूर्ण अहिंसा की स्थिति प्राप्त कर लेना, अर्थात अपने अहं को पूर्णता धुला देना। इस साध्य के लिए सियारामशरण गुप्त की साधना अधिक हार्दिक है, नैतिक दमन का अभ्यास उनको अधिक है और उनका अहं सच- मुच काफी धुल चुका है। अहिंसा बहुत कुछ उनके व्यक्तित्व का अंग बन चुकी है।[ix]

"गांधी जी सत्य के अन्वेषी हैं। सत्य की उपलब्धि के लिए ही वे विविध कार्यों में अपनी शक्ति का नियोग करते हैं। उनका आग्रह है कि प्रत्येक व्यक्ति को सत्याग्रही होना चाहिए।[x] सत्य के प्रति महात्मा गांधी का दृष्टिकोण हमें विष्णु प्रभाकर की कहानी 'वापसी' में परिलक्षित होता है।

इस कहानी का पात्र राम सिंह एक ईर्ष्यालु व्यक्ति है। वह सोचता है कि - "मैं उसके परिवार को दर-दर की भीख मंगवाऊंगा, भिखारी बनाऊंगा।" परंतु सत्य से अवगत होने के पश्चात वह अपनी जान पर खेल कर अपने सौतेले भाइयों की रक्षा करता है। ऐसा हृदय परिवर्तन महात्मा गांधी के सत्यवादी दृष्टिकोण से परिचित होने के कारण ही है।

गांधीजी ने अहिंसा को परम कर्तव्य माना है। गांधीजी मानते थे कि मानवीय संबंधों की सभी समस्याओं का एक मात्र हल अहिंसा ही है। अहिंसा हिंसा से अधिक शक्तिशाली है। अहिंसा एक दूसरे के प्रति प्रेम और आदर को जन्म देती है तथा सभी मनुष्यों को समान समझने की प्रेरणा देती है।[xi] जीवन की आवश्यकताओं की पूर्ति में संयम रखना अपेक्षित है। उनकी अहिंसा की अवधारणा मन, वचन, कर्म से संबंधित है।[xii] हिंसा की तुलना में अहिंसा का दर्शन नया है। अहिंसा का विचार समाज में मौजूद रहा है। इसकी जड़ें गहरी धँसी हैं। लेकिन जैसे जीवन- जगत के हर क्षेत्र में, राज-काज से समाज तक, गांधीजी प्रयोग कर रहे थे, उस तरह बड़े पैमाने पर उसके प्रयोग की मिसाल न के बराबर रही है। इसीलिए गांधीजी अहिंसा को लेकर लगातार प्रयोग पर बल दे रहे थे। अहिंसा के संदर्भ में नए-नए शोध करने के लिए बुद्धि- विशारदों से अपील भी कर रहे थे। सत्य और अहिंसा को लेकर प्रतिरोध के नए तरीकों की खोज करते हुए गांधीजी 'सत्याग्रह' तक पहुंचे थे। इसमें विसम्मति प्रगट करने से लेकर विरोध में सड़क पर उतरना भी शामिल था। संघर्ष का यह नया रास्ता इतना नया और जोखिम भरा था कि लोग इसे सर्वथा अपरिचित मान रहे थे।गांधी सत्य और हिंसा पर आधारित ढाँचा और साँचा तैयार कर रहे थे। इसका नूतन होना मालूम था उन्हें। 'हमने एक अनोखी नीति को लिया है। उस नीति के प्रयोग के साधन भी अनोखे होंगे। वे क्या होंगे, उसकी मैं खोज करता रहता हूं। प्रयोग कर रहा हूं। बदलती हुई परिस्थिति में मुझे अपने तरीके भी बदलने पड़ते हैं। लेकिन मेरे पास कोई बना-बनाया शास्त्र नहीं है। हमारा प्रयोग एकदम नया है। उसके कदमों का क्रम कहीं निश्चित नहीं है।मैं तो एक जिज्ञासु हूं। सत्याग्रह

के विज्ञान की खोज और विकास मैं धीरज के साथ कर रहा हूं। इस खोज से नित नया ज्ञान और नित नया प्रकाश पा रहा हूं। लोग संघर्ष के इस तरीके को गांधी से जोड़कर 'गांधीवाद' कहते थे।[xiii] गांधी का नाम लेते ही एकबारगी दो शब्द मस्तिष्क में आते हैं- सत्य और अहिंसा। ये गांधी के बीज भाव हैं। गांधी-चिंतन में सत्य और अहिंसा परस्पर संबद्ध विचार-प्रत्यय के रूप में दिखते हैं। दुनिया के तमाम विचार, धर्म, दर्शन, 'सत्य' के नाम पर ही आए। पर अपने सत्य के नाम पर दूसरों के सत्य का कितना हनन हुआ, मानव सभ्यता इसकी गवाह है। गांधी दर्शन में अहिंसा का वितान काफी विस्तृत है और बहुआयामी भी। मूल्य के तौर पर अहिंसा साधन भी है और साध्य भी।गांधी के लिए सत्य और अहिंसा सिद्धांत मात्र नहीं हैं। वे लिखते हैं- "सत्य और अहिंसा कोई आकाश-पुष्प नहीं हैं। वे हमारे प्रत्येक शब्द, व्यापार और कर्म से प्रकट होने चाहिए।" वे सत्य और अहिंसा को दुनियावी जीवन में उतारना चाहते हैं। इसे सिद्धांत से आगे जीवन के हर क्षेत्र में सिद्ध करना चाहते हैं। सत्य के संदर्भ में कहते हैं : "आज कहा जाता है सत्य व्यापार में नहीं चलता, राज-प्रकरण में नहीं चलता। तो फिर वह कहां चलता है? अगर सत्य जीवन के सभी क्षेत्रों में और सभी व्यवहारों में नहीं चल सकता, तो वह कौड़ी कीमत की चीज नहीं है। जीवन में उसका उपयोग ही क्या रहा? मैं तो जीवन के हर व्यवहार में उसके उपयोग का नित्य नया दर्शन पाता हूं।"[xiv]

गांधी दर्शन में सत्य-अहिंसा की व्यापकता इतनी अधिक है कि वह हर जगह मुमकिन है। धरती के हर कोने में। यह आकाश कुसुम नहीं है कि मस्तिष्क के विचार व्यापार में ही रहे। महज बुद्धि- विलास के लिए यह हरगिज़ नहीं। इसकी भौतिक जमीन है। यह भववादी प्रत्यय तो बिलकुल नहीं। अहिंसा की जड़ें समाज और संस्कृति में नहीं देख पाने के कारण कई लोग इसे भाववाद से जोड़ते हैं। ऐसे लोगों को हिंसा का भौतिकवाद से रिश्ता दिखता है, पर अहिंसा का नहीं। दरअसल हिंसा की विचारधारा और विचारधारा की हिंसा ऐसे लोगों के अवचेतन में जड़ जमा लेती है। ऐसे लोग हिंसा को ऊपरी तौर पर स्वीकार करने से परहेज करें, पर विचारधारात्मक हिंसा का कारण ढूंढ ही लेते हैं, भले ही भौतिकवाद के नाम पर। गांधी की प्रौढ़ बात समझ न पाने के कारण अनेक लोग यह बात उल्टे गांधी पर मढ़ देते हैं कि हिंसा की भौतिक संरचना की उपेक्षा कर रहे हैं, कि उसे मनोवैज्ञानिक सवाल मान रहे हैं।"[xv]

गांधी दर्शन से प्रभावित अन्य सुविख्यात रचनाकर हैं विष्णु प्रभाकर। इनकी सुप्रसिद्ध कहानी 'सुराज' में स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात होने वाले संघर्ष का बहुत ही जीवंत और सजीव चित्र खींचा गया है। वहीं उनकी कहानी 'धरोहर' बंगाल में आए अकाल और उसके दुष्प्रभावों का मार्मिक वृत्तांत है। 'आजादी' कहानी में भारत को स्वतन्त्र कराने के क्रम में महात्मा गांधी के संघर्षों का किस्सा है। 'मेरा वतन' देशप्रेम और राष्ट्र के प्रति समर्पण की भावना से ओतप्रोत कहानी है। 'भारत माता की जय' में कथाकार ने समाज में हो रही हिंसा को शब्दों के माध्यम से पाठकों के समक्ष प्रस्तुत

किया है और जहां गांधी जी का प्रभाव उन पर स्पष्टतया दृष्टव्य है। फणीश्वरनाथ रेणु के उपन्यास 'मैला आंचल' के पात्रों में भी स्वराज की भावना विद्यमान है।

**निष्कर्ष** - हिंदी कथा साहित्य पर महात्मा गांधी का प्रभाव अक्षुण्ण है। गांधीजी ने जो राष्ट्रीय चेतना का बिगुल बजाया उसे आत्मसात और आगे बढ़ने का कार्य हिंदी साहित्य जगत के रचनाकारों ने किया। गांधी चिंतन को समस्त देशवासियों तक पहुंचने में हिंदी कथा-कहानी एवं कविताओं का योगदान महत्वपूर्ण है। गांधीजी जिन मूल्यों को प्रचारित करना चाहते थे उनके प्रचार प्रसार में हिंदी रचनाओं की विशेष भूमिका है। गांधीवादी दर्शन एवं सिद्धांतों को रोचक ढंग से आम पाठक के सामने अभिव्यक्त करने का कार्य साहित्य और साहित्यिक रचनाकारों द्वारा सुचारू रूप से किया गया है।

---

**संदर्भ ग्रंथ सूची -**


[i] रजनी शर्मा, गांधी का जीवन, गांधी का संदेश, ( योजना : अक्तूबर 1981, पृ 25)

[ii] राजीव रंजन गिरी, बनास जन, संपादक पल्लव, मार्च 2020, पृ 07

[iii] वही, पृ 10

[iv] वही, पृ 46

[v] रमाशंकर सिंह, गांधी: निर्भीकता की आवाज़, वागर्थ, अंक 282, जनवरी 2019, पृ 69

[vi] मधुरेश, कहानीकार जैनेंद्र कुमार पुनर्विचार, सस्ता साहित्य मंडल प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ 23

[vii] नगेंद्र, विचार और अनुभूति, पृ 139

[viii] डॉ चंद्रकांत बांदिवडेकर, हिंदी उपन्यास और गांधीवाद, www.hindimkgandhi.com , chapter 20

[ix] नगेंद्र, विचार और अनुभूति, पृ 141

[x] महादेव प्रसाद, महात्मा गांधी का समाज दर्शन, पृ 30

[xi] प्रताप सिंह, गांधीजी का दर्शन, पृ 34

[xii] शंभू रत्न त्रिपाठी, गांधी धर्म और समाज, पृ 37

[xiii] राजीव रंजन गिरी, बनास जन, संपादक पल्लव, मार्च 2020, पृ 48

[xiv] वही, पृ 46

[xv] वही, पृ 47



**ईमेल-** nimi3799@gmail.com **मो. 9984805457**

-www.bohalshodhmanjusha.com Bohal Shodh Manjusha ISSN: 2395-7115
Impact Factor:8.642 January 2025 Page No. : 160-163
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

# अमृतलाल नागर के बाल साहित्य में अभिव्यक्त जीवन मूल्य

**डॉ. हेलन मेरी ए. जे,** सहायक आचार्य,
सेंट आल्बेर्टस कॉलेज एरणाकुलम पिन - 682018

हिन्दी बाल साहित्य के बहुमुखी विकास के पीछे प्रभावन बाल साहित्यकारों का अथक प्रयत्न छिपा हुआ है। लेखक ने बाल-मन के धरातल पर उतरकर उनकी इच्छाओं को समझकर उसे पूरी तरह संतुष्ट करने हेतु सुरुचिपूर्ण रचनाएँ लिखी हैं। बच्चों के सर्वांगीण विकास एवं सुसंकृत समाज की स्थापना केलिए हिन्दी बाल-साहित्य का उल्लेखनीय योगदान रहा है । हिन्दी के जाने माने साहित्यकार अमृतलाल नागर जी अपनी विशिष्ट शैली के कारण काफी प्रख्यात है। नागरजी ने जहाँ साहित्य की मुख्य धारा में उपन्यास, कथा, संस्मरण, रिपोर्ताज आदि रचे वही उससे अधिक विपुल साहित्य बाल-पाठकों को दिया । अमृतलाल नागर ने अपने बाल साहित्य लेखन में अन्य लेखकों की तरह सीधे-सीधे उपदेश नहीं दिया है, वे हर बार एक नयी युक्ती अपनाकर बच्चो की भाषा में बच्चों को समझाते में सफल हुए है। अपने विलक्षण व्यक्तित्व एवं अपनी कालजयी कृतियों द्वारा अमृतलाल नागर ने जिस रचना संसार का सृजन किया है वह भावी पीढी के रचनाकारों केलिए प्रेरणा स्त्रोत बनने में पूर्ण रूप से सक्षम है।

वर्तमान युग के बच्चे मूल्य, संस्कृति, शिक्षा नीती आदि सद्गुणों को अर्जित करना छोड़कर अनुदात्त भावों की ओर आकर्षित होकर दिशा विहीन हो रहे है। ऐसे समय में श्रेयस्कर बाल साहित्य ही इस पीढी को सही मार्ग पर अग्रसर होने में महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकता है ।

अमृतलाल नागर जी ने अपनी कहानियों द्वारा बाल-पाठकों को सुंदर और प्रभावी ढंग से जीवनमूल्य प्रेषित किए है। दयालू व्यक्ति को अच्छे नैतिक चरित्रवाला व्यक्ति माना जाता है। दूसरों के प्रति दया दिखाने का मतलब यह ज़रूरी नहीं है कि उनकेलिए कुछ बहुत बडा किया जाए। यह विनम्र होने, किसी को भावनात्मक समर्थन देने अथवा यथाशक्ति योगदान प्रदान करने जैसा कुछ भी हो सकता है। दयालुता अमृतलाल नागर की अनेक रचनाओं की विषय वस्तु रही है। मनुष्य द्वारा किसी पशु पर भी दया रखने की प्रेरणा देते हुए अमृतलाल जी ने अपनी कहानी "बहादुर सोमु" में इस मूल्य को एक सुंदर कथा-वस्तु द्वारा दर्शाया है। माता-पिता से बिछुडा एक छोटा बंदर एक पंडितजी के घर में उनकी संतानों के साथ ही पलता है। पंडितजी के पूरे परिवार

को उस बंदर के प्रति अपार प्यार है। बंदर के हृदय में भी उनके प्रति ऐसी अनुभूति है। बंदर के प्रति बच्चों के प्यार भरे व्यवहार का अमृतलाल जी ने इस प्रकार वर्णन किया है, "पंडितजी के घर में बंदर का बच्चा बडे ही लाड प्यार में पलने लगा। सोमवार के दिन जन्मलेकर इस घर में आया था इसलिए पंडितजी ने उनका नाम सोमनाथ रख दिया। घर में सब उसे सोमू-सोमू पुकारते थे। सोमु बडा नटखट था। सबका मन रिझाता था। पंडितजी अपनी बेटियाँ चुनिया-मुनिया से कहते है कि तुम्हारा कोई भाई नहीं था, इसिलए भगवान ने तुम्हें यह बंदर भैया दिया है।"1 इस प्रकार अमृतलाल नागर ने अपनी कहानियों के माध्यम से दयालुता के विभिन्न पक्षों का प्रभावशाली वर्णन किया है।

मनुष्य द्वारा स्वयं विकसित गुण में एक श्रेष्ठ गुण है ईमानदारी। किसी व्यक्ति में ईमानदारी के गुण का विकास उसके परिवार, उसके आसपास के वातावरण तथा उसकी शिक्षा-दीक्षा पर निर्भर होता है। ईमानदारी का गुण व्यक्ति के नैतिक चरित्र के पहचान देता है उसे जीवन में सफल होने और अधिक सम्मान प्राप्त करने का अधिकारी बनाता है। बाल पाठकों में ईमानदारी का गुण विकसित करने केलिए तत्पर प्रत्येक बाल-साहित्यकार के समान अमृतलाल नागर ने भी अपनी कहानी "साझा" में ईमानदारी के गुण को कहानी की विषय वस्तु बनाया है। अपने मित्र पंडितजी के मार्गदर्शन से डूँगर सिंह का व्यापार खूब फल-फूल गया। अब वे आगे अपना व्यापार बढाना नहीं चाहते हैं। किंतु व्यापार बढाने में रुचि रखनेवाले पंडितजी का सम्मान करते हुए वे कहते है - "पंडितजी तुम आगरे में नया रोज़गार चलाना चाहे तो सौक से चलाओ - मैं भी कभी-कभी आता -जाता रहूँगा।"2

अंग्रेज़ों की नई रेलवे लाइन खोलने के बाद पंडितजी का व्यापार चौपट हो गया । वे डूँगर सिंह के साथ साझेदारी में व्यापार करते थे। व्यापार में घाटे के बावजूद वे अपने ईमानदार स्वभाव के कारण डूँगर सिंह के साथ साझेदारी में व्यापार करते थे। व्यापार में घाटे के बावजूद वे अपने ईमानदार स्वभाव के कारण डूँगर सिंह से लिए गए रुपये लौटा देना चाहते थे। व्यापार में हो रहे घाटे से परिचित डूँगर सिंह द्वारा मना करने पर भी पंडितजी ने रुपया की थैली डूँगर सिंह को भिजवा दी। अमृतलाल नागर ने इस घटना में पंडितजी की ईमानदारी को दर्शाते हुए कहा है - "डूँगर सिंह ने चालीस हज़ार की थौलियाँ देखीं, उनकी आँखें छलछला उठी, बोले - मैं समझता था कुंजबिहारी (पंडितजी) का दिल बहुत बडा है।"3 इस प्रकार दो मित्र डूँगर सिंह और कुंजबिहारी के आपसी व्यवहार में नीतिमत्ता के दर्शाकर अमृतलाल नागर ने बाल-पाठकों को ईमानदार का संदेश दिया है।

"एक पत्ता जो जासूस नहीं था" - कहानी में एक पत्ते को कहानी का पात्र बनाकर अमृतलाल नागर ने जन-मानस को दर्शाया है। नगर भर में सैर करते हुए एक पत्ता तंत्री के यहाँ पहुँचा। वहाँ उसने देखा कि एक बच्चे को बलि-वेदी से बचाने केलिए उसकी माँ पुलीस से शिकायत करती है। किंतु पुलीस रिश्वत लेकर तंत्री और इस कार्य के पीछे रहीं सेठानी को छोड देती है । पुलीस के

बेईमानी भरे व्यवहार को अमृतलाल नागर ने इस प्रकार व्यक्त किया है - पुलीस ने सेठानी और तंत्री को गिरफ्तार कर लिया । पर सेठानी गिड़गिडाकर दारोगा से बोली, ""तुम मेरे सब गहने ले लो और मुझे छोड दो। दारोगा ने सेठानी से रिश्वत लेकर उसे छोट दिया । पत्ते को क्रोध आया। वह उड़कर दारोगा के मुँह पर पडा।""4 कहानी में यह भी दर्शाया गया कि ईमानदारी के अभाव में रक्षक बक्षक बन जाता है। अमृतलाल नागर जी ने पत्ते के माध्यम से ऐसे बेईमानों को हतोत्साहित किया है । इस प्रकार अमृतलाल नागर ने अपनी कहानियों द्वारा बच्चों में ईमानदारी का गुण विकसित करने की संपूर्ण चेष्टा की है।

उदारता जैसे महान गुण को बच्चों में विकसित करने का प्रयास अमृतलाल नागर ने अपनी कुछ रचनाओं द्वारा किया है। जिस व्यक्ति के विचार उदार होते हैं, जो सदा अपने आपको दूसरों की सेवा में लगाए रखता है - उसके आसपास के लोगों के विचार थी उदार हो जाता है। नागर जी की कहानी "गुण्डों के बच्चे में" उदारता की भावना को मार्मिक ढंग से दर्शाया गया है। जब एक मुसलमान बालिका सांप्रदायिक दंगे के कारण अपने परिवार से बिछुडकर भूख से मारे गुण्डों के घर का दरवाज़ा खटखटाती है तो बच्चे उदार दिल से उसे अपनाते है। गुण्डों के बच्चे अपनी पिता की क्रूरता एवं गुण्डागर्दी से प्रभावित होकर आपस में दंगे का खेल खेलते हैं। किंतु बच्चे माता की धार्मिक सहिष्णुता एवं शांति के गुण से भी प्रभावित है। इसलिए सहज ही वे मुसलमान बालिका के साथ प्यार भरा व्यवहार करने लगते हैं। नागरजी ने बच्चों की उदारता का इस प्रकार वर्णन किया है "हाथ बेचारी! अरे पुन्नु कुर्सी पर चढ़कर जल्दी से सिटकनी और कुण्डी खोल दो। बाहर का कोई इसको मार न डालो। हाल बेचारी।"5

इस प्रकार सभी बच्चे आगंतुक बच्ची को खिलापिलाकर अपने साथ ही रहने के लिए मना लेते हैं। बच्चों को इस व्यवहार से प्रभावित होकर गुण्डों में सुमति जागती है, तथा उनमें भी बच्चों के प्रति उदारता की भावना पनपती है। लेखक ने इस कहानी में परिस्थितियों को समझने केलिए उदारतापूर्वक प्रयत्न किया जाए तो अनेक झगडे शांत हो सकते हैं। उदारता में दूसरों को अपना बनाने का अद्भुत गुण है ।

लालच बुरी आदत है। लालच करने से आज तक किसी का भी भला नहीं हो पाया। नागरजी अपनी अनेक रचनाओं में लोभ-लालच से चने का संदेश दिया है। "साझा" कहानी इसका एक सटीक उदाहरण है। डूँगर सिंह और कुंज बिहारी दोनों मिलकर व्यापार करते थे। दोनों की लगन से इनकी ख्याती दूर-दूर तक फैल गयी। व्यापार की सफलता से उत्साहित होकर पंडित कुंज बिहारी ने दूसरा व्यापार चलाने का विचार किया। पर डूँगर सिंह अपनी आमदनी से ही संतुष्ट थे और आपसी व्यवहार की साफ और सच्चा बनाए रखना चाहते थे। अत: वे इस प्रकार कहते हैं, "भैया रे मैं सलाह नहीं दूँगा इस समय अंग्रेज़ का राज है । नई-नई रेलें खोल रहे हैं। हमारा कारोबार जम न सकेगा। कल को जो इधर की रेल चला दी तो अपुन ने जो कमाया है सो भी नष्ट हो जाएगा।"6 इस प्रकार नागरजी ने डूँगर सिंह की प्रतिक्रिया द्वारा बच्चों को लालच न करने की सीख दी है।

अमृतलाल नागर जीने बच्चों को सफलता केलिए दृढ़ संकल्प रहने की प्रेरणा दिया है। केवल मन में चाहने से काम सिद्ध नहीं हो जाता है। कार्य सिद्ध केलिए हमें कठिन प्रयत्न भी करना पडता है और दृढ संकल्प लेना पड़ता है। दृढ़ संकल्प कठिन से कठिन कार्य को सरलतम बना देता है।

नागरजी की "ध्रुव की कथा" नामक कहानी में दृढ संकल्प के अनेक उदाहरण दिया है। सौतेली माँ के पक्षपातपूर्ण व्यवहार के कारण ध्रुव चाहने पर अपने पिता की गोद में नहीं बैठ पाता। वह दुःखी होकर अपनी माता सुनीति के समक्ष अपना दुःख व्यक्त करता है। सुनीति अपने दुःखी पुत्र को आश्वासन देते हुए कहती है कि भगवान तुझे इससे भी ऊँचा आसन देंगे। किंतु परमपिता परमेश्वर की गोद पाने केलिए तुम्हें कठिन तपस्या करनी पडेगी। यह सुनते ही ध्रुव के मन में तपस्या करने का विचार आ गया। ध्रुव के दृढ संकल्प को अमृतलाल नागरजी ने इस प्रकार दर्शाया है - "ध्रुव ने कहा - माँ तुमने बहुत अच्छा किया जो सारी कठिनाइयाँ मेरे आग बखान दीं। परंतु तुम्हें विश्वास दिलाता हूँ कि मैं इन सारी कठिनाइयों को जीत लूँगा और परमपिता की गोद में बैठूँगा। तुम मुझे आशीर्वाद दो और किसी अच्छे गुरु की सेवा में डाल दो, जिससे योग-मार्ग से परमपिता को पा लूँ। इसप्रकार ध्रव ने न केवल संकल्प लिया पर उसे पूरा करके भी दिखाया। इस प्रकार दृढ संकल्प चुनौतियों का सामना करने में काम आता है। यह लक्ष्य प्राप्ति का मार्ग सुगम बनाकर लक्ष्य तक पहुँचाता है।

निष्कर्ष के रूप में हमें कहा जा सकता है कि अमृतलाल नागर ने अपने बाल साहित्य में कहानियाँ, उपन्यास, कविताएँ जीवनी एवं नाटक आदी विधाओं पर उल्लेखनीय कार्य किया है। उनके साहित्य में बच्चों में सामाजिक एवं नैतिक मूल्य रोपने के गुण प्रमुख रूप से उभर कर आते हैं। बाल्यावस्था से ही विकसित होते मूल्य, उचित-अनुचित, सत्यवादिता, आत्मनियंत्रण, दया, करुणा, उत्तरजायित्व की भावना आदि से ही भविष्य में व्यक्ति के नैतिक पक्ष का निर्माण होता है। ये मूल्य अमृतलाल नागर ने अपनी बाल-रचनाओं द्वारा बाल-मन के धरातल तक उतरकर प्रेषित किये हैं।

**संन्दर्भ ग्रन्थ सूची**


1. संपूर्ण बाल रचनाएँ- अमृतलाल नागर - लोकभारती प्रकाशन - द्वितीय संस्करण - 2013 - बहादूर सोमु - पृ. 69
2. वही - पृ. 25
3. वही - पृ. 27
4. वही - पृ. 52
5. वही - पृ. 29
6. वही - पृ. 24
7. वही - पृ. 378

www.bohalshodhmanjusha.com Bohal Shodh Manjusha ISSN: 2395-7115
Impact Factor:8.642 January 2025 Page No. : 164-174
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

# लोकतांत्रिक समाज में लैंगिक समानता को बढ़ावा देने और महिलाओं को सशक्त बनाने में शिक्षा की भूमिका

**पुजा कुमारी,** शोध छात्रा,
अर्थशास्त्र विभाग, एम.यू. बोधगया

**सारांश**

शिक्षा का भूमिका: लिंग समानता को बढ़ावा देने और लोकतांत्रिक समाज में महिलाओं को सशक्त बनाने में एक महत्वपूर्ण चर्चा का विषय है, विशेष रूप से वर्तमान समय में जहाँ लिंग समानता और सशक्तिकरण अत्यधिक महत्वपूर्ण हो गए हैं। शिक्षा महिलाओं को सक्रिय नागरिक बनने, सूचित निर्णय लेने और लोकतांत्रिक प्रक्रिया में भाग लेने में महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकती है। इस सारांश का उद्देश्य लिंग समानता, लोकतंत्रीकरण और महिलाओं के सशक्तिकरण में शिक्षा के महत्व का अन्वेषण करना है। सारांश इस प्रकार शुरू होगा कि वह उन चुनौतियों को रेखांकित करेगा जिनका महिलाएं समान लोकतांत्रिक समाजों की प्राप्ति में सामना करती हैं, जिनमें सामाजिक, सांस्कृतिक और आर्थिक कारक शामिल हैं। इसके बाद सारांश यह जांचेगा कि शिक्षा कैसे इन चुनौतियों का समाधान कर सकती है, महिलाओं को लोकतांत्रिक प्रक्रिया में भाग लेने के लिए ज्ञान, कौशल और आत्मविश्वास प्रदान करके। इसके बाद, यह शिक्षा के लिंग समानता को बढ़ावा देने के लाभों पर चर्चा करेगा, जिसमें राजनीतिक भागीदारी में वृद्धि, बेहतर आर्थिक अवसर, और स्वास्थ्य और कल्याण में सुधार शामिल हैं। इसके अतिरिक्त, यह सारांश शिक्षा के पारंपरिक लिंग मानदंडों और रूढ़िवादिता को चुनौती देने, महिलाओं के अधिकारों को बढ़ावा देने और समावेशी एवं समान समाजों के निर्माण में भूमिका की भी जांच करेगा। यह चर्चा करेगा कि शिक्षा कैसे पारंपरिक लिंग मानदंडों और रूढ़िवादिता को चुनौती दे सकती है, महिलाओं के अधिकारों को बढ़ावा दे सकती है और अधिक समावेशी, समान समाजों का निर्माण कर सकती है, साथ ही यह महिलाओं की शिक्षा के लाभों का अन्वेषण करेगा, जैसे कि बढ़ी हुई राजनीतिक भागीदारी, बेहतर आर्थिक अवसरों की उपलब्धता, और स्वास्थ्य और कल्याण में सुधार।

यह सारांश इस प्रकार समाप्त होगा कि यह महिला शिक्षा के महत्व को लिंग समानता और महिलाओं के सशक्तिकरण को बढ़ावा देने और समान लोकतांत्रिक समाजों को प्राप्त करने

में उजागर करेगा और लड़कियों और महिलाओं के लिए शिक्षा में बढ़े हुए निवेश की आवश्यकता को प्रमुखता से रखेगा।

अंत में, शिक्षा महिलाओं के लिए समान लोकतांत्रिक समाज की प्राप्ति में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। शिक्षा के माध्यम से महिलाएं लोकतांत्रिक प्रक्रिया में भाग लेने, पारंपरिक लिंग मानदंडों और रूढ़िवादिता को चुनौती देने, और लिंग समानता और सशक्तिकरण को बढ़ावा देने के लिए आवश्यक ज्ञान, कौशल और आत्मविश्वास प्राप्त कर सकती हैं। इसलिए, लड़कियों और महिलाओं के लिए शिक्षा में निवेश करना लिंग समानता, लोकतंत्रीकरण को बढ़ावा देने और समावेशी एवं समान समाजों का निर्माण करने के लिए आवश्यक है।

**परिचय**

शिक्षा समाजों के विकास, व्यक्तियों को सशक्त बनाने, और समावेशी एवं समान लोकतांत्रिक प्रणालियों को बढ़ावा देने में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। जब महिलाओं की बात आती है, तो वे परिवार, समाज और देश की प्रगति में बहुत महत्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं। शिक्षा प्रगति के लिए उत्प्रेरक बन जाती है, यह बाधाओं को समाप्त करती है, और सामाजिक, आर्थिक, और राजनीतिक उन्नति के अवसरों को उत्पन्न करती है। लोकतांत्रिक समाज में लिंग समानता को बढ़ावा देने और महिलाओं को सशक्त बनाने में शिक्षा की भूमिका को कम नहीं आंका जा सकता। यह न केवल महिलाओं को नागरिक जीवन में पूरी तरह से भाग लेने की अनुमति देती है, बल्कि लिंग समानता, सामाजिक न्याय और मानवाधिकारों को भी बढ़ावा देती है। देश में लोकतंत्र को सफल बनाने के लिए महिलाओं की शिक्षा पुरुषों के साथ आवश्यक है। यह निबंध शिक्षा की परिवर्तनकारी शक्ति का अन्वेषण करता है, जो महिलाओं को सशक्त बनाती है, लिंग आधारित भेदभाव को समाप्त करती है, और एक ऐसे समाज का निर्माण करती है जहां महिलाएं सक्रिय और समान योगदानकर्ता के रूप में फल-फूल सकें। जैसा कि हम सभी जानते हैं कि शिक्षित महिलाएं परिवार में वास्तविक खुशी का स्रोत होती हैं। शिक्षा के विभिन्न आयामों, इसके महिलाओं के जीवन पर प्रभाव, और जो चुनौतियाँ अभी भी मौजूद हैं, उनका अध्ययन करके, हम बेहतर तरीके से समझ सकते हैं कि शिक्षा महिलाओं के लिए एक अधिक समावेशी और न्यायपूर्ण दुनिया बनाने में कितनी महत्वपूर्ण है। शिक्षा महिलाओं के सशक्तिकरण के लिए एक मील का पत्थर है क्योंकि यह उन्हें चुनौतियों का सामना करने, अपने पारंपरिक भूमिका से निपटने और अपने जीवनशैली को बदलने की क्षमता प्रदान करती है (भाट, 2015)।

भारत में महिला साक्षरता दर पुरुषों की साक्षरता दर से कम है। लड़कों की तुलना में लड़कियों का नामांकन अकादमिक संस्थाओं में कम होता है और उनमें से कई स्कूल छोड़ देती हैं। "एक लड़की को शिक्षा दो, एक राष्ट्र को सशक्त बनाओ।" महिलाएं राष्ट्र के विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं। इस सदी में देश की आर्थिक समृद्धि केवल पुरुषों पर निर्भर नहीं है, बल्कि यह महिलाओं के हाथों में भी है। समाज में महिलाओं की भूमिका को बेहतर बनाने के लिए सरकार ने मुख्य रूप से उनकी शिक्षा और रोजगार के अवसरों को बढ़ावा देने

पर ध्यान केंद्रित किया है। इन परिस्थितियों में, हमें भारत के हर कोने में लिंग समानता, साक्षरता की दर, और महिलाओं के सशक्तिकरण में और सुधार की आवश्यकता है। इसके लिए, भारतीय सरकार ने उन्हें विकास की मुख्यधारा में लाने के लिए कई योजनाएँ शुरू की हैं। इन पहलों ने महिलाओं की सामाजिक-आर्थिक स्थितियों में स्पष्ट बदलाव लाए हैं। जब भारत को स्वतंत्रता प्राप्त हुई, तो महिलाओं की भागीदारी का व्यापक रूप से सम्मान किया गया। जब भारतीय संविधान का मसौदा तैयार किया गया, तो उसने महिलाओं को समान अधिकार दिए, उन्हें देश के कानूनी नागरिक के रूप में माना और स्वतंत्रता और अवसर के मामले में पुरुषों के समान माना। भारतीय संविधान के 86वें संशोधन के तहत 6 से 14 वर्ष के बच्चों के लिए मुफ्त और अनिवार्य शिक्षा भारतीय नागरिकों का मौलिक अधिकार है। वास्तव में, भारतीय सरकार ने "सर्व शिक्षा अभियान" जैसी कुछ उपायों को अपनाया है (इस कार्यक्रम का मुख्य उद्देश्य विशेष रूप से गरीब ग्रामीण क्षेत्रों की लड़कियों को प्राथमिक शिक्षा देना है)। इन गतिविधियों के बावजूद, महिलाओं की शिक्षा में कई बाधाएँ हैं। इसलिए, यह अध्ययन भारत में महिलाओं की शिक्षा पर ध्यान केंद्रित करता है और इसका विश्लेषण करता है।

**अध्यान का उद्देश्य:**

इस अध्ययन का उद्देश्य लोकतांत्रिक समाज में लिंग समानता को बढ़ावा देने और महिलाओं को सशक्त बनाने में शिक्षा की भूमिका की जांच करना है। यह अध्ययन यह जानने का प्रयास करेगा कि शिक्षा किस प्रकार महिलाओं को सशक्त बनाती है, लिंग समानता को बढ़ावा देती है, और ऐसे समाज के विकास में योगदान करती है जहां महिलाओं को समान अधिकार और अवसर मिलते हैं। इस अध्ययन के विशिष्ट उद्देश्य निम्नलिखित हैं:

1. **महिलाओं के सशक्तिकरण पर शिक्षा के प्रभाव की जांच करना**: इस उद्देश्य में यह अध्ययन करना शामिल है कि शिक्षा किस प्रकार महिलाओं के आत्मविश्वास, ज्ञान, कौशल और एजेंसी को बढ़ाती है, जिससे वे सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक क्षेत्रों में सक्रिय रूप से भाग ले सकती हैं।
2. **लिंग समानता को बढ़ावा देने में शिक्षा की भूमिका का विश्लेषण करना**: इस उद्देश्य का ध्यान यह समझने पर है कि शिक्षा पारंपरिक लिंग मानदंडों, रूढ़िवादिता और भेदभावपूर्ण प्रथाओं को कैसे चुनौती देती है। इसका उद्देश्य यह अन्वेषण करना है कि शिक्षा कैसे एक ऐसा वातावरण उत्पन्न कर सकती है, जहां महिलाओं को समान रूप से माना जाता है, उन्हें समान अवसर मिलते हैं, और वे लिंग आधारित भेदभाव से मुक्त होती हैं।
3. **लोकतांत्रिक प्रक्रियाओं में महिलाओं की भागीदारी पर शिक्षा के प्रभाव का मूल्यांकन करना**: इस उद्देश्य में शिक्षा और महिलाओं की लोकतांत्रिक प्रणालियों में भागीदारी के बीच संबंध का अध्ययन करना शामिल है, जैसे कि मतदान, राजनीतिक नेतृत्व और निर्णय-निर्माण। इसका उद्देश्य यह पहचानना है कि शिक्षा महिलाओं को लोकतांत्रिक

समाजों को आकार देने में सक्रिय रूप से योगदान करने के लिए कैसे सशक्त बना सकती है।

4. **महिलाओं की शिक्षा और सशक्तिकरण के लिए चुनौतियों और बाधाओं की पहचान करना**: इस उद्देश्य का लक्ष्य उन बाधाओं की पहचान और विश्लेषण करना है जो महिलाओं की शिक्षा तक पहुंच और उनके बाद के सशक्तिकरण में रुकावट डालती हैं। इसका उद्देश्य यह उजागर करना है कि समाजिक-सांस्कृतिक मानदंड, आर्थिक प्रतिबंध, संस्थागत पक्षपाती नीतियां और संसाधनों की कमी जैसी समस्याएँ महिलाओं की शिक्षा और लोकतांत्रिक भागीदारी में प्रगति में बाधक हैं।
5. **महिलाओं के लिए शिक्षा में सुधार और समानता प्राप्त करने के लिए सिफारिशें प्रस्तुत करना**: निष्कर्षों के आधार पर, इस उद्देश्य का लक्ष्य महिलाओं की गुणवत्तापूर्ण शिक्षा तक पहुंच बढ़ाने, शैक्षिक प्रणालियों में लिंग समानता को बढ़ावा देने, और लोकतांत्रिक प्रक्रियाओं में महिलाओं की पूरी भागीदारी के लिए एक सक्षम वातावरण बनाने के लिए व्यावहारिक सिफारिशें और रणनीतियाँ प्रदान करना है।

इन उद्देश्यों को पूरा करके, यह अध्ययन महिलाओं के लिए समान लोकतांत्रिक समाज के निर्माण में शिक्षा की भूमिका पर मौजूदा ज्ञान में योगदान करने का प्रयास करेगा। यह ऐसे दृष्टिकोण और सिफारिशें प्रदान करने की कोशिश करेगा, जो महिलाओं की शिक्षा, सशक्तिकरण और लिंग समानता को बढ़ावा देने के लिए नीतियों, प्रथाओं और हस्तक्षेपों को सूचित कर सके।

**विधि**

भारत में लोकतांत्रिक समाज में लिंग समानता को बढ़ावा देने और महिलाओं को सशक्त बनाने में शिक्षा की भूमिका अत्यधिक महत्वपूर्ण है। शिक्षा महिलाओं को सशक्त बनाने, लिंग समानता को बढ़ावा देने और लोकतांत्रिक मूल्यों को बढ़ावा देने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। यह विधि अध्ययन में "भारत में लोकतांत्रिक समाज में लिंग समानता को बढ़ावा देने और महिलाओं को सशक्त बनाने में शिक्षा की भूमिका" पर ध्यान केंद्रित करने के लिए अपनाई जाएगी।

1. **अध्यान का उद्देश्य**: इस अध्ययन का प्राथमिक उद्देश्य भारत में महिलाओं के लिए एक समान लोकतांत्रिक समाज बनाने में शिक्षा की भूमिका का अन्वेषण और समझना है। अध्ययन का लक्ष्य यह पहचानना है कि शिक्षा महिलाओं के सशक्तिकरण, लिंग समानता और लोकतांत्रिक मूल्यों पर क्या प्रभाव डालती है। साथ ही यह यह भी अध्ययन करेगा कि कौन सी चुनौतियाँ और बाधाएँ महिलाओं की शिक्षा तक पहुँच और समाज में उनकी पूर्ण भागीदारी में रुकावट डालती हैं।
2. **साहित्य समीक्षा**: भारत में महिलाओं के बीच लिंग समानता और लोकतांत्रिक मूल्यों को बढ़ावा देने में शिक्षा की भूमिका पर उपलब्ध साहित्य की व्यापक समीक्षा की जाएगी। साहित्य समीक्षा अध्ययन के लिए सैद्धांतिक आधार प्रदान करेगी और मौजूदा ज्ञान में जो अंतराल हैं, उन्हें पहचानने में मदद करेगी।
3. **अध्यान डिजाइन**:

a. **अध्यान दृष्टिकोण**: इस अध्ययन में मिश्रित-विधि शोध दृष्टिकोण अपनाया जाएगा, जिसमें मात्रात्मक और गुणात्मक दोनों विधियों का उपयोग किया जाएगा ताकि इस विषय का समग्र समझ प्राप्त किया जा सके।

b. **डेटा संग्रहण**:

- **मात्रात्मक डेटा**: महिलाओं की वर्तमान शैक्षिक स्थिति, उनके सशक्तिकरण का स्तर और लोकतांत्रिक मूल्यों के प्रति उनके दृष्टिकोण का आकलन करने के लिए सर्वेक्षण या प्रश्नावली के माध्यम से मात्रात्मक डेटा एकत्रित किया जाएगा।
- **गुणात्मक डेटा**: महिलाओं के शिक्षा तक पहुंचने और लोकतांत्रिक प्रक्रियाओं में भाग लेने में आने वाली व्यक्तिगत समस्याओं, दृष्टिकोणों और अनुभवों का अन्वेषण करने के लिए गहरी साक्षात्कार, फोकस समूह चर्चाएँ या केस स्टडी की जाएगी।

c. **नमूना चयन**: विभिन्न क्षेत्रों, सामाजिक-आर्थिक पृष्ठभूमियों और शैक्षिक स्तरों से प्रतिनिधित्व सुनिश्चित करने के लिए स्ट्रैटिफाइड सैंपलिंग तकनीक का उपयोग किया जाएगा। नमूने का आकार इस प्रकार होना चाहिए कि इसके निष्कर्षों को भारत की महिला आबादी पर सामान्यीकृत किया जा सके।

d. **डेटा विश्लेषण**: मात्रात्मक डेटा का विश्लेषण उपयुक्त सांख्यिकीय तकनीकों जैसे विवरणात्मक सांख्यिकी, सहसंबंध विश्लेषण और रिग्रेशन विश्लेषण के माध्यम से किया जाएगा। गुणात्मक डेटा के लिए थीमैटिक विश्लेषण का उपयोग किया जा सकता है, जिससे साक्षात्कारों और फोकस समूह चर्चाओं से उभरने वाले पैटर्न, विषयों और श्रेणियों की पहचान की जा सके।

4. **नैतिक विचार**: डेटा संग्रहण से पहले सभी प्रतिभागियों से सूचित सहमति प्राप्त की जाएगी। अध्ययन के दौरान प्रतिभागियों की गोपनीयता और गुमनामी सुनिश्चित की जाएगी। मानव विषयों से संबंधित अनुसंधान के लिए नैतिक दिशानिर्देशों और मानकों का पालन किया जाएगा।
5. **निष्कर्ष और विश्लेषण**: एकत्र किए गए डेटा को व्यवस्थित तरीके से प्रस्तुत और विश्लेषित किया जाएगा। निष्कर्षों को प्रस्तुत करने के लिए उपयुक्त तालिकाओं, ग्राफों और दृश्य प्रतिनिधित्व का उपयोग किया जाएगा। निष्कर्षों की तुलना और विरोधाभासों की पहचान करने के लिए मौजूदा साहित्य के साथ तुलना की जाएगी।
6. **चर्चा और व्याख्या**: निष्कर्षों की व्याख्या अनुसंधान उद्देश्यों के संदर्भ में की जाएगी। नीति निर्माण, शैक्षिक हस्तक्षेपों और भारत में लिंग समानता को बढ़ावा देने के लिए निष्कर्षों के प्रभाव पर चर्चा की जाएगी। शिक्षा की भूमिका को उजागर करते हुए महिलाओं के लिए एक समान लोकतांत्रिक समाज बनाने की दिशा में पहचान गई चुनौतियों और बाधाओं को पार करने के लिए रणनीतियाँ सुझाई जाएंगी।

**निष्कर्ष**

भारत में लोकतांत्रिक समाज में लिंग समानता को बढ़ावा देने और महिलाओं को सशक्त बनाने में शिक्षा की भूमिका पर किए गए अनुसंधान से निम्नलिखित प्रमुख निष्कर्ष प्राप्त हुए हैं:

1. **शिक्षा महिलाओं को सशक्त बनाती है**: शिक्षा महिलाओं को सशक्त बनाने और उनके सामाजिक-आर्थिक स्थिति को बढ़ाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। निष्कर्षों से पता चलता है कि जो महिलाएँ औपचारिक शिक्षा प्राप्त करती हैं, वे बेहतर रोजगार के अवसर, उच्च आय स्तर और बेहतर निर्णय लेने की क्षमता प्राप्त करती हैं। शिक्षा महिलाओं को ज्ञान, कौशल और आत्मविश्वास प्रदान करती है, जिससे वे अपने अधिकारों का दावा कर सकती हैं और समाज में सक्रिय रूप से भाग ले सकती हैं।
2. **लिंग समानता और शिक्षा**: शिक्षा लिंग समानता को बढ़ावा देने के लिए एक उत्प्रेरक का कार्य करती है। अध्ययन में यह पाया गया कि शिक्षा महिलाओं को पारंपरिक लिंग भूमिकाओं और रूढ़िवादिता को चुनौती देने में सक्षम बनाती है। शिक्षित महिलाएँ भेदभावपूर्ण प्रथाओं पर सवाल उठाने और उन्हें चुनौती देने, अपने अधिकारों का पक्ष `ने और समान अवसरों की मांग करने की अधिक संभावना रखती हैं। शिक्षा महिलाओं को उन सामाजिक मानदंडों को चुनौती देने के उपकरण प्रदान करती है जो लिंग आधारित भेदभाव को बढ़ावा देते हैं, जिससे लिंग समानता को बढ़ावा मिलता है।
3. **लोकतांत्रिक मूल्यों का संवर्धन**: शिक्षा महिलाओं में लोकतांत्रिक मूल्यों के विकास में योगदान करती है। अनुसंधान निष्कर्षों से यह स्पष्ट होता है कि शिक्षित महिलाएँ समानता, न्याय, स्वतंत्रता और भागीदारी जैसे लोकतांत्रिक सिद्धांतों को बेहतर समझती हैं। वे नागरिक और राजनीतिक गतिविधियों में अधिक भाग लेती हैं, अपने मतदान के अधिकार का उपयोग करती हैं और सामुदायिक विकास पहलों में हिस्सा लेती हैं। शिक्षा आलोचनात्मक सोच, विश्लेषणात्मक कौशल और नागरिक जिम्मेदारी की भावना को बढ़ावा देती है, जिससे महिलाओं की लोकतांत्रिक प्रक्रियाओं में सक्रिय भागीदारी होती है।
4. **बाधाएँ और चुनौतियाँ**: अध्ययन में महिलाओं की शिक्षा तक पहुँच और समाज में उनकी पूर्ण भागीदारी में रुकावट डालने वाली कई बाधाओं और चुनौतियों की पहचान की गई। इन बाधाओं में समाजिक मान्यताएँ और दृष्टिकोण, जो पुरुषों की शिक्षा को प्राथमिकता देते हैं, बाल विवाह, लिंग आधारित हिंसा, सीमित वित्तीय संसाधन, सुरक्षित और सुलभ शैक्षिक ढाँचे की कमी, और लड़कियों की शिक्षा के महत्व के बारे में जागरूकता की कमी शामिल हैं। इन बाधाओं को संबोधित करना महिलाओं के लिए समान और समावेशी शैक्षिक वातावरण बनाने के लिए महत्वपूर्ण है।
5. **नीति निहितार्थ**: निष्कर्षों के महत्वपूर्ण नीति निहितार्थ हैं। अध्ययन में यह आवश्यकता जताई गई है कि लिंग-संवेदनशील शिक्षा प्रणालियों को बढ़ावा देने, लड़कियों के नामांकन और बने रहने की दरों को बढ़ाने, सुरक्षित और समावेशी शैक्षिक वातावरण सुनिश्चित करने, और महिलाओं की शिक्षा के लिए समान अवसर प्रदान करने के लिए लक्षित

नीतियाँ और हस्तक्षेप आवश्यक हैं। यह महिलाओं के अधिकारों की रक्षा करने, लिंग आधारित हिंसा को समाप्त करने और शिक्षा तक समान पहुँच को बढ़ावा देने के लिए कानूनों और नीतियों को लागू करने के महत्व को उजागर करता है।

6. **भविष्य के अनुसंधान की दिशा**: जबकि यह अध्ययन भारत में लोकतांत्रिक समाज में लिंग समानता को बढ़ावा देने और महिलाओं को सशक्त बनाने में शिक्षा की भूमिका पर मूल्यवान जानकारी प्रदान करता है, कुछ ऐसे क्षेत्र हैं जिनका आगे अनुसंधान किया जा सकता है। भविष्य के अनुसंधान में महिलाओं के सशक्तिकरण पर शिक्षा के दीर्घकालिक प्रभाव का अध्ययन, विशेष शैक्षिक हस्तक्षेपों की प्रभावशीलता का मूल्यांकन, और लिंग के साथ अन्य कारकों जैसे जाति, वर्ग और धर्म के अंतर्संबंध का अध्ययन किया जा सकता है।

**शिक्षा में लिंग असमानता**

भारत में महिलाओं के लिए समान और न्यायपूर्ण लोकतांत्रिक समाज की प्राप्ति में शिक्षा में लिंग असमानता एक महत्वपूर्ण बाधा है। हाल के वर्षों में प्रगति के बावजूद, शिक्षा में लिंग आधारित भेदभाव आज भी मौजूद है, जैसे शिक्षा तक पहुँच, नामांकन, संरक्षण, और शिक्षा की गुणवत्ता में असमानताएँ। यह खंड भारत में महिलाओं के लिए समान और न्यायपूर्ण लोकतांत्रिक समाज की प्राप्ति के संदर्भ में शिक्षा में लिंग असमानता के प्रमुख पहलुओं की जांच करता है। शिक्षा में लिंग आधारित भेदभाव अब भी व्यापक रूप से मौजूद है। शिक्षा में लिंग समानता प्राप्त करना केवल इसके अंतर्निहित मूल्य के कारण महत्वपूर्ण नहीं है, बल्कि इसका विकासात्मक दृष्टिकोणों पर भी गहरा प्रभाव पड़ता है। दरअसल, कई अध्ययन यह दिखाते हैं कि महिलाओं की शैक्षिक उपलब्धि स्तर में वृद्धि से गरीबी में कमी, स्वास्थ्य परिणामों में सुधार, और श्रम बाजार में महिलाओं की भागीदारी बढ़ सकती है, जो आर्थिक विकास में योगदान देती है।

• **शिक्षा तक पहुँच**: शिक्षा तक पहुँच में लिंग आधारित भेदभाव भारत में एक महत्वपूर्ण समस्या बनी हुई है। पारंपरिक मान्यताएँ और भेदभावपूर्ण प्रथाएँ अक्सर लड़कियों की शिक्षा तक पहुँच को सीमित करती हैं, खासकर ग्रामीण क्षेत्रों और हाशिए पर स्थित समुदायों में। गरीबी, बा विवाह, बाल श्रम, और लड़कियों की शिक्षा के महत्व के प्रति जागरूकता की कमी जैसे कारक शिक्षा में लिंग आधारित असमानता के स्थायी बने रहने में योगदान करते हैं।

• **नामांकन और संरक्षण**: हालांकि स्कूलों में लड़कियों के नामांकन दरों में सुधार के प्रयास किए गए हैं, लेकिन संरक्षण से संबंधित चुनौतियाँ अभी भी मौजूद हैं। लड़कियों को कई बाधाओं का सामना करना पड़ता है, जैसे सामाजिक अपेक्षाएँ, घरेलू जिम्मेदारियाँ, स्वच्छता सुविधाओं की कमी, और स्कूल जाने के दौरान सुरक्षा संबंधी चिंताएँ। ये रुकावटें अक्सर लड़कियों के लिए लड़कों की तुलना में उच्च ड्रॉपआउट दर का कारण बनती हैं, जो उनकी शैक्षिक अवसरों को सीमित करती हैं और उनके दीर्घकालिक भविष्य को प्रभावित करती हैं।

• **शिक्षा की गुणवत्ता**: शिक्षा की गुणवत्ता में लिंग आधारित असमानताएँ लिंग असमानता को और बढ़ाती हैं। लड़कियों को अक्सर कक्षा में लिंग आधारित भेदभाव का सामना करना पड़ता है, जिसमें रूढ़िवादिता, भेदभावपूर्ण प्रथाएँ, और संसाधनों और अवसरों तक सीमित पहुँच शामिल हैं। महिला शिक्षकों की कमी और लिंग-संवेदनशील शिक्षाशास्त्र की कमी भी लड़कियों के शैक्षिक अनुभवों पर असर डाल सकती है। लिंग-संवेदनशील पाठ्यक्रम और शिक्षण विधियों पर ध्यान की कमी लिंग आधारित रूढ़िवादिता को बढ़ावा दे सकती है और लड़कियों की शैक्षिक उपलब्धियों में बाधा डाल सकती है।

• **सामाजिक-सांस्कृतिक मान्यताएँ और दृष्टिकोण**: गहरी जड़ें जमाई हुई सामाजिक-सांस्कृतिक मान्यताएँ और दृष्टिकोण शिक्षा में लिंग असमानता को मजबूती प्रदान करती हैं। पितृसत्तात्मक विश्वास और लिंग आधारित रूढ़िवादिता महिलाओं की भूमिकाओं के बारे में अपेक्षाएँ निर्धारित करती हैं और उनकी शैक्षिक आकांक्षाओं को सीमित करती हैं। पारंपरिक लिंग भूमिकाओं के विचार अक्सर लड़कों की शिक्षा को लड़कियों की शिक्षा पर प्राथमिकता देते हैं, जो लिंग असमानता के चक्र को बढ़ावा देते हैं। इन मान्यताओं को चुनौती देना और अधिक समावेशी और समानतावादी दृष्टिकोणों की ओर बढ़ावा देना शिक्षा में लिंग समानता प्राप्त करने के लिए आवश्यक है।

• **अंतरसंबंधिता**: शिक्षा में लिंग असमानता अन्य प्रकार के भेदभाव, जैसे जाति, वर्ग और धर्म के साथ भी इंटरसेक्ट करती है, जो असमानताओं को और बढ़ाती है। हाशिए पर स्थित और वंचित समुदायों की लड़कियों, जैसे दलित, आदिवासी, और अल्पसंख्यक समुदायों की लड़कियाँ, शिक्षा तक पहुँचने में और भी जटिल बाधाओं का सामना करती हैं। लिंग असमानता की अंतरसंबंधित प्रकृति को पहचानना और इसे संबोधित करना सभी महिलाओं के लिए समान शैक्षिक अवसरों को बढ़ावा देने के लिए आवश्यक है।

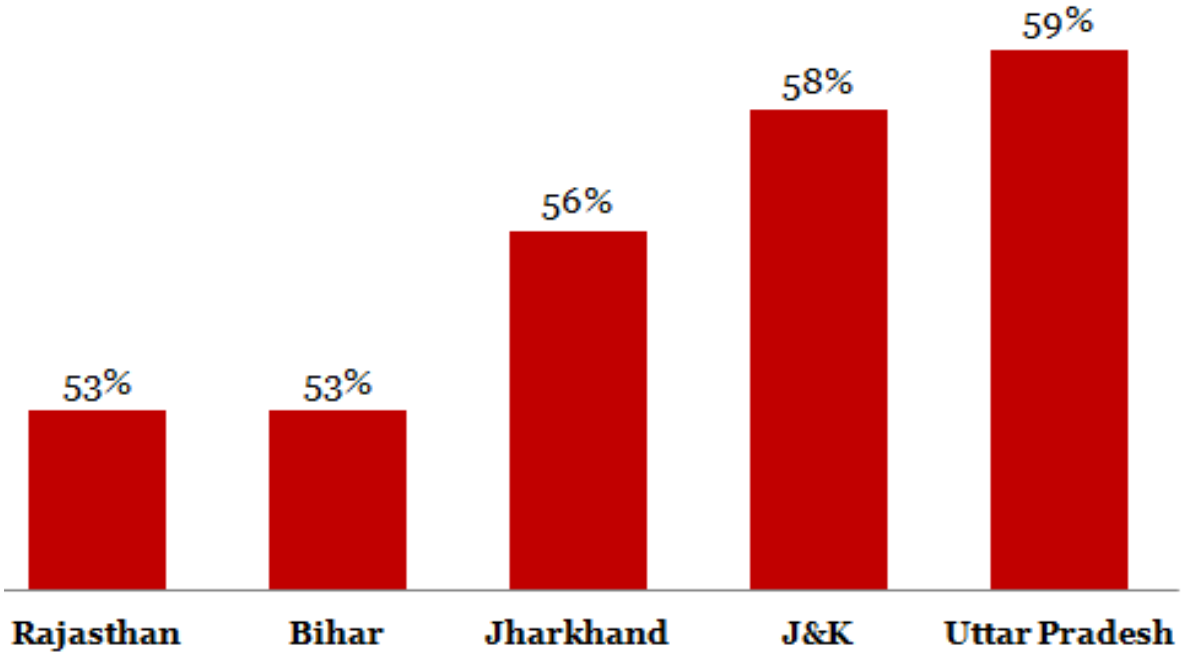

**भारत में सबसे खराब महिला साक्षरता दर वाले राज्य**

**शिक्षा में लिंग असमानता को संबोधित करना:**

भारत में महिलाओं के लिए समान अवसर और एक समान लोकतांत्रिक समाज प्राप्त करने के लिए शिक्षा में लिंग असमानता को संबोधित करना अत्यंत महत्वपूर्ण है। इसके लिए प्रमुख रणनीतियाँ निम्नलिखित हैं:

- **नीति सुधार:** लिंग-संवेदनशील नीतियों और कानूनी ढांचों को लागू करना, जो समान पहुंच को बढ़ावा दें, भेदभावपूर्ण प्रथाओं को समाप्त करें, और लड़कियों के लिए एक सुरक्षित और समावेशी शिक्षण वातावरण सुनिश्चित करें।
- **जागरूकता और अभियान:** लड़कियों की शिक्षा के महत्व के बारे में जागरूकता बढ़ाना, लिंग भेदभावपूर्ण रूढ़िवादियों को चुनौती देना, और समुदायों में लड़कियों की शिक्षा का समर्थन करने के लिए सक्रिय रूप से प्रचार करना।
- **लड़कियों का सशक्तिकरण:** लक्षित हस्तक्षेपों के माध्यम से लड़कियों की आत्ममूल्यता, आत्मविश्वास और क्षमता को बढ़ावा देना, ताकि वे सामाजिक बाधाओं को पार करके शिक्षा प्राप्त कर सकें।
- **शिक्षक प्रशिक्षण और लिंग-संवेदनशील पेडागोजी:** शिक्षकों को लिंग-संवेदनशील शिक्षण विधियों पर प्रशिक्षण देना, समावेशी कक्षा वातावरण को बढ़ावा देना, और रूढ़िवादियों और भेदभावपूर्ण दृष्टिकोणों को संबोधित करना।
- **संरचना और संसाधन:** उपयुक्त और सुरक्षित शिक्षा संरचना सुनिश्चित करना, जिसमें लिंग-आधारित अलग शौचालय, परिवहन सुविधाएँ और तकनीकी संसाधनों और अध्ययन सामग्री तक पहुंच शामिल हो।
- **सहयोग और साझेदारी:** सरकार, नागरिक समाज संगठनों और समुदायों के बीच सहयोग को मजबूत करना ताकि सामूहिक रूप से शिक्षा में लिंग असमानता को संबोधित किया जा सके और नीति परिवर्तनों के लिए अभियान चलाया जा सके।

शिक्षा में लिंग असमानता को संबोधित करके, भारत महिलाओं के लिए एक समान लोकतांत्रिक समाज की दिशा में महत्वपूर्ण कदम उठा सकता है। समान पहुंच सुनिश्चित करना, शिक्षा की गुणवत्ता में सुधार करना, और लिंग मानदंडों को चुनौती देना महिलाओं को सशक्त बनाएगा, लिंग समानता को बढ़ावा देगा, और राष्ट्र के समग्र विकास में योगदान करेगा।

**निष्कर्ष:**

अंततः, भारत में महिलाओं के सशक्तिकरण और लिंग समानता को बढ़ावा देने में शिक्षा की भूमिका अत्यंत महत्वपूर्ण है। शिक्षा महिलाओं को ज्ञान, कौशल और आत्मविश्वास प्रदान करती है, जिससे वे पारंपरिक लिंग मान्यताओं को चुनौती देती हैं, अपने अधिकारों का समर्थन करती हैं और समाज में सक्रिय रूप से भाग लेती हैं। इस अध्ययन के निष्कर्षों ने भारत में शिक्षा के संदर्भ में मौजूदा लिंग असमानताओं को उजागर किया है, जिसमें शिक्षा तक पहुंच, नामांकन, बनी रहने की दर और शिक्षा की गुणवत्ता शामिल हैं। सामाजिक-सांस्कृतिक मान्यताएँ,

भेदभावपूर्ण प्रथाएँ, बाल विवाह और सीमित संसाधन, महिलाओं को शिक्षा तक पहुँचने और लोकतांत्रिक प्रक्रियाओं में पूरी तरह से भाग लेने में बाधाएँ उत्पन्न करती हैं। इन बाधाओं को संबोधित करना एक समावेशी और समान शिक्षा वातावरण बनाने के लिए महत्वपूर्ण है।

महिला सशक्तिकरण और लिंग समानता को बढ़ावा देने के लिए लक्षित नीतियों और हस्तक्षेपों की आवश्यकता है। इनमे लिंग-संवेदनशील नीतियों का कार्यान्वयन, लड़कियों की शिक्षा के महत्व के बारे में जागरूकता बढ़ाना, सुरक्षित और समावेशी शिक्षा संरचना प्रदान करना और लिंग-संवेदनशील पेडागोजी को बढ़ावा देना शामिल हैं। सरकार, नागरिक समाज संगठनों और समुदायों के बीच सहयोग बहुत आवश्यक है ताकि लिंग असमानता को संबोधित किया जा सके और नीति परिवर्तनों के लिए अभियान चलाया जा सके।

यह महत्वपूर्ण है कि शिक्षा में लिंग असमानता के इंटरसेक्शनल पहलुओं को पहचाना जाए, क्योंकि हाशिए पर रहने वाले और वंचित समुदायों से आने वाली महिलाएँ और अधिक बाधाओं का सामना करती हैं। लिंग असमानता के इंटरसेक्शनल पहलुओं को समझने और संबोधित करने से सभी महिलाओं के लिए समान शिक्षा के अवसर सुनिश्चित करने में मदद मिलेगी।

शिक्षा को परिवर्तन के उत्प्रेरक के रूप में प्राथमिकता देकर, भारत महिलाओं को सशक्त बना सकता है, लिंग समानता को बढ़ावा दे सकता है और लोकतांत्रिक मूल्यों को बढ़ावा दे सकता है। शिक्षा महिलाओं को लिंग मान्यताओं को चुनौती देने, निर्णय-निर्माण प्रक्रियाओं में भाग लेने और राष्ट्र के समग्र विकास में योगदान करने के लिए आवश्यक उपकरण प्रदान करती है। अंत में, यदि शिक्षा में लिंग असमानता को संबोधित किया जाता है, तो भारत महिलाओं के लिए एक समान लोकतांत्रिक समाज प्राप्त करने की दिशा में महत्वपूर्ण कदम उठा सकता है। यह समान पहुंच सुनिश्चित करने, शिक्षा की गुणवत्ता में सुधार करने और सामाजिक मान्यताओं को चुनौती देने के लिए समर्पित प्रयासों, नीति सुधारों और सहयोग की आवश्यकता है। केवल इन सामूहिक प्रयासों के माध्यम से भारत एक ऐसा वातावरण बना सकता है जहां महिलाओं को समान अवसर, अधिकार और लोकतांत्रिक प्रक्रियाओं में सक्रिय भागीदारी मिल सके।

**आभार:**

मैं उन सभी व्यक्तियों का दिल से आभार व्यक्त करना चाहता हूँ जिन्होंने भारत में महिलाओं के लिए लोकतांत्रिक समाज में शिक्षा की भूमिका पर इस शोध के संपन्न होने में मदद की। उनका समर्थन, मार्गदर्शन और योगदान इस अध्ययन को आकार देने में अमूल्य रहे हैं। मैं अपने पर्यवेक्षक [डॉ. रविशंकर जमुआर] का आभारी हूँ, जिन्होंने शोध प्रक्रिया के दौरान निरंतर समर्थन, विशेषज्ञता और मूल्यवान प्रतिक्रिया प्रदान की। उनका मार्गदर्शन और मेंटरशिप इस शोध पद्धति को परिष्कृत करने और निष्कर्षों का विश्लेषण करने में महत्वपूर्ण रही हैं।

मैं इस अध्ययन के प्रतिभागियों का आभार व्यक्त करना चाहता हूँ जिन्होंने अपना समय, अनुभव और दृष्टिकोण साझा किया। उनके मूल्यवान दृष्टिकोण और योगदान ने लड़कियों की शिक्षा तक पहुँचने और लोकतांत्रिक प्रक्रियाओं में भाग लेने के लिए महिलाओं द्वारा सामना की जाने वाली चुनौतियों और अवसरों को समझने में मदद की।

मैं शैक्षिक समुदाय और लिंग समानता, महिलाओं के सशक्तिकरण और शिक्षा के क्षेत्र में शोधकर्ताओं का आभार व्यक्त करता हूँ। उनका महत्वपूर्ण कार्य इस अध्ययन की नींव रखता है और उनके योगदान ने सैद्धांतिक ढांचे को आकार देने और विश्लेषण को सूचित करने में मदद की।

मैं अपने परिवार और दोस्तों का दिल से धन्यवाद करता हूँ जिन्होंने इस यात्रा के दौरान निरंतर समर्थन और प्रोत्साहन दिया। उनके विश्वास और प्रेरणा ने मुझे चुनौतियों को पार करने और शोध के उद्देश्यों पर ध्यान केंद्रित करने में मदद की।

सभी का धन्यवाद जिन्होंने इस शोध कार्य में अमूल्य योगदान और समर्थन दिया।

**संदर्भ सूची**

https://deliverypdf.ssrn.com/delivery.php?ID=974110106091098110024111094081031090122078057047002065122085016091105003018030074096060017121055126111014098105122005118103015041053089019092099122031080104031065110064034002000016065000065030100065089127104120082097093092126001067121112080120117081072&EXT=pdf&INDEX=TRUE

https://core.ac.uk/download/pdf/234676365.pdf

https://www.diva-portal.org/smash/get/diva2:24200/FULLTEXT01.pdf

https://books.google.co.in/books?hl=en&lr=&id=UpOl35r8UHQC&oi=fnd&pg=PR23&dq=Role+of+Education+in+achieving+Equitable+Democratic+Society+for+Women+in+india&ots=-ytDJ04XbO&sig=JSUe9I7TMqr-iQitSfIHAWViq4A&redir_esc=y#v=onepage&q=Role%20of%20Education%20in%20achieving%20Equitable%20Democratic%20Society%20for%20Women%20in%20india&f=false

https://www.researchgate.net/publication/315060336_The_State_of_Gender_Inequality_in_India

**Email** -pujarajput7739@gmail.com **Mobile no** - 7739065951

www.bohalshodhmanjusha.com Bohal Shodh Manjusha ISSN: 2395-7115
Impact Factor:7.523 January 2025 Page No. : 175-181
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

# नारी जागरण की अभिव्यक्ति में महात्मा ज्योतिबा फुले का योगदान

**विजयलक्ष्मी,** शोधार्थी इतिहास विभाग,

**डॉ० अंजना यादव,** एसोसिएट प्रोफेसर इतिहास विभाग,
बाबा मस्तनाथ विश्वविद्यालय, अस्थल बोहर, रोहतक।

**डॉ० विवेक डांगी,** अस्सिटैंट प्रोफेसर इतिहास विभाग,
आल इंडिया जाट हीरोज़ मैमोरियल कॉलेज, रोहतक।

**प्रस्तावना:**

ज्योतिबा फुले (1827–1890) ने अपने परोपकारी कार्यों और दार्शनिक मान्यताओं से उन्नीसवीं सदी के भारत में, विशेष रूप से महाराष्ट्र में, एक गहन सामाजिक क्रांति को बढ़ावा दिया। ज्योतिबा फुले (1827–1890) ने मानवाधिकारों की वकालत करके उन्नीसवीं सदी के भारत, अर्थात् महाराष्ट्र में सामाजिक सुधार का नेतृत्व किया। उन्नीसवीं सदी में सामाजिक आलोचना और क्रांति की विशेषता थी, जिसमें राष्ट्रवाद, जाति और लिंग पर विशेष ध्यान दिया गया था। सुधारकों ने महिलाओं से संबंधित कई चिंताओं की ओर अपना ध्यान आकर्षित किया, जैसे कन्या शिशुओं को मारने की प्रथा, लड़कियों की कम उम्र में शादी, महिलाओं की शिक्षा तक पहुंच पर सीमाएं, सती प्रथा (विधवा आत्मदाह), विधवाओं के सिर मुंडवाने की प्रथा, और अन्य कठिनाइयों के बीच, विधवाओं के पुनर्विवाह पर प्रतिबंध। समवर्ती रूप से, उन्होंने परिवर्तन की वकालत करते हुए अपना ध्यान परिवार और विवाह की संरचनाओं को संशोधित करने, महिलाओं के अधिकारों और सामाजिक स्थिति पर विशेष महत्व देने की ओर निर्देशित किया। ज्योतिबा ने लिंग और जाति की चिंताओं का समाधान किया। उन्होंने अन्यायपूर्ण जाति व्यवस्था और मानवाधिकारों के हनन के खिलाफ विद्रोह किया, जिसने हजारों वर्षों से अनगिनत व्यक्तियों को गुलाम बना रखा था। जाति व्यवस्था के प्रति उनकी अवज्ञा समानता और दयालुता के सिद्धांतों में निहित सामाजिक और धार्मिक परिवर्तनों के साथ हुई। वह महाराष्ट्र में हाशिये पर पड़े सामाजिक समूहों का प्रतिनिधित्व करने वाले अग्रणी व्यक्ति के रूप में प्रमुखता से उभरे और पूरे देश में भारत के हाशिए पर रहने वाले वर्गों के नेता के रूप में व्यापक रूप से पहचाने गए। उन्हें अमेरिकी दार्शनिक थॉमस पेन के राइट्स ऑफ मैन में प्रस्तुत विचारों से प्रेरणा मिली। यह लेख ज्योतिबा पर उन अग्रदूतों में से एक के रूप में केंद्रित है जिन्होंने भारत में एक समाज सुधारक के रूप में बहुत प्रसिद्धि प्राप्त की।

**मुख्य शब्द:** समाज सुधारक, दार्शनिक मान्यताएँ, जाति, लिंग, राष्ट्रवाद, समानता, हाशिए पर रहने वाले वर्ग, आदि।

**ज्योतिबा फुले का जीवन**

ज्योतिबा फुले के पिता के शासनकाल में पेशवाओं के अधिकार और वैभव में काफी गिरावट आई थी। पेशवाओं के अंतिम दिनों में शासकों ने निष्पक्ष शासन की प्रथा को त्याग दिया। ब्राह्मण इष्ट जाति थी। जब उन्हें पदोन्नत किया गया तो योग्यता की अनदेखी की गई। ब्राह्मणों को कई उल्लंघनों के लिए हल्के प्रतिबंधों के अधीन किया गया था, जो कानून द्वारा अनिवार्य से कम गंभीर थे। अठारहवीं और उन्नीसवीं शताब्दी के दौरान, ब्राह्मणों का समाज में प्रभुत्व था क्योंकि वे शिक्षा प्राप्त करने की अनुमति वाले विशिष्ट वर्ग थे। इसके विपरीत, अन्य जातियों के व्यक्ति शैक्षिक अवसरों और समाज में समान अधिकारों से वंचित थे। अस्पृश्यता ने शूद्रों और अतिशूद्रों के लिए

एक महत्वपूर्ण खतरा उत्पन्न कर दिया, जिससे वे प्रमुख सामाजिक समूह से बाहर हो गए। सबसे व्यापक मुद्दा सामाजिक पूर्वाग्रह और निचली जातियों और महिलाओं का शोषण था। धनंजय कीर का दावा है कि 19वीं सदी के महाराष्ट्र में पेशवा शासन के तहत, ब्राह्मण खुद को प्रमुख सामाजिक वर्ग के रूप में समझने लगे, कुछ विशेषाधिकारों और छूटों का आनंद ले रहे थे जो शिवाजी के प्रशासन में अनुपस्थित थे। 11 अप्रैल 1827 को महाराष्ट्र में जन्मे ज्योतिबा गोविंदराव फुले माली जाति से थे। फूलों के व्यापार में संलग्न होने के कारण उनके परिवार ने 'फुले' उपनाम अपनाया। सामाजिक मानदंडों के बावजूद, फुले ने ईसाई मिशनरियों से प्रेरित होकर शिक्षा प्राप्त की। उन्होंने 1847 में अंग्रेजी की पढ़ाई पूरी की और 13 साल की उम्र में सावित्रीबाई से शादी कर ली। जाति–आधारित भेदभाव को देखते हुए, उन्होंने शिक्षा के माध्यम से निचली जातियों के उत्थान का संकल्प लिया। थॉमस पेन से प्रभावित होकर, उन्होंने ब्राह्मण आधिपत्य, सामाजिक मुद्दों और हिंदू धर्म की आलोचना की। फुले ने हिंदू धर्म को सार्वभौमिक धर्म के रूप में खारिज करते हुए स्वतंत्रता और समानता पर आधारित समाज का लक्ष्य रखा।

**आधुनिक भारतीय पुनर्जागरण में एक अग्रणी मानवाधिकार योद्धा**

फुले ने अस्पृश्यता सहित जाति व्यवस्था के पूर्ण उन्मूलन के लिए सम्मोहक तर्क दिए। उन्होंने दमनकारी जाति व्यवस्था के खिलाफ विद्रोह की शुरुआत की, जिसने लाखों लोगों को पीढ़ियों तक उत्पीड़न का शिकार बनाया था। उस दौरान दलित समुदाय के पास राजनीतिक, सामाजिक, शैक्षणिक और आर्थिक अधिकारों का अभाव था। उन्होंने ब्राह्मण व्यवस्था की दोहरी नैतिकता की आलोचना की। उन्होंने यह सुनिश्चित करने की आवश्यकता पर जोर दिया कि सभी व्यक्तियों को समान अवसर प्रदान किए जाएं। उन्होंने इस बात पर जोर दिया कि प्रत्येक व्यक्ति जन्म से ही स्वाभाविक रूप से स्वतंत्रता और समानता से संपन्न है। प्रत्येक व्यक्ति के जन्मजात अधिकार होते हैं। वह हाशिए पर रहने वाले व्यक्तियों के मानवाधिकारों की सुरक्षा के प्रबल समर्थक थे। अपनी पत्नी सावित्रीबाई फुले के प्रति उनके समर्पण ने उन्हें उनकी लड़ाई में सक्रिय रूप से भाग लेने के लिए प्रेरित किया। सावित्रीबाई ने महात्मा फुले की कठिनाइयों में सक्रिय भूमिका निभाई। ज्योतिबा के निधन के बाद उन्होंने आंदोलन का नेतृत्व करने की भूमिका निभाई। फुले ने 1873 में बंबई में प्रभावशाली प्रार्थना समाज और उत्तर भारत में आर्य समाज के साथ मिलकर सत्यशोधक समाज की स्थापना की। 20वीं सदी में गति पकड़ रहे गैर–ब्राह्मण आंदोलन ने कुलीन राजनीतिक संगठनों की समयरेखा को प्रतिबिंबित किया। सत्यशोधक समाज की स्थापना ने महाराष्ट्र के पहले राजनीतिक संगठन, पूना सार्वजनिक सभा का बारीकी से अनुसरण किया, और भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस से लगभग बारह साल पहले। सत्यशोधक पत्रिका, दीन बंधु, 1875 में शुरू हुई, और प्रभाव की पारस्परिक प्रक्रिया को प्रदर्शित करते हुए, ब्राह्मण राष्ट्रवादी पत्रिकाओं केसरी और महरत्ता से आठ साल पहले शुरू हुई। यह आदान–प्रदान 'भारतीय पुनर्जागरण' के साथ शुरू हुआ, जहां प्रारंभिक भारतीय दार्शनिक पश्चिमी प्रभाव से जूझ रहे थे, उनका लक्ष्य आत्म मूल्यांकन, वैज्ञानिक सिद्धांतों के एकीकरण और भारत की पुनर्कल्पना के माध्यम से समाज को बदलना था। ज्योतिबा फुले के विचार औपनिवेशिक युग के दौरान इस पहली पीढ़ी के पुनर्जागरण सोच की प्रारंभिक अभिव्यक्ति का प्रतीक थे। फुले का उद्देश्य साक्षरता को बढ़ावा देने से भी आगे तक फैला हुआ था। उनका उद्देश्य विद्वान व्यक्तियों को तैयार करना और शिक्षा के माध्यम से सामाजिक परिवर्तन की वकालत करना था। महात्मा फुले ने महिला शिक्षा, निचली जातियों के लिए शिक्षा, व्यावसायिक शिक्षा, पाठ्यक्रम सुधार, कृषि शिक्षा, तकनीकी शिक्षा और शिक्षक प्रशिक्षण जैसे विभिन्न विषयों पर अपने विचार व्यक्त किए। अफसोस की बात है कि उनके शैक्षिक लक्ष्यों को भारत में अस्वीकृति का सामना करना पड़ा। महात्मा और सावित्रीबाई फुले ने हमेशा सामाजिक रूप से वंचित लोगों के जीवन को बेहतर बनाने के लिए शिक्षा को सबसे प्रभावी तरीका माना। सामाजिक जागरूकता पैदा करने और सामाजिक परिवर्तन लाने में शिक्षा की महत्वपूर्ण भूमिका है। महात्मा फुले के 'सार्वजनिक सत्य धर्म' ने इस राष्ट्र में लोकतांत्रिक संघर्ष के मूल सिद्धांतों की घोषणा के रूप में कार्य किया, उनकी मान्यताओं और चिंताओं को व्यक्त किया। अत्यधिक पारंपरिक परिवेश के बीच, सत्य, समानता और मानवता के ऊंचे सिद्धांतों पर आधारित एक समुदाय की स्थापना का कार्य कठिन साबित हुआ। ऐसी स्थिति को देखते हुए, प्रभुत्वशाली वर्गों और उनकी विचारधारा के सामने वंचित समूहों को शिक्षित करने के लिए अपना जीवन समर्पित करना एक अत्यधिक दुर्जेय आकांक्षा थी।

फिर भी, उन दोनों ने इस उद्देश्य को प्राप्त करने के लिए लगातार प्रयास किया और भविष्य के प्रयासों का मार्ग प्रशस्त किया। अपने काम, सार्वजनिक सत्य–धर्म पुस्तक में, महात्मा फुले ने जोर देकर कहा कि सभी धार्मिक ग्रंथ पुरुषों द्वारा लिखे गए हैं और संपूर्ण सत्य को शामिल नहीं करते हैं। कुछ निरंतर व्यक्तियों ने इन कार्यों को विशिष्ट अवसरों और समसामयिक आवश्यकताओं के अनुरूप ढालने के लिए संशोधित किया। नतीजतन, धर्म सभी व्यक्तियों को समान लाभ प्रदान नहीं करते हैं और इसके बजाय नफरत से प्रेरित संप्रदायों और विभाजनों के उद्भव को बढ़ावा देते हैं। लेखक का दावा है कि धर्म, लिंग या जाति के विचारों से परे, मानवता अस्तित्व का केंद्रीय विषय है। इसके अलावा, लेखक पूरे समाज में सभी व्यक्तियों की समानता में विश्वास करता है। फुले के सिद्धांत मानवतावाद में निहित हैं, और उन्होंने जाति व्यवस्था के पूर्ण उन्मूलन के लिए सम्मोहक तर्क प्रस्तुत किए। उन्होंने उस असमान जाति व्यवस्था के खिलाफ विद्रोह किया जिसने सहस्राब्दियों तक लाखों व्यक्तियों पर शासन किया था और उनके साथ दुर्व्यवहार किया था। उस दौरान दलित समुदाय को राजनीतिक, सामाजिक, शैक्षणिक और आर्थिक विशेषाधिकारों का अभाव था। उन्होंने ब्राह्मण व्यवस्था की दोहरी नैतिकता की आलोचना की। उन्होंने विश्वास व्यक्त किया कि प्रत्येक व्यक्ति को समान अवसर मिलना चाहिए। उन्होंने इस बात पर जोर दिया कि प्रत्येक व्यक्ति जन्म से ही स्वाभाविक रूप से स्वतंत्रता और समानता से संपन्न है। प्रत्येक व्यक्ति के जन्मजात अधिकार होते हैं। वह उन लोगों के मानवाधिकारों की सुरक्षा के प्रबल समर्थक थे जो हाशिए पर थे और जिनके साथ दुर्व्यवहार किया जाता था। मानवाधिकारों पर सिरसवाल के सिद्धांतों को इस प्रकार संक्षेप में प्रस्तुत किया जा सकता है– ''सभी व्यक्तियों को, उनकी भौगोलिक उत्पत्ति की परवाह किए बिना, एक एकीकृत वैश्विक परिवार के रूप में एक साथ आना चाहिए, ईमानदारी को अपनाना चाहिए और अपने स्थानीय समुदाय, क्षेत्र, राष्ट्र, महाद्वीप के आधार पर किसी भी पूर्वाग्रह या भेदभाव के बिना होना चाहिए।'' मनुष्य को सृष्टिकर्ता द्वारा स्वतंत्रता और दूसरों के साथ समान अधिकारों का आनंद लेने की क्षमता दी गई थी। सभी व्यक्तियों को सृष्टिकर्ता द्वारा अपने विचारों और दृष्टिकोणों को खुलकर व्यक्त करने का विशेषाधिकार दिया गया है, जब तक कि वे दूसरों को कोई नुकसान न पहुँचाएँ। इसे अनुकरणीय आचरण माना जाता है। मानव अधिकारों और धर्म पर ज्योतिबा फुले के विचार एक दिव्य प्राणी द्वारा प्रदत्त मौलिक अधिकारों में विश्वास पर आधारित थे। उन्होंने सभी व्यक्तियों के लिए धार्मिक और राजनीतिक स्वतंत्रता पर जोर देते हुए नैतिक व्यवहार की वकालत की। फुले ने मूर्ति पूजा, अनुष्ठान, अत्यधिक आत्म–अनुशासन, पूर्वनिर्धारित भाग्य और पुनर्जन्म की अवधारणा को खारिज कर दिया। उन्होंने ब्राह्मणों द्वारा ऐतिहासिक शोषण को उजागर करते हुए हिंदू धर्म की आलोचना की और विकल्प के रूप में सार्वजनिक सत्य धर्म का प्रस्ताव रखा। हिंदू धर्म पर फुले के हमले ने जाति और वर्ण व्यवस्था को निशाना बनाया, यह दावा करते हुए कि उन्हें शोषण के लिए ब्राह्मणों द्वारा हेरफेर किया गया था। हिंदू धर्म को अस्वीकार करने के बावजूद, उन्होंने धर्म में विश्वास बनाए रखा और समतावाद पर आधारित प्रणाली की दिशा में काम किया। थॉमस पेन से प्रभावित होकर, फुले का धर्म भौतिक दुनिया के मामलों पर केंद्रित था, एक आदर्श परिवार को बढ़ावा देता था जहां सदस्य स्वतंत्र रूप से अपने चुने हुए धर्मों का पालन कर सकते थे। वह विभिन्न धार्मिक शिक्षाओं के सह–अस्तित्व में विश्वास करते थे, उन्होंने इस बात पर जोर दिया कि कोई भी धर्म सत्य तक विशेष पहुंच नहीं रखता है। फुले ने बर्बर हिंदू प्रथाओं का समर्थन करने की वकालत की और मंदिरों को सरकार की वित्तीय सहायता को चुनौती दी, सांप्रदायिकता और धार्मिक मामलों के प्रति अनुचित तटस्थता दोनों को खारिज कर दिया।

**महिला मुक्ति और सशक्तिकरण**

भारत के पास एक समृद्ध ऐतिहासिक विरासत है, और इसके पूरे अस्तित्व में महिलाएं लगातार आबादी का पचास प्रतिशत हिस्सा रही हैं। फिर भी, समाज में उनकी स्थिति हजारों वर्षों से एक जैसी नहीं रही है। उनकी स्थिति का आकलन अनेक माध्यमों से किया गया है और भारतीय संस्कृति के विभिन्न चरणों में उनकी भूमिका के संबंध में विरोधाभासी दृष्टिकोण व्यक्त किये गये हैं। अपने परिवार और समुदाय में एक महिला की स्थिति विभिन्न कारकों से प्रभावित होती है जैसे विदेशी आक्रमण, सामाजिक आंदोलन, भौगोलिक क्षेत्र, आर्थिक व्यवसाय, राजनीतिक स्थिरता और अस्थिरता और उसके परिवार की धार्मिक संबद्धता। महिलाओं को आवंटित सामाजिक भूमिका

उसके द्वारा हासिल की गई प्रगति के स्तर का एक विश्वसनीय संकेतक है। मानव समाज के ऐतिहासिक विकास की जांच से पता चलता है कि दुनिया के किसी भी समाज में महिलाओं को पुरुषों के साथ पूर्ण समानता प्राप्त नहीं थी।

19वीं शताब्दी के दौरान, सामाजिक अन्याय, पूर्वाग्रह और शोषण व्यापक था, जिसका विभिन्न समूहों पर अलग–अलग प्रभाव पड़ा। विशेष रूप से, महिलाओं को कम उम्र में विवाह, विधवापन, सीमित शिक्षा और रोजगार के अवसरों और सामाजिक कष्टों जैसे मुद्दों के कारण बेहद हीन सामाजिक स्थिति का सामना करना पड़ा। समाज में हाशिए पर रहने वाली विधवाओं को पुनर्विवाह पर प्रतिबंध के कारण अनिश्चित परिस्थितियों का सामना करना पड़ा। महात्मा ज्योतिबा फुले और सावित्रीबाई फुले ने इन चुनौतियों को पहचानते हुए, एक शिक्षा आंदोलन शुरू किया और बाल विवाह और महिलाओं की अधीनस्थ स्थिति जैसे मुद्दों के समाधान के लिए स्कूलों की स्थापना की। उनके साहित्यिक कार्य और सत्य शोधक समाज की स्थापना ने हाशिए पर रहने वाले समूहों, विशेषकर शूद्रों, अति–शूद्रों और महिलाओं की भलाई को आगे बढ़ाने के लिए उनकी प्रतिबद्धता को दर्शाया। ब्रिटिश शासन के दौरान सामाजिक–राजनीतिक सुधारकों के मेहनती प्रयासों के कारण, शिक्षा, रोजगार, सामाजिक अधिकारों और अन्य क्षेत्रों में लैंगिक असमानताओं को कम करने में पर्याप्त प्रगति हासिल हुई। बाल विवाह, सती प्रथा, देवदासी प्रथा, पर्दा प्रथा और विधवा पुनर्विवाह पर प्रतिबंध की प्रथाओं को उचित कानून द्वारा या तो सीमित कर दिया गया या समाप्त कर दिया गया। ये कानून महात्मा ज्योतिबा फुले जैसे सामाजिक–राजनीतिक सुधारकों के लगातार प्रयासों के परिणामस्वरूप बनाए गए थे। महात्मा ज्योतिबा फुले और सावित्रीबाई अपने–अपने युग में उल्लेखनीय व्यक्ति थे। उन्होंने अपनी पत्नी को औपचारिक स्कूली शिक्षा के लिए निर्देश देकर और सुसज्जित करके महिला शिक्षा की प्रगति को सुविधाजनक बनाया। सावित्रीबाई भारत की पहली महिला स्कूल शिक्षिका थीं। 1848 में, उन्होंने पुणे में विशेष रूप से महिला छात्रों के लिए शैक्षिक संस्थान की स्थापना की। उन्होंने हाशिए के क्षेत्रों, अर्थात् शूद्र और अति शूद्र जातियों से संबंधित महिला छात्रों और व्यस्कों की शिक्षा की वकालत की। उन्होंने शिक्षण संस्थाओं की स्थापना की। सावित्रीबाई ने पुणे महिला मूलनिवासी स्कूल और महार, मांग शिक्षा को बढ़ावा देने के लिए सोसायटी जैसी संस्थाओं की स्थापना की। महिला शिक्षा के प्रति उनका समर्पण 1847 में शुरू हुआ जब उन्होंने और सगुनाबाई ने महारवाड़ा में एक स्कूल की स्थापना की। 1 जनवरी, 1848 को पुणे के भिड़े के वाडा में विशेष रूप से महिलाओं के लिए पहला शैक्षणिक संस्थान स्थापित किया गया था। सावित्रीबाई को इसकी उद्घाटन प्रधानाध्यापिका के रूप में नियुक्त किया गया था। उन्हें ऐसे समय में एक शिक्षक के रूप में नियुक्त किया गया था जब लड़कियों को शिक्षित करना पारंपरिक मूल्यों के लिए अपमानजनक और अपमानजनक माना जाता था।

ज्योतिबा ने उस्मान शेख के वाड़े में एक वयस्क शिक्षा संस्थान की स्थापना की। 1849 में, फुले ने विशेष रूप से महिलाओं, शूद्रों और अति–शूद्रों के लिए अतिरिक्त 18 शैक्षणिक संस्थानों की स्थापना की। लड़कियों की शिक्षा को बढ़ावा देने के प्रति समर्पण के लिए सावित्रीबाई फुले को 1852 में स्कूल निरीक्षण समिति द्वारा आदर्श शिक्षक पुरस्कार से सम्मानित किया गया था। ज्योतिबा सावित्रीबाई के प्रयासों से महत्वपूर्ण प्रगति हुई। सरकारी स्कूल विशेष रूप से उच्च जाति के विद्यार्थियों के लिए उपलब्ध थे। 29 मई, 1852 को एक व्यक्ति ने पूना ऑब्जर्वर में बताया कि ज्योतिबा के शैक्षणिक संस्थान में महिला छात्रों की संख्या सरकारी संस्थानों में पुरुष छात्रों की संख्या से दस गुना अधिक थी। हाल ही में, 1863 में सावित्रीबाई–ज्योतिबा द्वारा 'शिशुहत्या की रोकथाम के लिए गृह' की स्थापना के बारे में सुलभ जानकारी मिली है। विशेष रूप से ब्राह्मण जाति से संबंधित विधवाओं के लिए इस संस्था के निर्माण के लिए सावित्रीबाई द्वारा किया गया सराहनीय प्रयास उल्लेखनीय है। ज्योतिबा फुले ने इस जानकारी का दस्तावेजीकरण करते हुए 4 दिसंबर 1884 को मुंबई सरकार के अवर सचिव को एक पत्र दायर किया।

ज्योतिबा लैंगिक समानता के सिद्धांत में विश्वास करते थे। उन्होंने महिलाओं की शिक्षा और स्वायत्तता के महत्व को रेखांकित किया। उन्होंने सार्वजनिक क्षेत्र में महिलाओं को शामिल करने की सुविधा प्रदान की। उन्होंने इस बात पर जोर दिया कि देश का विकास समानता और एकता की अपरिहार्यता पर निर्भर करता है। उन्होंने लैंगिक समानता को बढ़ावा देने के लिए कम उम्र में विवाह के खिलाफ वकालत की। उन्होंने उन महिलाओं के लिए आश्रय की स्थापना की जिनके

पतियों की मृत्यु हो गई थी और विधवाओं के पुनर्विवाह की प्रथा को सुविधाजनक बनाया। उस काल में विधवा पुनर्विवाह पर रोक थी, जबकि ब्राह्मणों और हिंदुओं में बाल विवाह प्रचलित था। विधवाओं की एक बड़ी संख्या युवा थी, और उनमें से सभी रूढ़िवादी आबादी द्वारा लगाई गई सामाजिक अपेक्षाओं का पालन नहीं करती थीं। कई विधवाओं ने गर्भपात का सहारा लिया या अपने नाजायज बच्चों को सड़कों पर छोड़ दिया। 1863 में, उन्होंने शिशुहत्या और आत्महत्या की घटनाओं को रोकने के लिए शिशुओं के लिए एक आवास का निर्माण किया। यह पहल उन विधवाओं द्वारा सामना किए जाने वाले खतरों के बारे में उनकी जागरूकता से प्रेरित थी, जिन्होंने अपने पतियों की मृत्यु के बाद चुनौतीपूर्ण परिस्थितियों में गर्भ धारण किए हुए बच्चों को जन्म दिया था। 1854 में, फुले ने विधवा पुनर्विवाह की प्रथा की जोरदार वकालत की और यहां तक कि ऊंची जाति की विधवाओं के लिए विशेष रूप से एक आवास के निर्माण का काम भी शुरू कर दिया। उन्होंने व्यक्तियों को अपने बच्चों को उन शैक्षणिक संस्थानों में दाखिला लेने के लिए लगातार प्रोत्साहित किया, जिनकी स्थापना उन्होंने विशेष रूप से वंचित व्यक्तियों और महिलाओं के लिए की थी।

**पिछड़ी जातियों की मुक्ति और कल्याण**

ब्राह्मणों द्वारा जाति व्यवस्था की स्थापना ने न केवल भारतीय समाज पर प्रभुत्व स्थापित किया है, बल्कि शूद्रों और अछूतों सहित निचली जातियों की सामाजिक गतिशीलता और उन्नति में भी बाधा उत्पन्न की है। ब्रिटिश औपनिवेशिक काल के दौरान, समाज सुधारकों और सरकार द्वारा शिक्षा प्रदान करने और हाशिए पर मौजूद सामाजिक–आर्थिक वर्गों को सशक्त बनाने के लिए सीमित प्रयास किए गए थे। ब्रिटिश प्रयासों को महात्मा ज्योतिबा फुले, कोल्हापुर के शाहू महाराजा, डॉ० बाबासाहेब अम्बेडकर और अन्य जैसे विभिन्न सामाजिक–राजनीतिक दार्शनिकों के नेतृत्व में सामाजिक सुधार आंदोलनों द्वारा आकार दिया गया था। शूद्रों और अनुसूचित जातियों के खिलाफ भेदभाव ग्रामीण क्षेत्रों में जारी है, खासकर निजी क्षेत्रों जैसे भोजन स्थलों, स्कूलों, मंदिरों और जल आपूर्ति में। यह शहरी क्षेत्रों और आम जनता के दायरे से लगभग गायब हो गया है। कुछ शूद्र सफलतापूर्वक शहरी भारतीय समाज में एकीकृत हो गए हैं, जहां जाति का प्रभाव और महत्व कम स्पष्ट और कम महत्वपूर्ण है। बहिष्करण में कमी का संकेत देने वाले सबूतों के बावजूद, ग्रामीण भारत में अनुसूचित जातियां अक्सर स्थानीय धार्मिक गतिविधियों में भाग लेने से हाशिए पर रहती हैं, जो जाति विभाजन की स्थायी दृश्यता को उजागर करती है।

ज्योतिबा फुले ने अस्पृश्यता और संपूर्ण जाति व्यवस्था के उन्मूलन की पुरजोर वकालत की, और सदियों से कई लोगों पर अत्याचार करने वाली अन्यायपूर्ण प्रथाओं के खिलाफ विद्रोह किया। उन्होंने ब्राह्मण व्यवस्था की दोहरी नैतिकता की आलोचना की और समान अवसरों की आवश्यकता पर जोर दिया, यह घोषणा करते हुए कि प्रत्येक व्यक्ति जन्म से ही समान अधिकारों के साथ स्वाभाविक रूप से स्वतंत्र है। मानवाधिकारों के कट्टर समर्थक फुले ने 19वीं सदी के महाराष्ट्र में हाशिये पर पड़ी जातियों के उत्थान के लिए 1873 में सत्यशोधक समाज की स्थापना की। प्राचीन काल में, हिंदू धर्मग्रंथों ने भेदभावपूर्ण प्रथाओं को कायम रखते हुए शूद्रों और अति–शूद्रों को शिक्षा और समान सामाजिक प्रतिष्ठा से बाहर रखा। फुले द्वारा पुणे में स्थापित सत्य शोधक समाज एक महत्वपूर्ण गैर–ब्राह्मण संगठन के रूप में उभरा, जिसने सामाजिक रूप से वंचित समूहों और श्रमिकों को एकजुट किया। समाज का उद्देश्य उत्पीड़ितों को सशक्त बनाना, जागरूकता बढ़ाना और उस समय के चालाक पादरियों का विरोध करना था।

फुले ने कहा कि समाज का मुख्य लक्ष्य अस्पृश्यता और जाति व्यवस्था का सक्रिय विरोध करके निचले वर्गों को ब्राह्मण नियंत्रण से मुक्त कराना है। समाज ने पुरोहिती सेवाओं से इनकार कर दिया और पुरोहितों के बिना शादियों और समारोहों की वकालत की, जिससे ब्राह्मणों को कानूनी चुनौतियों का सामना करना पड़ा, जो इन क्रांतिकारी विचारों से परेशान थे। ज्योतिबा फुले ने हिंदू जाति व्यवस्था और मनुष्यों द्वारा स्थापित वर्ण–व्यवस्था पर आधारित असमानताओं के खिलाफ विद्रोह किया। उन्होंने हिंदू समाज में सुधार लाने के अपने प्रयासों में बहुत बहादुरी का प्रदर्शन किया। उन्होंने लोगों के मन से हीनता की भावना को ख़त्म करने का प्रयास किया। उन्होंने शूद्रों के प्रति जागृति जगाई। उन्होंने उन्हें अध्ययन करने और शक्तिशाली पद प्राप्त करने की सलाह दी, वे गुलाम नहीं हैं, बल्कि व्यक्ति हैं। टी०एल० के अनुसार. जोशी के अनुसार, ज्योतिबा फुले भारत

की पारंपरिक सामाजिक संरचना को चुनौती देने वाले शुरुआती अग्रदूत थे। यह देखते हुए कि लंबे समय से चले आ रहे सामाजिक मानदंडों ने हजारों वर्षों से भारतीय मानस पर एक मजबूत नियंत्रण स्थापित कर रखा था, उन्हें इस विद्रोह के लिए प्रेरणा कहां से मिली? ज्योतिबा एक सत्यशोधक थे, जिसका अर्थ है कि वह ऐसे व्यक्ति थे जिन्होंने मानव जीवन के नैतिक सत्य की खोज की थी। इस स्थायी सत्य को आधुनिक पश्चिमी सभ्यता द्वारा समर्थित, ब्रह्मांड के भीतर मानव जाति की सहज स्वतंत्रता में उनके दृढ़ विश्वास से उदाहरण दिया गया था। उन्होंने स्वतंत्रता, समतावाद और वैश्विक बंधुत्व के विचारों पर आधारित मानवतावादी विचारधारा की वकालत की। उन्होंने अपने लेखन 'गुलामगिरी और ब्राह्मणाचे कसाब' में जाति व्यवस्था को चुनौती दी। उन्होंने सत्यशोधक समाज समूह की स्थापना की और व्यापक प्रगति की प्रक्रिया शुरू की। ज्योतिबा फुले ने जोर देकर कहा कि ऊंची जातियां सामाजिक पदानुक्रम पर नियंत्रण रखती हैं और विशेषाधिकार प्राप्त लाभ प्राप्त करती हैं। किसी के सामाजिक वर्ग और लिंग के आधार पर मतभेद मौजूद थे। सामाजिक ढांचे के भीतर, उत्पीड़ित मानव अधिकारों के किसी भी अधिकार से वंचित थे, केवल प्रतिकूल परिस्थितियों, घटिया उपचार, असमानता और शोषण का अनुभव कर रहे थे। धर्म, पुराण और वेद इस विशेष सामाजिक संरचना का समर्थन करते हैं। इस प्रकार, फुले ने ऐसे सामाजिक ढांचे के प्रति कड़ा प्रतिरोध प्रदर्शित किया। उन्होंने निष्पक्षता, करुणा और समतावाद के सिद्धांतों पर आधारित एक नवीन सामाजिक मॉडल विकसित करने का प्रयास किया। वह समानता, न्याय, स्वतंत्रता और भाईचारे के आदर्शों के आधार पर भारत में एक नवीन सामाजिक ढांचे के निर्माण की आकांक्षा रखते थे। वह भारतीय इतिहास के अग्रणी व्यक्ति थे जिन्होंने लड़कियों के लिए स्कूलों और शोक संतप्त माताओं और उनके बच्चों के लिए अनाथालयों की स्थापना के माध्यम से महिला शिक्षा की वकालत की। वह अपने साहसिक प्रयासों के लिए ब्रिटिश सरकार से मान्यता प्राप्त करने वाले पहले भारतीय थे। भारत में महात्मा ज्योतिबा फुले ने महिलाओं और शूद्रों को धार्मिक आधिपत्य से मुक्ति दिलाई और पिछड़ा वर्ग आंदोलन की नींव रखी। महात्मा फुले को भारत में सामाजिक सुधार आंदोलन में अग्रणी व्यक्ति के रूप में पहचाना जाता है। भारत में उन्हें सामाजिक उथल–पुथल के जनक के रूप में स्वीकार किया जाता है।

ज्योतिबा ने देश के प्रति मानवता की भक्ति का उदाहरण प्रस्तुत किया। उनमें सभी सचमुच असाधारण व्यक्तियों की तरह एक सार्वभौमिक व्यक्ति के गुण मौजूद थे। उन्होंने मानव अधिकारों, समानता, शांति और समृद्धि की वकालत की और उन्हें सत्ता की प्राप्ति पर प्राथमिकता दी। उन्होंने एक ऐसे धर्म की तलाश की जो सामाजिक समतावाद को मान्यता दे और बढ़ावा दे। उनके दृष्टिकोण के अनुसार, धर्म एक ऐसी घटना है जिसमें केवल मौखिक अभिव्यक्ति के बजाय व्यक्तिगत अनुभव की आवश्यकता होती है। ज्योतिबा फुले को धार्मिक मान्यताओं की तुलना में नैतिकता, सामाजिक सरोकारों और तार्किक तर्क के सिद्धांतों का अधिक पालन था। उस दौरान पुनर्जन्म में विश्वास पर उनका जोरदार और तर्कसंगत हमला काफी उल्लेखनीय था। उनका उद्देश्य हिंदुओं की गलत धारणाओं को दूर करना था कि कठिन समय के दौरान भगवान उनकी मदद करने के लिए हस्तक्षेप करेंगे और उनका भाग्य पूर्व निर्धारित था। उन्होंने उनमें स्वायत्तता की भावना पैदा की और उनसे अपने मौलिक अधिकारों की हिमायत करने और उनकी रक्षा करने का आग्रह किया। इसलिए, महात्मा फुले की शिक्षाओं और मूल्यों से उत्पन्न मानवाधिकार की धारणा वर्तमान समय के लिए प्रासंगिक है और इसे साकार किया गया है।

**सन्दर्भ ग्रंथः**


- चंचरीक, कन्हैयालाल, (2006) समाज सुधार आंदोलन और ज्योतिबा फुले श्री पब्लिशर्स एंड डिस्ट्रीब्यूटर्स।
- गौर, अलकर्टाइन (1980) भारत में महिलाएं लंदनः द ब्रिटिश लाइब्रेरी सीरीज।
- कीर, धनंजय (1997) महात्मा ज्योतिराव फुलेः भारतीय सामाजिक क्रांति के जनक लोकप्रिय प्रकाशन।
- कोठारी, स्मितु. (1989) ''भारत में मानवाधिकार आंदोलनः एक महत्वपूर्ण अवलोकन।'' मानव अधिकारों पर पुनर्विचारः सिद्धांत और कार्रवाई के लिए चुनौतियाँ।

- मुखर्जी, रुद्रांग्शु. (1986) ''जाति, संघर्ष और विचारधाराः महात्मा ज्योतिराव फुले और उन्नीसवीं सदी के पश्चिमी भारत में निम्न जाति का विरोध।'' रोजालिंड ओश्हानलोन द्वारा, सामाजिक इतिहास, 11 (6)।
- ओमवेट, गेल और दलित विजन (2006) ''जाति–विरोधी आंदोलन और एक भारतीय पहचान का निर्माण।'' टाइम्स श्रृंखला 8 के लिए ट्रैक्ट।
- विजापुर, अब्दुलरहीम पी., और सुरेश कुमार, (1999) मानवाधिकार पर परिप्रेक्ष्य, माणक प्रकाशन, 1999।
- बाला, रजनी (2012) ''नवज्योति, 'महात्मा ज्योति राव फुलेः ए फॉरगॉटन लिबरेटर'।'' अंतर्राष्ट्रीय जर्नल बुनियादी और उन्नत अनुसंधान 1(2)।
- रेनू पांडे. (2015) ''औपनिवेशिक भारत में महिला शिक्षा के योद्धाः सावित्रीबाई फुले का एक केस स्टडी'', इंटरनेशनल जर्नल ऑफ इनोवेटिव सोशल साइंस एंड ह्यूमैनिटीज रिसर्च, 2(1)।
- सिरसवाल, देशराज (2013) ''ज्योतिबा फुलेः एक आधुनिक भारतीय दार्शनिक।'' दर्शनः दर्शन और योग के लिए अंतर्राष्ट्रीय रेफरीड त्रैमासिक अनुसंधान जर्नल 1 (3)।
- नारके, एच० (2008), ''सावित्री फुले पर ज्ञानज्योति सावित्रीबाई फुले।'' सावित्रीबाई फुले प्रथम स्मृति व्याख्यान। एनसीईआरटी मेमोरियल व्याख्यान श्रृंखला 12, दलित मानवाधिकार पर राष्ट्रीय अभियान, http://www-ncdhr-org-in/ndmj/
- सूबे सिंह, महात्मा गोविंदराव. (2015), ज्योतिबा फुले और सत्य शोधक समाजः उन्नीसवीं सदी के दूसरे भाग में महाराष्ट्र में एक सामाजिक सुधार आंदोलन, इंडियन जर्नल ऑफ एप्लाइड रिसर्च, 5(6)।

www.bohalshodhmanjusha.com Bohal Shodh Manjusha ISSN: 2395-7115
Impact Factor:7.523 January 2025 Page No. : 182-187
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

# राजस्थान के पूर्व में दादू पंथ का प्रमुख योगदान

**श्री विक्रम सिंह यादव,** असिस्टेंट प्रोफेसर इतिहास,
राजकीय कन्या महाविद्यालय भिवाड़ी खैरथल

**शोध सारांश**

सनातन काल से ही भारत को ही विश्व गुरु की उपाधि से सम्मानित रहा है । इस कारण भारत की पावन धरा पर विद्वानों व संतो का आगमन समय-समय पर होता रहा है । भारत का एक प्रांत राजस्थान में ऋषि मुनियों व संतो के द्वारा ज्ञानात्मक वह बोधात्मक समाज को संदेश देने का प्रयास किया । यहां पर ऋषि मुनियों की कृपा से शास्त्र पुराण से ज्ञान के भंडार के रूप में अविष्कृत हुए । 16वीं शताब्दी में राजस्थान के लिए गौरवशाली थी जिसमें महान संत दादू जो मरुधरा के संतों में महत्वपूर्ण थे । इन्होंने गुरु की महता पर विशेष जोर दिया तथा गुरु के बिना जीवन को अंधकार में बताया । दादू दयाल जी निर्गुण उपासक माने जाते हैं जिसने सांसारिक आसक्ति से आत्मबोध व दर्शन का महत्व देते हैं । यह मध्यकाल के प्रमुख भक्ति आंदोलनकारी संत थे उनके अनुसार ईश्वर संस्मरण, अच्छी संगति, अहंकार का परित्याग, संयम सील तथा निडर उपासक ही सच्चे साधक हैं । दादू दयाल ने आडंबर व पाखंड की आलोचना की तथा सामाजिक भेदभाव की कठोर निंदा की जीवन सादगी व सफलता से परिपूर्ण पर बल दिया।

**संकेतक्षर-गुरु, अहम्, आडंबर, पंथ, ब्रह्म**

**प्रस्तावना**

राजस्थान में 16वीं शताब्दी शताब्दी एक महान संत दादू हुए इनका जन्म विक्रमी संवत 1601 या 1544 ई. फाल्गुन शुक्ल अष्टमी को बृहस्पतिवार गुजरात में अहमदाबाद जिले में हुआ था । उनकी जाति के बारे में काफी मतभेद है परंतु दादू पंथी इसकी जाति न बताकर लोधी राम ब्राह्मण जो नागर ब्राह्मण था । उसके द्वारा पालन पोषण बताया है दादू 7 वर्ष की आयु में विवाह के बंधन से बंद गए और 11 वर्ष की आयु में ब्रह्मानंद नामक महात्मा ने इनको उपदेश दिया । गुरुजी से मिलने के बाद चिंतन मनन तथा साधना से जीवन व्यतीत किया 6 वर्ष तक आत्म- साक्षात्कार किया कठोर साधना की, हिंदू मुसलमान की धार्मिक आधार पर

अंधविश्वास की निंदा की, इनके दो पुत्र गरीबदास व मिस्कीन दास हुए, इनके दो पुत्री शोभा कवरी व रूप कवरी हुई । अंतिम समय यह नारायणा में बिताया । यहाँ पर ईश्वर के गहरे चिंतन करते हुए 1660 ईस्वी में ज्येष्ट कृष्णा अष्टमी को स्वर्गवास हो गया । दादू जी के अनुसार इनका शरीर भैहराणा की पहाड़ी में सुरक्षित रखा है । भैहराणा को दादू पंथी पवित्र स्थान का दर्जा देते हैं ।

**दादू की ज्ञानात्मक पक्ष**

राजस्थान के ग्रंथ भंडारों में दादू की हस्तलिखित दादू की वाणी की कृतियां बहुत बड़ी संख्या में ज्ञात है । जिसमें दादू जी के भाव विचारधाराए तथा सिद्धांत की जानकारी मिलती है।

दार्शनिक विचारधारा का भाव

संत दादू ने ब्रह्मा जीव जगत मन भावना मोक्ष आदि को अपने विषय विचार सरल व साधारण देसी भाषा में व्यक्त किए थे । जिससे अनपढ़ व साधारण आदमी भी उसकी दार्शनिक पक्ष को भाव को समझ सके ब्रह्मा के बारे में बताते हैं कि परमात्मा पर ब्रह्मा स्वयंभू परम प्रभाव, स्वरूप परम ज्योतिरूप व निराकार माना है । भाव से परे, भाषा से परे, क्रिया से रहित, स्थिरता सदा एक रस होता है । दादू ने कहा सर्वत्र समया है रोम रोम में उसका वास पाया । ब्रह्मा का वास है निराकार होने के साथ उसके पैर हाथ सर में मुख नहीं है मुख नहीं होने से श्रवण व नेत्र को कैसे अंग हो सकते है । किंतु फिर भी ब्रह्मा सब कुछ देखता है सभी दिशाएं में उनका मुख वह कान तथा नेत्र है जिससे वह समस्त दिशाओं में फैला हुआ है ब्रह्मा सब में स्थाई विद्यमान है । जिनका न तो नापतोल है, नहीं पीछा है, नहीं आगा है, और जिनको नहीं परखा जाता है ।

**जीव आत्मा**

दादू जी ने बताया की जीव ब्रह्म का ही एक रूप है जो माया से लिप्त है । इस कारण ब्रह्मा से अत्यंत दूर व पृथक हो जाता है । यही जीव जब माया रुपी आवरण से अलग हो जाता है तो यह ब्रह्मा का रूप बन जाता है । दादू कहते हैं जीव कर्म के बस में है और ब्रह्मा कम रहित है किंतु जब वह आत्म जीव से मिलन हो जाता है । तब सब कुछ जो भी अंतर है वह नहीं रहता है जीव व ब्रह्म एक हो जाते हैं वह कहते हैं जैसे जल में प्रतिबिंब रूप आकाश दिखाई पड़ता है और जल से ही सत्य का आधार व्यापक आकाश है । वस्तुत: जल ही आकाश में शामिल हैं ।

**मन**

दादू जी के अनुसार बताया कि मन अत्यंत चंचल होता है । इनका वश में रखना बहुत ही दू:साध्य है शरीर को वश में किया जा सकता है । मन का निग्रह करना अत्यंत कठिन कार्य है। मन को बड़े-बड़े ऋषि मुनियों द्वारा तपस्वियों भी पथभ्रष्ट होने से नहीं बचे । मन पतंग

की भांति है जो आकाश में चंचल अवस्था में गति करता रहता है । ईश्वर प्रेम में जब मन भीगा रहता है तो वह उड़ान को बंद कर देता है । दादू मन को पाका व काचा जैसे दो रूप में विभाजित करते हैं ।

**जगत**

ईश्वर को ही जगत का रचयिता मानते हैं सृष्टि के संबंध में बताया है ब्रह्मा से ओंकार की रचना हुई ओंकार में पांच तत्वों से शरीर का निर्माण हुआ तथा जगत का प्रसार प्रसार हो गया था । दादू जी जगत को मिथ्या मानते थे उनकी दृष्टि संसार झूठ, परिवार झूठ है, स्त्री पुरुष झूठ है, यह जातियां व कुल सभी झूठ है, माता-पिता बंधु सब झूठ संबंध है । इस प्रकार यह परमात्मा ही एकमात्र सत्य हैं । इसे प्राप्ति का प्रयत्न करना चाहिए ।

**माया**

मन में परमात्मा के बीच भेद डालकर दोनों को पृथक प्रतीति करने वाली शक्ति को माया है । माया मिष्ट भषिणी है । सारा संसार इस भाव के चक्कर में फंसा हुआ है । माया विकार की गठरी है। कोई भी इससे बच नहीं सकता है माया का प्रचलता लोहा बड़े-बड़े ऋषि मुनि, सिद्ध पुरुष, ब्रह्मा विष्णु महेश को स्वीकार किया है । माया पहले झुककर शरीर में प्रवेश करती है और फिर माया कलेजा निकाल कर खा जाती है । मायारुपी डाकिनी ने लोगों को काल कलवित किया है ।

**मोक्ष**

दादू जी का मरणोपरांत मोक्ष में विश्वास नहीं करता है । उनका विचार है, यदि मरने के बाद मुक्ति हो जाती है तो मरने के बाद सभी को ब्रह्म में मिल जाते हैं, किंतु ऐसा नहीं होता है जीव की मुक्ति को ही वास्तविक मोक्ष मानते हैं । इनका कहना मुक्ति से संसार में वह शरीर से प्राप्त हो सकती है । इसलिए लोकगमन को आवश्यकता मानते हैं । इन बातों को मिथ्या व पाखंड मानते हैं ।

**गुरु की महता**

दादू जी ने गुरु को बड़ा माना है जो निरंकार वह सर्वव्यापी ब्रह्मा को प्राप्त करने के लिए गुरु को ही मार्ग का पथ दर्शन सही अर्थ में माना है । वह अपनी ज्ञान रूपी विचारधारा की नोका से शिष्य को भवसागर से पार उतरता है । सद्गुरु में अपरिमित शक्ति का वास होता है वह पशु से मनुष्य व मनुष्य से ज्ञानी तथा ज्ञानी से देवता भी बन सकता है । देवता से ब्रह्मा को भी बनाने का सामर्थ्य है दादू जी की दृष्टि से सद्गुरु का शास्त्रों में व धर्म ग्रंथो में सबसे ऊपर माना है । उसके उपदेश उसे सन्मार्ग की प्राप्ति के लिए प्रयास रहता है जिसे वेदव्याकरण भी नहीं पहचानते हैं । गुरु इस प्रकार राम रूपी भक्ति रस में डूब जाते हैं, अपने उपदेश के द्वारा क्षण में ही भवसागर से उतारकर प्रभु के दर्शन कर सके वही सद्गुरु है ।

**साधना के विभिन्न पक्ष**

दादू जी निर्गुण ब्रह्म में विश्वास था वह अहम् का परित्याग, संयम साधु संगति, हरि स्मरण, नियम आदि की उपासना सच्चे मन से करना ही साधना है । जिस ईश्वर की अनुभूति होती है दादू जी के साधना पक्ष के प्रकार का महत्व इस प्रकार दिया है -

**साधु संगति**

मन में हरि स्मरण लगाना दादू जी ने साधु संगति को अनिवार्य बताया था । साधु संगति के संपर्क में आने से हृदय से भगवान के लिए प्रेम का प्रार्दुभाव होता रहता है । साधु संगति प्रभु कृपा होने से प्राप्त होती है ।

**विरानुभूति**

मन में निर्मलता के लिए दादू जी ने विरह वेदना को साधन माना है । दादू का कहना है कि विरहरूपी अग्नि से मन के विकार नष्ट हो जाते हैं और वह ईश्वर के मिलन के लिए तड़प उठता है । वह विरह सरिता रूपी प्रेम प्रसंग से मन को विषाक्त पैरों रहित हो जाता है । राम नाम से वह स्मरण से अहंकार नष्ट हो जाता है । ब्रह्मा से मन को लगा देने से इंद्रिय भी उसी की ओर लगी रहती है इससे आत्मा में परमात्मा का तदरूप हो जाता है ।

**अंतरध्यान तथा हरि स्मरण का महत्व**

मन में ईश्वर की प्रति लगाव हो जाने से दादू जी ने किसी को भी कष्ट -मार्ग ने अपनाकर अंतर्मुखी बनकर समस्त व्रतियो को निरंतर आत्मा से आत्म साक्षात्कार करने के लिए अंतर ध्यान आवश्यक बताया है । इससे मनुष्य ब्रह्मा के प्रति अभेद चिंतन में निरंतर लिप्त रहता है । यही बुद्धिमान का साधन माना जाता है दादू जी ने बहिर्मुखी साधना की जगह अंतर्मुखी साधना को ही सही बताया है जो आडंबर विहीन होती है ।

**सामाजिक पक्ष**

दादू जी समाज में प्रचलित आडंबर ढोंग तथा वर्ग भेद का खंडन करता है । उन्होंने तीर्थ की महता को भी अस्वीकार किया है और लोग इतने मूर्ख हैं जो अंतर्यामी परमात्मा को ढूंढने काशी, मथुरा ,द्वारिका जाते हैं । उनका कहना था जोगी सन्यासी जैसे कपट भेष से लोकजीवन से बचना चाहिए । अर्थात नाना प्रकार के वश में परमात्मा को नहीं पाया जा सकता है दादू जी ने मस्जिद में जाना, कलमा पढ़ने तथा नमाज पढ़ने आदि को स्वीकार नहीं किया है । दादू ने बताया अपने शरीर में ही मंदिर है और मस्जिद मानते हैं उपासना को शरीर के भीतर अंतःकरण की अनुभूति को मानना है हिंदू मुसलमान में वर्ग भेद मूर्खता है । इनका कोई सार नहीं है दादू जी दार्शनिक वाद विवाद को भी गलत बताया है दादू जी ने कहा न हम हिंदू बनेंगे, न ही मुसलमान बनेंगे, हम इस वर्ग वर्ग के चक्कर में ने पढ़कर ब्रह्मा की सृष्टि में विश्वास करेंगे ।

**दादू पंथ**

दादू जन्म लीला पर्ची तथा संत गुण सागर नामक रचना में हमें दादू पंथ के बारे में विवरण मिलता है । दादू जी के अनेक शिष्य उसी के जीवन काल में बन गए थे। जिसमे 152 शिष्य को प्रधान माना है । जिसमे 100 शिष्य अंतर ध्यान में लिप्त हो गए थे । जो स्थान विशेष पर समय अधिक लगाते थे फिर 52 शिष्य ने दादू पंथ की विजय यात्रा को आगे बढ़ाया । जिनकी प्रधान पीठ नारायणा को बनाया दादू पंथी विवाह नहीं करते थे । बल्कि दादू द्वारों में रहते थे । गृहस्थ लोगों के पुत्र को अपना शिष्य बनाकर पथ को चलाते थे । यह ज्येष्ट शुक्ल अष्टमी को व्रत रखते थे दादू वाणी का महत्व अपने आचरण में सदा ध्यान पूर्वक ग्रहण करते थे । उनमें उच्च- नीच का भेद बिल्कुल भी नहीं था आगे चलकर दादू पंथ पांच शाखों में विभाजन हो गया ।

**खालसा**

यह दादू के पुत्र गरीबदास ने बनाया था उसके बाद उसे इनका छोटा भाई मिस्कीन दास आचार्य गद्दी पर बैठे । फिर आचार्य की परंपरा चलती रही और आज भी जारी है उनके शिष्यों को खालसा कहते हैं जिनकी मुख्य पीठ नारायणा है।

**विरक्त**

यह घूमते फिरते दादू पंथी थे जो गृहस्थ को दादू वाणी का उपदेश देते थे । भिक्षा मांग कर अपना जीवन- यापन करते थे चातुर्मास में यह भ्रमण पर नहीं जाते थे । एक ही स्थान पर ठहरते थे वहीं प्रत्येक दिन एक बार दादूवाणी का स्मरण करते थे।

**खाकी**

यह शरीर के ऊपर भस्म लगाते थे तथा सिर पर जटा को बढ़ाते थे । इनका विश्वास था कि जैसे नदी निरंतर आगे चलती रहती है वह पवित्र होती रहती है । इस प्रकार दादू पंत को भी पवित्र रखने के लिए निरंतर चलते रहना चाहिए गतिशील ही हमारा जीवन का उद्देश्य है ।

**उत्तरादे तथा स्थानधारी**

दादू जी के शिष्य जो भी उत्तर भारत के तरफ चले गए थे उनकी जो परंपरा विकसित हुई उसे उत्तरा दे कहते हैं बाद में एक स्थान पर ही निवासी बनकर रहने लगे तो उन्हें स्थानधारी कहा जाने लगा । जिनमें प्रमुख से बनवारी दास जी थे जिन्होंने हरियाणा ,पंजाब ,हिसार, रोहतक, दिल्ली आदि जगहों पर स्थान बनाया ।

**नागा**

दादू जी के शिष्य सुंदर दास जी ने इस पंथ को चलाया था जो क्षत्रिय धर्म से उनका संबंध था । उनके शिष्य पहलाद दास भी हुए । जिनमें नौ शिष्य थे वह जमात की तरह भ्रमण करते थे तथा शस्त्र धारण करते थे जयपुर के शासक ने उनकी बाह्य आक्रमण में तथा सरदारों के दमन में नागा साधुओं की मदद ली थी । जयपुर राज्य ने इनके लिए अखाड़ा का निर्माण

भी करवा दिया था जो आज भी यह संगठन के रूप में विद्यमान है । कुछ लोग व्यापार में लग गए हैं नागा साधु शस्त्र का अभ्यास आज भी जारी रखते हैं ।

**निष्कर्ष**

राजस्थान के मध्यकाल में दादू ने एक नई ऊर्जा व चेतना का विकास किया । धर्म के प्रति अपने कर्तव्य व अधिकार बताए थे आडंबरों अंधविश्वास पर कठोर प्रहार किया । राजस्थान के शासको ने इस संप्रदाय का प्रभाव पड़ा था इस कारण उनकी बड़ी संख्या में नगदी तथा भूमि अनुदान राज्य की तरफ से मिला था । नारायणा के महंत जी की बहिया से पता चलता है राजस्थान का हर वर्ग जाति धर्म इन से जुड़ा हुआ था और राजस्थान के अलावा हरियाणा, दिल्ली, मध्य प्रदेश,पंजाब आदि के लोग भेंट चढ़ाने व मिलने नारायणा आते थे।

**संदर्भ ग्रंथ सूची**


1. श्री दादू संप्रदाय का संक्षिप्त इतिहास- स्वामी मंगलदास, श्री दादू महाविद्यालय, मोती डूंगरी जयपुर । पृष्ठ संख्या -58
2. राजस्थान में धर्म संप्रदाय व आस्थाऐ- प्रेमाराम, प्रकाशन नवजीवन पब्लिकेशन निवाई, 2004- पृष्ठ संख्या 102
3. श्री दादू दयाल चरित्र चंद्रिका नारायणा जयपुर पृष्ठ संख्या-102
4. राजस्थान के लोक तीर्थ- सक्सेना शालिनी, श्याम प्रकाशन जयपुर, 2001 पृष्ठ संख्या - 11
5. मंदिर शिल्प स्थापत्य कला राजस्थान की सांस्कृतिक परंपरा विजय वर्मा का लेख
6. जयपुर संभाग का जिलेवार सांस्कृतिक व ऐतिहासिक अध्ययन- गुप्ता मोहनलाल, प्रकाशन राजस्थानी ग्रंथगार जोधपुर, 2009 पृष्ठ संख्या140
7. भारतीय संस्कृति के मूल आधार- शर्मा व्यास, प्रकाशन पंचशील जयपुर 2008 पृष्ठ संख्या -116
8. डिजिटल मीडिया। विकिपीडिया आदि



**Mail Id.- vikramsinghyadav89@gmail.com**

www.bohalshodhmanjusha.com Bohal Shodh Manjusha ISSN: 2395-7115
Impact Factor:8.642 January 2025 Page No. : 188-195
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

# E-COMMERCE AND CONSUMER RIGHTS: APPLICABILITY OF CONSUMER PROTECTION LAWS IN INDIA ONLINE TRANSACTIONS

**Sarabjit Kaur Panesar,**
Assistant Professor, Commerce,
Guru Tegh Bahadur National College, Dakha, Ludhiana.

**Abstract:**

Consumers are the most important components of a business ecosystem. A company is never evaluated in a vacuum; rather, it is constantly evaluated in conjunction with the people who use its products and services. Considering how important a consumer is to a business network, it is unfortunate that their rights as consumers are not upheld by weak legal frameworks and ineffective channels for redress, particularly when it comes to online or e-commerce transactions. While e-commerce has made it possible for Indian consumers to shop across state and national borders for the products they want, the numerous consumer regulations in India do not adequately safeguard this expanded avenue for purchase and sale transactions. Many of these clients are left without recourse because the laws pertaining to the same have shown to be inert. Concerns about non-protection of data made available online, inefficient delivery methods, deceptive advertising, and ambiguity regarding jurisdiction in the event of a dispute are just a few of the new issues in the e-commerce space. Given the foregoing, this article will, in brief, examine the rights that consumers have when engaging in online transactions while keeping in mind the various Indian consumer laws that are in place, such as the Indian Contract Act, the Information Technology Act of 2000, the Competition Act of 2000, and the Consumer Protection Act of 1986. There have also been suggestions and actions discussed for closing the gaps in Indian consumer laws.

**Keywords:** e-commerce, consumer protection, and online transactions

## INTRODUCTION

E-commerce is generally understood to include activities related to the purchase and sale of products and services over the Internet, even if the term is not expressly defined in any consumer legislation. E-commerce's reach has expanded globally in tandem with the expansion of the internet. It is notable that e-commerce has given Indian traders access to a vast platform for trade and commerce. In addition to the traders who have profited from selling their items across national borders, consumers of goods and services have also benefited from this strategy. Examples of these benefits include having a variety of options, convenient delivery, and high-quality products at reasonable costs. Thus, the manner that people buy and sell goods in India and around the world has been completely transformed by the internet.

While online retailers such as Flipkart and Jabong offer a plethora of options for a speedy and efficient delivery system, Indian Railways, State Electricity Boards, banks, movie theaters, and others also conduct online operations for booking and payment purposes. The Indian trading industry and other transactions have benefited greatly from the extraordinary feasibility of online

transactions. On the other hand, the unfortunate truth is that, despite the expanded possibilities, engaging in these kinds of online transactions has a drawback, namely the vagueness of the regulations that govern them.

**Consumer Protection Act 1986**

The terms of several consumer laws passed around the nation provide a customer a number of rights. Consumer Protection Act of 1986 is the cornerstone legislation that establishes and protects consumer rights. This Act lists the three tiers of the Indian consumer dispute resolution system, which are the district, state, and national levels.Until recently, nevertheless, it was unclear from the law whether these rules would apply to transactions conducted online. In a written response to the Lok Sabha on July 8, 2014, the State Minister for Consumer Affairs, Food, and Public Distribution made an declaration that the Consumer Protection Act of 1986 will now include online transactions as well. This basically meant that in order to have their complaints resolved, complainants could approach different consumer forums, such as the District Consumer Forum, State Commission, and National Commission. Even though a statement like this doesn't always become law, it was an important step to implement a system for protecting rights. Even yet, this does not imply that new laws designed specifically to support e-commerce have been passed or that a distinct process for resolving disputes resulting from online transactions exists. In actuality, internet transactions are now subject to the requirements of the Consumer Protection Act of 1986.

Online transactions were assumed to fall under the purview of the Consumer Protection Act, 1986, as defined by the Act, until this recent explicit pronouncement. According to the Consumer Protection Act of 1986, a person is considered a consumer if they purchase a good or use a service for any kind of consideration—whether paid or not—other than for commercial purposes. According to the Sale of things Act of 1930, a buyer is anyone who agrees to purchase things. Therefore, based on these two criteria, regardless of whether a sale is made online, anyone who agrees to pay a price for a certain commodity can be considered a customer. Furthermore, the Sale of Goods Act, 1930's definition of a contract of sale shows that this definition may also apply to regular transactions conducted online.

Therefore, even though the Consumer Protection Act of 1986 did not specifically state that e-commerce was under its purview, these clauses implicitly gave consumers the opportunity to file a complaint under the act. The Consumer Protection Act of 1986, however, only offers a more limited view. The Act, which could also be seen as their negative aspect, does not address the many vulnerabilities that arise from the impersonal nature of internet transactions. Thus, the Consumer Protection Act of 1986's reach into e-commerce is limited to offering a redressal procedure that also applies to in-person transactions.

Furthermore, whether there is a "defect in goods" or "deficiency in services," the Consumer Protection Act of 1986 comes into play. Consequently, the Consumer Protection Act of 1986 would only be applicable if one of the aforementioned two requirements is met. The timely delivery of goods is the main concern in e-commerce. Nevertheless, if the goods are not delivered within the allotted time, there is no recourse offered. Due to the seller's anonymity, these complexities cause extra difficulties for internet buyers. Online customers have complained about this on numerous occasions in consumer forums, but their objections have gone unanswered because of the ambiguity of the regulations and the resulting confusion.

**Information Technology Act of 2000**

Online transactions are governed by numerous laws in addition to the primary consumer protection legislation.The Information Technology Act of 2000 is an additional comprehensive

and useful law that establishes a legal foundation for electronic trade. It basically deals with business dealings, specifically those between the people and the government, represented by its numerous employees. The transactions are centered on e-governance and are intended to put in place mechanisms for digital signature certificates and other means of authenticating electronic data in order to conduct routine business operations such as filing and accessing official papers online. The government's attempt to digitize its operations is reflected in the IT Act, 2000, which mandates that all data be made available online and that transactions be safeguarded. Additionally, it lays forth corrective actions such as the appointment of a Controller and the creation of a Cyber Regulations Appellate Tribunal to punish cyber offenses listed in Sections 43 to 47 of the Act.

The fact that this Act gives electronic records legal recognition is still its most important feature. It also effectively modifies the Indian Stamp Act, the Evidence Act, the Bankers' Books Evidence Act, and the Indian Penal Code. All consumer e-commerce is built on this legal recognition, which also ensures that their rights will be effectively enforced in the event that they are violated.

However, this statute does not fully address every facet of e-commerce in terms of consumer rights. It covers business-to-government or business-to-business transactions as its primary focus. It offers information on how to file, store, and view business-related documents. It also protects and authenticates those documents using asymmetric cryptosystems, digital signatures, and other methods. An average Indian guy does not engage in these kinds of transactions on a regular basis; instead, he uses electronic commerce mostly for online banking, online shopping, and money transfer services, among other things. Despite the urgent necessity for such safeguards to be enacted, no particular provisions for the same have been outlined under the Act.
The Act's stated goals include facilitating and legalizing electronic fund transfers between banks and financial institutions as well as providing legal recognition for bankers to retain electronic books of accounts. The IT Act does not establish a legal framework for the protection of consumer rights, despite the fact that such capabilities are now possible. Therefore, this important facet of e-commerce is left out.

**Indian Contract Act 1872**

Any transaction that is made is essentially an electronic contract, especially when it's a business-to-consumer transaction. An electronic contract, which is effectively given legal legitimacy by the provisions of the Information Technology Act, 2000, is also subject to the fundamental and necessary elements for the creation of a contract as per Section 10 of the Indian Contract Act, 1872.As a result, the idea of e-contracts is given legal sanction by the Consumer Protection Act and the IT Act.
Furthermore, Section 10A of the Information Technology (Amendment Act) of 2008 gave electronic contracts legal force. According to Section 10A,
"Where in a contract formation, the communication of proposals, the acceptance of proposals, the revocation of proposals and acceptances, as the case may be, are expressed in electronic form or by means of an electronic record, such contract shall not be deemed to be un- enforceable solely on the ground that such electronic form or means was used for that purpose."
As a result, the Amendment has established the validity of e-contracts as well as the process for putting basic contract formation concepts like acceptance, revocation, and so forth into practice. Therefore, the legitimacy and legal standing accorded to e-contracts is a step toward guaranteeing the protection of the rights of consumers engaging in e-commerce.

Having said that, it is crucial to remember that, even although the idea is sound, it might be challenging to guarantee that the requirements of a legal contract are met in real life. When conducting business online, it can be challenging to determine whether a person is competent to enter into a contract or not. As a result, contracts are frequently signed by inept individuals, lunatics, and kids. Contracts with minors are null and void, as determined in the seminal case of Mohoribibi v. Dharmodas Ghose. Since there are no precautions offered online, entering into a contract with such a child through the internet would likewise render it void.

Because there are two types of contracts—Click Wrap and Shrink Wrap—when conducting online business, protecting customers becomes challenging. Click-wrap contracts require a party to either declare his agreement to the terms and conditions by clicking the "I Agree" icon or his disagreement by clicking the "I Disagree" icon after reading the terms and conditions supplied on the website or program. The "shrink-wrap" container that typically houses the CD Rom of software is where shrink-wrap agreements get their name. The shrink-wrap cover of the CD has printed terms and conditions for accessing the specific software. The buyer must pull the cover off to gain access to the CD Rom. These licenses can have extra conditions that are only displayed on the screen once the CD is inserted into the machine.If the user does not like the new terms, he can always return the product for a complete refund.

These agreements may be found all over the Internet, and it is hard to take advantage of its services without at some point having to sign one of these contracts. The drawback of this is that because the terms and conditions are impersonal, the customers are not afforded the option to negotiate them. Therefore, if the customer wishes to relocate, their only choice is to accept the terms of the contract.

proceed with the exchange. Many contend that these contracts may even result in undue influence as defined by Section 16(3) of the Indian Contract Act, 1872, as the service provider has the ability to control the customer's will.Nevertheless, a number of rulings have upheld the validity and enforceability of these contracts, refuting the earlier claim. Since these are seen to be enforceable, any consumer rights that are infringed upon as a result of these agreements' breaches may be pursued in court. Nevertheless, the drawback persists in that customers in this situation must adhere to the rigid conditions that have been established.

It is common knowledge that a document must be stamped in order for the Indian Evidence Act of 1872 to deem it admissible in court. Nevertheless, only tangible instruments are often imprinted. The question of whether e-contracts should also be subject to stamp duty in light of their recently established validity and legality generated a lot of discussion. But in this sense, there appears to be a contradiction between the Central and State legislation. Through an amendment made in 2005, the Bombay Stamp Act, 1958 was amended to include Article 51A, which imposes stamp duty on records of transactions pertaining to the acquisition or sale of shares, debentures, gilts, and other securities. However, the Indian Stamp Act of 1899 states in Section 8A that there should be no stamp tax on securities in addition to having no provisions regarding stamp duty on e-contracts. It is evident that the Central Stamp Duty law and the revised provisions of the Bombay Stamp Act are at odds with each other. This ambiguity has the effect of making the country's laws ambiguous, which in turn raises questions about the rights of consumers.

The main justification for document stamping is to ensure legal acceptability. Due to the ambiguity surrounding stamp duty laws, the Indian Evidence Act of 1872 has rules pertaining to the admissibility of contracts entered into as a result of electronic commerce. Electronic record admissibility is governed by Section 65B.It says that any data from an electronic record that is

printed on paper, saved, recorded, or duplicated in optical or magnetic media created by a computer is also considered a document and can be used as evidence in any court proceeding without additional verification or original material having to be produced. Therefore, an electronic contract may be accepted as proof, and such a

Positive steps make sure that contracts signed online by customers for the delivery of certain goods or services can be publicly disclosed in the event that they are broken. Not only do established laws support this notion, but courts have also come to agree that electronic records should be accepted as admissible in court.

In the State of Delhi v. Mohd. Afzal & Others case, the courts ruled that electronic records could be used as evidence. They also noted that if someone contests the accuracy of an electronic record or computer evidence on the grounds of system misuse, malfunction, or interpolation, they must provide evidence that supports their position beyond a reasonable doubt. Thus, the courts have adopted a pro-e-commerce and pro-e-governance stance. The aforementioned conclusion can be drawn from the legal precedents established in Societe Des Products Nestle S.A. Anr. v. Essar Industries And Ors. In this case, the courts acknowledged the growing extent of e-commerce and thus, the need to establish legislation concerning the admissibility and proof of electronic records.

The Courts have concentrated on amending other Acts to include the rising usage of ors, referring to the recent modifications on account of internet and other information digital signatures, in their jurisdiction, keeping in mind the broad scope brought about by electronic records. The Indian Penal Code has been updated to include electronic papers under the term of "documents" in sections 29, 167, 172, 192, and 463. The Evidence Act's Section 63 has been revised to allow computer outputs on paper, in optical or magnetic form, or in other media. Procedures for digital signature verification are outlined in Section 73A. Regarding electronic contracts, electronic records, digital signature certificates, and electronic messages, the Evidence Act's Sections 85A and 85B create a presumption.

Because the contracts are now legally recognized and further admissible as evidence, the auxiliary Acts pertaining to electronic records, with their changes and new introductions, ensure that consumer rights are being maintained. The irony is that violations of consumer rights in e-commerce persist despite the implementation of these regulations. The reason for this is that contracts

Data protection is another common issue that arises while trading over the internet. One of the main issues that have surfaced recently is the misuse of consumer data protection that is made available online. In general, the conditions pertaining to data protection are governed by the agreement that the parties have made.Therefore, that contractual agreement would determine whether or not to disclose the same. According to Section 72A of the (Indian) Information Technology Act, 2000, any intentional and knowing disclosure of information in violation of a valid contract without the consent of the party in question may result in up to three years in prison and a fine of INR 5,00,000.

Nevertheless, the nation lacks any legislation with data protection protections in it. Certain topics are covered by the Information Technology Act. For example, Section 43A of the Information Technology Act of 2000 states that a body corporate may be held liable for damages to any person harmed by its possession, handling, or dealing of sensitive personal data or information if it fails to implement and maintain reasonable security practices, causing any person to suffer wrongful loss or gain.

There are no other laws in the nation that serve as a framework for data protection. In addition to the legislative protections that are available, every organization that gathers data must have a privacy policy in place, get consent from anyone who provides sensitive information, and follow appropriate security protocols. The online providers of products and services should investigate any unauthorized access to personal information and any misuse of that information.

One of the primary worries of an individual transacting via the internet is the jurisdiction of cases pertaining to disagreements. The topic of which of these Courts has jurisdiction remains unclear, despite the fact that consumers are aware that they can approach the District, state, and national consumer protection forums based on their financial means. Suits are filed in general civil cases in accordance with Section 20 of the Code of Civil Procedure, 1908, which specifies that suits may be filed in the local limits of the jurisdiction in which the defendants voluntarily reside, conduct business, or work for pay directly; or in which the cause of action, in whole or in part, arises. The area of uncertainty is whether this regulation would apply to transactions made online. In essence, the consumer courts themselves declare that the company's main or branch office has jurisdiction over online purchases. If this is not feasible, the complaint may be filed where the events occurred, or where the cause of action arose.

However, since the website may be accessed from anywhere in the nation, things could get extremely complicated or unfeasible in the event of online purchases. In actuality, consumer courts occasionally handle transactions both online and offline similarly. Section 20 of the Code of Civil Procedure, 1908, would apply in this situation, and as previously said, cases could be filed where the company's registered office is located or where the cause of action originated. The problem, though, is that none of the aforementioned is a codified statute, therefore jurisdictional issues keep coming up. Having stated that, jurisdictional issues arise more frequently in situations when the provider of the online commodity or service is located elsewhere. Courts have "long arm jurisdiction" in these situations, meaning that local laws operate beyond their designated boundaries.

A person who commits an offense or a violation of the Information Technology Act outside of India may do so by reading Section 1(2) of the Act, 2000, read in conjunction with Section 75 of the Act. The Act also applies to any offense or violation committed by an individual outside of India if the act or conduct that constitutes the offense or violation involves a computer, computer system, or computer network located in

India. Furthermore, Section 3 of the Indian Penal Code, 1860 states that anyone subject to legal proceedings under any Indian law for an offence committed outside of India will be dealt with under the IPC's provisions for any such offence in the same way as if it had been committed inside India. Because of this, even though there may occasionally be slight ambiguity regarding jurisdiction—whether national or international—such rules ensure that consumer rights are not violated by the pretense of lacking the authority to bring such a lawsuit.

Online shopping portals are an essential consideration when discussing e-commerce, and the infringement of consumer rights in this context is a significant aspect as well. When contacted within the required time frame, online shopping sites offer a range of remedies in the event that products are deemed defective. For a period of thirty days, Myntra offers exchanges on select items, including clothing and accessories. However, Home Shop 18 demands that you report any flaws to them 48 hours after the item is delivered. Rights of consumers may be infringed in situations where the online shopping platform is fraudulent. The Timtara.com case, in which customers were defrauded of their money after receiving goods for which advance payment was made, has gained attention recently. In this instance, the goods were never delivered despite a

21-day delivery window being provided. Ultimately, Timtara.com's directors were taken into custody when users raised a ruckus on social media. All of the customers who had not previously made an attempt to become aware of their rights were taught a lesson by this. This demonstrated the true meaning of the adage Caveat Emptor.

Tradesmen would not always protect the rights of consumers. Customers ought to be fully informed of their rights and take the necessary precautions to guarantee both their safety and the defense of those rights. Paying with cash on delivery is one of the greatest strategies for online buying. The credit and debit card details as well as other personal information are not disclosed in such a case. To guarantee safety, customers should take additional precautions.

Nowadays, the vast majority of banking transactions take place online. There needs to be a lot more protection in this area, and the Reserve Bank of India has been taking steps in that direction. The RBI has released a number of circulars to reduce the risk associated with internet transactions. A mechanism that allows for further verification or authentication for all online card-not-present transactions using data that is hidden from view on the cards. a mechanism that notifies the cardholder via "online alerts" of every "card not present" transaction totaling at least Rs. 5,000. The RBI has instructed banks to secure both card and electronic payment transactions in order to safeguard customers' rights and best interests. These include changing all current MagStripe cards to EMV Chip cards for all clients who have transacted internationally with their cards at least once or through e-commerce, as well as establishing regulations based on how customers use their cards in transactions, working with approved card payment networks to prevent fraud. This would serve as a safeguard against fraud. Furthermore, banks ought to offer simpler ways (such as SMS) for customers to block their cards and receive a confirmation once the card has been blocked.

Electronic payment methods such as RTGS, NEFT, and IMPS have become popular as channel-neutral ways to transfer money. Customers commonly utilize these delivery routes for e-commerce, thus it is essential that they are safe and secure. These have gained a lot of traction mostly through the online banking channel. Therefore, any delay in these would result in a breach of the online service provider's and the bank's customer rights. There can be a cap on how many beneficiaries can be added to an account in a given day.The addition of a beneficiary may trigger the introduction of an alarm system. For the purpose of detecting fraud, banks can investigate the viability of deploying innovative technology such as adaptive authentication.

In addition to electronic and card payments, one of the helpful services offered by banks to ease the transfer of funds via mobile devices is mobile banking. Because precautions must be taken in this area as well, the RBI has released Master Circular, which offers operating standards for banks, as well as the underlying processes of financial services. As a result, mobile banking technology needs to be safe and provide non-repudiability, authenticity, integrity, and confidentiality. The bank has addressed consumer complaints and consumer protection issues in this regard. As with internet banking, banks offering mobile banking would need to evaluate the liabilities arising from such events and take appropriate countermeasures, such as insuring themselves against such risks, in light of the risks associated with unauthorized transfer through hacking, denial of service due to technological failure, etc. Banks are necessary.

Information security is especially important to the mobile industry because it allows businesses to require customers to disclose risks, obligations, and liabilities on their websites and/or in printed materials.If a consumer lodges a complaint with the bank challenging a transaction, the service-providing bank is accountable for promptly addressing the complaint. Banks may establish protocols to handle these types of customer complaints. It is necessary to

make public the grievance handling process, which includes the compensation policy. Customer issues and complaints pertaining to mobile banking services are under the purview of the Banking Ombudsman Scheme. India would be the legal settlement's jurisdiction.

Therefore, it is accurate to say that several subsidiary Acts work to protect consumer rights throughout the nation. Without discounting their importance or usefulness, however, we also need to create comprehensive legislation that addresses every facet of e-commerce at this time. The rights that are granted to them and the proper channels for recourse should also be made known to the customers in case their rights are violated.

**Conclusion:**

There are currently talks in the nation about allowing FDI in online sales in India. This demonstrates how significant e-commerce has become in the Indian trade sector. In addition to simplifying consumers' life, it has made sure that traders may easily sell their goods anywhere in the world. The only issue that still exists is that the Indian legal system does not address the aspect of e-commerce that pertains to consumer rights. Therefore, it is imperative that rules be expressly declared in order to make e-commerce
hassle-free, which would subsequently motivate more people to use the internet for business.

**References**


1. Nalinakanthi V, What to keep in mind while online shopping , The Hindu Business Line, October 20,2012 , available at http://www.thehindubusinessline.com/money-wise/what-to-keep-in-mind-while-shopping- online/article4016827.ece
2. Akosha , Where do I file my complaints against e-commerce/online companies , available at http://info.akosha.com/consumer-complaints/consumer-protection/where-do-i-file-my-complaint-against-e- commerceonline-companies/#
3. Nishith Desai Associates , E Commerce in India : Legal , Tax and Regulatory Analysis , August 2013
4. Vijay Pal Dalmia , Data Protection Laws in India, Vaish Associates Advocates
5. Neeraj Dubey , India :Legal Issues in E-commerce :Think before you click! Available at mondaq.com
6. Hotmail Corporation v. Van $ Money Pie Inc, et al , C98-20064 (N.D. Ca, April 20, 1998) and ProCd, Inc v. Zeidenburg [86 F.3d 1447 (7th Cir. 1996)
7. D.H Law Associates , Enforceability of E-contracts in India , Newslex :March 2013
8. Rupak Ghosh , The Contractual Validity of E-contracts: An overview , available at www.legalserviceindia.com
9. Neeraj Dubey , India :Legal Issues in E-commerce :Think before you click! Available at mondaq.com



Email:- sarabjitpanesar30@gmail.com

www.bohalshodhmanjusha.com Bohal Shodh Manjusha ISSN: 2395-7115
Impact Factor:8.642 January 2025 Page No. : 196-198
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

# वाल्मीकिरामायण में प्रौद्योगिकी

**रोहित कुमार,** शोध छात्र ,
जम्मू विश्वविद्यालय ,जम्मू

प्रौद्योगिकी का शाब्दिक अर्थ है प्रगतिशील उद्योग या उन्नत कार्य विधि। प्रौद्योगिकी एक ऐसा क्षेत्र है जो वैज्ञानिक ज्ञान एवं सिद्धान्तों को प्रयोग में लाकर मानव जीवन को श्रेष्ठ बनाने हेतु उपकरण, प्रणाली तथा प्रक्रियाओं का विकास एवं प्रयोग करता है। प्रौद्योगिकी विज्ञान एवं इंजीनियरिंग के सिद्धान्तों पर आधारित है।

प्रौद्योगिकी का स्तर वैदिक काल से ही भारत देश में उच्चकोटि का था। पुरातत्वीय दृष्टिकोण से वाल्मीकिरामायण में चक्र में बनाए जाने वाले विविध प्रकार के मिट्टी की विभिन्न रूपरेखाएं एवं वर्णयुक्त होती थी। इन घड़ों के निर्माण की तकनीक उत्कृष्ट एवं परिपूर्ण थी। उस काल के स्वर्णकार, लौहकार, मसिकार, फलक निर्माण करने वाले, मणिका विमार्ण एवं ढलाई निर्माण कार्य की तकनीक में पारंगत थे। तत्कालीन समय में औषधि, आभूषण एवं सौन्दर्य प्रसाधन के रूप में खनिजों को प्रयोग में लाया जाता था। ईटनिर्माण जलनिकास, जलसंग्रह, स्नानगृह, सड़कनिर्माण, भवननिर्माण कला, नगरनिर्माण योजना आदि का स्तर अत्यधिक उन्नत था, इसके साथ ही उस समय के लोग वस्त्रनिर्माण तथा व्यापार आदि में भी निपुण थे। वस्त्र उद्योग बहुत विकसित था। सूत से वस्त्र निर्माण की विधि महर्षि गृत्समद ने प्रकाशित की थी। तदनन्तर रेशमी, कोशा आदि के वस्त्रों का निर्माण किया जाने लगा, जिन पर सोने चांदी की कढाई, रंगाई आदि का कार्य होता था। विदेशों में भारतीय वस्त्रों का निर्यात किया जाता था। वाल्मीकि रामायण में वस्त्र निर्माण कर्ता को सूत्रकर्म विशेषज्ञ कहा जाता था। मणिनिर्माण कर्ता को मणिकाट, बर्तन निर्माणकर्ता को कुम्भकार, शस्त्र निर्माता, मोरपंखो से छत्र-व्यजन आदि निर्माण करने वाले को मायूरक, रत्न पिरोने वाले को वेधक, सजावट हेतु सामान बनाने वाले को रोचक, हाथीदाँत के सामान बनाने वाले दन्तकार, चुना बनाने वाले सुधकार, सोने का काम करने वाले को स्वर्णकार, कम्बल तथा कालीन बनाने वाले कम्बलकारक, वैद्य, धूपक, मद्यविक्रेता, धोबी, नृत्य-गायन-

वादनोपजीवी नट आदि विविध प्रकार के उद्योगों से जीविका चलाने वाले लोग भरत के साथ अयोध्या से वन में गये-

**मणिकाराश्च ये केचित् कुम्भमाराश्च शोभनाः।**
**सूत्रकर्मविशेषज्ञाः ये च शस्त्रोपजीविनः ॥**
**मयूरका: क्राकचिका रोचका वेधकास्तथा।**
**दन्तकारा रसुधाकारास्तथा गन्धोपजीविनः।।**
**सुवर्णकाराः प्रख्यातास्तथा कम्बलधावकाः।**
**स्नापकोष्णोदका वैद्याधूपकाश्शोण्डिकारस्तथा॥**
**रजकास्तुन्नवायाश्च ग्रामघोषमहत्तराः।**
**शैलूषाश्च सह स्त्रीभिर्ययुः कैवर्तकास्तथा॥**[1]

ये सभी कार्मिक स्व-स्व उद्योग की उन्नति के लिए कार्य करते थे। लघु उद्योग, कुटीर उद्योग एवं विशाल उद्योगों में उपर्युक्त उत्पादन प्रचुर मात्रा में होता था, जिनसे सभी प्रयोक्ताओं की जरूरतों की पूर्ति होती थी। रामायणकालीन समाज प्रोद्योगिकी क्षेत्र में काफी उन्नतिशील था। बड़े-बड़े कार्यों को विकसित करने के लिए विविध प्रकार के उपकरण होते थे। धातु उद्योग, यन्त्र उद्योग, शस्त्र उद्योग आदि अपने चरम पर थे। राजकीय महलों की खिड़कियों में पारदर्शी शीशे के कपाट लगे हुए थे, जिससे यह प्रमाण पुष्ट हो जाता है कि उस समय काँच उद्योग का प्रचलन भी था। सोने, चाॅंदी एवं रत्नों से निर्मित आभूषण धारण करने का उल्लेख बहुत स्थानों पर प्राप्त होते हैं। अयोध्या, मिथिला, किष्किन्धा, लंका से लेकर ऋषि मुनियों के आश्रमों में भी सोने तथा चाँदी से बने आभूषणों का प्रयोग प्रचुर मात्रा में होता था। इस प्रकार स्पष्ट हो जाता है कि सोने-चांदी के विशेषज्ञ काफी मात्रा में आभूषणों का निर्माण करने के लिए उद्योग लगाते होंगे। युद्ध सामग्री के निर्माण का उद्योग भी बृहद स्तर पर फैला हुआ था। इस निर्माण में लौह इस्पात, आयस्, कालायस आदि पर्याप्त मात्रा में प्रयोग में लाया जाता था-

**"त्रिशूलकालायसपटिशायुधम्....."**[2]

प्रौद्योगिकी, यन्त्रशक्ति, उपकरण, संहति एवं तकनीक का सबसे बड़ा प्रत्यक्ष प्रमाण रामेश्वरम से लंका के बीच में निर्मित रामसेतु है। जिसे सेतुबन्ध, जल सेतु, एड्मस ब्रिज एवं सेतुसमुद्रम् के नाम से जाना जाता है। प्रौद्योगिकी तथा तकनीक के अन्य प्रमाण भी रामायण कालीन समय में होते है परन्तु यह रामसेतु अप्रतिम पुराकालिक घटना का साक्षी है। आधुनिक समय में अनेको छोटी-बड़ी मशीने अन्यग्रहों पर यात्रा करने, पृथ्वी के अन्तः गतिविधियों की खोज में सन्निहित महामशीन एवं अन्य बहुत से यंत्र कार्यशील है। विज्ञान में प्रगति अपनी चरम सीमा को छू रही है परन्तु आज भी समुद्र पर इतनी लम्बी दूरी तक सेतु निर्माण जैसे किसी कार्य को मूर्तरूप देने की कल्पना तक नहीं की जा सकती। इस सेतु के निर्माण हेतु बड़े-बड़े वृक्षों को उखाडकर तथा शिलाओं को तोडकर उपकरणों की सहायता से लाकर वानरों ने समुद्र पर पुल बनाना शुरू किया-

**हस्तिमात्रान् महाकायाः पाषाणाश्च महाबलाः।**

**पर्वताश्च समुत्पाट्य यन्त्रैः परिवहन्ति च ।।[3]**

इस सेतु निर्माण के लिए कई वानर सरल रेखा मापने हेतु सौ योजन के सूत से रेखांकन कर रहे थे। चौडाई नापने के लिए दण्डों का प्रयोग कर रहे थे। सभी के एकलक्ष्यीय एवं सामूहिक प्रयास से इतनी बड़ी योजना मात्र पाँच दिनों में सम्पूर्ण हो गई तथा छठे दिन उसका लोकार्पण हो गया। यह सब उच्चतम तकनीक से ही सम्भव है।

एवमेव राम को वापिस अयोध्या लौटाने हेतु प्रस्थान से पूर्व भरत ने रास्ते, पुल, कुॅंए, बावडी, पड़ाव, छावनी, बाँध आदि बनाने के लिए विशेषज्ञ, कार्मिक एवं आवश्यक यन्त्र तथा निर्माण सामग्री भेजी थी। इससे स्पष्ट हो जाता है कि दूरदर्शी योजनानुसार पूर्व सज्जा किस प्रकार की जाती थी। अयोध्या की चतुरंगिणी सेना के गमन योग्य मार्ग तैयार करने में उच्च तकनीक का उपयोग किया गया। भारी वाहनों के आने-जाने से मार्ग क्षतिग्रस्त न हो इसलिए खुदाई, भराई आदि के बाद पक्की सड़कों का निर्माण किया गया।

अधिकतर लोग कृषि उद्योग तथा पशुपालन से जीविकोपार्जन करते थे। कृषि एवं व्यापार से ही लोगों का जीवन सुखी एवं समृद्ध होता है-

**कच्चित् ते दयिताः सर्वे कृषिगोरक्षजीविनः।**

**वार्तायां संश्रितस्तात लोकोऽयं सुखमेधते।।[4]**

इसी प्रकार गोपालन भी उस समय एक उद्योग के रूप ही था। गाय से प्राप्त दूध, दही, लस्सी, मक्खन, घी, गोमूत्र आदि से अनेक प्रकार के पदार्थ बनाए जाते थे जिससे लोगों को वृति प्राप्त होती थी। हाथी, घोड़े, ऊँट आदि के उपयोग से भी उद्योग के अनेकों अवसर मिलते थे-

**कच्चिन्नागवनं गुप्तं कच्चित् ते सन्ति धेनुकाः।**

**कच्चिन्न गणिकाश्वाना कुंजराणां च तृप्यसि।।[5]**

इस प्रकार कहा जा सकता है कि बाल्मीकि रामायण में प्रौद्योगिकी का एक महत्वपूर्ण स्थान था जो तत्कालीन समाज की उन्नत एवं अद्वितीय तकनीकी क्षमताओं को दर्शाता है।

**सन्दर्भ ग्रन्थः-**


1) वाल्मीकि रामायण, अयोध्याकाण्ड, सर्ग- 83, श्लोक 12 to 15

2) वाल्मीकि रामायण, सुन्दरकाण्ड, सर्ग- 41, श्लोक-12

3) वाल्मीकि रामायण, युद्धकाण्ड, सर्ग- 22, श्लोक-60

4) वाल्मीकि रामायण, अयोध्याकाण्ड, सर्ग- 100, श्लोक- 47

5) वाल्मीकि रामायण, अयोध्याकाण्ड, सर्ग- 100, श्लोक-50



**ईमेल - bharateeyah@gmail.com फ़ोन नं - 8803142790**

www.bohalshodhmanjusha.com Bohal Shodh Manjusha ISSN: 2395-7115
Impact Factor:8.642 January 2025 Page No. : 199-200
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

# वाल्मीकिरामायण में मूर्तिकला वास्तु विज्ञान के आधार पर

**वीणा शर्मा,** शोधछात्रा,
जम्मू विश्वविद्यालय, जम्मू

**वास्तु शब्द की व्युत्पत्ति–** 'वस्' निवासे धातु में 'तृण्' प्रत्यय के योग से वास्तु शब्द की व्युत्पत्ति मानी गई है। जिसका शाब्दिक अर्थ है "घर बनाने का स्थान अर्थात् भवन, भूखण्ड, घर, आवास, निवास–भूमि"।[1]

ब्रह्माण्ड में व्याप्त चेतना उर्जा एवं मनुष्य की चेतना उर्जा का सामंजस्य स्थापित करने वाले सिद्धान्त को पदार्थ उर्जा सन्तुलन कहते हैं। प्राकृतिक उर्जा तथा मनुष्य द्वारा संचालित कृत्रिम उर्जा के अधिक सदुपयोग के लिए निर्माणाधीन वस्तु का स्थान, स्थिति, आकार, दिशा एवं दशा की संरचना वास्तु विज्ञान के अनुसार ही की जाती है। वास्तुविज्ञान प्राणियों को सांसारिक व्यवस्था की क्षमता प्रदान करने के लिए है, जिससे सभी प्राणी सुखी एवं सुरक्षित जीवन व्यतीत कर सकें। वास्तु एवं ज्योतिष का सम्बन्ध वैज्ञानिक आधार पर है। भवन की स्थिति, दिशा–शोधन, निर्माण समय, भवन के विविध भागों का आकार–प्रकार, निर्माणकर्ता, निवास–कर्ता, गृहप्रवेश का मुहूर्त आदि भवन के स्वामी के साथ सुयोग मिलाने के लिए ज्योतिषीय आधार पर गणना की जाती है। प्राकृतिक प†चभूतों का वैयक्तिक पंच महाभूतों से उचित सामंजस्य कराना ही वास्तु विज्ञान का मूल उद्देश्य है। भारतीय मन्दिर निर्माण परम्परा में ज्योतिष तथा वास्तु का सामजस्य अनोखा है। कोणार्क का सूर्य मन्दिर, माहुर का रेनुका देवी मन्दिर एवं कोल्हापुर का महालक्ष्मी मन्दिर इसके प्रमाण हैं। दिल्ली स्थित कुतुबमीनार भी ज्योतिष एवं वास्तु वेधशाला का ही प्रमाण है। मीनार में लगे हुए विभिन्न आकार–प्रकार तथा वर्ण वाले पाषाण ज्योतिषीय गणना का आधार हैं। एवमेव कहा जा सकता है कि प्राचीन वास्तु रचनाएँ केवल एकपक्षीय नहीं बल्कि बहुपक्षीय तथा बहुआयामी हैं।

**मूर्तिकला–**

**मूर्ति शब्द की व्युत्पत्ति–** वाचस्पत्यम् के अनुसार 'मुर्च्छ' धातु में 'क्तिन्' प्रत्यय के योग से 'मूर्ति' शब्द व्युत्पन्न होता है। जिसका अर्थ है– आकृति, स्वरूप, सूरत, शरीर, धारणा, प्रतिमा, सौन्दर्य आदि।[2]

मूर्तिकला का उल्लेख रामायण में कई स्थानों पर प्राप्त होता है? ये मूर्तियाँ सज्जा एवं मांगलिक चिह्नों के रूप में ही प्रयुक्त की जाती थी। हालांकि, मूर्तिपूजा का कोई ठोस प्रमाण उपलब्ध नहीं है। रामायण में मन्दिरों का उल्लेख अवश्य हुआ परन्तु यह स्पष्ट नहीं है कि ये मन्दिर किस देवी– देवता के लिए समर्पित थे। रामायण में धूप, दीप, नैवेध एवं अर्पण का उल्लेख विभिन्न स्थानों पर होता है, जिससे स्पष्ट होता है कि इन वस्तुओं का प्रयोग विशेष देव की पूजा–अर्चना के लिए किया जाता था। इसी प्रकार देवताओं के अन्नग्रहण का प्रसंग भी रामायण में प्राप्त होता है–

**यदन्नः पुरुषो भवति तदन्नातस्य देवताः।।**[3]

अयोध्या स्थित राम भवन का मुख्य द्वार भी देवप्रतिमाओं से सुसज्जित था–

**कांचनप्रतिमैक्रागं मणिविदुमतोरणम्।**[4]

द्वार पर आदरणीय, पूजनीय तथा श्रद्धेय प्रतीकों की स्थापना की जाती था। द्वार दर्शन के माध्यम से ही भवनस्वामी के व्यक्तित्व का परिचय मिल जाता था। द्वार पर मांगलिक प्रतीकों के साथ देव प्रतिमाओं का होना तत्कालीन मूर्तिकला की कला प्रियता को दर्शाता है।

रथों पर भी स्वर्ण प्रतिमाओं का निर्माण होता था। यथा– दुषण के रथ पर मत्स्य, पुष्प, वृक्ष, पर्वत, चन्द्रमा, सूर्य तथा अन्य मांगलिक पक्षियों के समुदाय एवं तारिकाओं की स्वर्ण प्रतिमाएँ अंकित थी–

**तं मेरूशिखराकारं तप्तकांचनभूषणम्।**
**हेमचक्रसम्बाधं वैवूर्यमयकूबरम्।।**
**मत्स्यैः पुष्पैर्दुमैः शैलेश्चन्द्रसूर्येश्च कांचनैः।**
**माXल्यैः पक्षिसङ्घैश्च ताराभिश्च समावृतम्।।**[5]

श्रीवृद्धि हेतु ऐसी लक्ष्मी की मूर्ति प्रशस्त मानी जाती है जिसका अभिषेक दो गजराजों की सूँढ में लिए हुए कमलपुष्पों से हो रहा हो। आज भी महालक्ष्मी पूजन के अवसर पर इस प्रकार के चित्र और मूर्तियाँ देखी जाती है। रावण के पुष्पक विमान में अद्भुत समृद्धि एवं भव्यता का दृश्य था, जिसमें दो गजराज कमल पुष्पों से सुसज्जित थे और लक्ष्मी जी का अभिषेक करते हुए प्रतिमाएँ स्थापित थी।

**नियुज्यमानाश्च गजाः सुहस्ताः सकेसराश्चोत्पलपत्रहस्ताः।**
**बभून देवी च कृतासुहस्ता लक्ष्मीस्तथा पद्मिनी पद्महस्ता।।**[6]

मुनि अगस्त्य के आश्रम में विष्णु, महेन्द्र, शिव आदि देवताओं के स्थान का उल्लेख क्रमशः प्राप्त होता है जिससे स्पष्ट हो जाता है कि वहाँ उन देवों की प्रतिमाएँ अवश्य होंगी।

**स तत्र ब्रह्मणः स्थानमग्नेः स्थानं तथैव च**
**विष्णोः स्थानं महेन्द्रस्य स्थानं चैव विवस्वतः।।**
**सोमस्थानं भगस्थानं स्थानं कौबेरमेव च।**
**दातुर्विधातुः स्थानेच वायोः स्थानं तथैव च।**
**नागराजस्य च स्थानमनन्तस्य महात्मनः**
**स्थानं तथैव गायत्र्या वसूनां स्थानमेव व।**
**स्थानं च पाशहस्तस्य वरूणस्य महात्मनः।।**
**कार्तिकेयस्य च स्थानं धर्मस्थानं च पश्यति।**[7]

रामायण काल में मनुष्य वानर, नाग, राक्षस आदि के लिए मूर्तियाँ मांगलिक, शोभा एवं ऐश्वर्य का प्रतीक थी। जिनमें प्रमुखतया देव, पशु–पक्षी, ग्रह–नक्षत्र, वृक्ष आदि की मूर्तियाँ होती थी।

इस प्रकार कहा जा सकता है कि तत्कालीन समय में भी मूर्तिकला का प्रचलन इतना था कि मुख्य द्वारों एवं भित्तियों पर भी विविध प्रकार की सोने–चाँदी, ताँबे एवं रत्नों की प्रतिभाएँ अंकित की जाती थी। रामायण में मूर्तिकला एवं वास्तु विज्ञान का संयोजन तत्कालीन समाज के धार्मिक, सांस्कृतिक एवं तकनीकी समृद्धि का प्रमाण है।

**सन्दर्भ ग्रन्थ–**


1. संस्कृत हिन्दी कोश, वामन शिवराम आप्टे पृष्ठ–123
2. वाचस्पत्यम्, पृष्ठ–4759
3. वाल्मीकि रामायण, अयोध्या काण्ड, सर्ग–103, श्लोक 3
4. वाल्मीकि रामायण, अयोध्या काण्ड, सर्ग–15, श्लोक 23
5. वाल्मीकि रामायण, अरण्य काण्ड, सर्ग–12, श्लोक 13–14
6. वाल्मीकि रामायण, सुन्दरकाण्ड, सर्ग–7, श्लोक 14
7. वाल्मीकि रामायण, अरण्य काण्ड, सर्ग–12, श्लोक 17–21



**ई–मेल :** veenabral123456@gmai.com **फोन नं.: 6006590191, 9086003189**

www.bohalshodhmanjusha.com Bohal Shodh Manjusha ISSN: 2395-7115
Impact Factor:8.642 January 2025 Page No. : 201-205
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

# भोजपुरी संस्कार गीतों में निहित लोक-मान्यताएँ व प्रथाएँ

**सृष्टि गंगवार,** शोधार्थी हिन्दी विभाग,
डी.एस.बी. परिसर कुमाऊँ विश्वविद्यालय, नैनीताल

प्राचीन काल से मानव सभ्यता के विकास क्रम को यदि देखा जाए तो पहले मनुष्य प्रकृति का उपासक था तथा आज के आधुनिक आडंबरयुक्त जीवन के स्थान पर सरल, सहज प्राकृतिक जीवन जीता था। जैसा कि हम जानते हैं साहित्य समाज का दर्पण होता है, तत्कालीन साहित्य में लोक जीवन की वही सरलता, सहजता प्रचलित रीति-रिवाजों के साथ मौजूद रही। लोक व उसकी सहजता को परिभाषित करते हुए कृष्णदत्त पालीवाल अपने लेख में लिखते हैं- "लोक वही है जहाँ जीवन-जगत में सहज अकृत्रिमता का स्थायी निवास है। लोक की माता पृथ्वी है वही हमें जीवन का अध्यात्मशास्त्र देती है। रूपों का निर्माण करती है। प्रकृति के साथ जीना सिखाती है। लोक का सहज रूप ही शिव में संकलित होता है।"[1] डॉ. शैलेश श्रीवास्तव लोक की विशेषता बताते हुए लिखते हैं- " एकत्व बोध जहाँ धूमिल पड़ जाए, पीछे छूट जाए और समष्टि अथवा साधारण जनसमाज या जनमानस जितना प्रगाढ़ होता जाए,अग्रणी होता जाए, वही **'लोक'** की असली पहचान है।"[2] आम जनमानस के बीच प्रचलित साहित्य लोक साहित्य कहलाया। जो किसी एक के द्वारा रचित न होकर सम्पूर्ण लोक द्वारा रचित व सम्पूर्ण लोक की धरोहर माना गया। यही वजह है कि हमें लोकसाहित्य में लोकजीवन का विराट स्वरूप दिखाई देता है। हमारी संस्कृति में प्राचीन काल से ही संस्कारों का विशेष महत्व रहा है और इस अवसर पर संस्कार गीतों के गाए जाने की परंपरा रही है। संस्कार गीत भारतीय संस्कृति में सम्पन्न होने वाले संस्कारों के अवसर पर जन मानस द्वारा खुशी अभिव्यक्त करने का एक महत्वपूर्ण माध्यम भी हैं। इन गीतों में एक क्षेत्र विशेष व उसके निवासियों की लोक संस्कृति की झलक दिखाई देती है ।ये गीत अपने अंदर आम जनमानस के हृदयों के समस्त उद्गारों को समेटे होते हैं। कहीं आनंद व उत्सव के गीत हैं तो कहीं विरह के, कहीं जन्मोत्सव की खुशी है तो कहीं नि:संतान होने का दुख, वहीं विवाह संस्कार में तो अनेकों रीति-रिवाजों को इन संस्कार गीतों के माध्यम से मनोरंजक बनाया जाता है। जीवन के प्रत्येक पक्ष का इन गीतों में बड़ी ही सरलता से चित्रण किया गया है । जब इन गीतों को गाया जाता है तो हृदय विविध रसों से भर आता है क्योंकि ये हमारी लोकभाषा में रचित होते हैं।

भारत में भोजपुरी भाषा का क्षेत्र बिहार, उत्तरप्रदेश, झारखंड, छत्तीसगढ़, मध्यप्रदेश आदि राज्यों के हिस्सों में फैला हुआ है। भोजपुरी में प्रचलित संस्कार गीतों में प्राय: सोहर गीत, मुंडन के गीत, जनेऊ के गीत, विवाह के गीत शामिल हैं। कहीं-कहीं मृत्यु के अवसर पर भी गीत गाए जाने का प्रचलन है। इन लोकगीतों के द्वारा लोगों के धार्मिक-विश्वास, मान्यताएँ, रीति-रिवाज व परंपराएँ एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी में हस्तांतरित होते रहते हैं। लोकमानस इसमें कुछ जोड़ता व समयानुसार परिवर्तित करता इस परंपरा का निर्वहन सदियों से इसी प्रकार करता आया है। कुछ मान्यताएँ व परंपराएँ आज भी उसी तरह प्रचलित हैं व लोगों के बीच वही महत्ता रखती हैं जो पूर्व से विद्यमान है।

भोजपुरी क्षेत्र में जन्म से पूर्व व जन्म के समय सोहर गीतों को गाए जाने की प्रथा है जो विशेषत: पुत्र के जन्म के अवसर पर गाए जाते हैं। इन गीतों में राम और कृष्ण पुत्र के प्रतीक के रूप में आते हैं तथा कौशल्या और यशोदा माता के रूप में व इसी तरह सीता और जनक आदि प्रतीकों का प्रयोग भी अन्य गीतों में किया जाता है। यहाँ प्रचलित एक गीत में स्त्रियाँ बच्चे के जन्म के समय उसके सुंदर होने का कारण पूछती हैं । तब उसकी माँ कार्तिक स्नान का महत्व बताते हुए नारियल, छुहारा और नारंगी खाने का उल्लेख करती हुई कहती है कि इन चीजों का सेवन करने से बच्चा सुंदर पैदा हुआ है। गीत की पंक्तियाँ इस प्रकार हैं -

**"बहुआ कवन बरत तुहूँ कइलू, होरिल बड़ सुन्नर हो ।**
**कातिक नहइनीं कतिकवा, त अउरी कतिकवा नू हो।**
**गोतिनी, कवन कवन फल खइलु , होरिल बड़ सुन्नर हो।**
**गड़ी में खइनीं, छोहाड़ा, त आउरी नवरंगिया नू हो।"[3]**

उपर्युक्त गीत में कार्तिक स्नान का महत्व बताया गया है और संभवत: नारियल पानी के संबंध में ये मान्यता है कि इससे गर्भस्थ शिशु की आँखें बड़ी-बड़ी और सुंदर होती हैं। यही मान्यता आज भी कहीं-कहीं मानी जाती है और गर्भवती स्त्रियों को नारियल पानी का सेवन करने की सलाह भी दी जाती है। इसी के साथ-साथ सूर्य देव की आराधना तथा एकादशी के व्रत का माहात्म्य भी इन गीतों में निहित है।

गर्भावस्था में स्त्री द्वारा देखे गए स्वप्नों का भी लोकजीवन में बड़ा महत्व रहा है। ये भी माना जाता है कि उस समय में स्त्री के मन में जैसे विचार रहेंगें वैसी ही संतान को वह जन्म देगी। इसलिए स्त्री के कक्ष में सुंदर, सुविचारयुक्त तस्वीरों को लगाने की सलाह भी दी जाती है ।उसे धार्मिक ग्रंथों को पढ़ने या उनका वाचन सुनने और सद् आचरण भी रखने को कहा जाता है जिससे उसकी आने वाली संतान सद्गुणों से युक्त हो। एक भोजपुरी सोहर गीत में स्त्री द्वारा देखे गए सपने की व्याख्या इस प्रकार की गई है-

**"ए ललना, सपना देखिला अजगूत, सपनवा बिचारहु हो। ।**
**गइया त देखिला बछरूआ सँघे, बाभना तिलक लेले हो।**
**ए ललना, अमवा त देखिला घवध फल, पनवा रे सोहावन हो ।।**

**गइया तो तोहरो लक्षिमी हई, बभना नरायन हो।"[4]**

उपर्युक्त गीत में गाय लक्ष्मी का, ब्राह्मण नारायण का, आम का घौद(गुच्छा) बालक का तथा पान सुंदर भविष्य का प्रतीक है। इस प्रकार के हम कई और गीत भी भोजपुरी क्षेत्र में प्रचलन में पाते हैं। सपने में हाथी को देखना भी गर्भवती स्त्री के सौभाग्य का सूचक माना जाता है। इस प्रकार स्वप्न में कुछ देखना और उसका अर्थ और महत्त्व आज भी समाज में मायने रखता है ।

प्राचीन जनमानस में प्रकृति के साथ जुड़ाव तो था ही उसके साथ ही पशु-पक्षियों द्वारा प्राप्त संदेशों का भी लोकजीवन के बीच महत्त्व रहा है। जैसे बिल्ली और कुत्ते का रोना आज भी अशुभ माना जाता है। कौए के बोलने को शुभ सूचना देने व अतिथि आगमन का संकेत देने वाला माना गया है।

**"नाहिं मोरा ए भउजी नउआ गइले, नाहिं लोचनिया गइले हो ।**
**आरे, कागवा लोचनियाँ लेके गइले, बधइया माँगें अइनी नू हो।।"[5]**

ग्रामीण लोकजीवन में टोने-टोटकों में भी आस्था विद्यमान रहती है, उसी आस्था को परिलक्षित करता हुआ एक भोजपुरी गीत कुछ इस प्रकार है जिसमें सास व ननद को टोना करने वाली बताया गया है -

**"कवन डाइन कवन जोगिन, अयलिन हो अँगना ।**
**कि आहो लाल, दूधवो ना पिये कन्हैया, रोयेला हो एतना।**
**सास मोर डाइन ननद मोर जोगिन, अयलिन हो अँगना।**
**कि आहो लाल, दूधवो ना पिये कन्हैया, रोयेला हो एतना।"[6]**

प्राचीन समय से ही लोगों के बीच ये मान्यता रही है कि नि:संतान व्यक्ति और विधवा स्त्री का मुख यदि सुबह-सुबह देख लिया जाए तो दिन अच्छा नहीं गुजरेगा, ऐसा होने पर किसी न किसी अनिष्ट की आशंका उनके मन में बनी रहती थी। इसका वर्णन एक गीत में इस प्रकार किया गया है -

**"पइसी जगावेली कोसिला रानी, उठीं ना सिर साहेब हो ।**
**साहेब, देखलीं निरबसिया के मूँह, आजू रे दिन कइसन हो ।।"[7]**

भोजपुरी क्षेत्र में विवाह की रस्मों में एक रस्म 'नहधू नहावन' प्रचलित है जिसमें वर को जब तैयार करने से पहले स्नान कराया जाता है तब उसके शरीर से गिरते पानी को एकत्रित करके उसे कन्या के यहाँ भेज जाता है और उस पानी से कन्या को वर के प्रति समर्पण भाव से स्नान करना होता है। ऐसी मान्यता है कि इससे कन्या के मन में अपने होने वाले पति के प्रति अव्यक्त आकर्षण उत्पन्न होता है । इस अवसर पर गाया जाने वाला गीत इस प्रकार है-

**"झरिहरि झरिहरि नदी बहे हो**
**तेइ पइठी गउरा नहाय।**
**इस्सर पुछेल महादेव से हो**
**गउरा का रे नहइलेह होय।**

**पाप पराछित बहि जइते हो।**

**जनम सुआरथ होय।"[8]**

भोजपुरी समाज में वैवाहिक संस्कार को बहुत रीति-रिवाजों व रस्मों के साथ सम्पन्न कराया जाता है। यहाँ के लोकगीतों में कन्या के दान को अन्नदान और स्वर्णदान से भी बढ़कर बताया गया है-

**अन्न दान के दान ना कहीं, सोना- दान जगदीस जी ।**

**कन्यादान उत्तिम बड़ बाबा, जाहु मन राखउ ज्ञान जी।।**

एक गीत में ये भी उल्लिखित है कि जैसे घी के बिना हवन नहीं होता है, दूध के बिना खीर अच्छी नहीं बनती है उसी प्रकार एक पुत्र के बिना जग अंधियारा है और कन्यादान के बिना धर्म नहीं होता। कन्यादान को सबसे बड़ा दान बताया गया है।

**"घीव बिना बेटी हो हुमियो ना होइहें, दूध बिना जउरी ना होइ ए ।**

**एक पुतर बिना जग अन्हिआरा, धिया बिना धरम ना होइ ए ।।"[9]**

भोजपुरी संस्कार गीतों में हमें लोकजीवन की मान्यताएँ जिनमें से कुछ परंपरा ही बन चुकी हैं, दिखाई देती हैं। जैसे स्वप्न से जुड़ी मान्यताएँ आज भी प्रचलन में हैं। इन गीतों में जनमानस की आस्थाएँ और विश्वास निहित हैं। जैसे टोना-टोटका व तंत्र-मंत्र आज भी माने जाते हैं, संस्कारों व अनुष्ठानों के समय आज भी संबंधियों द्वारा नेग मांगना व नेग देना इत्यादि कई प्रथाएं हैं जो प्रचलन में हैं। कुछ जो कि कुरीतियों के रूप में विद्यमान थीं बदलते परिदृश्य के साथ अब वे परिवर्तित हुई हैं अथवा खत्म हुई हैं। शुभ कार्य से पहले दैव आराधना, व्रतों व त्यौहारों का महत्त्व आज भी समाज में विद्यमान है। ये लोकमान्यताएँ हमारे समक्ष वहाँ के जनजीवन की सहजता, सरलता व प्रकृति के प्रति जुड़ाव को भी प्रदर्शित करती हैं। ये गीत जनजीवन की झांकी को प्रदर्शित करते हैं। इनमें यदि जीवन की समस्याएँ होती हैं तो उनका समाधान भी इन्हीं गीतों में निहित रहता है। इन गीतों के माध्यम से जीवन जीने की सीख व उचित उपदेश भी मिलते हैं। हमारे पूर्वजों ने विरासत के रूप में हमें इन गीतों के माध्यम से अमूल्य धरोहर प्रदान की है। जिसको सुरक्षित रखना व लोकगीतों की इस परंपरा को बनाए रखना वर्तमान पीढ़ी का कर्तव्य है जिससे वे अपनी भावी पीढ़ी को ये विरासत सौंप सकें।

**संदर्भ-**


1. विद्यानिवास मिश्र,सं- 2015 लोक और शास्त्र अन्वय और समन्वय, नयी दिल्ली, वाणी प्रकाशन, पृ. सं. 55
2. डॉ. शैलेश श्रीवास्तव, सं-2009, भोजपुरी संस्कार गीत और प्रसार माध्यम, नई दिल्ली, राधाकृष्ण प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड, पृ. सं. 26
3. श्री हंसकुमार तिवारी, श्री राधाबल्लभ शर्मा, भोजपुरी संस्कार-गीत, पटना, बिहार-राष्ट्रभाषा-परिषद्, पृ. सं. 55
4. वही, पृ. सं. 93

5. वही, पृ. सं. 67
6. वही, पृ. सं. 144
7. वही, पृ. सं. 107
8. डॉ. शैलेश श्रीवास्तव, सं-2009, भोजपुरी संस्कार गीत और प्रसार माध्यम, नई दिल्ली, राधाकृष्ण प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड, पृ. सं. 121
9. वही, पृ. सं. श्री हंसकुमार तिवारी, श्री राधाबल्लभ शर्मा, भोजपुरी संस्कार-गीत, पटना, बिहार-राष्ट्रभाषा-परिषद्, पृ. सं. 314
मो. न. - 8439439002

www.bohalshodhmanjusha.com Bohal Shodh Manjusha ISSN: 2395-7115
Impact Factor:8.642 January 2025 Page No. : 206-209
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

# मानवाधिकार और पुलिस नैतिकता

**रमेश कुमार भोजक**, शोध छात्र समाजशास्त्र,
**डॉ. तेज कुमार,** शोध सुपरवाइजर,
टांटिया विश्वविद्यालय श्रीगंगानगर

**सार संक्षेप**

मानवाधिकार नैसर्गिक अधिकार है जिसका अर्थ है कि सभी मनुष्य इन अधिकारों के साथ जन्म लेते हैं और उन्हें किसी भी व्यक्ति द्वारा उनसे छीना नहीं जा सकता है यह सार्वभौमिक अधिकार है तथा वंश, धर्म, जाति, लिंग ,आयु ,और जन्म स्थान को आधार दिए बिना सभी व्यक्तियों को उपलब्ध है। भारत जैसे विकासशील देशों में पुलिस की भूमिका अत्यधिक जटिल और चुनौतीपूर्ण होती है अज्ञान तथा अशिक्षा के कारण इस वर्ग की पुलिस के प्रति जो अवधारणा होती है वह पूर्वाग्रह से ग्रस्त रहती है। बिना अधिकारों के मनुष्य की ही नहीं किसी भी प्राणी की कल्पना नहीं की जा सकती है। मानवाधिकार सभी मनुष्यों के जन्मसिद्ध अधिकार हैं।

**बीज-शब्द**

मानव अधिकार, पुलिस, अनुच्छेद, जनतांत्रिक, राज्य

**प्रस्तावना**

मानवाधिकारों की सुरक्षा करना तथा उनके सम्मान को बढ़ावा देना राज्यों का कर्तव्य है राज्य का यह परम कर्तव्य है कि वह मानव अधिकार के सम्मान को बढ़ावा दें। मानव अधिकार की अवधारणा का केंद्र बिंदु यही है कि सभी मनुष्य एक समान है तथा उन्हें गरिमा के साथ जीने का अधिकार है। सभी व्यक्ति भय मुक्त होने चाहिए और उन्हें पूर्ण सुरक्षा प्रदान की जानी चाहिए मानव अधिकारों को सभी राष्ट्रों द्वारा स्वीकार किया गया है तथा इनको राष्ट्रीय तथा अंतरराष्ट्रीय कानून में शामिल किया गया है तथा मानव अधिकारों की विश्व व्यापी पहचान है। प्रत्येक नागरिक के इन मानव अधिकारों की रक्षा करना व मानवाधिकारों के हनन पर न्याय दिलाना राज्य का दायित्व है इसमें से अधिकतर मानवाधिकार राष्ट्रीय तथा अंतरराष्ट्रीय कानून में शामिल किए गए हैं ।

मानव अधिकारों की सार्वभौमिक घोषणा संयुक्त राष्ट्र के सदस्यों द्वारा 1948 में स्वीकार की गई एक घोषणा है जिसे भारत द्वारा भी स्वीकार किया गया है इसमें कहा गया

है कि मानव अधिकार विश्व में स्वतंत्रता न्याय और शांति की धरोहर है। भारत के संविधान में इनमें से अधिकतर मानवाधिकारों को मौलिक अधिकारों के रूप में शामिल किया गया है तथा अन्य अधिकारों को राज्य के नीति निर्देशक तत्व का अंग बनाया गया है।

**साहित्य पुनरावलोकन**

शोध समीक्षा के लिए तथा साहित्य पुनरावलोकन करने के लिए मानव अधिकार संगठनों का अध्ययन किया गया है जिसमें एमनेस्टी इंटरनेशनल, सिटिजन फॉर डेमोक्रेसी, मानव अधिकारी संग्राम समिति, कनफेडरेशन एंड ह्यूमन राइट्स ऑर्गेनाइजेशन, फॉर्म ऑफ़ फैक्ट फाइटिंग डॉक्यूमेंटऔर एडवोकेशी तथा इंटरनेशनल हुमन राइट्स एसोसिएशन और भारतीय लोगों के मानवाधिकारों का भी अध्ययन किया गया है।

**शोध उद्देश्य**

1. क्या वर्तमान में पुलिस मानवाधिकारों की रक्षा करने में सक्षम है?
2. पुलिस और जनता के संबंध क्या मानवाधिकारों के हनन को रोकने में सक्षम है?
3. क्या वर्तमान समय में भी अशिक्षा और जागरूकता के अभाव में मानवाधिकारों का हनन होता है?
4. मानवाधिकारों के संरक्षण में सामुदायिक पुलिसिंग की क्या भूमिका है?

**व्याख्या व विस्तार**

भारत का राष्ट्रीय मानवाधिकार एक स्वायत्त विधिक संस्था है। इसकी स्थापना 12 अक्टूबर 1993 को हुई थी इसकी स्थापना मानवाधिकार संरक्षण इसके ऐतिहासिक स्रोत का विवरण हमें पेरिस सम्मेलन 1993 के अंतर्गत की गई या योग देश में मानवाधिकारों का प्रहरी है यह संविधान द्वारा अभी निश्चित तथा अंतरराष्ट्रीय संधियों में निर्मित व्यक्तिगत अधिकारों का संरक्षक है। प्रत्येक वर्ष 10 दिसंबर को संपूर्ण विश्व में मानव अधिकार दिवस मनाया जाता है अंतरराष्ट्रीय मानवाधिकार घोषणा में 30 अनुच्छेद है। संयुक्त राष्ट्र संघ की आर्थिक व सामाजिक परिषद ने सन 1946 में श्रीमती रूजवेल्ट की अध्यक्षता में मध्य अधिकारों के प्रारूप की रचना के लिए मानव अधिकार आयोग का गठन किया था। मानव अधिकार के जनकल्याणकारी सिद्धांत के अनुसार अधिकार मनुष्य की चेतना पर आधारित है इस प्रकार अधिकार मानव चेतना की वह मांग है जिन्हें समाज की मान्यता प्राप्त होती है इस तरह मानव अधिकार जनतांत्रिक राज्य में मानव अधिकारों किया था आधार पर नागरिकों को मूल अधिकार प्रदान करने के लिए आवश्यक है। जनतंत्र में प्रत्येक व्यक्ति का महत्व होता है उसके व्यक्तित्व के विकास के लिए आवश्यक है कि उचित परिस्थितियों निर्मित की जाए तथा सम्मान अवसर प्राप्त हो तथा इन्हें अधिकारों की सुरक्षा की व्यवस्था संवैधानिक हो। विकासशील देशों में समाज का एक बहुत बड़ा वर्ग है अशिक्षा ,उपेक्षा एवं गरीबी से भी ग्रस्त रहता है अज्ञान व शिक्षा के कारण इस वर्ग की पुलिस के प्रति जो अवधारणा होती है वह नकारात्मकता से ग्रसित होती है। पुलिस तथा जनता को मानवाधिकारों के हनन से बचाना है तो एक कदम

आगे बढ़कर सभी को सामूहिक प्रयास करने होंगे। सर्वप्रथम प्रधानमंत्री जवाहरलाल नेहरू ने कहा था कि पुलिसकर्मी सही और गलत के चौराहे पर खड़ा एक ऐसा व्यक्ति है जिसका दायित्व सही की रक्षा करना और गलत को पकड़ना है अपनी ससर्वश्रेष्ठ भूमिका में वह एक संरक्षक, मार्गदर्शक सामाजिक कार्यकर्ता व अधिकार का प्रतीक है। कोई भी प्राणी संसार में अपनी इच्छा से नहीं आता है वह एक विशिष्ट भौतिक जैविक स्थिति का उपज होता है। 24 अक्टूबर 1945 को संयुक्त राष्ट्र संघ जैसी अंतरराष्ट्रीय संस्था का गठन हुआ था इसका मुख्य उद्देश्य अंतरराष्ट्रीय शांति और मानवाधिकारों की रक्षा करना था आर्थिक और सामाजिक परिषद में संयुक्त राष्ट्र संघ चार्टर की धारा 68 के तहत सन 1946 में श्रीमती रूजवेल्ट की अध्यक्षता में मानवाधिकारों के प्रारूप की रचना के लिए मानव अधिकार आयोग का गठन किया गया था। प्रत्येक व्यक्ति को अपने कार्य के लिए उचित और अनुकूल पारिश्रमिक प्राप्त का अधिकार है ताकि वह अपनी और अपने परिवार की मानवीय प्रतिष्ठा के अनुकूल जीवन सुनिश्चित कर सके साथ ही यदि आवश्यक हो तो सामाजिक संरक्षण के लिए अन्य साधन भी प्राप्त कर सके। सभी मनुष्य जन्म से स्वतंत्र और समान अधिकार से युक्त होते हैं सामाजिक अंतर सार्वजनिक उपयोगिता पर ही हो सकता है। प्रत्येक राजनीतिक संगठन का उद्देश्य मनुष्य के प्राकृतिक तथा अहस्तांतरणीय अधिकारों की रक्षा करना है यह अधिकार जैसे स्वतंत्रता ,संपत्ति, सुरक्षा और अन्याय के विरुद्ध अधिकार। स्वतंत्रता उसे समय तक ही असीमित है जब तक वह दूसरों की स्वतंत्रता में बाधा उत्पन्न नहीं करें। विधि की प्रक्रिया की अतिरिक्त किसी भी व्यक्ति को आरोपित करना, बंदी बनाना या बंदी गृह में नहीं रखा जा सकता है।

मानवाधिकारों के हनन को रोकने के लिए शांति स्थापना लीग नामक संस्था का गठन किया गया। इस संस्था का पहला अधिवेशन 1915 की जून माह में अमेरिका के फिलाडेफिया में हुआ फिर भी द्वितीय विश्व युद्धके परिणाम विश्व को भुगतने पड़े थे।हिरोशिमा और नागासाकी जैसे शहरों में परमाणु बम गिराए गए थे। संयुक्त राष्ट्र संघ द्वारा जारी घोषणा पत्र में 30 अनुच्छेदों द्वारा नागरिक राजनीतिक एवं सामाजिक अधिकारों को प्रतिपादित किया गया है इस घोषणा पत्र को जनमत का समर्थन प्राप्त है यही कारण है कि इस विश्व भर में राजनीतिक और कानूनी दोनों प्रकार की शक्तियां यथासंभव प्रदान की गई है। सभी मनुष्य जन्म से स्वतंत्र है और अधिकार तथा मर्यादा में समान है उनमें विवेक और बुद्धि है। अतः एक दूसरे से प्रेम युक्त व्यवहार रखना चाहिए।

**निष्कर्ष**

मानव अधिकारों को सभी राष्ट्रों द्वारा स्वीकार किया गया है तथा इनका राष्ट्रीय तथा अंतरराष्ट्रीय कानून में शामिल किया गया है तथा मानव अधिकारों की विश्वव्यापी पहचान है। वर्तमान समय में व्यक्ति के मानव अधिकारों की रक्षा करने के लिए वर्तमान पुलिस द्वारा भी पर्याप्त मात्रा में प्रयास किया जा रहे हैं परंतु कहीं-कहीं इस संबंध में नकारात्मक परिणाम देखने को प्राप्त होते हैं। पुलिस ही नहीं वर्तमान परिपेक्ष में व्यक्ति के जीवन और व्यक्तिगत सुरक्षा के अधिकारों की रक्षा करने का दायित्व प्रत्येक भारतवासी या प्रत्येक व्यक्ति को है।

प्रत्येक व्यक्ति को समानता के व्यवहार के साथ-साथ उसकी अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता का अधिकार भी है परंतु अभिव्यक्ति की आजादी एक सीमा तक की है जिससे किसी व्यक्ति को ठेस न पहुंचे। प्रत्येक व्यक्ति को अपनी आस्था के अनुसार धर्म या मत को मानने का अधिकार है और उसकी उपासना करने का अधिकार भी है। मानव अधिकारों की रक्षा के अंतर्गत यदि किसी व्यक्ति का किसी भी प्रकार से उत्पीड़न या शोषण होता है तो पुलिस को इस संबंध में अभिप्रेरित होकर कार्यवाही करनी चाहिए। परंतु यह समझने की भी जरूरत है कि मानव अधिकार चाहे  कितने ही व्यक्ति के पक्ष में क्यों ना हो लेकिन देश की एकता और अखंडता से ऊपर नहीं है। संविधान में यह भी लिखा गया है की संकटकालीन परिस्थितियों में सभी प्रकार के अधिकार विलोपित हो सकते हैं। मानवाधिकार पर कास्ट डीजीपी मुख्यालय के दो अनुभागों का पर्यवेक्षण करता है मानव अधिकारों की सुरक्षा के लिए केंद्रीय और राज्य सरकारों द्वारा स्थापित विभिन्न सांविधिक निकायों द्वारा राजस्थान पुलिस महानिदेशक को भेजे मामलों से संबंधित है। जीवन और स्वतंत्रता मौलिक नैतिक मूल्य है और सभी मानव समाजों में ऐसा माना जाता है पुलिस को नियमित रूप से यह तय करना पड़ता है कि गिरफ्तार करना है या नहीं अर्थात किसी भी वजीर की स्वतंत्रता को समाप्त करना है या नहीं इसके चरम स्थिति पर कभी भी उन्हें यह तय करना होगा कि किसी के जीवन की स्वतंत्रता को सीमित करना है या नहीं। कानून के शासन को राजनीति के शासन से बदला जा रहा है जो देश में सुशासन की स्थापना के लिए चिंता का विषय है।

**संदर्भ सूची**


1. मेहरा अजय के.(1985) पुलिस चैंजिंग इन इंडिया, नई दिल्ल
2. शर्मा ब्रजमोहन(1966) भारतीय पुलिस, पंचशील प्रकाशन, जयपुर
3. कटारिया सुरेंद्र(2009) भारतीय लोक प्रशासन, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ल
4. पुलिस विज्ञान पत्रिका, त्रैमासिक, पुलिस अनुसंधान एवं विकास ब्यूरो नई दिल्ल
5. राजस्थान पुलिस प्रतिवेदन 2022
6. राजस्थान पुलिस प्रतिवेदन 2023

www.bohalshodhmanjusha.com Bohal Shodh Manjusha ISSN: 2395-7115
Impact Factor:8.642 January 2025 Page No. : 210-213
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

# ऐतिहासिक रूप से बांग्लादेश के निर्माण में भारत की भूमिका

**धनराज दादालियन,** सहायक आचार्य (इतिहास)
राजकीय महाविद्यालय, कैलाश नगर (सिरोही)

**प्रस्तावना** – 1970 के दशक में भारत एक तरफ 1965 के युद्ध के बाद विभीषिका से उभर रहा था और दूसरी तरफ पाक खुद को युद्ध में झोंकने को तैयार था। एक तरफ भारत 'विश्व बिरादरी' में अपनी साख बढ़ाने की कोशिश कर रहा था। दूसरी तरफ पाक. अपने अन्दरूनी झगडे से जूझ रहा था। पाकिस्तान का ताना बाना बिखर रहा था।

एक तरफ प. पाकिस्तान दूसरी ओर पू. पाकिस्तान के बीच खाई काफी चौड़ी हो रही थी। पूर्वी पाक. के बाशिन्दे आर्थिक और राजनैतिक भेद–भाव के शिकार हो रहे थे, जबकि पश्चिमी पाकिस्तान के युवा अपना भविष्य सवार रहे थे। एवं राजनीति अच्छी होती भी कैसे आजादी को दो दशक बाद भी पाकिस्तान में कोई भी निर्वाचित सरकार नही बनी थी तख्ता पलट और राजनैतिक हत्या आम हो चुकी थी। पाकिस्तान के सत्ता पर रसूखदारों का कब्जा हो चुका था सत्ता की मलाई सिर्फ प. पाकिस्तान के हाथों में थी।

पाक. मे दो दो दशक से बांग्ला और ऊर्दु के बीच एक जंग चल रही थी। ये इतनी भयंकर हो चुकी थी कि पाकिस्तान में भूचाल की पृष्ठभूमि तैयार हो चुकी थी। बात पाकिस्तान के बंटवारे तक आ चुकी थी। मसला पाक. के अन्दरूनी झगड़े का था, लेकिन वो जिम्मेदार भारत को मानता था।
मजबूरन भारत को झगडे में कूदना पडा और दुनिया के मानचित्र पर एक नये देश का उदय हुआ जिसे 'बांग्लादेश' कहा गया था।

**बांग्लादेश के निर्माण के प्रभावी कारक**

जब भारत का विभाजन हुआ और पाक. एक नया मुल्क बना तब शायद ही किसी को लगा होगा कि पाक. के भी दो टुकडे होगे क्योंकि धार्मिक आधार पर बने पाक. में करीब 80 प्रतिशत मुस्लिम थे जो आगे जा कर उसके दो टुकडे हो गये जिसकी कई वजह थी जो तात्कालिक कारण नही था जिसके कारण विभाजन हुआ इसके पीछे कई वर्षो से बहुत सारे कारण थे एक तरफ पश्चिम पाक. जिसे बांग्ला भाषा व उसे बोलने वाले लोग पसन्द नही थे तो दूसरी ओर पूर्वी पाक. को पश्चिम पाक. का राजनैतिक दबदबा पसन्द नही था कुल मिला कर अन्याय व अत्याचार के कारण बांग्लादेश के निर्माण में बडी भूमिका थी यह समस्त कारण तात्कालिक रूप से उभर कर सामने नही आये यह अखण्ड भारत के इतिहास में पहले ही पनप चुकी थी इतिहास गवाह है कि भारत में अलग अलग क्षेत्र अलग–अलग भाषा एवं संस्कृति मे भी ठीक–ठाक अन्तर होता है और विविधता भी ज्यादा होती है बांग्लादेश के साथ भी कुछ ऐसा ही हुआ अखण्ड भारत के पंजाब के कुछ हिस्सो को शामिल कर प. पाक. बन गया और बंगाल के कुछ भागो से पूर्वी पाक. बन गया लेकिन इनकी भाषा संस्कृति कोई नही बाँट सका इन दोनो इलाको की बडी समस्या यही थी जहाँ पूर्वी पाक के 56 प्रतिशत लोग कुल आबादी के रहते थे और यह बांग्ला भाषा बोलते थे वही प. पाक. के लोग सिन्धी, ब्लूच, पस्तो और दूसरे स्थानीय भाषा बोलने वाले लोग इसके अलावा ऊर्दू बोलने वाले लोग भी थे जो महज 3 प्रतिशत लोग ही थे मतलब ये है कि पाक. अधिकांश आबादी बांग्ला बोलते थे लेकिन दबदबा महज 3 प्रतिशत ऊर्दू भाषाईयो का था दूसरी और पंजाबी बोलने वाले लोगो को सेना, कृषि, देश के नागरिको को संस्थानों पर ठीक–ठाक कब्जा था प. पाक. में बांग्ला भाषा न के बराबर बोलने वाले

थे प. पाक. के लोगो का मानना था कि बांग्ला भाषा पर हिन्दूओं का असर है और पाक. की जबान ऊर्दू होनी चाहिए इसी सोच ने भाषाई झगडे को बढावा दिया एवं तूल (1948) उस समय सामने आया जब पाक. संसद के एक सदस्य जो बांग्ला बोलता था जिसने संसद में यह प्रस्ताव रखा कि ऊर्दू के साथ बांग्ला भी संसद की भाषा होनी चाहिए तात्कालीन प्रधानमंत्री लियाकत अली ने इस प्रस्ताव पर ऐतराज जताया और कहा ''पाकिस्तान उपमहाद्वीप के करोडो मुसलमानो की मांग पर बना है और मुसलमानों की भाषा ऊर्दू है इसलिए ये अहम है कि पाकिस्तान की एक सामान्य भाषा हो और यह सिर्फ ऊर्दू ही हो सकती है'' अगले ही महिने यानि मार्च 1948 में पाकिस्तान के संस्थापक मोहम्मद अली जिन्ना ने आग में घी डाल दिया उन्होने तात्कालीन पूर्वी पाक. के ढाका शहर का दौरा किया जिसमें उन्होने कहा कि पाकिस्तान की राष्ट्रीय भाषा सिर्फ उर्दू होगी और कोई दूसरी भाषा नही'' हालांकि जिन्ना ने इस बात का जोर जरूर दिया कि पूर्वी पाक. में निजी तौर पर बांग्ला भाषा का इस्तेमाल होता रहे लेकिन आधिकारिक भाषा उर्दू ही रहेगी इसके बाद पूर्वी पाक. में बंगाली भाषा के लिए एक आन्दोलन की शुरूआत हो गई बडी संख्या में असेम्बली के सामने लोग इकट्ठे हुए इसमें छात्रों की संख्या अधिक थी आर्मी की बर्बरता के कारण 5 छात्रो की मौत हो गई हालांकि 1956 में बांग्ला एक राज्य भाषा जरूर बन गई अब सवाल है कि प. पाक. बांग्ला भाषा को मानने से इनकार क्यो करता था? इसके बारे में बांग्लादेश में उच्चायुक्त रहे पाक. के आफरासियाब मेहन्दी हाशमी'' ने अपनी पुस्तक "FACT And Fiction 1971" में लिखते है कि उर्दू पीढियों से उपमहाद्वीप के मुसलमानो की भाषा रही है और यह देश के दोनो हिस्सो में बोली और समझी जाती है जो कुरान की भाषा है इसलिए एक मुस्लिम देश होने के चलते उर्दू भाषा पाकिस्तानी पहचान के लिए बेहतर है वो आगे लिखते है ''अगर पाकिस्तान के सकारात्मक मोहम्मद अली जिन्ना ने बांग्ला को राष्ट्र भाषा बनाने की मांग मान ली होती तो मुमकिन था कि पाकिस्तान को भविष्य में और अधिक समस्याओं का सामना करना पड़ता और दूसरे क्षेत्र भी अपनी प्रान्तीय भाषाओं का दर्जा बदलने की मांग करते'' भाषा कि यह खाई इतनी गहरी हो चुकी थी कि पूर्वी पाक. के साथ हर मामले में पश्चिम सौतेला व्यवहार करने लगा। आर्थिक तौर पर पूर्वी पाक किस तरह से अन्याय सहता था तथा राजस्व उगाही भी पूर्वी भाग से बेंहतर थी लेकिन राष्ट्रीय बजट में पूर्वी भाग का अंश मात्र का था पूर्वी भाग 60 प्रतिशत भाग पर खर्च होता था आप इस आधार से अनुमान लगा सकते है कि 1970 में प्रति व्यक्ति आय पूर्वी भाग की तुलना 61 प्रतिशत बेरोजगारी अधिक बढने लगी बाशिन्दों को नौकरी नही मिल रही थी राजनैतिक दल इसी ताक में थे। 1949 में बनी आवामी लीग जिसकी पूर्वी पाक. में शेख मुजीब रहमान द्वारा राजनैतिक दल कि स्थापना की गई

**शेख मुजीब का बाग्लादेश के निर्माण में योगदान**

पूर्वी पाक. के साथ सौतेले व्यवहार के कारण जिस व्यक्ति ने सबसे ज्यादा भूमिका निभाई जिसे बाद में बांग्लादेश का राष्ट्रपति कहा गया शेख मुजीब ने आन्दोलन के रूप में 1966 अधिक स्वायत्तत्ता के लिए 6 सूत्री मांग की गई जिसमें बांग्लादेश के लिए शासन करने का अधिकार एवं उसके लिए राजनैतिक स्थिति पर बल दिया गया जो आगे जा कर आजादी के लिए मील का पत्थर माना गया

निम्न 6 सूत्री माँगे थी

1. लाहौर प्रस्ताव के आधार पर वास्तविक अर्थो में एक–एक फेडरेशन स्टेट माना जाए एवं व्यस्क मताधिकार के आधार पर पूर्वी पाक. को संसद में सीधा प्रतिनिधित्व दिया जाए।
2. संघीय सरकार केवल दो मामलो पर ध्यान दे
   (1) रक्षा (2) विदेश
3. पूर्वी व पश्चिम दोनो भागों कि मुद्रा अलग–अलग हो
4. एक अलग रिजर्व बैंक की स्थापना की जाए
5. टेक्स और राजस्व की शक्ति राज्यों के पास हो
6. पूर्वी पाक. में एक अलग सैन्य या अर्द्ध सैनिक बल हो और नौ सेना का मुख्यालय पूर्वी पाक. में हो।

ये सभी ऐसी मांग थी जिसके आधार पर साफ लग रहा था कि शेख मुजीब एक अलग देश बसाना चाहते है लिहाजा सभी मांग खारिज हो गई बहराल पूर्वी पाक. के निवासियों को उनके हक में कुछ बेहतर होने की उम्मीद थी लेकिन पाक. की राजनैतिक अस्थिरता पू. पूर्वी पाक के अधिकारो को लेकर जंग की स्थितिया पैदा हो गई असल में जब पाक. की नीव रखी गई तब पहले गवर्नर जनरल मोहम्मद अली जिन्ना बने और लियाकत अली प्रधानमंत्री लेकिन महज 13 महिनो के बाद जिन्ना का देहान्त हो गया और ख्वाजा नजीमुद्दीन फिर बने ऐसे में गुलाम मोहम्मद को गवर्नर बना दिया गया पाक. राजनैतिक रूप से कितना अस्थिर था यह इस बात से समझ सकते है। पाक. में पहला आम चुनाव 1954 में हुआ वो भी अप्रत्यक्ष मतलब आजादी के 7 वर्ष बाद पहला चुनाव हुआ 1956 में पाक. इस्लामिक रिपब्लिक बन गया और गवर्नर पद समाप्त कर दिया और राष्ट्रपति पद की नियुक्ति होने लगी एवं इस कदर अली मिर्जा पहले राष्ट्रपति बने लेकिन दो वर्ष बाद तख्ता पलट हो गया एवं अय्यूब खान इसके सैन्य अधिकारी राष्ट्रअध्यक्ष बन गये। तख्ता पलट इसी क्रम मे चलता गया और 1971 तक स्थिति ऐसी हो गई थी कि हम कह सकते कि पाक. मे जनता द्वारा निर्वाचित सरकारों को चलने नही दिया पाक. मे राजनीतिक दलो की बैचेनी जरूर बढने लगी और पूर्वी पाक. के लोगो में भी निराशा का माहौल बन गया इसकी वजह यह थी कि पूर्वी भाग के लोगो की आबादी अधिक होने के कारण अपने–आप को ठगा सा महसूस करने लगे ऐसे माहौल मे 1969 में जनरल याया खान पाक. के राष्ट्रपति बन गये और अगले साल चुनाव करवाने का वादा किया और निभाया भी दिसम्बर 1970 में पाक. मे चुनाव करवाया आजादी के बाद यह पहला प्रत्यक्ष आम चुनाव हुआ अब नतीजो की बारी थी शेख मुजीबुर रहमान के नेतृत्व वाली राजनैतिक पार्टी आवामी लीग के मुखिया मुजीबुर रहमान पाकिस्तान के पहले लोकतांत्रिक मुखिया के रूप से निर्वाचित प्रधानमंत्री बनने की राह पर थे, लेकिन भुट्टो को इसमे लगा कि कोई बंगाली पाकिस्तान में अपनी सरकार चलाएगा दुसरी बात यह आवामी लीग पाकिस्तान में राज करेगी, जिसने पश्चिमी भाग में एक भी सीट नही जीती। इस प्रकार पश्चिमी भाग के राजनैतिक नुमाइंदो को यह बात खटकने लगी थी कि बंगालियो की 6 सूत्री मांगो पर उदारवादी आधार पर सविधान का मसौदा तैयार करने की अनुमति मिल जाएगी। इसलिए भुट्टो ने याह्या खान से कहा कि इस चुनाव को रद्द कर देना चाहिए तथा आवामी लीग को सत्ता नही सौपनी चाहिए बल्कि बंगाली राजनेता मुरूल अमीन को प्रधानमंत्री नियुक्त कर एवं उनसे पाकिस्तानी पीपुल्स पार्टी और आवामी लीग के बीच समझौता करने के लिए कहा गया। लेकिन कोशिश नाकाम रही क्योंकि आवामी लीग को सत्ता नही सौपने के कारण पूर्वी पाक मे पहले से ही काफी अशान्ति पैदा हो चुकी थी पूर्वी पाकिस्तान के लोग सड़को पर उतर चुके थे और आजादी की मांग करने लगे दिसम्बर 1970 में चुनाव हुआ मार्च 1971 मे आवामी लीग का काफिला सड़को पर था इस तरह प्रदर्शन हो रहे थे और हडताले हो रही थी 7 मार्च 1971 को ढाका के रेस कोर्स मैदान से शेख मुजीबर रहमान ने ऐतिहासिक भाषण दिया भाषण 10 लाख लोग सुनने आये थे मुजीब के भाषण का एक–एक शब्द पाकिस्तान को ललकार रहा था इस भाषण में पाक. के दो टुकडे होने की नीवं रखी गई इसी दौरान पूर्वी पाक. ने आजादी के लिए मुक्ति वाहिनी सेना का गठन किया गया।

**मुक्ति वाहनी सेवा**

बांग्लादेश के निर्माण मे मुक्ति वाहिनी सेना मे सैनिक, अर्द्ध सैनिक और यहाँ तक कि नागरिक भी शामिल थे इन्होने गुरिल्ला पद्धति से युद्ध करते थे हालात तब और बिगडे जब 25 मार्च 1971 को जनरल यायाखान के आदेश पर ऑपरेशन सर्च लाइट की शुरूआत हुई इसका मकसद मुक्ति वाहिनी सेना का खात्मा करना था कहा जाता है कि पूरे सर्च लाईट ऑपरेशन में 20 से 30 लाख लोग मारे गये 25 मार्च को मुजीब को गिरफ्तार कर मिया वाली जेल मे एक काल कोठरी मे रखा गया सेना के दमन के कारण लोग भाग–भाग कर भारतीय सीमा को पार करते हुए भारत आने लगे।

**भारत का बाग्लादेश के निर्माण में योगदान**

पूर्वी पाक. में मुक्ति वाहिनी को कुचलने के कारण लोग भाग कर भारत आने लगे भारत मे शरणार्थी संकट बढने लगा एक वर्ष से कम समय में 1 करोड से भी अधिक लोग भाग कर भारत आये थे भारत में प. बंगाल, असम, मेघालय और त्रिपुरा जैसे राज्यो मे शरण ली खास कर प. बगाल पर शरणार्थियो का बोझ बढने लगा उस समय भारत में श्रीमति इन्दिरा गांधी भारत की प्रधानमंत्री थी जब भारतीय राज्यो में

शरणार्थियो की समस्या उत्पन्न हुई तो भारत सरकार पर उनके भोजन और आश्रय के लिए दबाव बढने लगा तो अब समय वो आ गया जिसमें भारत पाक. पर कार्यवाही करने हेतु दबाव बढने लगा ऐसे में भारत ने मुक्तिवाहिनी सेना की मदद करने का फैसला लिया 31 मार्च 1971 को श्रीमति गांधी ने संसद में पूर्वी पाक. के स्वतंत्रता सेनानियो की मदद करने का ऐलान किया 29 जुलाई को भारतीय संसद ने सार्वजनिक रूप से घोषणा कर दी कि जुलाई आते–आते श्रीमति गांधी ने पूर्वी पाक. को बांग्लादेश कहना प्रारम्भ कर दिया यहाँ तक भारत ने पूर्वी पाक. में मानवाधिकार उल्लंघन का मामला यू.एन.ओ. मे उठाया लेकिन कई देश चीन, अमेरिका और इस्लामिक देश बांग्लादेश के गठन के खिलाफ थे इस बीच श्रीमति गांधी ने कई देशो को और पूर्वी पाक. पर जुल्मों को अवगत करवाया। लेकिन अमेरिका जैसे देशो ने भारत की मांगो को मानने से इनकार कर दिया इसके बावजूद गांधी ने बांग्लादेश की मदद करने का फैसला किया उधर पश्चिम पाक. में 23 नवम्बर 1971 को यायाखान ने पाकिस्तानियो को पूर्ण युद्ध के लिए तैयार रहने के लिए कहा नवम्बर आते–आते भारत–पाक दोनो देश आमने सामने थे 3 दिसम्बर 1971 को श्रीमति गांधी कलकत्ता में एक जनसभा को सम्बोधित कर रही थी 5 बजे कर 40 मिनट पर पाक. के वायु सेना के सेबर जेट और लडाकू विमान भारतीय सीमा पार कर पठानकोट, श्रीनगर, अमृतसर, जोधपुर और आगरा के मिलिट्री बेस पर बम गिराने शुरू कर दिये भारत के कुल 11 एरबेरा पर हमला किया गया और ऑपरेशन चंगेज खान नाम दिया उसी समय भारतीय सेना द्वारा जवाबी हमला किया फिर क्या बांग्लादेश मुक्ति युद्ध की शुरूआत हो गई भारत ने सबसे पहले कराची के नेवी बेस को उडाया फिर सेना बांग्लादेश में दाखिल हुई भारत ने 6 दिसम्बर 1971 को एक स्वतंत्र देश के रूप में मान्यता दी कि भारतीय सेना की बहादुरी और सूझ–बूझ से जीत सम्भव हुई और महज 13 दिन में पाक. ने भारत के सामने घुटने टेक दिये 16 दिसम्बर 1971 को रेस कौर्स के मैदान में पाक. सेना के लेफ्टीनेंट जनरल आमीर अब्दुला खान नियाजी ने भारतीय सेना के लेफ्टिनेन्ट कर्नल जगजीत सिंह अरोडा के सामने आत्म समर्पण के दस्तावेज पर हस्ताक्षर कर अपनी हार मान ली थी नियाजी ने अपनी वर्दी पर लगे बैज व अपनी रिवोल्वर निकाल कर जनरल अरोडा को सौप दी थी साथ ही पाक. के 93000 सैनिको ने भारतीय सेना के समाने आत्मसमर्पण कर दिया युजिब पाक. से लन्दन के रास्ते भारत पँहुचे दिल्ली में श्रीमति गांधी से मुलाकात कर सेना के कन्टोमेन मैदान में बांग्लादेश की स्वतंत्रता में सहायता करने के लिए भारतीय जनता को धन्यवाद दिया दिल्ली में 2 घण्टे रूकने के बाद जब शेख मुजीब ढाका पहुचे तो हवाई अड्डे पर 10 लाख लोग स्वागत करने लिए मौजूद थे इस प्रकार दुनिया के नक्शे पर एक और नया देश उभरकर सामने आया आज भी भारत में 16 दिसम्बर को विजय दिवस के रूप में मनाया जाता हैं।

**निष्कर्ष** –भारत व बांग्लादेश दक्षिण एशिया के पडौसी राज्य है जो अपनी सीमाओं संस्कृति, भाषा आदि को साझा करते है। भारत की सुरक्षा हेतु पडोसी राज्यो के मध्य मैत्रीपूर्ण सम्बन्धो का होना महत्वपूर्ण है दोनो देशो के मध्य कुछ ऐसे विवाद है जो सम्बन्धो को कमजोर कर रहे है जैसे सीमा विवाद, घुसपैठ इत्यादि है प्रस्तुत शोध में बांग्लादेश के निर्माण हेतु प्रभावित कारको के आधार पर हम यह निष्कर्ष निकाल सकते है कि खण्डित एवं बृजातिय बहुल भाषाई व अनेक संस्कृति वाले देशो में सत्ता का बँटवारा सही ढंग से करना चाहिए एवं सौहार्द्र की भावना से देश के आर्थिक विकास को आगे बढाना चाहिए।

**सन्दर्भ सूची –**


1. 1971 A Global History Of The Creation Of Bangladesh – श्रीनाथ राधवन
2. The Great Betrayal India Pakistan And The Creation Of Bangladesh –इयान टैबबोट एवं गुरहरपाल सिंह
3. प्रवीण कुमार – सी.एल.जी. डिग्री कॉलेज सुमेरपुर सहायक आचार्य
4. ई.आर. शेखर दहिया – सी.एल.जी. इंजीन्यिरींग कॉलेज सुमेरपुर सहायक आचार्य
5. बिबीसी हिन्दी रेहान फजल



**मोबाईल नम्बर** – 9928914776 ई–मेल आईडी – dhanrajdadalian@gmail.com

www.bohalshodhmanjusha.com Bohal Shodh Manjusha ISSN: 2395-7115
Impact Factor:8.642 January 2025 Page No. : 214-217
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

# लोक देवता तथा धर्म: राजस्थान में सामाजिक भूमिका

**श्रीमती कविता यादव,** नेट हिंदी साहित्य
ग्राम-मौसमपुर, तह.-तिजारा, जिला-खैरथल-तिजारा

**शोध सारांश**

सामाजिक जीवन धर्म का प्रमुख स्थान हमेशा रहा है यह प्रश्न स्वाभाविक है कि दार्शनिक व धर्मशास्त्री धर्म के विस्तार का गहन अनुसंधान करते हैं । धर्म एक सामाजिक प्रक्रिया है धर्मशास्त्र और प्रश्नों की ओर ध्यान देते हैं। जिन पर दार्शनिक साधारणत से ध्यान नहीं देते हैं धर्म की परिभाषा करते हुए लासन व मैकाले कहते हैं धर्म एक ऐसी शक्ति है जिसे डराया नहीं जाता है और नहीं एक ऐसा सिद्धांत है जिसे जबरन पकडे रहते हैं । धर्म जीवन जीने की एक कला मात्र है समाज में धर्म का अध्ययन तथा अनुसंधान अनिवार्य माना है क्योंकि धर्म समाज की अंतरात्मा है धर्म समाज के लिए सकारात्मक होता है जो निरंतर गतिशील प्रक्रिया में विद्यमान है आधुनिक यूरोप में धर्म के संबंध में विवाद है कार्ल मार्क्स ने धर्म को अफीम या नशा से तुलना की है जबकि मैक्स वेबर ने धर्म को प्रेरक दर्शन माना है इस शोध पत्र लोक देवता धर्म के विश्लेषण परंपरा संदर्भ में बताया है ।

**संकेत अक्षर- लोक देवता, धर्म, दर्शन, दृष्टिकोण, सगस जी**

**प्रस्तावना**

धर्म एक व्यवस्था है यह व्यापक समाज की व्यवस्था भी है शिक्षा परिवार राजव्यवस्था व आर्थिक व्यवस्था समाज धर्म मैं निरंतर प्रक्रिया चलती रहती है यह व्याख्या के माध्यम से प्रस्तुत सामाजिक जीवन में प्रस्तुत सामाजिक जीवन में दुख वह असमानता की व्याख्या प्रस्तुत की गई है यह एक नैतिक संरचना के अंदर समाजीकरण समाज की स्थिरतापर प्रदान करता है धर्म वस्तुतः संस्कार और विश्वास का पुंज है जिसके बीच में पवित्रता धारण करके समय हुए हैं इसके अलावा दुख, जन्म, मृत्यु और बुराई जैसी प्राकृतिक क्रियाएं की व्याख्या की गई है इनमें रेडक्लिफ ब्राउन इमाइल दुर्खीम (1947) मैलिनोवस्की (1948) नाम मुख्य है ।

भारत में धर्म सांस्कृतिक परंपराओं का देश माना है यहां पर मुख्य रूप से हिंदू धर्म 80 .4 प्रतिशत, मुस्लिम धर्म 13.4 प्रतिशत, ईसाई धर्म 1.1 प्रतिशत, सिक्ख धर्म 1.9 प्रतिशत, बौद्ध धर्म 1.1 प्रतिशत, जैन धर्म 0.4 प्रतिशत के लोग भारत में निवास करते हैं इसके अतिरिक्त यहां पर पारसी आदि भी हैं लेकिन जनसंख्या में बहुत ही कम है और बहुत से धार्मिक विचारधाराए व संप्रदाय ऐसे हैं जिनके लोक देवताओं से हमेशा संबंध रहा है आदिवासी लोग समूह की आस्था समूह की दृष्टि से बहुत अधिक है । विश्वास में जीवन के मूल्य धार्मिक श्रेणी में आते हैं लोगों की आस्थाएं धर्म में प्रकट हो जाती है ग्रामीण व नगर के जन समुदाय की आस्था को दृष्टि से देखा जा सकता है धर्म के इस विश्लेषण को हम लघु परंपरा तथा वृहत परंपरा में भी विभाजन कर सकते हैं रोबर्ट रेडक्लिफ (1955) तथा मैक्रिम मेरियट (1955) के द्वारा कृषक वर्ग समुदाय के सांस्कृतिक जीवन पद्धति का विश्लेषण किया है ।

वृहत परंपरा का अर्थ है उच्च तथा बौद्धिक प्रभाव से है जिसका जन्म बाहर से होता था विकास विद्यालय व देव आलयमें हुआ है दार्शनिक चिंतन परंपरा तथा साहित्यकारों का सृजन सचेतन के बदलाव से होता है भारत परंपरा को नगरीय तथा अभिजन व्यवस्था भी कहते हैं भारतीय संदर्भ के अनुसार धर्म श्री कृष्णा, महेश, विष्णु,ब्रह्मा, जन्माष्टमी, दीपावली महोत्सव, रक्षाबंधन तथा होली की परंपरा विशेष उल्लेखनीय है । लघु परंपरा के दृष्टिकोण में गांव में स्थानीय संस्कृति का महत्व था इनका विकास ग्रामीण लोगों के अप्रबुद्ध या सामान्य जनता के बीच होता है इस लोक परंपरा भी कहते हैं । धार्मिक विषय में सभी लोक देवता सगसजी,तेजाजी, रामदेव जी, बापूजी, कल्लाजी, भेरुजी, गोगाजी, मल्लिनाथ जी, देवनारायण जी, केला देवी, करणी माता, शीतला माता, जीण माता, पीर बाबा आदि हमारी लघु संस्कृति परंपरा के रूप माना है ।

महाराजाओं तथा सामंतों ने अपने कुल देवी देवताओं को माना है राजस्थान लोक धर्म व लोग देवता की संरचना में परिवर्तन होते रहते हैं राजमहलों और रावलो में इनकी निश्चित स्थापना हो चुकी है। परिवार के उत्सव में त्यौहार पर उनकी विशेष यज्ञ हवन किए जाते हैं । राजनीतिक आर्थिक जीवन को सफल बनाने के लिए सामाजिक जीवन में लोक देवी देवताओं का आशीर्वाद होना आवश्यक होता है । वर्तमान रूप में वृहत परंपरा सामान तरीके से चल रही है लोकल प्रजा जनो लघु धार्मिक परंपरा का अनुसरण करके परिपाटी को अपनाया था जो कभी एक दूसरे के साथ मेल मिलाप से, तो कभी अलग होकर निरंतर प्रभावित होती है ।

धर्म की एक योजना सामंतवाद है राजपूताना की राजघरानों के आराध्य लोक देवी देवता के आशीर्वाद आवश्यक होता है । मेवाड़ में एकलिंग जी गोविंद जी जयपुर में, करणी माता बीकानेर में आदि इसी तरह के देवी देवता है । सामंतवादी व्यवस्था में जुड़े थे राजस्थान लोक देवताओं की भूमि वाला प्रदेश रहा है । राजस्थान के इन्हीं लोक देवताओं जो मेवाड़ में सगस

जी लोक देवता उदयपुर के प्रतीक हैं यहां लोग सगस जी वह बावजी के प्रति गहन श्रद्धा भाव रखते हैं । जिनका राजस्थान के सगस जी 30 देवों में स्थान है जिन्होंने राजस्थान तथा जनहित के लिए युद्ध स्थल पर ही प्राण छोड़ दिए थे । वीर पुरुष को ईर्ष्या, षड्यंत्र, धोखा, से अकाल मृत्यु हो गई थी इन देवताओं ने लोगों के विभिन्न सामाजिक शारीरिक आर्थिक समस्या पीड़ा को दूर कर अपनी पहचान बनाई थी । लोगों के देव सगस जी के स्वरूप में प्रतिष्ठ हुए थे सगस जी को पूज्य स्थान मिला है सभी बावजी का मूल नाम संबोधित न करके सगस जी के नाम से जाने जाते हैं । सगस का अर्थ है जिसे सच के पीछे जीवन का दान कर दिया दूसरा अर्थ है शांति स्थापित करना उर्दू में सगस का अर्थ है अमर शहीद होता है पुरुष व महिला शरीर में भी बावजी की छाया दिखाई देती है जिन महिलाओं में बाव जी की प्रतिछाया आती है वह ज्यादातर प्रोड अवस्था में होती है । जिनका मासिक धर्म समाप्त हो जाता है बावजी के पधारने के बाद आना बंद हो जाता था परंतु पुरुष शरीर में किशोरावस्था तथा बुड्ढे होने तक बावजी की छाया आ सकती है सगस जी तथा बावजी को स्थान पर विशेष महत्व दिया जाता है जैसे निजी हवेलियों में स्थान देना जिस व्यक्ति में सगस जी पधारतेहैं वह अपने आश्रय स्थल सगस जी चित्रानुमा टेंपल बनाया है जिस पुरुष के शरीर में सगस जी आते थे वह किसी धर्म जाति न होकर मुख्य रूप से राजपूत,ब्राह्मण ,सुथार ,भील ,कुमावत, मीना ,जैन आदि समूह जाति के लोग शामिल होते हैं जनसाधारण की मान्यता है सगस जी के ऐतिहासिक संदर्भ में चर्चा की जाती है लोक देवता इतिहास में राजस्थान में लघु परंपरा अनेक कथाएं हैं लोक देवता की मान्यता है की धन सिंह जी, बावजी, सती माता, पार्वती देवी, श्री सुखराम जी, बावजी ,सती माता, ममता देवी, ठिकाना बावड़ी चित्तौड़गढ़ 575 वर्ष पूर्व ईष्ट देव श्री एकलिंग नाथ जी चित्तौड़गढ़ किले की कालका माता श्री धन सिंह जी बावजी दोनों भाई चित्तौड़ के पास खातन बावड़ी में निवास करते थे । 575 ई में एक जबरदस्त युद्ध किया था इस महायुद्ध में दोनों भाई की धर्मपत्नी ने भाग लिया था युद्ध में घोड़े पर सवार होकर युद्ध का नेतृत्व कर रहे थे इस युद्ध में चारों की गर्दन अलग हो गई थी । बावजी की गर्दन अलग होने के बाद गुफा के रास्ते से लड़ते-लड़ते अपने हवेली उदयपुर तक चला गया था जहां आज राज्य के बालिका विद्यालय संचालित हो रहा है उनकी गर्दन गिरी गोखड़े में यहां जहां प्रभाव जी ने गद्दी स्थापित कर दी गई थी । सगस जी बावजी श्री सुल्तान सिंह, बावजी, ऋतु विलास, उदयपुर 365 वर्ष पूर्व श्री एकलिंग नाथ जी श्री रामचंद्र जी पेंटर साहब पातोत्सव पिछोली उदयपुर में वार्ड में है श्री सुल्तान सिंह जी ने महाराणा राज सिंह प्रथम के पुत्र व उनके एक रानी अपने पुत्र सरदार सिंह को युवराज बनाना देखना चाहती थी रानी ने विरोधियों तथा राजपुरोहितों की हत्या करवा दी और सरदार सिंह इन बातों को नहीं जानता था वह जहर खाकर मर गया । महाराणा राजसिंह ने इस पाप से छुटकारा के लिए ब्राह्मणों से समस्या का समाधान पूछा ब्राह्मण ने तीन

उपाय बताए थे प्रथम सूखे हुए पीपल के पेड़ में जल डालना, दूसरा एक बड़ा तालाब बनाना, तीसरा युद्ध भूमि में मर जाना, राज सिंह ने अंतिम बात स्वीकार की गोमती नदी पर राजसमंद बांध बनवाया यह अद्भुत योग है संगत जी की आस्था विश्वास पिछले कई दशकों पर विकसित हुई है इन लोग देवी देवताओं के आस्था स्थल पर सर झुकाने आते हैं और अपने दुख दर्द दूर होते हैं यही धार्मिक विश्वास और देवता का समाज के लिए ज्ञान आत्मक पहलू को आध्यात्मिक मन से परिपूर्ण किया है ।

**निष्कर्ष**

लोक धर्म में आस्था बढ़ती है तो धर्म का राजनीतिकरण होता रहा है । भारतीय स्वतंत्रता के बाद सारा धर्म राजनीतिकरण के साथ सामंजस्य से होता रहा है मेवाड़ के सगस जी धार्मिक आंदोलन का राजनीतिक स्रोत माना जाता है पहले परंपरा लघु परंपरा तथा वृहत परंपरा का विकास से परिवर्तन की सीमा को पार किया था । इसलिए लोक देवता पूजा अर्चना के तो पर विशेष महत्व दिया है पिछले कई दशकों से लोक देवताओं की लोकप्रियता अचानक बड़ी है परीक्षण किया तो पता चलता है । सामाजिक समूह के संबंध नहीं होने से सगस जी की पूजा पर विशेष लोगों की दास्तान जुड़ी है जिन्हें सामाजिक संरचना के ऊपर नियंत्रण को बदलाव से सामाजिक समरसता तथा एकता का प्रतीक स्वरूप आज भी विद्यमान है ।

**संदर्भ ग्रंथ सूची**


1. मेवाड़ का इतिहास- मोतीलाल बनारसी दास नई दिल्ली ,1986 वीर विनोद- श्यामल दास
2. वीर कला राठौड़ साहित्य नगर जयपुर 1995 ,सुखवाल घनश्याम का लेख
3. योगेंद्र सिंह मोर्डनाइजेशन ऑफ़ इंडियन ट्रेडिशन, रावत पब्लिकेशन जयपुर 2002
4. द सोशियोलॉजी ऑफ रिलिजन होल्ट राईन हेस्ट एंड विमाटन, 1958 होल्ट टी. एफ
5. रिलिजन इन इंडिया ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, नई दिल्ली 1992, मदान टी. एन
6. रिलिजन इन मॉडर्न इंडिया बेयर्ड रॉबर्ट डी. तृतीय संस्करण मनोहर, नई दिल्ली 1995
7. बेटाइल आंद्रे रिलिजन एज ए सब्जेक्ट फॉर सोशियोलॉजी इन दिपाकर गुप्ता एडिशन एन्टीयूटोपिया : ऐशेन्ियल राइटिंग ऑफ़ आंद्र बेताई ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, नई दिल्ली 2005
8. डिजिटल मीडिया- विकिपीडिया



**Mail Id.- kavitayadav14688@gmail.com Mob.- 8432691616**

www.bohalshodhmanjusha.com Bohal Shodh Manjusha ISSN: 2395-7115
Impact Factor:7.523 January 2025 Page No. : 218-220
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

# रीतिकाल में समावेशित भक्तिकालीन प्रवृत्तियाँ

**डॉ० आशा हर्बोला,** असि० प्रो० हिन्दी,
एम०बी०पी०जी० महाविद्यालय हल्द्वानी, नैनीताल (उत्तराखण्ड)

**सार**

हिन्दी साहित्य के इतिहास में मध्यकाल का अपना विशेष महत्व है। इस युग को पूर्व मध्यकाल (भक्तिकाल) तथा उत्तर मध्यकाल (रीतिकाल) दो भागों में विभक्त किया गया है। 'रीतिकाल' का समय संवत् 1700 से 1900 ई० तक माना गया है। रीतिकालीन कवियों ने संस्कृत काव्यशास्त्र को अपनी रचनाओं को आधार बनाते हुए, काव्य की रचना की। रीतियुग में भक्तियुग की समस्त प्रवृत्तियों को समानान्तर रूप से प्रवाहित होते देखा जा सकता है, जिसमें सन्त काव्यधारा, प्रेमाख्यान काव्यधारा, प्रबन्ध काव्य जिसके अन्तर्गत रामभक्ति और कृष्णभक्ति काव्य, रसिक भक्ति परम्परा की अविरल धारा प्रवाहित हो रही है। वस्तुतः भक्तिकाल और रीतिकाल एक ही कालखण्ड के दो भाग हैं। भक्ति, नीति, प्रेम, श्रृंगार, दर्शन, वीरकाव्य आदि प्रवृत्तियां समान रूप से सम्पूर्ण युग में प्रवाहित हैं।

'रीतिकाल' का नामकरण आचार्य रामचन्द्र शुक्ल द्वारा किया गया। यह नाम आचार्य शुक्ल ने रीति या लक्षण के रूप में ग्रहण करते हुए किया गया। हिन्दी साहित्य के इस काल को उत्तर मध्यकाल के नाम से भी जाना जाता है, जिसका समय संवत् 1700 से संवत् 1900 ई० तक माना जाता है। डॉ० नगेन्द्र इस काल के समस्त कवियों को तीन वर्गों में विभाजित करते हैं :–

(1) रीतिग्रंथकार कवि
(2) रीतिबद्ध कवि
(3) रीतिमुक्त कवि

रीतिकालीन कवियों ने संस्कृत काव्यशास्त्र को अपनी रचनाओं का आधार बनाया। संस्कृत में 'रीति' शब्द को व्यापक अर्थ में ग्रहण करते हुए आचार्य वामन रीति को काव्य की आत्मा घोषित कर देते हैं –

'रीतिरात्मा काव्यस्य'[1] – उनके अनुसार गुण विशिष्ट रचना अर्थात् पद संघटना पद्धति– विशेष का नाम 'रीति' है।

'विशिष्टा पद रचना रीति।''[2]

हिन्दी रीतिकालीन कवियों के द्वारा भी 'रीति' शब्द को परिभाषित किया गया–

'अपनी–अपनी रीति के काव्य और काव्यरीति'[3]
–देव

'रीति सुभाषा कवित की, बरनत बुध अनुसार'
–चिन्तामणि

'काव्य की रीति सिख्यौ सुकवीन सौं'
–भिखारीदास

डॉ० भगीरथ मिश्र के अनुसार– 'रीति' शब्द हिन्दी साहित्य में विशेष अर्थ में प्रयोग हुआ है। यहाँ पर रीति का तात्पर्य लक्षण देते हुए था लक्षण को ध्यान में रखकर लिखे गए काव्य से होता है। इस प्रकार रतिकाव्य वह काव्य है, जो लक्षण के आधार पर या उसको ध्यान में रखकर रचा जाता है।

अलंकार, रस, ध्वनि आदि को लेकर इनके उदाहरण रूप में रचित हिन्दी काव्य इस साहित्य के अन्तर्गत आता है।[4]

इस प्रकार हम देखते हैं कि रीति कवियों को एक आसान बना–बनाया मार्ग मिला। उनसे पूर्व भक्तियुग में सूरदास, नन्ददास, रहीम, बलभद्र मिश्र आदि अनेक कवि 'रीतिशास्त्रीय लक्षण ग्रंथ लिख चुके थे। केशवदास ने रीतियुग के पूर्व ही रस अलंकार और छंद पर स्तरीय रचनाएं प्रस्तुत की। प्रवृत्तियों की दृष्टि से रीति कवियों में तीन प्रमुख प्रवृत्तियां दिखाई देती हैं –

(1) रीति निरूपण
(2) श्रृंगारिकता
(3) कला प्रियंता तथा सौन्दर्य बोध

रीति निरूपण के क्षेत्र में रीतिकालीन कवियों में केशव से लेकर ग्वाल कवि तक अनेक कवियों ने शास्त्रीय निरूपण के प्रति अपनी रुचि दिखाते हुए, काव्य स्वरूप, रस, ध्वनि, नायक–नायिका भेद, शब्द–शक्ति, गुण–दोष, अलंकार, छंद आदि काव्यांगों पर खूब लिखा। चिंतामणि, भिखारीदास, सोमनाथ, प्रताप साहि आदि ऐसे आचार्यों के लगभग सभी ग्रंथ रीतिनिरूपण पर ही आधारित हैं। श्रृंगारिकता अथवा श्रृंगार के प्रति अत्यन्त रूचि प्रदर्शित करने के कारण ही आचार्य विश्वनाथ प्रसाद इस काल को श्रृंगार काल के नाम से पुकारते हैं। श्रीमद्भागवत, कालिदास, जयदेव के अतिरिक्त परवर्ती महाकाव्यों 'गाथा सप्तशती', 'आर्या सप्तशती' में भी श्रृंगार वर्णन मिलता है, जो रीतिकालीन कवियों में भी स्पष्ट झलकता है। सामन्ती वातावरण भी श्रृंगार भावनाओं को प्रेरित करता है। मुगलों और हिन्दू राजाओं के विलासतापूर्ण जीवनशैली ने काव्य, संगीत और कला के अन्य रूपों को भी प्रभावित किया। रीतिकालीन कवियों के काव्य में श्रृंगारिकता तत्कालीन परिवेश का परिणाम है। कलाप्रियता एवं सौन्दर्य बोध की दृष्टि से रीतिकाव्य, हिन्दी साहित्य में सर्वाधिक महत्वपूर्ण स्थान रखता है।

''हिन्दी साहित्य के सन्दर्भ में भक्तिकाल से तात्पर्य उस काल से है जिसमें मुख्यतः भागवत धर्म के प्रचार तथा प्रसार के परिणाम स्वरूप भक्ति आन्दोलन का सूत्रपात हुआ था और उसकी लोकोन्मुखी प्रवृत्ति के कारण धीरे–धीरे लोक प्रचलित भाषाएं भक्ति–भावना की अभिव्यक्ति का माध्यम बनती गई और कालान्तर में भक्ति विषयक विपुल साहित्य की बाढ़–सी आ गयी। परन्तु यह भावना वैष्णव धर्म तक ही सीमित न थी– शैव, शाक्त आदि धर्मों के अतिरिक्त बौद्ध और जैन सम्प्रदाय तक इस प्रवाह से प्रभावित हुए बिना न रह सके।''[5] परशुराम चतुर्वेदी 14वीं सदी के मध्य से 17वीं सदी के मध्य तक के कालखंड को भक्तिकाल मानते हैं। रीतिकाल में भी भक्तिकालीन प्रवृत्तियों को समान रूप से प्रवाहित होते देखा जा सकता है, जिनमें सन्तकाव्य धारा, प्रेमाख्यान– काव्यधारा, प्रबन्ध काव्य जिसके अन्तर्गत रामभक्ति–काव्य और कृष्ण भक्ति काव्य, रसिक–भक्ति परम्परा को अविरल रूप से प्रवाहित हो रहे हैं।

सन्तकाव्य–परम्परा के कवियों ने समाज के आडम्बरों, ढोंगो और रूढ़ियों का अपनी बानियों के माध्यम से डटकर विरोध किया। इन संत कवियों में नानक, दादू, सुन्दरदास, मलूकदास, चरनदास, तुलसीदास, गरीबदास, जगजीवनदास, यारी, दरिया, गुलाल, सहजोबाई, दयाबाई, पलटूदास आदि मुख्य हैं। प्रेमाख्यान काव्य की परम्परा के अन्तर्गत मध्ययुग में प्रचुर मात्रा में प्रेमाख्यान प्राप्त होते हैं। कवि मुल्लादाऊद, कुतुबन और जायसी, मंझन के अतिरिक्त मध्ययुग में उसमान, शेखनबी, जान, कासिमशाह, नूरमुहम्मद, शेख निसार, फाजिलशाह, कवि नसीर आदि प्रेमाख्यान लिखने वाले कवि आते हैं, इन सभी कवियों के वर्णन रोचकतापूर्ण हैं। पौराणिक प्रबन्धकाव्य परम्परा की अगर बात की जाय तो इसके अन्तर्गत राम भक्ति–काव्य मुख्य रूप से आता है। हिन्दी साहित्य में राम–काव्य–परम्परा का श्रेय वस्तुतः स्वामी रामानन्द को जाता है। गोस्वामी तुलसीदास के पूर्व भी रामकथा को लेकर अनेक कवियों ने काव्य का सृजन किया। उनमें विष्णुदास, ईश्वरदास, अग्रदास आदि कवियों के नाम प्रमुख हैं। 'रामचरित मानस' (तुलसीदास) इस परम्परा का सर्वोत्कृष्ट काव्य है। तुलसीदास के पश्चात हिन्दी राम–काव्य परम्परा में केशवदास (रामचन्द्रिका), सेनापति (कवित्त रत्नाकार) लालदास (अवध विलास) गुरुगोविन्द सिंह, पद्माकर आदि कवियों ने रामकाव्य की इस परम्परा को अक्षुण बनाये रखा।

मध्यकाल में कृष्णभक्ति का आन्दोलन नवीन उत्साह के साथ प्रवाहित हुआ, जिसके पोषण का श्रेय श्रीमद् भागवत पुराण एवं विभिन्न वैष्णव सम्प्रदायों को है। मध्ययुगीन कृष्णभक्ति काव्य धारा सम्बन्धी विभिन्न सम्प्रदायों में वल्लभ सम्प्रदाय के कवियों का महत्वपूर्ण योगदान है। इस सम्प्रदाय के अष्टछाप के कवियों ने न केवल अपने मधुर ब्रजभाषा–काव्य द्वारा पुष्टिमार्ग का प्रचार किया अपितु

जनमानस के हृदय को भी कृष्ण भक्ति की धारा सिंचित किया। इन कवियों की मधुर पदावली तथा लीला–गायन से अभिप्रेरित होकर मीरा, रसखान, घनानन्द जैसे भक्त और कवि ब्रजभूमि में आकर निवास करने लगे। कृष्ण भक्तिधारा में राधाबल्लभ सम्प्रदाय एक ऐसा सम्प्रदाय है, जिसका प्रारंभ भक्तियुग में हुआ परन्तु विकास रीतियुग में होता है। प्रबन्धात्मक कृष्ण भक्ति–काव्य के रचनाकारों में गुमानमिश्र और ब्रजवासीदास का नाम उल्लेखनीय है। इसके अतिरिक्त इस युग के कृष्णभक्त कवियों में नागरीदास, छत्रसाल आदि प्रसिद्ध कवि हैं।

रसिक भक्ति परम्परा में कवियों ने राधाकृष्ण की रसिकता, रासलीला एवं विलासतापूर्ण चित्रण अपने काव्य का विषय चुना। रामकाव्य के रसिक सम्प्रदाय पर कृष्णकाव्य के रसिक सम्प्रदायों के प्रभाव को स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है। रामकाव्य में मधुरा भक्ति का समावेश होने के कारण रीतिकालीन रामभक्ति काव्य में श्रृंगारिकता और विलासपूर्ण वर्णन प्रचुर मात्रा में उपलब्ध हैं। यह रसिक सम्प्रदाय की परम्परा कृष्ण भक्ति के रसिक सम्प्रदायों की भांति ही प्राचीन है। इस युग के प्रमुख कवियों में अग्रदास, नाभादास, कृपा निवास, जानकी प्रसाद 'रसिक बिहारी' आदि के नाम प्रमुख हैं। इस प्रकार सम्पूर्ण मध्यकाल में वीरकाव्य, श्रृंगार, प्रेम, भक्ति, नीति आदि ऐसी प्रवृत्तियां हैं जो भक्ति एवं रीति युग में समान रूप से प्रवाहित हैं। आचार्य विश्वनाथ प्रसाद मिश्र; लिखते हैं कि ''मध्यकाल में तत्वतः तीन प्रकार की काव्यधारायें प्रवाहित थीं– एक भक्ति की, दूसरी थी रीति की और तीसरी थी स्वच्छंद वृत्ति की।''[6]

सम्पूर्ण मध्यकाल में प्रेम की भी विभिन्न धाराऐं भी विविध रूपों में प्रवाहित हो रही है। कहीं पर प्रेम की अलौकिकता के आरंभ में भक्ति के दर्शन होते हैं तो सगुण भक्ति में वही प्रेम लीलावतार के रूप में तथा निर्गुण भक्ति में रहस्य वाद के रूप में, सूफियों में लौकिक और अलौकिक के सामंजस्य में, स्वछंद परम्परा में विशुद्ध प्रेम के रूप में तथा रीतिकालीन कविता में विलासतापूर्ण वर्णन और श्रृंगारिकता से परिपूर्ण नखशिख वर्णन में देखने को मिलता है। इस प्रकार हम देखते हैं कि सम्पूर्ण मध्ययुग में प्रेम और भक्ति का एक ऐसा समावेश हुआ है जो समस्त काव्यधाराओं को स्पर्श करता दिखाई देता है।

'भक्तिकाल' और रीतिकाल एक ही कालखंड के दो भाग हैं। अतः सम्पूर्ण मध्यकाल एक इकाई के रूप में देखा जा सकता है, इतना अवश्य है कि कुछ प्रवृत्तियां भक्तिकाल की अन्तिम अवधि में उत्पन्न हुई परन्तु रीतिकाल की सम्पूर्ण प्रवृत्तियाँ भक्तिकाल में जन्म ले चुकी थीं। इस सम्बन्ध में डॉ० गणपति चन्द्र गुप्त का मत है कि ''पूर्व मध्यकाल में भक्ति के अतिरिक्त स्वछंद प्रेम, लौकिक श्रृंगार एवं वीरता की प्रवृत्तियां भी स्वतन्त्र काव्य धाराओं के रूप में प्रवाहित रहती हैं। अतः उसे भक्तिकाल कहना एक पक्षीय एवं एकांगीबोध का सूचक है। उत्तर मध्यकाल में जहाँ कुछ नई परम्पराएं सथापित होती हैं वहाँ पूर्ववर्ती परम्पराओं का भी प्रचलन बराबर रहता है तथा इसमें भक्ति, प्रेम, वीरता, रीति आदि की सभी प्रवृत्तियाँ समानान्तर रूप में विकसित होती हुई दृष्टिगोचर होती हैं। अतः इसे केवल 'रीतिकाल' या 'श्रृंगारकाल' तक सीमित कर देना भी अनुचित होगा।''[7] भक्ति, नीति, प्रेम, श्रृंगार, दर्शन, वीर काव्य आदि प्रवृत्तियां समान रूप से मध्ययुग में प्रवाहित हैं, जिन प्रवृत्तियों ने भक्तिकाल में अपना चरमरूप प्राप्त किया वे रीतिकाल तक अविरल रूप से प्रवाहित होती रहीं। अभिव्यक्ति विधान और छंदों में भी कोई परिवर्तन नहीं हुआ। आश्रय–भेद तो देखने को मिलता है परन्तु विषय भेद नहीं है।

**संदर्भ ग्रंथ सूची**


1. रीतिरात्मा काव्यस्य– वामन, काव्यालंकार सूत्र वृत्ति
2. वहीं
3. शब्द रसायन 11वाँ प्रकरण
4. हिन्दी साहित्यकोश, भाग–2, सं० डॉ० धीरेन्द्र वर्मा, पृ०सं०– 717
5. हिन्दी साहित्य का इतिहास, सं० डॉ० नगेन्द्र, पृ०सं०– 103, सं० 1980 भक्तिकाल : पूर्वपीठिका– आ० परशुराम चतुर्वेदी
6. हिन्दी साहित्य का अतीत, पृ०सं०– 651
7. हिन्दी साहित्य का वैज्ञानिक इतिहास, प्रथम खंड, सं० 1986, पृ०सं० 501



मो०नं०– 8449235509 ई मेल– asha.harbala@gmail.com

www.bohalshodhmanjusha.com Bohal Shodh Manjusha ISSN: 2395-7115
Impact Factor:8.642 January 2025 Page No. : 221-226
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

# डॉ. शेर सिंह बिष्ट के कुमाउनी पद्य साहित्य में लोक संस्कृति

**रेवा महरा**, शोधार्थी हिंदी विभाग,
सोबन सिंह जीना विश्वविद्यालय अल्मोड़ा(उत्तराखंड)

**सारांश-**

बहुआयामी व्यक्तित्व के धनी प्रखर बुद्धि के प्रतिनिधि सुप्रसिद्ध साहित्यकार कुमाउनी और हिंदी साहित्य में अपना उल्लेखनीय योगदान देने वाले डॉ. शेर सिंह बिष्ट ने कुमाउनी साहित्य में अविस्मरणीय योगदान किया है। उनका सहज सरल आकर्षक व्यक्तित्व कुमाउनी साहित्य सेवा के लिए आजीवन समर्पित रहा । वे एक सफल साहित्यकार होने के साथ-साथ कुशल वक्ता समाज सेवी भी रहे हैं । कुमाउनी लेखन में उनको बचपन से ही रूचि थी, इसीलिए उन्होंने इस पर्वतीय क्षेत्र की सुंदरता को ,यहाँ की संस्कृति को अपनी लोक भाषा में अभिव्यक्त का माध्यम बनाया । डॉ. बिष्ट को लोक कवि बनाने का श्रेय उनके पारिवारिक परिवेश व वातावरण को दिया जा सकता है । कुमाउनी संस्कृति कि छाप उनके कविताओं में देखने को मिलती है । कुमाऊ की खेती व पशुपालन का एक उदहारण दृष्ट्ब्य है-

"खेति-पाति थ्वाड भौत
द्वि कल्वाड, बल्द हौव
गड़ी-भिड़ी, गाड़ बे लेख
उपराउ -तलाउ द्विए देख

डॉ. शेर सिंह बिष्ट के सम्पूर्ण कुमाउनी साहित्य में कुमाउनी संस्कृति की झलक देखने को मिलती है। संस्कृति दो प्रकार की होती है - (1) लोक संस्कृति (2) अभिजात संस्कृति, कुमाउनी संस्कृति लोक संस्कृति से संबंधित है। लोक संस्कृति दो शब्दों से बना है - लोक और संस्कृति जिसमें लोक का अर्थ ग्रामीण क्षेत्र या पिछड़े क्षेत्र में रहने वाले लोगों से लगाया जाता है और संस्कृति का अर्थ जीवन जीने की शैली व् आचार-व्यवहार से लगाया जाता है। डॉ. शेर सिंह बिष्ट द्वारा कुमाउनी संस्कृति को निम्न प्रकार परिभाषित किया गया है-

"कुमाउनी संस्कृति के अंतर्गत लोक संस्कृति, व्यक्तित्व एवं चारित्रिक विशेषताएं, धार्मिक विश्वास एवं व्यवहार, सामजिक मूल्य एवं अभिवृतियां, शिल्प एवं वास्तुकला, उपक्षेत्रीय संस्कृति की विशेषताएं, भाषा एवं विविध बोलियों का सन्दर्भ इत्यादि सांस्कृतिक संदर्भों की व्याख्या अपेक्षित है।"

उपरोक्त उदाहरण से स्पष्ट होता है कि कुमाउनी संस्कृति के अंतर्गत विभिन्न प्रकार के अवयव सम्मिलित हैं जैसे व्यक्ति का आचार-विचार, रहन-सहन, व्यक्तित्व-विकास, धार्मिक विश्वास, आस्थायें, सामजिक मूल्य, वास्तुकला एवं स्थापत्य कला, भाषा-बोली, भौगोलिक परिस्थितियां, राजनितिक परिस्थितियां आदि अंग जो सम्मिलित रूप में संस्कृति का निर्माण करते हैं।

प्रस्तुत शोध पत्र का विषय डॉ. शेर सिंह  बिष्ट के कुमाउनी पद्य साहित्य में लोक संस्कृति है। यहाँ शेर सिंह बिष्ट के  काव्य में लोक संस्कृति पर चर्चा की गई है।

मुख्य शब्द- अविस्मरणीय, सांस्कृतिक, लोक, अभिजात, मूल्य

**प्रस्तावना-** कुमाउनी भाषा लेखन में डॉ. बिष्ट की बचपन से ही रूचि रही है । डॉ. बिष्ट कुमाउनी साहित्य लेखन में अग्रणी साहित्यकारों में माने जाते हैं, लोक भाषा लेखन में उनका योगदान सदैव चिरस्मरणीय रहेगा । कुमाउनी भाषा में उनकी कविता संग्रह भारत माता, ईजा, उचैण और कुछ अन्य कवितायें हैं जो समय-समय पर पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित हुई हैं । भारत माता कविता संग्रह तीन संस्करण में प्रकाशित हुई है, जिसका पहला संस्करण 1998 में दूसरा संस्करण 2009 में तथा तीसरा संस्करण 2013 में  प्रकाशित हुआ ।

भारत माता के पश्चात उनका दूसरा कविता संग्रह 'ईजा' नाम से 2000 में प्रकाशित हुआ तथा 2007 में डॉ. बिष्ट का कुमाउनी कविता संग्रह 'उचैण'  नाम से प्रकाशित हुआ । उनकी प्रत्येक कविता में कुमाउनी संस्कृति की झलक देखने को मिलती है । कुमाऊ क्षेत्र का रहन-सहन, खान-पान, वस्त्र-आभूषण, लोक कला, सामाजिक परम्परायें, प्रथाएं, धार्मिक विश्वास, लोकाचार, वास्तुकला, आर्थिक परिप्रेक्ष्य, भौगोलिक स्थिति, राजनितिक परिप्रेक्ष्य आदि लोक संस्कृति के समग्र अवयव डॉ. बिष्ट के काव्य में देखने को मिलते हैं ।

यहाँ के लोगों का प्रमुख व्यवसाय कृषि है, यहाँ के निवासी कृषि व पशुपालन का काम करते हैं जिसका एक उदाहरण दृष्ट्ब्य है-

"सौणक म्हेंण
खरान बादलोंकि डूबनि ब्याखुलिबार
रोपिबेर धान खेतों में पनारकि गाड़
जसिक आपण-आपण भाग

कुमाऊ के तलाऊ क्षेत्र में धान की खेती होती है प्रस्तुत पंक्तियों में कवि ने धान की खेती का वर्णन किया है ।

यह क्षेत्र एक पर्वतीय भू-भाग होने के कारण यहाँ उत्पादकता कृषि श्रम की अपेक्षा कम होती है, इसलिए लोग रोजगार के लिए अन्य विकल्प ढूढ़ते हैं । कुछ लोग यहाँ से

मैदानी क्षेत्रों की ओर पलायन कर रहे हैं तो कुछ लोग यहीं मेहनत मजदूरी करके अपना जीवन निर्वाह करते हैं । यहाँ के विषम भौगोलिक परिस्थितियों ने यहाँ के लोगों को मेहनती-कर्मठ बना दिया है । कठिन श्रम करते मजदूर का वर्णन करते हुए कवि लिखते हैं-

"ढुंग फोडन-फोड़ने
ढुंग हैगी हात ;
ढुंग सारन-सारने
ढग हैगी कपाव;

कृषि व पशुपालन करना यहाँ के लोगों का मुख्य व्यवसाय है । यहाँ के लोग इसी क्षेत्र में उत्पादित खाद्यानों व् साग-सब्जी का उपभोग करते हैं । धीरे-धीरे पलायन होती जनसख्या और कृषि निर्भरता में कमी के कारण उत्पादन भी कम होने लगा है जिसकी आपूर्ति अन्य राज्यों से की जाती है । यहाँ के लोगों का मुख्य भोजन चावल, दाल, रोटी, साग-सब्जी, पहाड़ी दालें, पहाड़ी साग-सब्जी आदि हैं, ठंडी जलवायु के कारण यहाँ के लोग चाय के बहुत शौकीन होते हैं-

"गव करणों सुड़ुक-सुड़ुक
दिछों ध क्वे चहा घुटुक "

कुमाऊ क्षेत्र में पहने जाने वाले प्रमुख वस्त्र घागरि, आगड़ी, साड़ी-ब्लाउज, सलवार-कुर्ता, टोपी, धोती आदि हैं जबकि आभूषणों में सुत, धागुल, गलोबंद, नथ, कुण्डल, बालि, मुनाड, पौंजी, चरयों, जंजीर, मूंगकि माव, शिशपुल, पांयल, अंगूठी आदि हैं । इन पारम्परिक आभूषणों का वर्णन करते हुए कवि लिखते हैं -

"कां गै सुत-धागुल, गलोबंद, बालि- मुनाड,
नथ-पौंजि, चरयो, जंजीर, मूंगकि माव
घागरि-आगड़ी, भोटि दगेलि, मुड़कि पिकाई
लंगूछि, बाटुई, लाजकि ब्योलि जसि दिखाई"

डॉ. बिष्ट के प्रत्येक कविता कुमाउनी संस्कृति की छटा विखेरती नजर आती है । उन्होंने इस क्षेत्र वास्तुकला व् स्थापत्य कला, पौराणिक मन्दिर व वहां लगने वाले मेलों का वर्णन भी अपनी कविता में किया है । अल्मोड़ा में स्थापित नंदा देवी मन्दिर जो चंद राजाओं द्वारा बनाया गया था, इस मंदिर में आज भी भव्य मेले का आयोजन किया जाता है । डॉ. बिष्ट के शब्दों में-

"अल्माड, नैनीतालक परसिद्ध नन्दाष्टमि
तीन दिनक और म्याल, गीत बैर झवड
बणलि नंदा-सुनंदा बोतोंकि क्यालाक"

अल्मोड़ा और नैनीताल में लगने वाला प्रसिद्ध नन्दाष्टमि मेला जहाँ तीन दिन तक लोग खुशी-खुशी मेले का आनंद लेते हैं । मेले में लोक गीत, लोग नृत्य, झोड़ा-चाचरी, भगनोल गाये जाते हैं साथ ही माँ नंदा की पूजा अर्चना की जाती है ।

पौराणिक देवताओं के अतिरिक्त यहाँ लोक देवताओं की पूजा भी प्रत्येक घर में की जाती है । लोक देवताओं में प्रमुख देवता ग्वेल, सेम, भैरों, हीत, नर सिंह आदि हैं, ये देवता इनके न्याय देवता होते हैं । इन लोगों में कोई भी संकट या विपदा आती है तो इन देवताओं का आह्वान किया जाता है, देवताओं की पुकार की जाती है । मन्नत पूरी हो जाने पर विधि-विधान से इनकी पूजा-अर्चना की जाती है । पूजा के लिए इन देवताओं की जागर लगाईं जाती है, इसका एक उदहारण दृष्ट्ब्य है-

" भौ यादोंक जब बै
नों त्यरे कान पड़े
बिंद बादें त्येर नामक
धूप बाति तेरी करें!
छया-छयाई कुलंकारि
हरज्यू कैला ढूगां
दूंगारका बुडा देवा
मंदिर त्यरै देखें

प्रस्तुत पंक्तियों में कवि ग्वेल देवता की स्तुति करते हुए लिखते हैं कि हे ग्वेल देवता आप हमारे कुल देवता हो जब से हमारा जीवन प्रारंभ हुआ तब से हमारे पूर्वजों ने आपको कुलवंती माना है अर्थात देवताओं में आपको सर्वोपरि स्थान दिया है । उस समय हमने सबसे पहले तेरे ही मन्दिर के दर्शन किये, तेरे नाम का स्मरण किया, तेरा ही नाम हमारे कानों में गूंजा । इसी प्रकार सभी देवी-देवताओं को प्रसन्न करने के लिए तथा मन्नतें पूरी हो जाने पर उनके नाम स्मरण के लिए जागर लगाईं जाती है । इस क्षेत्र के प्रत्येक घर में लोगों ने लोक देवताओं के मंदिर बनाए हैं जिन्हें स्थानीय भाषा में थान कहा जाता है । ये थान घर के बाहर बनाये जाते हैं कभी-कभी घर के अन्दर भी देवी-देवताओं के थान बनाये जाते हैं । समय-समय पर इन थानों में धूप व दीया जलाया जाता है । इन्हीं थानों का वर्णन करते हए डॉ. बिष्ट लिखते हैं-

"बैसि छ: मासि हरु-सेम, एडिक थान
होलि पार्थि-पुज, जाँ-ताँ सौनक म्हैड"

हरु, सेम, एड़ी सभी देवताओं के यहाँ छोटे-छोटे थान बने हैं, जहां लोग समय-समय पर विधि-विधान से पूजा-अर्चना करते हैं ।

डॉ. बिष्ट अपनी कविताओं में पौराणिक कथाओं का दृष्टान्त भी देते रहते हैं तथा वे वर्तमान समय में पौराणिक कथाओं की प्रसांगिकता व् आदर्श प्रस्तुत करते हैं, 'रामकि राजतिलक " नाम की कविता में वे लिखते हैं-

"देखें राजलि जब ब्याणकार, अणकसी दरूनी स्वीण
ते बखते बटि मन उचाट, उडभाट और उदेसीन
सोचणई- किले देखें यस मैंलि हैरे मारकाट

राजगद्दी में भेरे कैकेयी, अजुध्या में हाहाकार"

प्रस्तुत पंक्तियां रामकथा पर आधारित हैं । राम के राजतिलक होने से पहले राज्य के भीतर होने वाले आतंरिक सुगबुगाहट को कवि ने कथानक बनाके प्रस्तुत किया है । यह बेचेनी राजा दशरथ को आने वाली अनहोनी का आभास करवा रहे हैं, प्रस्तुत पक्तियों से स्पष्ट होता है कि राजनीति में आतंरिक षडयंत्र व् उतार-चडाव प्राचीन समय से चला आ रहा है । इन समस्याओं को हम कैसे दूर कर सकते हैं ये हमें कथाओं के चरित्र में देखने को मिलता है ।

कुमाउनी संस्कृति में संस्कारों का भी विशेष महत्व है । संस्कार का मूल अर्थ मनुष्य के आतंरिक मन के शुद्धिकरण से लगाया जाता है, मनुष्य के दोषों को दूर कर उसे परिमार्जित करना संस्कार हैं । संस्कार मनुष्य के मानसिक, चारित्रिक, भावनात्मक तथा आध्यात्मिक विकास करते हैं । भारतीय संस्कृति में भी संस्कारों का विशेष महत्व है, हिन्दू धर्म में सोलह संस्कार माने जाते हैं, गर्भाधान पुंसवन, मीमांतोयत्रंन, जातकर्म, नामकरण, निष्क्रमण, अन्नप्राशन, चुडाकर्म, कर्णभेद, विद्यारम्भ, उपनयन, वेदारम्भ, केशान्त, समावर्तन, विवाह, अंत्येष्टि । इन संस्कारों में कुछ संस्कार ऐसे हैं जो सभी को मानने पड़ते हैं जैसे नामकरण, अन्नप्राशन, चुडाकर्म, विद्यारम्भ, विवाह व अंत्येष्टि । डॉ.बिष्ट के कविताओं में कहीं-कहीं इन संस्कारों का भी वर्णन किया गया है । विवाह संस्कार सबसे प्रमुख संस्कारों में से एक है, इसका उदहारण प्रस्तुत है -

"मैं दगड़ी क्वीड करलि
आँखोंक आँसु पोछलि
दुःख-सुख बाणि जाल
भरी-पूरी परिवार में
म्यार इकल मौनी-बुढाप
गणमणानै काटी जाल"

प्रस्तुत पंक्तियों में विवाह उपरांत होने वाले सुख-दुःख का बहुत सुन्दर वर्णन किया गया है ।

इस प्रकार डॉ. बिष्ट की कविताओं में हमें कुमाउनी संस्कृति की सम्पूर्ण छाप देखने को मिलती है, उन्होंने कुमाऊ क्षेत्र में रहने वाले लोगों का खान-पान, रहन-सहन, आचार-विचार, लोक कला, संस्कार, धार्मिक आस्थायें, अन्धविश्वास, प्राकर्तिक सौन्दर्य आदि सभी पहलुओं का सुंदर वर्णन अपनी कविताओं में किया है । उन्होंने सौन्दर्य वर्णन के साथ-साथ इस क्षेत्र में होने वाली समस्याओं का वर्णन भी पाठकों के समक्ष रखा है जो उन्हें एक सफल कवि के साथ-साथ कुशल समाज सेवी भी बनाता है । साथ इस क्षेत्र में पनपने वाले रुढियां अन्धविश्वास पर भी करारा प्रहार किया है ।

**सन्दर्भ ग्रन्थ-**

1. बिष्ट प्रो. शेर सिंह, भारत माता, साहित्य पूर्वा, 3/11, हाइडिल कॉलोनी, बिजनौर-246701(उ.प्र.) पृष्ट नं.-85

2. बिष्ट प्रो. शेर सिंह, कुमाउनी भाषा और संस्कृति, अल्मोड़ा बुक डिपो, माल रोड, अल्मोड़ा-263601पृष्ट नं.-109
3. बिष्ट प्रो. शेर सिंह, उचैण, साहित्य पूर्वा, 3/11, हाइडिल कॉलोनी, बिजनौर-246701(उ.प्र.) पृष्ट नं.-73
4. बिष्ट प्रो. शेर सिंह, उचैण, साहित्य पूर्वा, 3/11, हाइडिल कॉलोनी, बिजनौर-246701(उ.प्र.) पृष्ट नं.-46
5. बिष्ट प्रो. शेर सिंह, इजा, गोपेश प्रकाशन, बिलमपुर भवन, चीनाखान, अल्मोड़ा-263601(उ.प्र.) पृष्ट नं.-42
6. बिष्ट प्रो. शेर सिंह, भारत माता, साहित्य पूर्वा, 3/11, हाइडिल कॉलोनी, बिजनौर-246701(उ.प्र.) पृष्ट नं.-88
7. बिष्ट प्रो. शेर सिंह, भारत माता, साहित्य पूर्वा, 3/11, हाइडिल कॉलोनी, बिजनौर-246701(उ.प्र.) पृष्ट नं.-104
8. बिष्ट प्रो. शेर सिंह, भारत माता, साहित्य पूर्वा, 3/11, हाइडिल कॉलोनी, बिजनौर-246701(उ.प्र.) पृष्ट नं.-13
9. बिष्ट प्रो. शेर सिंह, भारत माता, साहित्य पूर्वा, 3/11, हाइडिल कॉलोनी, बिजनौर-246701(उ.प्र.) पृष्ट नं.-104
10. बिष्ट प्रो. शेर सिंह, इजा, गोपेश प्रकाशन, बिलमपुर भवन, चीनाखान, अल्मोड़ा-263601(उ.प्र.) पृष्ट नं.-30
11. बिष्ट प्रो. शेर सिंह, भारत माता, साहित्य पूर्वा, 3/11, हाइडिल कॉलोनी, बिजनौर-246701(उ.प्र.) पृष्ट नं.-77

**ई-मेल-** mehrareva@gmail.com **मो.न.- 9997073094**

www.bohalshodhmanjusha.com Bohal Shodh Manjusha ISSN: 2395-7115
Impact Factor:8.642 January 2025 Page No. : 227-230
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

# 21 वीं सदी के नाटकों मे राष्ट्रीय एकता एवं सांप्रदायिक सद्भाव

## (जिस लाहौर नइ देख्या ओ जम्याइ नइ' नाटक के विशेष संदर्भ में)

**डॉ. चौधरी निलोफर महेबुब,** हिंदी विभाग,
श्री शिवाजी महाविदयालय, बार्शी, जि. सोलापुर

**सारांश :-**

साहित्य समाज का प्रतिबिम्ब प्रस्तुत करता है। स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात देश की सामान्य जनता का मोहभंग हुआ। आम आदमी ने जहाँ स्वतंत्रता प्राप्त करने के लिए एक होकर संघर्ष किया था वहीं स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् भाई-भाई के विभाजन से वह बेचैन हो उठा । आम आदमी ने स्वतंत्रता की प्राप्ति देश के विभाजन के लिए नहीं की थी, वह कतई अपने देश के टुकडों में विभाजित नहीं चाहता था लेकिन देश के टुकडे होनेपर जो समस्याएँ उठ खड़ी हुई, उन समस्याँओ पर असगर वजाहत ने देश विभाजन सम्बन्धी नाटक जिस लाहोर नइ देख्या ओ जम्याइ नई की रचना की।

मजहब के नाम पर आतंक फैलानेवाले आतंकवादियों का कोई धर्म, जाति, दंश नहीं होता वह केवल आतंकवादी होते है। आतंक भरे माहौल में हर, कोई एक दूसरे से दहशत खाए हुए है, लालत है ऐसे हालत पर कि हिंदू को मुसलमान और मुसलमान को हिंदू के नाम से डर लगने लगा है। भारत जैसे धर्मनिरपेक्ष विविधता में एकता वाले राष्ट्र को सांप्रदायिकता में बाँटने का काम हो रहा है। साम्प्रदायिक दंगे आज धार्मिक या जातीय उन्माद के कारण हो रहे है लेकिन वास्तविता यह है कि कोई भी धर्म मूल से संघर्ष की शिक्षा नही देता। साम्प्रदायिकता भय, और घृणा की राजनीति करती है। खतरे आविष्कार इसकी प्रमुख विशेषता है। धर्म खतरे में है, संस्कृति खतरे में है,अस्तित्व खतरे में है। आतंकवाद,सांप्रदायिक दंगो के मूल में इन्सानियत का विनाश है, जिससे हमें उभरना है।

**प्रस्तावना:-**

देश में राष्ट्रीय एकता अखंडता में सबसे बड़ा बाधक सांप्रदायिकता है - सम्प्रदाय का अर्थ है, कुछ विशेष परम्पराओं और सिध्दान्तों के प्रति पूर्वा ग्रहपूर्व, दृष्टिकोन रखनेवाले जन समुदायों को सम्प्रदाय संज्ञा दी जाती है। राष्ट्रविशेष में एक ही समय एकाधिक सम्प्रदाय विद्यामान रह

सकते हैं। इसका जन्म कभी राजनीतिक कभी सामाजिक और कभी आर्थिक मतभेदों के कारण होता है। सांप्रदायिकता की आड़ में जनता के बीच घृणा, हिंसा,अशांति और दंगों और कर्फ्यू से जनजीवन को अव्यवस्था फैल रही है। उत्पादक कार्य असंभव बनाकर लाखों लोगों की रोजी -रोटी पर हमला किया जा रहा है। मस्जिद विवाद अलीगढ़, मुरादाबाद, कर्नाटक, बंबई के दंगे खालिस्तान की माँग गुजरात और उडीसा में इसाइयों पर हो रहे हमले गुजरात का व्यापक नरसंहार, राष्ट्र के लिए खतरा है। अपना हित साधनेवाली धर्म संस्थाओं के ठेकेदार पूँजीपति वर्ग और उनसे जुड़े नेता ये सभी विभिन्न सांप्रदायों को उनकी संस्कृति की दुहाई देकर आपस में लड़वाते है। आज के २१ वी सदी में यह सांप्रदायिकता की अग्नि अनेक कारणों से जल ही रही है।.

**मुख्यभाग :-**

देश की जनता को आज़ादी की लड़ाई में यह आश्वासन दिया गया था कि, देश मनुष्य और शोषण के जाल से मुफ्त हो जाएगा और हर मनुष्य फिर वह किसी भी जाति, धर्म, रंग, वर्ण, का हो वह हर समय समानता, स्वतंत्रता,बंधुता की भावना को हमेशा अनुभव करेगा

"देश हमारा धरती अपनी,
हम धरती के लाल,
नया संसार बसायेंगे
नया इंसान बनायेंगे।" '1

राष्ट्र ऐसी महाशकित है, जो राष्ट्र का निर्माण करनेवाली कोटि-कोटि देश वासियों की शक्ति का समाविष्ट रूप है। देश में विभिन्न जातियों - उपजातियों के व्यक्ति मिलकर एक राष्ट्र का निर्माण करते है। आज जातिवाद के सीमित घेरों को तोड़कर राष्ट्रीयता अन्तरराष्ट्रीय चेतना की ओर उन्मुख हो रही है, क्या जातिवाद का रूप प्राय: धुंधला हो गया है। भारत में राष्ट्र की अपेक्षा जातिय और प्रांतीय भावना प्रबल है।

"जिस लाहौर नही देख्या ओ जम्याइ नाइ नाटक के माध्यम से असगर वजाहत ने भारतीय संदर्भ में राष्ट्रीय एकता और साम्प्रदायिक सद्भाव का संदेश देने का प्रयास किया है। यह नाटक मातृभूमि की जेष्ठता धर्म से भी अधिक होती है इस बात का संदेश देना है। इस नाटक की मुख्य पात्र रतन की माँ है जो हिंदू धर्म से भी अधिक अपनी मातृभूमि लाहौर से प्यार करती है। लाहौर जैसा शहर पूरे हिंदूस्तान में नहीं है। लखनऊ ये लाहौर आयें सिकंदर मिर्जा के परिवार की वह पूरी सहाय्यता करती है। उन्हें अपनी हवेली में अपने पुत्र की तरह रहने देती है। रतन के माँ को मिर्जा अपनी माँ की तरह मानकर उसकी रक्षा करता है। मिर्जा की अनुमती से माई लाहौर में दिवाली का त्यौहार मनाती है । सबको मिठाई बाँटकर सबकी मंगल कामना करती है। रतन की माँ सोचती है मेरी वजह से मिर्जा के परिवार पर कोई संकट या मुसीबत ना आए इसलिए अंत में माई दिल्ली जाने का निर्णय लेती है। मिर्जा का परिवार, माई को हिदूस्तान जाने से रोकते है।

नासिर कहते है " तुम अगर यहाँ नहीं तो हम सब नंगे हो जायेंगे माई - नंगा आदमी नंगा होता है, न हिंदू होता है न मुसलमान।"2

धर्मगत विद्वेष के वर्तमान माहौल में साम्प्रदायिक सद्भाव आज की आवश्यकता बन गई है। ऐसे माहोल में यह नाटक मौलिक संदेश देता है। पहलवान जब रतन की माँ को पाकिस्तान में रहने का विरोध करता है तो मौलवी साहब उन्हें धर्म का सही संदेश समझाते है - " भई हदीस शरीफ हैं कि तुम दूसरों के खुदाओं को बुरा न कहो ताकि वह तुम्हारे खुदा को बुरा न कहें, तुम दूसरों के मजहब को बुरा न कहो ताकि वह तुम्हारे मजहब को बुरा न कहें।" 3 इस नाटक का महत्वपूर्ण चरित्र मौलवी धर्म को केवल हिंदू- मुस्लिम न मानकर मानवता से जोड़कर देखते है। सांप्रदायिक सौहार्दता के प्रतीक मौलवी और शायर के संवाद भी मार्मिक है। पहलवान जब बदले की आग में जलता है तब मौलवी उसे समझाता है - पुत्तर जुल्मको जुलम से खत्म हौंदा है ...जानवर तक प्यारनाल पालतू बन जादा है ... तुसी इंसान ने जुल्म करके खुदानू की मुँह दिखाओंगे, इस्लाम जुल्म के खिलाफ है ... जो जुल्म करदे ने ओ मुसलमान नही है... समझे इरशाद कि तुम जमीन वालों पर रहम करो, आसमान वाला तुम पर रहम करेगा।4

नाटक के अंत में माई की मृत्यू पर परिवार हिंदू रीतिरिवाज से माई का अंतिम संस्कार करता है ।सिंकदर मिर्जा माई की चिता को अग्नि देकर बेटा होने का फर्ज अदा करते है। यहा इन्सान के बीच बनाई गई धर्म की दिवार मानवता के आगे कि पिछलकर प्रेम की धारा को प्रवाहित करती हुयी दिखाई देती है। तन्नो अपनी माँ से कहती है, "अम्मां ये सब हुआ क्यों ?...यही हिंदोस्तान, पाकिस्तान? ...अम्माँ, अगर हम लोग और भाई एक ही घर में रह सकते हैं तो हिंदुस्तान में हिंदू और मुसलमान क्यों नहीं रह सकते थे? 5

नाटककार ने विभाजन के दर्द का चित्रण भी किया है । वे कथावस्तु को मानवीय स्वरूप प्रदान करने में पूर्णत: सफल हुये हैं। नाटक की माई और मौलाना तो ऐसे लगते हैं जैसे मानवता का संदेश लेकर धर्म करने आये हुये 'फरिश्ते है,' जो सभी धर्मो में आपसी सदभाव का संदेश देते हैं। धर्म का गलत इस्तेमाल कर मानवता को खत्म करना चाहते हैं।नाटक का उद्देश दोनों समुदायों के बीच सांस्कृतिक एकता,सांप्रदायिक सद्भाव, सहिष्णूता प्रेम, विश्वास, और भाईचारा निर्माण करना है ।

**निष्कर्ष:-**

स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् भारतीय जनता ने जिस स्वर्णिम भारत की कल्पना की थी उस कल्पना,आकांक्षा का मोहभंग हुआ। भारतीय जनता ने सुख,समध्दि, शांति आदि के स्वप्न देखे,उसे पूरा करने के लिए प्रयास किया था, वहाँ उनके विश्वसनीयता को चकनाचूर कर दिया और जनता को सुख- समध्दि, शांति के स्थान पर रिश्वतखोरी,कालाबाजारी भेट दी। राष्ट्रीयनिष्ठा की कमी और वैयक्तिक स्वार्थ के कारण देश के हर क्षेत्र में भ्रष्टाचार और चरित्रहीनता,सांप्रदायिकता की स्थिति व्याप्त है । वर्तमान समय में सरकारी व्यवस्था में घुसखोरी, निष्क्रियता,अन्याय आदि

फैल गये है, इन सब स्थितियों में वर्तमान समय के सामान्य मनुष्य के लिए शांतिपूर्ण जीवन व्यतीत करना महज एक स्वप्न बन गया है। भ्रष्टाचार, घुसखोरी आदि के पनपने से सामान्य मनुष्य की जो स्थिति हुई उसे वेदना, पीड़ा, कष्ट, कुटनीती, विश्वासघात एवम् राजनैतिक दांवपेच का शिकार होना पड़ा।

जो राष्ट्रीय भावना मानव जाति विकास के में अत्यन्त महत्वपूर्ण भूमिका निभाती रही है, और आज भी राष्ट्रीय भावना मनुष्य की मूल एवं शक्तिशाली भावनाओं में से एक है। आम जनता में भाईचारा, निर्भयता, उपयोगशीलता, अनुशासन सहिष्णुता सेवा, पारस्पारिक सद्भावना, समानता आदि मूल्यों को जगाकर राष्ट्रीय एकता और अखंडता की ज्योति जलाई है। आम जनता की अनेक समस्याओं को उठाकर अनेकता में एकता प्रस्थापित की है। गांधीजी कहते है,हम देश के लिए है, न कि देश हमारे लिए, जो भारतीयों के हृदय में राष्ट्रप्रेम एवं कर्तव्यनिष्ठा का संचार करने में सक्षम है। इसमें ही आज राष्ट्रीय एकता और अखंडता का सूर्य प्रकाशमान होगा।

**संदर्भ सूची -**


1) जिस लाहौर नहीं देख्या ओ जम्याई नई - असगर वजाहत पृ.सं.11

२) वही पृ.स. 54

3)जिस लाहौर नहीं देख्या ओ जम्याई नई - असगर वजाहत पृ.स. 60

4)जिस लाहौर नहीं देख्या ओ जम्याई नई- असगर वजाहत पृ.सं. 43

5) वही पृ.सं. 66



फोन - 7385527764

www.bohalshodhmanjusha.com Bohal Shodh Manjusha ISSN: 2395-7115
Impact Factor:8.642 January 2025 Page No. : 231-237
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

# श्री राधासर्वेश्वरशरणदेवाचार्य विरचित काव्यों एवं संस्कृत वाङ्मय में मानवीय जीवन मूल्यों का तुलनात्मक अध्ययन

**डॉ. भेषराज शर्मा,** असिस्टेन्ट प्रोफेसर,
संस्कृत दर्शन एवं वैदिक अध्ययन विभाग वनस्थली विद्यापीठ, वनस्थली।
**लक्ष्मण राम शर्मा**, शोधार्थी (उप प्राचार्य),
माध्यमिक शिक्षा विभाग राजस्थान

**प्रस्तावना**

विश्व साहित्य में संस्कृत वाङ्मय का महत्वपूर्ण स्थान है। यह भारत की आत्मा है। संस्कृत भाषा के वैदिक और लौकिक साहित्य की सुविशाल परंपरा ने मानव को जीवन जीने के सच्चे अर्थों से सुपरिचित करने का अतुल्य कार्य किया है। वेद, ब्राह्मण, उपनिषद् से लेकर रामायण महाभारत एवं पुराणादि साहित्य में नैतिकता, मानवीयता, सामाजिकता, वैश्विक एकता जैसे अनेक पक्षों एवं मूल्यों का वर्णन प्राप्त होता है। मानवीय मूल्य ही हमें मूल्यवान बनाते हैं। सच तो यह है कि इन मूल्यों के कारण हम मनुष्य होने की योग्यता प्राप्त करते हैं। इन्हीं मूल्यों के कारण हमारी सभ्यता सशक्त मानदण्डों पर निर्धारण कर पाती है और संस्कृति सहज, युगानुकूल और स्थाई बनती है। अतः मानवीय मूल्यों से जुड़ने का प्रयास साहित्य की विविध विधाओं के माध्यम से सदैव करते रहना चाहिए। साहित्य मानवीय पक्षों को प्रदर्शित करने में तभी सफल होता है जब उसके रचनाकार स्वतंत्र चिंतन, गंभीर सोच और विश्व कल्याण को महत्व देने वाले हों। संस्कृत साहित्य में उदात्त भावों एवं सांस्कृतिक गौरव के सर्वहितैषी और सर्वसमावेशी सिद्धांतों के व्यावहारिक पक्ष का जीवंत चित्रण प्राप्त होता है।

**बीज शब्द:-** पुरुषार्थ, अध्यात्म, सत्य की प्रतिष्ठा, आचार, अनाचार, आर्ष, सहिष्णुता, गुणग्राहिता,

**परोपकार**

मनुष्य का यह शरीर परोपकार करने से शोभित होता है। सज्जनों का शरीर परोपकार के लिए ही समर्पित होता है। संपूर्ण सृष्टि परोपकार पर ही अवलंबित है। संसार के किसी भी जड़-चेतन यहां तक कि मंदबुद्धि पशु-पक्षियों तक को देखिए, सर्वत्र दान करने का सार्वभौम नियम काम कर रहा है। यदि कुआं जल दान देना बंद कर दे; खेत अनाज-साग- सब्जियां

देना छोड़ दे; वृक्ष फल, पत्तियां, छाया,लकड़ी आदि उत्पाद नहीं दे; जल वायु सूर्यातप अपना स्वैच्छिक कार्य बंद कर दे; पशु हमें अपनी सेवाओं का दान न दें तो हमारा समाज और सृष्टि का संचालन बंद ही हो जाएगा। प्रकृति के प्रत्येक तत्व में परोपकार का गुण दिखलाई पड़ता है। नदियां दूसरों के लिए मधुर जल बहाती हैं। बादल समस्त भूमंडल को अन्न संपदा से पूर्ण कर देने के लिए जल बरसाते हैं।

**भवन्ति नम्रास्तरवः फलोद्गमैः**
**नवाम्बुभिर्भूमिविलम्बिनो घनाः।**
**अनुद्धता: सत्पुरुषाः समृद्धिभिः**
**स्वभाव एवैष परोपकारिणाम्।। 1**

भारवि परोपकारी सज्जनों की सहज प्रवृत्ति के बारे में बताते हैं-

**युक्तानां खलू महतां परोपकारे कल्याणी भवति रुजस्त्वपि प्रवृत्तिः। 2**

बाणभट्ट का परोपकारविषयक कथन है-

**अनपेक्षित गुणदोष: परोपकार: सतां व्यसनम्। 3**

सबके लिए समान रूप से लाभकारी, परोपकारी व्यक्ति की तुलना बादल से की गई है।

**वर्षं कस्य किमप: कृतोन्नतेरम्बुदस्य परिहार्यमूषरम्। 4**

श्री राधा सर्वेश्वर शरण देवाचार्य जी ने अपने ग्रंथ उद्गार शतकम में परोपकार का महत्व बताया है-

**परोपकारस्य परमं महत्वं वरीवर्ति। अतोहि लक्ष्यं विहाय दातव्यम्। इति शास्त्रवचनानुसारेण परोपकारनिरता: भवन्तु। 5**

**ये मनुजा: परोपकारपरायणा: सन्ति ते परमसौभाग्यशालिन: सन्ति।**

**दानशीलता**

धर्मपरायण उदार व्यक्ति के जीवन में दान का विशेष महत्व होता है। ऋग्वेद में भी कहा गया है- "दक्षिणावन्तो अमृतं भजन्ते।" अर्थात् दानी अमर पद प्राप्त करते हैं। सूर्यवंशी राजा सत्पात्र प्रजा को दान के लिए ही धन का संग्रहण करते थे। रघुवंश में वर्णन मिलता है कि राजा दिलीप प्रजा से प्राप्त धन को इस प्रकार लौटा देते थे, जिस प्रकार सूर्य समुद्र का जल सोखकर वर्षा के रूप में पुनः धरती पर वापस बरसा देता है। दान करने से धन शुद्ध होता है। दान देने से मन में असीम शांति की प्रतीति होती है। याचक के तृप्त मुख को देखकर संतोष होता है जिसे आपने भोजन करा दिया है, या सर्दी से पीड़ित को वस्त्र दान किए हैं। दान का प्रत्यक्ष लाभ आत्मसंतोष है, जो देने वाला स्वयं अपने मन में अनुभव करता है।

**प्रजानामेव भूत्यर्थं स ताभ्यो बलिमग्रहीत्।**
**सहस्रगुणमुत्स्रष्टुमादत्ते हि रसं रविः॥ 6**

बाणभट्ट का कथन है कि महापुरुष याचक को क्या-क्या नहीं देते हैं -

**अर्थिजने च किमिव नातिसृजन्ति महान्तः। 7**

आचार्य श्री ने धनी लोगों को अपनी संपत्ति का विनियोग उचित कार्यों में करने का निर्देश दिया है-

**ये च श्रीमन्तो विपुलसंपत्तिसंपन्ना: सन्ति तेषामिदं कर्तव्यं वर्तते यद्दीनसेवासु, सत्कर्मसु, देवालयेषु, गोसेवासु, साधुसेवासु तत्प्रयोगो विधेय:।8**

**पशु पक्षी हित दान कर, अन्न अम्बु तृण दान।**
**परम पुण्यप्रद कार्य है, 'शरण' सतत हिय ध्यान।।**
**दीन दु:खी असहाय जन, समुचित हो शुभ दान।**
**अन्न वसन सहयोग हो, 'शरण' मुदित भगवान।।9**

**सत्य भाषण**

वेदों, उपनिषदों एवं पुराण ग्रंथों में सत्य पर विमर्श किया गया है। भारतीय राष्ट्रीय चिन्ह पर भी लिखित है-

**सत्यमेव जयते (नानृतम्) 10**

महाकवि भास ने सत्य के विषय में कहा है कि सत्यवादी मरने पर भी यह शरीर से जीवित रहता है।

**मृतेऽपिहि नरा: सर्वे सत्ये तिष्ठन्ति तिष्ठति।11**

सत्य एवं प्रिय वचनों को सनातन धर्म की संज्ञा देते हुए आचार्य मनु ने कहा है-

**सत्यं ब्रूयात् प्रियं ब्रूयात्, न ब्रूयात् सत्यमप्रियम्।**
**प्रियं च नानृतं ब्रूयात्, एष धर्म सनातन:।।12**
**सत्यं दम: तप: शौचं, संतोषश्च क्षमार्जवम्।**
**ज्ञानं नमो दया दानं, एष धर्म सनातन:।।13**

आचार्य श्री ने अनृतवाणी को त्याज्य बताकर सत्य की जीवन में प्रतिष्ठा को कल्याणकारी बताया है।

**अनृतवाणी हातव्या यया जीवने परमोज्ज्वलता स्यात्। तदैवानुकरणं नृजीवनं जायते।14 -**

(मिथ्या बोलना छोड़ें, जिससे जीवन में परम पवित्रता और उज्ज्वलता आएगी और तभी अनुकरणीय मानव जीवन होगा।

**सत्संगति**

सज्जनों की संगति को संस्कारपूर्ण जीवन के लिए महत्वपूर्ण स्रोत माना है। भर्तृहरि विरचित नीतिशतक में सत्संगति का महत्व प्रतिपादित किया गया है।

**जाड्यं धियो हरति सिञ्चति वाचि सत्यं,**
**मानोन्नतिं दिशति पापमपाकरोति।**
**चेत: प्रसादयति दिक्षु तनोति कीर्तिं,**
**सत्संगति: कथय किं न करोति पुंसाम्।।15**

**दुस्सङ्गं सर्वथातो विहाय सर्वदा परमोत्तमश्रेष्ठमहानुभावानां सत्सङ्ग: श्री हरिकथावार्तां शास्त्रानुशीलनं च संपादनीयं साधकै:।16**

**दुस्सङ्ग: सर्वथा त्याज्य:, संसेव्या साधुसङ्गति:।**
**अभिज्ञै: नितरां लोकै:, कर्तव्यमात्म चिन्तनम्।। 17**
रहीम और कबीर दास जी ने भी सत्संगति की महिमा बताई है।
**जो रहीम उत्तम प्रकृति, का करि सकत कुसंग।**
**चंदन विष ब्यापत नहीं, लिपटे रहत भुजंग।**
**कबीर तन पंछी भया, जहाँ  मन तहाँ उड़ि जाई।**
**जो जैसी संगति करे, सो तैसा फल पाई।।18**
**स्त्री सम्मान**

वर्तमान समाज में स्त्रियों की दशा चिंतनीय है। चारित्रिक अपराधों में निरंतर वृद्धि संस्कारहीनता की परिणति है। संस्कृत नीति ग्रंथों में नारी के महत्व की स्वीकारोक्ति है।
**यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते, रमन्ते तत्र देवता:।**
**यत्रैतास्तु न पूज्यन्ते, सर्वास्तत्राफलाक्रिया:।।19**
(जहां नारियों का मान, सम्मान एवं आदर (पूजा) होता है वहां स्वयं देवता निवास करते हैं, किंतु जहां स्त्रियों की निंदा एवं अनादर होता है वहां कोई कार्य सफल नहीं होता। उद्गारशतकम् काव्य में नारी विषयक उपदेश व्यवहरणीय है।
**"या मातर: सन्ति,भगिन्य: सन्ति,बालिका:सन्ति तासां सुरक्षार्थं सर्वै: जनै: सर्वदा प्रयत्न: करणीय:।"20**
(समाज में जो माताएं, बहनें और बालिकाएं हैं उनकी सुरक्षा के लिए सभी लोगों को सर्वदा प्रयास करना चाहिए।)
**मातृ शक्ति का मान कर, यह है उत्तम कार्य।**
**उनकी सेवा में सदा, 'शरण' भक्ति अनिवार्य।।21**
मनुस्मृति में नारी के सम्बलन, आत्मसम्मान एवं सुरक्षा के विषय में गहन विमर्श प्रस्तुत हुआ है।
**स्त्रियां तु रोचमानायां, सर्वं तद्रोचते कुलम् ।**
**तस्यां त्वरोचमानायां, सर्वमेव न रोचते ॥22**
**शोचन्ति जामयो यत्र विनश्यत्याशु तत्कुलम्।**
**न शोचन्ति तु यत्रैता वर्धते तद्धि सर्वदा।।23**
**मधुर वाणी-**
**अनुद्वेगकरं वाक्यं सत्यं प्रियहितं च यत्।**
**स्वाध्यायाभ्यसनं चैव वाङ्मयं तप उच्यते।24**
अर्थात् उद्वेग न करनेवाला, सत्य, प्रिय, हितकारक भाषण तथा स्वाध्याय और अभ्यास करना -- यह वाणी-सम्बन्धी तप कहा जाता है।
इसी मानवीय मूल्य को आचार्य श्री ने भी 'प्रेरणाशतकम्' में वर्णित किया है।
**माधुर्यं वचने धार्यं कटुतां सर्वदा त्यजेत्।**

**सद्व्यवहारआचार:, श्रेष्ठसाधकलक्षणम्।।25**

(अपनी वाणी में मधुरता हो। कटुतापूर्ण वचनों का सर्वदा त्याग करें। तथा सद्व्यवहार, सदाचार का पालन करना उत्तम साधक का लक्षण है।)

**परनिंदा का वर्जन -**

परनिंदा को शास्त्रों में हेय माना गया है। परदोष दर्शन से अनेक बुराइयां हमारे स्वयं के व्यवहार में स्थापित हो जाती हैं। आचार्य श्री ने इस विषय में छात्र वर्ग को निजवचनों से सावधान किया है।

**परनिंदा परदोष से, बचे रहो धीमान।**

**सद्गुरु अवधारण करो, 'शरण' मिले सन्मान।।26**

**धैर्य-**

विरुद्ध और दु:खद परिस्थितियों में धैर्य ही महान व्यक्ति का सहायक होता है। कालिदास प्रकृति से दृष्टांत प्रस्तुत कर विरोधों में भी स्थिर रहने वाले धीर व्यक्तियों की महत्ता प्रकट करते हैं।

**द्रुमसानुमतां किमन्तरं यदि वायौ द्वितयेऽपि ते चला:।27**

**दुर्दरा व्याहरन्तीति किं देव: पृथिव्यां वर्षितुं विरमति।28**

भर्तृहरि ने नीतिशतक में धीर व्यक्तियों के गुणों का सुंदर वर्णन किया है-

**निन्दन्तु नीतिनिपुणा यदि वा स्तुवन्तु**

**लक्ष्मी समाविशतु गच्छतु वा यथेष्ठम्।**

**अद्यैव वा मरणमस्तु युगान्तरे वा**

**न्याय्यात्पथः प्रविचलन्ति पदं न धीरा:।।29**

(नीतिज्ञ लोग चाहे निंदा करें या प्रशंसा, धन आये या जाए, मृत्यु अभी आ जाए या चिरकाल के बाद आए, लेकिन धैर्यवान् लोग न्याय के मार्ग से विचलित नहीं होते हैं।)

**जीव दया -**

इस भूतल पर जीव दया के समान कोई अन्य धर्म नहीं है। अतः मनुष्य को सर्व प्रयत्नों से जीवों पर दया का आचरण करना चाहिए।

आचार्य श्री ने जीवों के प्रति दया का आचरण छात्र का प्रमुख गुण बताया है।

**दया भाव सब जीव पर, गौमाता परिपाल।**

**ऐसे निर्मल छात्र गुण, 'शरण' लखैं गोपाल।।30**

**विविध पशु खेचरादीनां कृते तदनुकूलानुसारेणाहारव्यवस्था विधातव्या समग्रमानवै:।31**

(विविध पशु, पक्षी आदि के लिए उपयुक्त आहार की व्यवस्था सभी लोगों द्वारा की जानी चाहिए।)

**ग्रीष्मकाले च पशुपक्षिणां कृते जलव्यवस्थाऽनिवार्यरूपेणकर्तव्या भावुकजनै:।32**

(भावुक जनों द्वारा ग्रीष्म काल में पशु-पक्षियों के लिए जल की व्यवस्था अनिवार्य रूप से की जानी चाहिए।)

रघुवंश में चतुर्दश सर्ग में राम के द्वारा परित्यक्ता सीता को देखकर सारा अरण्य रोने लगा। पशु- पक्षियों में भी करुणाभाव जाग्रत हो गया। मोरों ने नाचना बंद कर दिया। वृक्ष पुष्पों के रूप में आंसू गिराने लगे। हिरणियों ने मुंह में भरी घास का कौर गिरा दिया।

**नृत्यं मयूराः कुसुमानि वृक्षा**
**दर्भानुपातान्विजहुर्हरिण्यः ।**
**तस्याः प्रपन्ने समदुःखभाव-**
**मत्यन्तमासीद्रुदितं वनेऽपि॥33**

**उपसंहार**

श्री राधासर्वेश्वरशरणदेवाचार्य विरचित काव्यों तथा संस्कृत वाङ्मय में मानव जीवन में नैतिक मूल्यों की स्थापना का हर संभव प्रयास किया गया है। संपूर्ण साहित्य मानवीय जीवन मूल्यों का वर्षण करता हुआ प्रतीत होता है। वर्तमान समय में सामाजिक जीवन में इन मानवीय मूल्यों के ह्रास के कारण ही विश्व में शांति का विघटन हुआ है; पतनोन्मुखी स्थिति बनी हुई है। यदि संस्कृत वाङ्मय के इन जीवन मूल्यों के सार्वभौम सत्य को स्वीकार कर पालन किया जाए तो आज भी व्यक्ति, समाज, राष्ट्र एवं विश्व के कल्याण में कोई बाधा नहीं रह सकती। आचार्य श्री के काव्यों एवं संस्कृत वाङ्मय में जिन संस्कारों की स्थापना की गई है वे मानव को पूर्ण सुसंस्कृत एवं सभ्य नागरिक बनाने में उपयोगी हैं।

**संदर्भ सूची**


1. भर्तृहरि, नीतिशतकम् 1. 71
2. भारवि, किरातार्जुनीयम् 7. 13
3. बाणभट्ट, हर्षचरितम् 2.2
4. माघ, शिशुपालवधम् 16. 41
5. श्री राधासर्वेश्वरशरणदेवाचार्य, उद्गारशतकम्, 66
6. रघुवंशम्, प्रथम सर्ग, श्लोक 18
7. हर्षचरितम्, उच्छ्वास- 8
8. उद्गारशतकम् 61
9. छात्र विवेक दर्शन, 98, 218
10. मुंडकोपनिषद्
11. पंचरात्रम्, 3.25
12. मनुस्मृति
13. मनुस्मृति
14. उद्गारशतकम्- ४०
15. -नीतिशतकम्
16. -उद्गारशतकम् ४७
17. -भारत-भारती-वैभवम्, १०९

18.रहीम एवं कबीर
19.मनुस्मृति 3.56
20.उद्गारशतकम् २५
21.- छात्र विवेक दर्शन, ४
22.मनुस्मृति, 3.62
23.मनुस्मृति, 3.57
24.श्रीमद्भगवद्गीता 17 .15
25.-प्रेरणाशतकम्, ७०
26.-छात्र विवेक दर्शन, ४१
27.रघुवंशम् 8. 90
28.मालतीमाधवम् 4. 15
29.नीतिशतकम्
30.-छात्र विवेक दर्शन, ६२
31.-उद्गारशतकम्,२३
32.-उद्गारशतकम्, २८
33.रघुवंशम् 14. 69
मो.- **9251604605** ईमेल - **laxmansharma101@gmail.com**

www.bohalshodhmanjusha.com Bohal Shodh Manjusha ISSN: 2395-7115
Impact Factor:8.642 January 2025 Page No. : 238-240
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

# तेजेंद्र शर्मा की कहानियों में मानवीय संवेदना

**मोनिका मेहता,** शोधार्थी,
**डॉ.सुमन कौशिक,** मार्गदर्शिका,
सी.एम.आर विश्वविद्यालय बेंगलुरु

**प्रस्तावना** - वास्तव में मूल्य राष्ट्र मूल+यत से बना है। जिसका अर्थ है किसी वस्तु के विनिमय में दिया जाने वाला दाम,धन,बाजार भाव आदि। अंग्रेजी में इस राष्ट्र के लिए वैल्यू ग्रीक में एकिसयोज जर्मन में वैट और फ्रांसीसी में वालेर का प्रयोग होता है।मूल्य के संबंध में दो अलग-अलग दृष्टिकोण है इसमें एक सामान्य है एक अमूर्त गन रखता है यह प्रायः वस्तुओं के मूल्यवान या मूल्यहीन पर निर्भर है दूसरा दृष्टिकोण में प्रत्येक मूल्य जीवन के किसी विशेष क्षेत्र से संबंधित है अर्थात इसका संबंध नैतिक मूल्य कलात्मक मूल्य आर्थिक मूल्य या सामाजिक मूल्य से जुड़ा है।

मूल्य का मतलब है मूल के सामान जो जीवन को अस्तित्व और गति प्रदान करें वही मूल्य है। आज के युग में साहित्य और मानव मूल्य दोनों का पतन समाज में देखा जा सकता है साहित्य और मूल्यों का विश्लेषण करने से उनके बीच के संबंध स्पष्ट होते हैं।

**तेजेंद्र शर्मा की कहानियों में जीवन मूल्य-**

तेजेंद्र शर्मा की हिंदी कथा साहित्य के प्रवासी जीवन के कथाकार हैं।जिन्होने विदेश में रहकर मनुष्य की उसे पीड़ा को उन संघर्ष को अपने कथा साहित्य के माध्यम से व्यक्त किया है जो ना अपने देश के रीति रिवाज और संस्कारों का मोह त्याग ने देता है और नहीं पराया देश के परिवेश में मिलने ही देता है। तेजेंद्र शर्मा अपने कथा साहित्य के माध्यम से भारतीय समाज और संस्कृति के मूल्य एवं विदेशी परिवेश के मध्य सामंजस से पूर्ण संबंधों के अंतर्गत आने वाले संघर्षों एवं समस्याओं की पड़ताल करते हैं ।वर्तमान समय में अपने संस्कारों, परिवेश, और संस्कृति एवं किसी दूसरे देश के समाज एवं संस्कृति के मध्य स्वयं को स्थापित करने की जध्होजध्ह में उलझा व्यक्ति परिवेश से अपना मोह त्याग नहीं पता जहां उसका बचपन बीता हो। ऐसी स्थिति में व्यक्ति को किसी अन्य देश के सामाजिक एवं सांस्कृतिक मूल्यों के साथ सामंजस स्थापित कर सकते में जिस प्रकार की संघर्षशीलता का अनुभव होता है तेजेंद्र शर्मा ने उसे स्थिति को अपनी कथा साहित्य में बहुत प्रभावी ढंग से चित्रण किया है।

काला सागर, टिहरी टाइट दे की कीमत यह क्या हो गया बेघर आंखें सीधी रेखा की पढ़ने कब्र का मुनाफा दीवार में रास्ता तेजेंद्र शर्मा की प्रसिद्ध कहानी संग्रह इन कहानी संग्रह की कहानी वर्तमान समय के समुदाय के जीवन संघर्षों की कहानी बयां करती है जिन्हें प्रवासी के नाम से संबोधित किया जाता है।

**देह की कीमत** - लेखक ने अपनी कहानी देह कीमत के माध्यम से उस मन:स्थिति को व्यक्त किया है जिस पर मनुष्य से अधिक धन लोलुपता हावी है। यह कहानी खत्म होती मानवीय संवेदनाओं की स्थितियों को बयां करती है। तेजेंद्र शर्मा की बेहतरीन कहानी उनके सशक्त कहानीकार होने का प्रमाण देता है। वह अपनी कहानियों के पात्रों की छाया उसे वास्तविक के आधार जगत से प्राप्त करते हैं। जो उनके आसपास के परिवेश में किसी न किसी रूप में विद्वान रहते हैं।

**कब्र का मुनाफा**- कहानी इंसान से मुर्दा में तब्दील होती इंसानी शख्सियत के कुछ बहुत दुखद एवं मार्मिक पहलू को उजागर करती है। यह कहानी खलील और नजम नामक ऐसे दो दोस्त की कहानी है। जो सेवानिवृत्त होने के बाद अब अपने भविष्य की योजना बनाने में मशगूल है। भविष्य मौत के मंजर और कब्रग्राह की परिधि में भी सौदे मुनाफे और नुकसान और प्रलोभन देने नित नई योजनाओं में ही सीमेंट कर रह जाता है। इस कहानी में जिस प्रकार के मनुष्य का चित्रण किया है वह जीवन के अंतिम यात्रा में भी मध्यम मार्ग अपनाकर मुनाफा कमाने की जहोजहद में लगा हुआ है। जमाने में समस्याओं के स्थान पर बाजारवाद के कारण यांत्रिक होते मनुष्य मन को दर्शाया गया है।

**कोख का किराया**- यह एक पश्चिमी देश ब्रिटेन की कहानी है। जब कोई दंपति किन्हीं कारणों से संतान पैदा करने में असमर्थ होते हैं तब वह पैसों से किसी स्त्री की कोख खरीद लेते हैं। इस कहानी में मनप्रीत उर्फ मैनी अपनी सहेली जया के लिए काम करती है। इसमें उसका अपना स्वाद भी शामिल होता है जिसके लिए उसे अपने परिवार तक का बलिदान करना पड़ता है उसे अपनी कॉपी की कीमत जरूर मिली साथी मिला एक लम्बा एकाकीपन।

**ढिबरी टाइट** - यह कहानी उसे समय को व्यक्ति है जब हमारे देश के युवा पैसा कमाने घर बनाने और अपने सपनों को पूरा करने के लिए काम की तलाश में विदेश चले जाते थे।आज की की तरह परिस्थितियों आसन न था मगर विदेश में जाकर पैसा कमाने का लोभ भी कम ना था आकर्षण की पराकाष्ठा इतनी की सब कुछ दांव पर लगाकर विदेश में जाकर रहना इन तमाम अपमानों और आत्महीनताओं को दबा देता था सहनीय बना देता था जो विदेश में प्रयोग होता था ।

**बेघर आंखें** - कहानी सत्य और सत्य के भीतर बहने वाली संवेदना की कहानी है। जिसमें मनुष्य का आत्मिक मानसिक तथा नैतिक बल टूटकर बिखरता है और दर्द की गहरी रेखा की खींच देता है। अपने घर को मुंबई महानगर में किराए पर देकर दलाल चंद्रकांत के चुंगल में फंसकर अपने पैसों से हाथ धोनेवाले मिल. शुक्ला की कहानी है। इसमें मुंबई महानगर में बसने वाले दलालों के स्वार्थपरता, अवसरवादीता, तथा निर्लज्जता का जीता जागता चित्रण है।इस

कहानी में आने वाले नायर किराए पर मकान लेकर वास्तव में उसमें लड़कियों से धंधा चलता है घर की साफ सफाई नहीं रखता। वह घर पूरे मोहल्ले में बदनाम रहता है, उसमें चलने वाले धंधे के कारण।

**सपने मरते नहीं** - कहानी विदेश में रह रही स्त्री की व्यथा है।इला यह कैसे सहपाती मैंने नौं महीने उसे पेट में रखा निलेश। दिन में जागते हुए भी उसके सपने देखे। उसे अपने बिस्तर के साथ लगभग सटाकर रखा था इला ने परीक्षा में पूरी तरह से अनुत्तीर्ण होने जैसी भावनाएं उसे परेशान कर रही थी। वह नीलेश के कंधे पर सिर रखकर रोना चाह रही थी निलेश उसे हमेशा अपना शीराम  का पेड़ कहता है इंडियन रोजवुड। निलेश को उसके नाजुक क्षणों में हिम्मत देने वाली इला आज स्वयं टूट गई थी।

निष्कर्ष - तेजेंद्र शर्मा की लेखन प्रक्रिया एक मामले में अनूठे हैं। वह अपने आसपास होने वाली घटनाओं को देखते हैं महसूस करते और अपने मस्तिष्क में मंथन करते हैं। जब तक घटना कहानी का रूप ग्रहण कर लेती है। तेजेंद्र जितने अच्छे कहानीकार हैं उतने ही अच्छे इंसान भी है और बहुत अच्छे दोस्त भी तेजेंद्र शर्मा का एक खुद तरस इंसान है जो की जमीनी हकीकत से जुड़ा हुआ है। यह संवेदन शील व्यक्ति केवल कहानीकार ही नहीं बल्कि कवि भी है और मानव मन की दुखती रंगों को पकड़ता है। तेजेंद्र की कहानी और कविताएं उसके साहित्यिक जीवन का दर्पण है। उनकी कहानियों में अंधविश्वास, देशप्रेम, प्रकृति चित्रण, प्रेम वासना, आधुनिक जीवन की महंगाई, देश विभाजन की त्रासदी बलात्कार आदि ऐसे कई विषय जो अंग्रेजी शब्दों का प्रयोग पात्रों के संस्कृत का प्रतीक और पहचान है।

भारतीयों के जीवन की मानसिकता, भौगोलिकता, सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक स्थिति और विविध पक्षों के बीच बसे लोगों का जीवन व्यापक और विविध रूप में इन कहानियों में अभिव्यक्त हुआ है। यही तेजेंद्र शर्मा की विशेषता भी और पहचान भी है।

**संदर्भ ग्रंथ सूची -**


1. पांच बेहतरीन कहानियां-
2. गद्य कोश
3. कब्र का मुनाफा
4. देह कीमत
5. तेजेंद्र शर्मा एक शिनाख्त

www.bohalshodhmanjusha.com Bohal Shodh Manjusha ISSN: 2395-7115
Impact Factor:8.642 January 2025 Page No. : 241-248
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

# ਪੰਜਾਬੀ ਗ਼ਜ਼ਲ : ਇਤਿਹਾਸਕ ਪਰਿਪੇਖ

**ਜਗਜੀਤ ਸਿੰਘ, ਖੋਜਾਰਥੀ,**
**ਡਾ. ਇਕਬਾਲ ਸਿੰਘ ਸੰਧੂ, ਨਿਗਰਾਨ,**
**ਪੰਜਾਬ ਯੂਨੀਵਰਸਿਟੀ, ਚੰਡੀਗੜ**

ਕਿਸੇ ਭਾਸ਼ਾ ਅਥਵਾ ਸਮਾਜ ਦੇ ਸਾਹਿਤ ਦਾ ਮੁੱਢ ਕਾਵਿ ਨਾਲ ਬੱਝਦਾ ਹੈ। ਕਾਵਿ ਦੇ ਅੰਤਰਗਤ ਬਹੁਤ ਸਾਰੀਆਂ ਸਿਨਫ਼ਾਂ ਸਾਹਿਤ ਵਿਚ ਸੰਮਲਿਤ ਹੋਈਆਂ ਹਨ। ਕਾਵਿ- ਸਾਹਿਤ ਦਾ ਹੀ ਇੱਕ ਵਿਲੱਖਣ ਰੰਗ 'ਗ਼ਜ਼ਲ' ਹੈ। ਗ਼ਜ਼ਲ ਨੇ ਆਪਣੇ ਆਰੰਭ ਤੋ ਲੈ ਕੇ ਸਮਕਾਲੀ ਸਮਿਆਂ ਤੱਕ ਜ਼ਿਕਰਯੋਗ ਬੁਲੰਦੀਆਂ ਨੂੰ ਸਰ ਕਰਦਿਆਂ ਆਪਣੇ ਘੇਰੇ ਨੂੰ ਵਸੀਹ ਕੀਤਾ ਹੈ। ਗ਼ਜ਼ਲ ਏਸ਼ੀਆ ਦੇ ਦੱਖਣੀ ਭਾਗ ਦੇ ਮੁਲਕਾਂ ਜਿਵੇ ਈਰਾਨ ਹਿੰਦੁਸਤਾਨ ਅਤੇ ਪਾਕਿਸਤਾਨ ਦਾ ਮਕਬੂਲ ਤੇ ਪਸੰਦੀਦਾ ਕਾਵਿ-ਰੂਪ ਹੈ। ਗ਼ਜ਼ਲ-ਵਿਧਾ ਲਗਪਗ ਪੰਦਰਾਂ ਸੌ ਸਾਲ ਤੋਂ ਉਪਰੋਕਤ ਮੁਲਕਾਂ ਦੇ ਸਾਹਿਤ ਦਾ ਅਨਿੱਖੜਵਾਂ ਅੰਗ ਬਣੀ ਹੋਈ ਹੈ।

ਗ਼ਜ਼ਲ ਕਾਵਿ-ਰੂਪ ਦਾ ਉਦਭਵ ਅਰਬੀ ਭਾਸ਼ਾ ਦੀ ਕਾਵਿ-ਵਿਧਾ 'ਕਸੀਦਾ' ਦੇ ਇਕ ਭਾਗ 'ਤਸ਼ਬੀਬ 'ਚੋਂ ਹੋਇਆ ਤਸਲੀਮ ਕੀਤਾ ਜਾਂਦਾ ਹੈ।

ਪੰਜਾਬੀ ਅਦਬ ਦੇ ਵਿਹੜੇ ਗ਼ਜ਼ਲ ਦੀ ਦਸਤਕ ਭਾਵੇਂ ਪੁਰਾਣੀ ਨਹੀਂ ਹੈ। ਪਰ ਫਿਰ ਵੀ ਪੰਜਾਬੀ ਗ਼ਜ਼ਲ ਨੇ ਆਪਣੇ ਆਪ ਨੂੰ ਪੰਜਾਬੀ ਸਾਹਿਤ ਦੀ ਇਕ ਮਹੱਤਵਪੂਰਨ ਵਿਧਾ ਵਜੋਂ ਸਥਾਪਿਤ ਕਰ ਲਿਆ ਹੈ। ਸਮਕਾਲੀ ਸਮੇਂ ਵਿਚ ਪੰਜਾਬੀ ਗ਼ਜ਼ਲ ਦਾ ਪੰਜਾਬੀ ਅਦਬ ਵਿਚ ਵਿਲੱਖਣ ਸਥਾਨ ਤੇ ਪਹਿਚਾਣ ਹੈ। "ਪੰਜਾਬੀ ਗ਼ਜ਼ਲ ਦੇ ਮੁਹਾਂਦਰੇ ਅਤੇ ਵਿਧੀ-ਵਿਧਾਨ ਨਿਖ਼ਾਰਨ ਵਜੋਂ ਫ਼ਾਰਸੀ/ ਉਰਦੂ ਗ਼ਜ਼ਲ ਦੀ ਵਿਸ਼ੇਸ਼ ਦੇਣ ਬਾਰੇ ਵਿਦਵਾਨ ਆਲੋਚਕਾਂ ਅੰਦਰ ਸੰਮਤੀ ਪ੍ਰਗਟਾਈ ਜਾਂਦੀ ਹੈ। ਐਪਰ ਜਿਸ ਮੁਕਾਮ 'ਤੇ ਅੱਜ ਗ਼ਜ਼ਲ ਪਹੁੰਚ ਚੁੱਕੀ ਹੈ ਅਤੇ ਜਿਹੜੀਆਂ ਨਵੀਆਂ ਸਿਖ਼ਰਾਂ ਨੂੰ ਇਸ ਨੇ ਛੋਹਿਆ ਹੈ। ਇਹ ਪੰਜਾਬੀ ਗ਼ਜ਼ਲ ਲਈ ਮਾਣ ਵਾਲੀ ਗੱਲ ਹੈ।"[1]

ਪੰਜਾਬੀ ਗ਼ਜ਼ਲ ਦੇ ਪ੍ਰਾਰੰਭ ਬਾਰੇ ਮੁੱਢਲਾ ਵਿਚਾਰ ਪ੍ਰੋ: ਜੋਗਿੰਦਰ ਸਿੰਘ ਨੇ ਪੇਸ਼ ਕੀਤਾ। ਪ੍ਰੋ: ਜੋਗਿੰਦਰ ਸਿੰਘ ਨੇ ਮੁਹੰਮਦ ਬਖ਼ਸ਼ (1830-1904) ਨੂੰ ਪੰਜਾਬੀ ਦਾ ਮੁੱਢਲਾ ਗ਼ਜ਼ਲਕਾਰ ਮੰਨਿਆ ਹੈ। ਡਾ. ਨਰੇਸ਼ ਵੀ ਪ੍ਰੋ: ਜੋਗਿੰਦਰ ਸਿੰਘ ਨਾਲ ਸਹਿਮਤ ਹੁੰਦਿਆ 'ਮੁਹੰਮਦ ਬਖ਼ਸ਼ਾ' ਨੂੰ ਪੰਜਾਬੀ ਦਾ ਪਹਿਲਾ ਗ਼ਜ਼ਲਗੋ ਸਵੀਕਾਰ ਕਰਦਾ ਹੋਇਆ ਲਿਖਦਾ ਹੈ, "ਪੰਜਾਬੀ ਵਿਚ ਗ਼ਜ਼ਲ ਕਹਿਣ ਵਾਲਾ ਪਹਿਲਾ ਕਵੀ 'ਮੁਹੰਮਦ ਬਖ਼ਸ਼ਾ' ਹੈ। ਮੁਹੰਮਦ ਬਖ਼ਸ਼ ਦੇ ਸੰਨ 1864 ਵਿਚ ਸੰਪੂਰਨ

ਹੋਏ ਕਿੱਸੇ 'ਸੈਫ਼ਲ ਮਲੂਕ' ਵਿਚ ਦਸ ਗ਼ਜ਼ਲਾਂ ਸ਼ਾਮਲ ਹਨ। ਇਹ ਪਹਿਲਾ ਕਿੱਸਾਕਾਰ ਹੈ, ਜਿਸਨੇ ਕਿੱਸਾ ਕਾਵਿ ਲਿਖਦਿਆਂ ਹੋਇਆਂ ਵੀ ਗ਼ਜ਼ਲ ਕਹਿਣ ਦੀ ਖੇਚਲ ਕੀਤੀ ਹੈ। ਇਸ ਨੇ ਗ਼ਜ਼ਲ ਨੂੰ ਸਿਰਲੇਖ ਵੀ 'ਗ਼ਜ਼ਲ' ਹੀ ਦਿੱਤਾ ਹੈ।"[2]

ਮੌਲਾ ਬਖ਼ਸ਼ ਕੁਸ਼ਤਾ ਨੇ ਮੁਹੰਮਦ ਬਖ਼ਸ਼ ਨੂੰ ਪਹਿਲਾ ਗ਼ਜ਼ਲਗੋ ਮੰਨਣ ਵਿੱਚ ਅਸਹਿਮਤੀ ਪ੍ਰਗਟਾਈ ਹੈ। ਮੌਲਾ ਬਖਸ਼ ਕੁਸ਼ਤਾ ਆਪਣੀ ਪੁਸਤਕ "ਪੰਜਾਬੀ ਸ਼ਾਇਰਾਂ ਦਾ ਤਜ਼ਕਰਾ ਵਿਚ ਸਭ ਤੋਂ ਪਹਿਲਾ ਗ਼ਜ਼ਲ ਸ਼ਾਇਰ ਉਸਤਾਦ ਗਾਮੂੰ ਖਾਂ ਨੂੰ ਮੰਨਦਾ ਹੈ।"[3]

ਅਬਦੁਲ ਗਫ਼ੂਰ ਕੁਰੈਸ਼ੀ ਆਪਣੀ ਪੁਸਤਕ 'ਪੰਜਾਬੀ ਅਦਬ ਦੀ ਕਹਾਣੀ' ਵਿਚ ਸਭ ਤੋਂ ਪਹਿਲਾ ਗ਼ਜ਼ਲਗੋ ਸ਼ਾਹ ਮੁਰਾਦ ਨੂੰ ਮੰਨਦਾ ਹੈ।"[4]

ਸਾਧੂ ਸਿੰਘ ਹਮਦਰਦ ਵੀ ਉਪਰੋਕਤ ਦਲੀਲ ਨਾਲ ਸਹਿਮਤ ਹੁੰਦਿਆਂ ਹੋਇਆਂ ਪੰਜਾਬੀ ਦਾ ਮੁੱਢਲਾ ਗ਼ਜ਼ਲਗੋ ਸ਼ਾਹ ਮੁਰਾਦ ਨੂੰ ਹੀ ਮੰਨਦਾ ਹੈ। ਸਾਧੂ ਸਿੰਘ ਨੇ ਆਪਣੇ ਮਤ ਦੀ ਪੁਸ਼ਟੀ ਲਈ ਡਾ. ਜਗਤਾਰ ਅਤੇ ਅਬਦੁੱਲ ਗਫ਼ੂਰ ਕੁਰੈਸ਼ੀ ਦਾ ਹਵਾਲਾ ਦਿੰਦਾ ਹੈ । ਡਾ. ਸਾਧੂ ਸਿੰਘ ਹਮਦਰਦ ਆਪਣੇ ਮਤ ਦੀ ਪ੍ਰੋੜਤਾ ਕਰਦਾ ਹੋਇਆ ਲਿਖਦਾ ਹੈ, "ਸ਼ਾਹ ਮੁਰਾਦ ਦੇ ਕਲ੍ਹਾਮ ਦੇ ਸਾਮ੍ਹਣੇ ਆਉਣ ਨਾਲ ਕੇਵਲ ਮੌਲਾ ਬਖਸ਼ ਕੁਸ਼ਤਾ ਦੀ ਇਸ ਧਾਰਣਾ ਦਾ ਕਿ "ਪੰਜਾਬੀ ਵਿਚ ਸਭ ਤੋਂ ਪਹਿਲੀ ਗ਼ਜ਼ਲ ਗਾਮੂੰ ਖਾਂ (1860-1960) ਨੇ ਲਿਖੀ; ਖੰਡਨ ਹੋ ਜਾਂਦਾ ਹੈ, ਸਗੋਂ ਮੁਹੰਮਦ ਬਖ਼ਸ਼ ਦੇ ਪਹਿਲੇ ਗ਼ਜ਼ਲਗੋ ਹੋਣ ਦਾ ਮਤ ਵੀ ਖੱਟੇ ਪੈ ਜਾਦਾ ਹੈ ।"[5]

ਸ਼ਾਹ ਮੁਰਾਦ ਨੂੰ ਪੰਜਾਬੀ ਦਾ ਪ੍ਰਥਮ ਗ਼ਜ਼ਲਗੋ ਮੰਨਦੇ ਡਾ. ਕੰਚਨ ਸਿੰਘ ਲਿਖਦੇ ਹਨ, "ਸ਼ਾਹ ਮੁਰਾਦ (ਮੌਤ 1701-1702) ਹੀ ਪੰਜਾਬੀ ਗ਼ਜ਼ਲ ਦਾ ਮੋਢੀ ਸੀ, ਇਸ ਲਿਹਾਜ ਨਾਲ ਪੰਜਾਬੀ ਗ਼ਜ਼ਲ ਦਾ ਆਰੰਭ ਵਲੀ ਦੱਕਨੀ (ਮੋਤ 1721-) ਤੋਂ ਪਹਿਲਾਂ ਹੋਇਆ।"[6]

ਸ਼ਾਹ ਮੁਰਾਦ ਦੀ ਗ਼ਜ਼ਲ ਦਾ ਨਮੂਨਾ ਵੇਖਿਆ ਜਾ ਸਕਦਾ ਹੈ:-

ਤੁਧ ਜੇਹਾ ਨਾ ਜਹਾਨੇ ਸਾਰੇ, ਯਾਰਾ ਅਜ਼ਬ ਤੂੰ!
ਵੇਖਣ ਗਏ ਸੂਰਜ ਤਾਰੇ, ਯਾਰਾ ਅਜ਼ਬ ਤੂੰ
ਕੱਚ ਲਟਕ ਲਟਕ ਲਟਕੇਂਦੀ ਗੱਲਾਂ, ਸੋਹਣੀਆਂ,
ਤੇ ਨੂਰ ਝਮਕ ਝਮਕਾਰੇ, ਯਾਰਾ ਅਜ਼ਬ ਤੂੰ !" [7]

ਉਪਰੋਕਤ ਮਤਾਂ+ਦਲੀਲਾਂ ਦੀ ਪੁਖ਼ਤਗੀ ਦੇ ਲਿਹਾਜ਼ ਨਾਲ ਕਹਿਣਾ ਬਾ-ਦਰੁਸਤ ਹੋਵੇਗਾ ਕਿ, "ਨਿਰਸੰਦੇਹ ਸ਼ਾਹ ਮੁਰਾਦ ਹੀ ਪੰਜਾਬੀ ਅਦਬ ਵਿੱਚ ਪ੍ਰਥਮ ਗ਼ਜ਼ਲਗੋ ਹੈ।"

**ਪਰੰਪਰਕ ਪੰਜਾਬੀ ਗ਼ਜ਼ਲ:**

ਪਰੰਪਰਕ ਪੰਜਾਬੀ ਗ਼ਜ਼ਲ ਦਾ ਸਮਾਂ 17ਵੀਂ ਸਦੀ ਤੋਂ ਲੈ ਕੇ 20 ਵੀਂ ਸਦੀ ਦੇ ਲਗਭਗ ਪੰਜਵੇਂ ਦਹਾਕੇ ਤੱਕ ਫ਼ੈਲਿਆ ਹੋਇਆ ਹੈ। ਪਰੰਪਰਕ ਪੰਜਾਬੀ ਗ਼ਜ਼ਲ ਦੇ ਵਿਕਾਸ ਵਿੱਚ ਜਿੱਥੇ ਮੁੱਢਲੇ ਗ਼ਜ਼ਲਗੋਆਂ ਨੇ ਯੋਗਦਾਨ ਪਾਇਆ ਹੈ। ਉਥੇ ਕੁਝ ਜਦੀਦ ਗ਼ਜ਼ਲਗੋਆਂ ਨੇ ਵੀ ਆਧੁਨਿਕ ਚੇਤਨਾ ਦੇ ਸਮਾਂਤਰ ਰਵਾਇਤੀ ਗ਼ਜ਼ਲ ਨਾਲ ਨਾਤਾ ਜੋੜੀ ਰੱਖਿਆ ਹੈ।

'ਸ਼ਾਹ ਮੁਰਾਦ' ਤੋਂ ਬਾਅਦ ਪੰਜਾਬੀ ਗ਼ਜ਼ਲ ਦੇ ਇਤਹਾਸ ਵਿੱਚ ਅਗਲਾ ਨਾਮ ਸੁਆਦਤ ਯਾਰ ਖਾਂ ਰੰਗੀਨ (1757-1835) ਦਾ ਸ਼ੁਮਾਰ ਹੁੰਦਾ ਹੈ। ਸੁਆਦਤ ਯਾਰ ਖਾਂ ਰੰਗੀਨ' ਦੁਆਰਾ ਰਚਿਤ ਬਹੁ-ਭਾਸ਼ੀ ਪੁਸਤਕ "ਮਜਮੂਆਂ- ਏ-ਰੰਗੀਨ"

ਮਿਲਦੀ ਹੈ। ਜਿਸ ਵਿੱਚ ਉਸਦੀਆਂ ਦੋ ਸੰਪੂਰਨ ਗ਼ਜ਼ਲਾਂ ਅਤੇ ਕੁਝ ਵਿਕੋਲਿਤਰੇ ਸ਼ਿਅਰ ਮਿਲਦੇ ਹਨ। ਕਿਹਾ ਜਾਂਦਾ ਹੈ ਕਿ, "ਸੁਆਦਤ ਯਾਰ ਖਾਂ ਰੰਗੀਨ ਨੂੰ ਗ਼ਜ਼ਲ ਦੇ ਅਰੂਜ਼ 'ਤੇ ਅਬੂਰ ਹਾਸਲ ਸੀ। ਨਮੂਨੇ ਵਜੋਂ:

ਰੰਗੀਨ ਗ਼ਜ਼ਲ ਪੰਜਾਬੀ ਦੇ ਵਿੱਚ ਸੋਹਣੀ ਲਿਖੀ
ਕਾਇਲ ਹਾਂ ਮੈਂ ਤੇ ਯਾਰ ਤੈਂਡੇ ਇਸ ਕਮਾਲ ਦਾ।"[8]

ਸੁਆਦਤ ਯਾਰ ਖਾਂ ਰੰਗੀਨ ਪਿੱਛੋਂ ਮੁਹੰਮਦ ਬਖ਼ਸ਼ (1830-1904) ਉਸਤਾਦ ਬਰਦਾ ਪੇਸ਼ਾਵਰੀ, ਗ਼ੁਲਾਮ ਫ਼ਰੀਦ (1841-1901), ਕਿਸ਼ਨ ਸਿੰਘ ਆਰਿਫ਼ (183-1900) ਗਾਮੂ ਖਾਂ ਅਤੇ ਅਜ਼ਹਰ ਭੇਰਾ ਨਿਵਾਸੀ ਗ਼ਜ਼ਲਕਾਰ ਸਾਹਮਣੇ ਆਉਂਦੇ ਹਨ।

ਪਰੰਪਰਕ ਜਾਂ ਰਵਾਇਤੀ ਪੰਜਾਬੀ ਗ਼ਜ਼ਲ ਦੇ ਦੂਸਰੇ ਦੌਰ ਦਾ ਮੋਢੀ ਗ਼ਜ਼ਲਗੋ 'ਮੌਲਾ ਬਖ਼ਸ਼ ਕੁਸ਼ਤਾ' ਬਣਦਾ ਹੈ। ਮੌਲਾ ਬਖ਼ਸ਼ ਕੁਸ਼ਤਾ ਨੂੰ ਪੰਜਾਬੀ ਦਾ ਪ੍ਰਥਮ "ਸਾਹਿਬ ਦੀਵਾਨ" ਸ਼ਾਇਰ ਕਿਹਾ ਜਾਂਦਾ ਹੈ। ਕਿਉਂਕਿ ਉਹਨਾਂ ਨੇ ਪੰਜਾਬੀ ਦਾ ਪਹਿਲਾ ਗ਼ਜ਼ਲ ਦੀਵਾਨ "ਦੀਵਾਨ ਕੁਸ਼ਤਾ" (1903) ਪ੍ਰਕਾਸ਼ਤ ਕਰਵਾਇਆ। ਇਸ ਦੀਵਾਨ ਵਿੱਚ 128 ਗ਼ਜ਼ਲਾਂ ਸਨ। ਮੌਲਾ ਬਖ਼ਸ਼ ਕੁਸ਼ਤਾ ਨੇ ਰਵਾਇਤੀ ਪੰਜਾਬੀ ਗ਼ਜ਼ਲ ਨੂੰ ਵਿਸ਼ੇ ਅਤੇ ਰੂਪਕ ਪੱਖੋਂ ਮੌਲਿਕਤਾ ਬਖਸ਼ੀ। ਪੰਜਾਬੀ ਗ਼ਜ਼ਲ ਨੂੰ ਉਰਦੂ/ਫ਼ਾਰਸੀ ਰੰਗਣ ਤੋਂ ਮੁਕਤ ਕਰ, ਪੰਜਾਬੀ ਮੁਹਾਵਰੇ ਵਿੱਚ ਢਾਲਣ ਦਾ ਸੁਚੇਤ ਯਤਨ ਕੀਤਾ। ਇਸ ਸੰਬੰਧੀ ਉਸਤਾਦ ਗ਼ਜ਼ਲਗੋ ਸੁਲੱਖਣ ਸਰਹੱਦੀ ਦਾ ਕਥਨ ਵੇਖਣਯੋਗ ਹੈ 20ਵੀਂ ਸਦੀ ਦੇ ਅੱਧ ਵਿੱਚ ਪੰਜਾਬੀ ਗ਼ਜ਼ਲ ਨੂੰ ਇਕ ਸੁਤੰਤਰ ਕਾਵਿ ਰੂਪ ਬਣਾਉਣ ਦਾ ਮਾਣ ਮੌਲਾ ਬਖ਼ਸ਼ ਕੁਸ਼ਤਾ ਨੂੰ ਹੀ ਜਾਂਦਾ ਹੈ। ਪ੍ਰੋ: ਮੋਹਨ ਸਿੰਘ ਸਮੇਤ ਕਈ ਵਿਦਵਾਨ ਕੁਸ਼ਤਾ ਜੀ ਨੂੰ ਪਹਿਲਾ ਸ਼ਾਇਰ ਮੰਨਦੇ ਹਨ।"[9]

ਮੌਲਾ ਬਖ਼ਸ਼ ਕੁਸ਼ਤਾ ਤੋਂ ਬਾਅਦ ਪ੍ਰਮੁੱਖ ਤੌਰ 'ਤੇ ਧਨੀ ਰਾਮ ਚਾਤ੍ਰਿਕ (18-24 ਗ਼ਜ਼ਲਾਂ), ਪਾਲ ਸਿੰਘ ਆਰਿਫ਼ (61 ਗ਼ਜ਼ਲਾਂ), ਚਰਨ ਸਿੰਘ ਸ਼ਹੀਦ (10 ਦੇ ਕਰੀਬ ਗ਼ਜ਼ਲਾਂ) ਪੀਰ ਫ਼ਜ਼ਲ ਗੁਜਰਾਤੀ (61 ਗ਼ਜ਼ਲਾਂ), ਫਿਰੋਜ਼ਦੀਨ ਸ਼ਰਫ਼ (24 ਦੇ ਕਰੀਬ ਗ਼ਜ਼ਲਾਂ), ਕਿਰਪਾ ਰਾਮ ਨਾਜ਼ਿਮ, ਈਸ਼ਰ ਸਿੰਘ ਈਸ਼ਰ, ਗੁਰਮੁਖ ਸਿੰਘ ਮੁਸਾਫ਼ਿਰ (67 ਗ਼ਜ਼ਲਾਂ) ਵਿਧਾਤਾ ਸਿੰਘ ਤੀਰ, ਉਜਾਗਰ ਸਿੰਘ 'ਉਲਫ਼ਤ' (101 ਗ਼ਜ਼ਲਾਂ), ਬਰਕਤ ਰਾਮ ਯੁਮਨ (52 ਗ਼ਜ਼ਲਾਂ) ਆਦਿ ਗ਼ਜ਼ਲਕਾਰ ਆਪਣੀ ਸ਼ਾਇਰੀ ਨਾਲ ਪੰਜਾਬੀ ਗ਼ਜ਼ਲ ਨੂੰ ਅਗਾਂਹ ਤੋਰਦੇ ਹਨ।

ਇਸ ਤਰ੍ਹਾਂ ਉਪਰੋਕਤ ਤੱਥਾਂ+ਵੇਰਵਿਆਂ ਤੋਂ ਸਪੱਸ਼ਟ ਹੈ ਕਿ 17 ਵੀਂ ਸਦੀ ਤੋਂ ਲੈ ਕੇ 1950 ਈ ਤੱਕ ਦੇ ਸਮੇਂ ਦੌਰਾਨ ਰਵਾਇਤੀ ਜਾਂ ਪਰੰਪਰਕ ਪੰਜਾਬੀ ਗ਼ਜ਼ਲ ਦੇ ਮੁੱਢਲੇ ਦੌਰ ਵਿੱਚ 'ਸ਼ਾਹ ਮੁਰਾਦਾ' ਤੋਂ ਲੈ ਕੇ 'ਅਜ਼ਹਰ ਭੇਰਾ ਨਿਵਾਸੀ' ਤੱਕ ਦੇ ਗ਼ਜ਼ਲਕਾਰ ਪੈਦਾ ਹੋਏ। ਇਸ ਸਮੇਂ ਦੌਰਾਨ ਪੰਜਾਬੀ ਗ਼ਜ਼ਲ ਦੀ ਸਿਰਜਣਾ ਤਾਂ, ਹੋਈ ਪਰ ਪੰਜਾਬੀ ਗ਼ਜ਼ਲ 'ਤੇ ਫ਼ਾਰਸੀ-ਉਰਦੂ ਦਾ ਰੰਗ ਪ੍ਰਤੱਖ ਦੇਖਿਆ ਜਾ ਸਕਦਾ ਹੈ। ਮੁੱਢਲੀ ਪਰੰਪਰਕ ਪੰਜਾਬੀ ਗ਼ਜ਼ਲ ਦਾ ਵਸਤੂ ਪੱਖ ਮੁੱਖ ਤੌਰ 'ਤੇ ਆਸ਼ਿਕਾਨਾ, ਰਿੰਦਾਨਾ, ਸੂਫ਼ੀਆਨਾ ਘੇਰਿਆਂ ਵਿੱਚ ਹੀ ਚੱਕਰ ਕੱਟਦਾ ਰਿਹਾ ਹੈ। ਰੂਪ ਵਿਧਾਨ ਦੇ ਪੱਖ ਤੋਂ ਭਾਵੇਂ ਪੰਜਾਬੀ ਗ਼ਜ਼ਲ ਅਰੂਜ਼ੀ ਬਹਿਰਾਂ ਵਿੱਚ ਲਿਖੀ ਗਈ ਪਰੰਤੂ ਲੰਬੇ ਸਮੇਂ ਤੋਂ ਪ੍ਰਚਲਿਤ ਦੇਸੀ ਛੰਦਾਂ ਵਿੱਚ ਵੀ ਪੰਜਾਬੀ ਗ਼ਜ਼ਲਗੋਆਂ ਨੇ ਉੱਤਮ ਢੰਗ ਨਾਲ ਗ਼ਜ਼ਲ ਕਹੀ। "ਅਸਲ ਵਿੱਚ ਪੰਜਾਬੀ ਗ਼ਜ਼ਲ ਦਾ ਮੁੱਢ ਅਰੂਜ਼ ਦੀਆਂ ਬਹਿਰਾਂ ਉੱਪਰ ਆਧਾਰਿਤ ਗ਼ਜ਼ਲ ਨਾਲ ਨਹੀਂ ਬੱਝਾ ਸਗੋਂ ਭਾਰਤੀ ਛੰਦਾਂ ਵਾਲੀ ਗ਼ਜ਼ਲ ਨਾਲ ਬੱਝਾ ਹੈ। ਪੰਜਾਬੀ ਦੇ ਪ੍ਰਥਮ ਗ਼ਜ਼ਲਗੋ ਸ਼ਾਹ ਮੁਰਾਦ

ਦੀਆਂ ਵਧੇਰੇ ਗ਼ਜ਼ਲਾਂ ਦਵੱਈਆ ਛੰਦ ਵਿੱਚ ਜਾਂ 30 ਮਾਤ੍ਰਾਂ ਪ੍ਰਤਿ ਮਿਸਰਾ ਦੇ ਤੋਲ ਉੱਪਰ ਆਧਾਰਿਤ ਛੰਦ ਵਿੱਚ ਲਿਖੀਆਂ ਹਨ।"[10]

ਮੌਲਾ ਬਖ਼ਸ਼ ਕੁਸ਼ਤਾ ਨਾਲ ਪੰਜਾਬੀ ਗ਼ਜ਼ਲ ਇਕ ਸੁਤੰਤਰ ਕਾਵਿ-ਸਿਨਫ਼ ਵਜੋਂ ਸਥਾਪਿਤ ਹੋਈ।ਡਾ ਜਗਤਾਰ ਅਨੁਸਾਰ,"ਮੌਲਾ ਬਖ਼ਸ਼ ਕੁਸ਼ਤਾ ਦਾ ਦੀਵਾਨ ਛਪਣ ਤੱਕ ਪੰਜਾਬੀ ਗ਼ਜ਼ਲ ਦਾ ਵਜੂਦ ਤਾਂ ਸੀ ਪਰ ਇਸਦੀ ਕੋਈ ਛਬੀ ਤੇ ਆਪਣਾ ਮੂੰਹ ਮੁਹਾਂਦਰਾ ਨਹੀਂ ਸੀ।"[11]

ਪਰ ਪੰਜਾਬੀ ਗ਼ਜ਼ਲ ਨੇ ਵੀਹਵੀਂ ਸਦੀ ਦੇ ਲਗਭਗ ਪੰਜਵੇਂ ਦਹਾਕੇ ਤੱਕ ਪਰੰਪਰਕ ਸ਼ਾਇਰੀ ਦੀ ਕਲਾ-ਕੋਸ਼ਲਤਾ ਨੂੰ ਹੀ ਆਪਣੇ ਅੰਦਰ ਆਤਮਮਾਤ ਕਰੀ ਰੱਖਿਆ। ਭਾਵੇਂ ਬਰਕਤ ਰਾਮ ਯੁਮਨ ਸੁਚੇਤ ਤੌਰ 'ਤੇ ਆਧੁਨਿਕਤਾ ਵੱਲ ਅਗਰਸਰ ਹੋਇਆ, ਪਰੰਤੂ ਉਸ ਤੋਂ ਛੁੱਟ ਦੂਸਰੇ ਗ਼ਜ਼ਲਗੋ ਪਰੰਪਰਕ ਵਿਸ਼ਿਆਂ ਨੂੰ ਹੀ ਨਿਭਾਉਂਦੇ ਰਹੇ ਹਨ।

**ਆਧੁਨਿਕ ਪੰਜਾਬੀ ਗ਼ਜ਼ਲ:**

ਪੰਜਾਬੀ ਗ਼ਜ਼ਲ ਵਿੱਚ ਆਧੁਨਿਕਤਾ ਦਾ ਪ੍ਰਵੇਸ਼ ਪ੍ਰਗਤੀਵਾਦੀ ਦੌਰ (1950-60) ਵਿੱਚ ਹੁੰਦਾ ਹੈ। ਆਧੁਨਿਕ ਪੰਜਾਬੀ ਗ਼ਜ਼ਲ ਦਾ ਆਗਾਜ਼ 'ਪ੍ਰੋ: ਮੋਹਨ ਸਿੰਘ' ਅਤੇ 'ਬਾਵਾ ਬਲਵੰਤ' ਨਾਲ ਹੁੰਦਾ ਹੈ। ਪ੍ਰੋ: ਮੋਹਨ ਸਿੰਘ ਤੋਂ ਪਹਿਲਾਂ ਪਰੰਪਰਕ ਪੰਜਾਬੀ ਗ਼ਜ਼ਲ ਉਰਦੂ-ਫ਼ਾਰਸੀ ਗ਼ਜ਼ਲ ਦੇ ਪ੍ਰਭਾਵ ਅਧੀਨ ਨਜ਼ਰ ਆਉਂਦੀ ਹੈ। ਪੰਜਾਬੀ ਗ਼ਜ਼ਲ ਨੂੰ ਰੂਪ ਵਿਧਾਨਕ ਤੇ ਵਸਤੂ ਪੱਖ ਤੋਂ ਨਵੀਨ ਮੌਲਿਕਤਾ ਤੇ ਅਵਾਮੀ-ਸਮੱਸਿਆਵਾਂ ਦੇ ਪਰਤੌ ਦਾ ਮਾਧਿਅਮ ਬਣਾਉਣ ਵਿੱਚ ਪ੍ਰੋ: ਮੋਹਨ ਸਿੰਘ ਅਤੇ ਉਸਦੇ ਸਮਕਾਲੀ ਪ੍ਰਗਤੀਵਾਦੀਆਂ ਦਾ ਵੱਡਾ ਯੋਗਦਾਨ ਹੈ। ਇਹਨਾਂ ਸੁਖ਼ਨਵਰਾਂ ਨੇ ਪੰਜਾਬੀ ਗ਼ਜ਼ਲ ਨੂੰ ਰਵਾਇਤੀ ਵਿਸ਼ਿਆ ਨਾਲੋਂ ਨਿਖੇੜ ਕੇ ਪ੍ਰਗਤੀਵਾਦੀ ਲੀਹਾਂ 'ਤੇ ਤੋਰਿਆ। ਪ੍ਰੋ: ਮੋਹਨ ਸਿੰਘ ਦੀ ਗ਼ਜ਼ਲ ਸਿਰਜਣਾ ਨਾਲ ਪੰਜਾਬੀ ਗ਼ਜ਼ਲ ਸਹੀ ਅਰਥਾਂ ਵਿੱਚ ਪ੍ਰਗਤੀ ਦੀ ਧਾਰਨੀ ਬਣਦੀ ਹੈ। ਪ੍ਰੋ: ਮੋਹਨ ਸਿੰਘ ਦੀ ਗ਼ਜ਼ਲ ਸਿਰਜਣਾ ਦਾ ਸਫ਼ਰ ਉਸਦੇ ਕਾਵਿ-ਸੰਗ੍ਰਹਿ ਅੱਧਵਾਟੇ (1945) ਨਾਲ ਸ਼ੁਰੂ ਹੁੰਦਾ ਹੈ, ਅਤੇ ਉਸ ਤੋਂ ਬਾਅਦ ਕੱਚ ਸੱਚ(1950) ਅਵਾਜ਼ਾਂ (1954) ਵੱਡਾ ਵੇਲਾ(1958) ਜੰਦਰੇ(1976), ਜੈਮੀਰ (1968), ਬੂਹੇ (1977), ਤੱਕ ਮੁਸਲਸਲ ਜਾਰੀ ਰਹਿੰਦਾ ਹੈ। "ਪ੍ਰੋ: ਮੋਹਨ ਸਿੰਘ ਨੇ 60 ਕੁ ਦੇ ਕਰੀਬ ਗ਼ਜ਼ਲਾਂ ਦੀ ਸਿਰਜਣਾ ਕੀਤੀ ਹੈ। ਬੇਸ਼ੱਕ ਪ੍ਰੋ: ਮੋਹਨ ਸਿੰਘ ਦੀ ਗ਼ਜ਼ਲ ਤੇ ਸ਼ਿਲਪ ਵਿਧਾਨ ਪੱਖੋਂ ਕਿੰਤੂ-ਪ੍ਰੰਤੂ ਹੁੰਦਾ ਰਿਹਾ ਹੈ। ਪਰ ਪ੍ਰੋ: ਮੋਹਨ ਸਿੰਘ ਇੱਕ ਅਜਿਹਾ ਗ਼ਜ਼ਲਕਾਰ ਹੋਇਆ ਹੈ, ਜਿਸਨੇ ਬਹੁਤ ਹੱਦ ਤੱਕ ਰਸਮੀ ਗ਼ਜ਼ਲ ਦੇ ਆਸ਼ੇ ਤੇ ਢੰਗ ਨੂੰ ਤਿਲਾਂਜਲੀ ਦਿੱਤੀ ਹੈ।"[12]

ਪ੍ਰੋ: ਮੋਹਨ ਸਿੰਘ ਨੇ ਪ੍ਰਗਤੀਵਾਦ ਦੇ ਅਸਰ ਹੇਠ ਗ਼ਜ਼ਲ ਦੇ ਵਿਸ਼ਿਆਂ ਨੂੰ ਤਬਦੀਲ ਕਰਦਾ ਹੈ। ਜਿਵੇ:-

ਮੁੱਕਣ ਤੇ ਆਇਆ ਸਾਥੀਓ
ਅੱਜ ਪਹਿਰ ਰਾਤ ਦਾ।
ਕਿਰਨਾਂ ਨੇ ਮੱਥਾ ਰੰਗਿਆ
ਹੈ ਕਾਇਨਾਤ ਦਾ"[13]

ਪ੍ਰੋ: ਮੋਹਨ ਸਿੰਘ ਤੋਂ ਅਗਲਾ ਪ੍ਰਮੁੱਖ ਗ਼ਜ਼ਲਗੋ ਬਾਵਾ ਬਲਵੰਤ (1915- 1972) ਹੈ। ਬਾਵਾ ਬਲਵੰਤ ਨੇ ਲਗਭਗ 36 ਕੁ ਦੇ ਕਰੀਬ ਗ਼ਜ਼ਲਾਂ ਦੀ ਸਿਰਜਣਾ ਕੀਤੀ। ਉਸਨੇ ਪਹਿਲੀ ਵਾਰ ਗ਼ਜ਼ਲ ਵਿਧਾ ਰਾਹੀਂ ਸਮਾਜਵਾਦੀ ਆਦਰਸ਼ਾਂ,

ਪ੍ਰਗਤੀਵਾਦ ਚੇਤਨਾ ਨੂੰ ਮਾਨਵੀ ਅਕਾਂਖਿਆਵਾਂ, ਪ੍ਰਸਥਿਤੀਆਂ, ਹਿਰਸਾਂ ਨੂੰ ਪ੍ਰਗਟ ਕੀਤਾ। ਬਾਵਾ ਬਲਵੰਤ ਮਾਰਕਸੀ-ਚੇਤਨਾ ਦਾ ਅਨੁਸਾਰੀ ਹੋਣ ਕਰਕੇ ਉਸਦੀ ਕਵਿਤਾ/ਗ਼ਜ਼ਲ ਵਿਚਾਰਧਾਰਕ ਤੌਰ 'ਤੇ ਇਸਦਾ ਪ੍ਰਭਾਵ ਪ੍ਰਤੱਖ ਰੂਪ ਵਿੱਚ ਕਬੂਲਦੀ ਹੈ। ਡਾ. ਐਸ. ਤਰਸੇਮ ਅਨੁਸਾਰ, "ਬਾਵਾ ਬਲਵੰਤ ਦੀ ਗ਼ਜ਼ਲ/ ਸਮੁੱਚੀ ਕਵਿਤਾ ਦਾ ਭਾਵ ਪ੍ਰਬੰਧ ਅਰਬ ਈਰਾਨ ਰਵਾਇਤੀ ਗ਼ਜ਼ਲ ਤੋਂ ਬਿਲਕੁੱਲ ਵੱਖਰਾ ਹੈ।"[14]

ਬਾਵਾ ਬਲਵੰਤ ਦੀ ਗ਼ਜ਼ਲ ਦੇ ਵਿਸ਼ੇ ਪੱਖ ਦੇ ਮਰਕਜ਼ ਵਿੱਚ ਮਾਨਵੀ- ਸਰੋਕਾਰ ਹਨ। ਜਿਵੇਂ:

ਤੰਗ ਆਏ ਹੋਏ ਫੁੱਲ, ਸਤਾਈਆਂ ਹੋਈਆਂ ਲਗਰਾਂ,
ਮਾਲੀ ਦੀ ਇਹ ਲਾਹ ਦੇਣਗੇ ਦਸਤਾਰ ਕਿਸ ਦਿਨ।"[15]

ਪ੍ਰੋ: ਮੋਹਨ ਸਿੰਘ ਤੇ ਬਾਵਾ ਬਲਵੰਤ ਦੇ ਸਮਾਕਲ ਦੌਰਾਨ ਦਰਸ਼ਨ ਸਿੰਘ ਆਵਾਰਾ (1906-1982) ਈਸ਼ਵਰ ਚਿਤਰਕਾਰ (1911-1969), ਕਰਤਾਰ ਸਿੰਘ ਬਲੱਗਣ (1907-1969) ਦਰਸ਼ਨ ਸਿੰਘ ਉਪਾਸ਼ਕ (1919-1972) ਆਦਿ ਗ਼ਜ਼ਲਕਾਰੀ ਦੇ ਪਿੜ ਵਿੱਚ ਸਰਗਰਮ ਰਹੇ ਹਨ। ਗ਼ਜ਼ਲ ਦਾ ਅਗਲਾ ਦੌਰ 1960 ਤੋਂ 1970-75 ਤੱਕ ਦਾ ਮਿੱਥ ਸਕਦੇ ਹਾਂ। ਇਸ ਸਮੇਂ ਦੌਰਾਨ ਕਈ ਗ਼ਜ਼ਲਗੋ ਆਪਣੇ ਗ਼ਜ਼ਲ ਸੰਗ੍ਰਹਿ ਛਪਵਾ ਕੇ ਪਾਠਕਾਂ/ਸਰੋਤਿਆਂ ਦੇ ਸਨਮੁੱਖ ਹੁੰਦੇ ਹਨ। ਪ੍ਰਮੁੱਖ ਤੌਰ 'ਤੇ ਨਾਜ਼ਰ ਸਿੰਘ ਤਰਸ, ਡਾ. ਸਾਧੂ ਸਿੰਘ ਹਮਦਰਦ, ਡਾ. ਦੀਵਾਨ ਸਿੰਘ, ਮਹਿੰਦਰ ਮਾਨਵ, ਚਾਨਣ ਗੋਬਿੰਦਪੁਰੀ, ਸੋਹਣ ਸਿੰਘ ਮੀਸ਼ਾ, ਸਰਦਾਰ ਅੰਜੁਮ, ਡਾ ਨਰੇਸ਼, ਦੀਪਕ ਜੈਤੋਈ, ਦਰਸ਼ਨ ਸਿੰਘ ਆਵਾਰਾ, ਠਾਕੁਰ ਭਾਰਤ, ਪ੍ਰਿੰ: ਤਖਤ ਸਿੰਘ ਤੇ ਜਗਤਾਰ ਆਦਿ।

ਇਸ ਸਮੇਂ ਦੌਰਾਨ ਪ੍ਰਿੰ: ਤਖਤ ਸਿੰਘ ਇਕ ਪੁਖ਼ਤਾ ਗ਼ਜ਼ਲਗੋ ਵਜੋਂ ਉਭਰਕੇ ਸਾਹਣੇ ਆਉਂਦਾ ਹੈ। ਪ੍ਰਿੰ: ਤਖ਼ਤ ਸਿੰਘ ਆਧੁਨਿਕ ਪੰਜਾਬੀ ਗ਼ਜ਼ਲ ਦਾ ਹੱਕਦਾਰ ਹੈ। ਪ੍ਰਿੰ: ਤਖ਼ਤ ਸਿੰਘ ਦੀਆਂ ਗ਼ਜ਼ਲਾਂ ਵਿੱਚ ਠੇਠ ਪੰਜਾਬੀ ਗ਼ਜ਼ਲ ਦਾ ਪ੍ਰਵਾਹ ਛੱਲਾਂ ਮਾਰਦਾ ਦਿਸਦਾ ਹੈ। ਡਾ. ਅਤਰ ਸਿੰਘ ਅਨੁਸਾਰ, "ਤਖ਼ਤ ਸਿੰਘ ਦੀ ਗ਼ਜ਼ਲ ਦਾ ਸਮੁੱਚਾ ਵਾਤਾਵਰਣ ਜਿਥੇ ਇਕ ਪਾਸੇ ਪੰਜਾਬ ਦੇ ਖੁੱਲੇ, ਡੁੱਲ੍ਹੇ, ਪੇਂਡੂ ਜੀਵਨ ਦੀ ਭਾਹ ਮਾਰਦਾ ਹੈ।, ਉੱਥੇ ਦੂਜੇ ਪਾਸੇ ਇਸਦਾ ਬਿੰਬ ਪਾਸਾਰ ਤਖ਼ਤ ਸਿੰਘ ਨੂੰ ਜੀਵਨ ਦੇ ਸੈਂਕੜੇ ਜ਼ਾਵੀਆਂ ਤੋਂ ਸਿਰਜਨਾ ਦਾ ਜਾਦੂ ਧੂੜਨ ਦਾ ਖੁੱਲ੍ਹਾ, ਅਵਸਰ ਪ੍ਰਦਾਨ ਕਰਦਾ ਹੈ।"[16]

ਪ੍ਰਿੰ: ਤਖ਼ਤ ਸਿੰਘ ਦੀ ਗ਼ਜ਼ਲ ਦਾ ਇਕ ਰੰਗ:

ਸਿਆੜ ਰਾਤ 'ਚ ਕੱਢਾਂ ਲਹੂ ਦੇ ਫ਼ਾਲੇ ਨਾਲ
ਸਮੇਂ ਦੇ ਖੇਤ 'ਚ ਚਾਨਣ ਦੇ ਬੀ ਖਿਲਾਰਾਂ ਮੈਂ।"[17]

ਪ੍ਰਿੰ: ਤਖ਼ਤ ਸਿੰਘ ਮਗਰੋਂ ਪੰਜਾਬੀ ਗ਼ਜ਼ਲ ਨੂੰ ਬੁਲੰਦੀਆਂ 'ਤੇ ਪਹੁੰਚਾਉਣ ਵਾਲਾ ਅਜ਼ੀਮ ਗ਼ਜ਼ਲਗੋ ਡਾ. ਜਗਤਾਰ ਹੈ। ਡਾ. ਜਗਤਾਰ ਬੌਧਿਕ ਸਮਰੱਥਾ ਵਾਲਾ ਜ਼ਹੀਨ ਸ਼ਾਇਰ ਹੈ, ਜੋ ਅਰਬੀ-ਫ਼ਾਰਸੀ ਤੋਂ ਲੈ ਕੇ ਉਰਦੂ ਦੀ ਕਦੀਮ ਅਤੇ ਆਧੁਨਿਕ ਗ਼ਜ਼ਲ ਦੀ ਸਮੁੱਚੀ ਪਰੰਪਰਾ ਤੋਂ ਜਾਣੂ ਸ਼ਾਇਰ ਹੈ। ਡਾ. ਜਗਤਾਰ ਦੀਆਂ ਪ੍ਰਕਾਸ਼ਿਤ ਰੂਪ ਵਿੱਚ ਕਰੀਬ 343 ਗ਼ਜ਼ਲਾਂ ਹਨ । ਡਾ. ਜਗਤਾਰ ਨੂੰ ਗ਼ਜ਼ਲ ਸਿਨਫ਼ 'ਤੇ ਅਬੂਰ ਹਾਸਿਲ ਹੈ, ਤਦੇ ਹੀ ਉਹ ਕਿਸੇ ਸਮੇਂ ਗ਼ਜ਼ਲ ਵਿੱਚ ਵਿਵਰਜਤ ਕਹੇ ਜਾਣ ਵਾਲੇ ਵਿਸ਼ਿਆਂ ਨੂੰ ਬੜੀ ਸੂਖ਼ਮਤਾ ਤੇ ਸੁਹਜ ਨਾਲ ਪੇਸ਼ ਕਰ ਸਕਿਆ ਹੈ। ਸੁਲੱਖਣ ਸਰਹੱਦੀ ਅਨੁਸਾਰ, "ਡਾ. ਜਗਤਾਰ ਦੀ ਗ਼ਜ਼ਲਕਾਰੀ ਨਾਲ ਪੰਜਾਬੀ ਗ਼ਜ਼ਲ ਵਿੱਚ ਇਕ ਇਨਕਲਾਬ ਵਾਪਰਦਾ ਹੈ ਅਤੇ ਉਸਦੇ

ਸਮਕਾਲੀ ਅਤੇ ਅਗਲੇ ਗ਼ਜ਼ਲਕਾਰਾਂ ਵਿੱਚ ਹੱਕ ਦੇ ਤੌਰ ਉੱਤੇ ਗ਼ਜ਼ਲ ਵਿੱਚ ਨਵੀਨ ਚਿਹਨਕਾਰੀ ਦਾ ਉਦਭਵ ਹੁੰਦਾ ਹੈ। ਉਸਨੇ ਪ੍ਰਗਤੀਵਾਦੀ ਰੁਮਾਂਸ ਸ਼ਿਅਰੀਕਰਨ ਨੂੰ ਨਵੀਂ ਡੂੰਘਾਈ ਤੇ ਸੰਜੀਦਗੀ ਪ੍ਰਦਾਨ ਕੀਤੀ।"[18]

ਡਾ. ਜਗਤਾਰ ਇਕ ਚਿੰਤਨੀ ਸੁਰ ਵਾਲਾ ਗ਼ਜ਼ਲਗੋ ਹੈ। ਉਹ ਸੋਸ਼ਿਤ ਅਵਾਮ, ਜਨ-ਸੰਗਰਾਮ, ਤੇ ਜਨ-ਮੁਕਤੀ ਦਾ ਪ੍ਰਤਿਨਿਧ ਤੇ ਪ੍ਰਤਿਬੱਧ ਸ਼ਾਇਰ ਬਣ ਕੇ ਉਭਰਦਾ ਹੈ। ਜਿਵੇਂ:

ਮੈਂ ਜ਼ਿੰਦਗੀ ਭਰ ਨਾ ਤਾਜ਼ਦਾਰਾਂ ਲਈ ਹੈ ਲਿਖਿਆ ਨਾ ਲਿਖ ਸਕਾਗਾਂ,
ਮੈਂ ਹਰ ਘਰੌਂਦੇ ਦੀ ਭੁੱਖ ਲਿਖਦਾਂ, ਮੈਂ ਖੁਸ਼ਕ ਖੇਤਾਂ ਦੀ ਪਿਆਸ ਲਿਖਦਾਂ।"[19]

ਪੰਜਾਬੀ ਗ਼ਜ਼ਲ ਦੇ ਤੀਸਰੇ ਦੌਰ ਵਿੱਚ ਅਮਰਜੀਤ ਸਿੰਘ ਸੰਧੂ, ਸੁਰਜੀਤ ਪਾਤਰ, ਅਮਰ ਸਿੰਘ ਜੋਸ਼, ਵਰਿਆਮ ਚੰਦ, ਮੁਹਿੰਦਰਦੀਪ ਗਰੇਵਾਲ, ਡਾ. ਤਿਰਲੋਕ ਸਿੰਘ ਆਨੰਦ, ਦੇਵਿੰਦਰ ਜੋਸ਼, ਮਹਿੰਦਰ ਦੀਵਾਨਾ, ਜਗਜੀਤ ਸਿੰਘ ਕੋਮਲ, ਮੁਹੰਮਦ ਅਫ਼ਜ਼ਲ, ਪ੍ਰੇਮ ਵਾਰਬਰਟਨੀ, ਪ੍ਰੇਮ ਅਬੋਹਰ ਵੀ, ਗੁਰਦੇਵ ਨਿਰਧਨ, ਅਜਾਇਬ ਹੁੰਦਲ, ਤਨਵੀਰ ਬੁਖ਼ਾਰੀ, ਅਜਾਇਬ ਚਿਤਰਕਾਰ, ਮੁਰਸ਼ਦ ਬੁਟਰਵੀ, ਉਲਫ਼ਤ ਬਾਜਵਾ ਆਦਿ ਹਨ। ਪੰਜਾਬੀ ਗ਼ਜ਼ਲ ਦੇ ਇਸ ਦੌਰ ਦਾ ਅਹਿਮ ਹਸਤਾਖ਼ਰ ਸੁਰਜੀਤ ਪਾਤਰ ਬਣਦਾ ਹੈ। ਪਾਤਰ ਦੇ ਪ੍ਰਵੇਸ਼ ਨਾਲ ਪੰਜਾਬੀ ਗ਼ਜ਼ਲ ਆਪਣੇ ਘੇਰੇ ਨੂੰ ਵਸੀਹ ਕਰਦੀ ਨਜ਼ਰੀ ਪੈਂਦੀ ਹੈ। ਭਾਵੇਂ ਸੁਰਜੀਤ ਪਾਤਰ ਵਿਚਾਰਧਾਰਕ ਪੱਖੋਂ ਪ੍ਰੋ. ਮੋਹਨ ਸਿੰਘ, ਬਾਵਾ ਬਲਵੰਤ ਵਰਗਾ ਪ੍ਰਤਿਬੱਧ ਸ਼ਾਇਰ ਤਾਂ ਨਹੀਂ ਪਰੰਤੂ ਫੇਰ ਵੀ ਉਹ ਆਪਣੇ ਕਾਵਿ-ਸਫ਼ਰ ਦੌਰਾਨ ਲੋਕ ਹਿਤੈਸ਼ੀ ਸ਼ਾਇਰ ਵਜੋਂ ਆਪਣੀ ਪਛਾਣ ਨੂੰ ਗੂੜ੍ਹਾ ਕਰਦਾ ਹੈ । ਪੰਜਾਬੀ ਗ਼ਜ਼ਲ ਦੇ ਵਿਕਾਸ ਵਿੱਚ ਪਾਤਰ ਦੀ ਭੂਮਿਕਾ ਬਾਰੇ ਡਾ. ਜਸਵਿੰਦਰ ਸਿੰਘ ਲਿਖਦਾ ਹੈ, " ਪਾਤਰ ਨੇ ਪੰਜਾਬੀ ਗ਼ਜ਼ਲ ਨੂੰ ਜਿਸ ਮਾਣਯੋਗ ਸਿਖ਼ਰ ਤੀਕ ਪਹੁੰਚਾਇਆ ਹੈ । ਇਹ ਪੰਜਾਬੀ ਕਾਵਿ ਨੂੰ ਉਸਦੀ ਚਿੰਰਜੀਵੀ ਦੇਣ ਮੰਨੀ ਜਾਂਦੀ ਰਹੇਗੀ। ਕਦੇ ਸਮੇਂ ਸੀ ਜਦੋਂ ਗ਼ਜ਼ਲ ਨੂੰ ਪੰਜਾਬੀ ਕਾਵਿ ਦਾ ਅੰਗ ਮੰਨਣ ਤੋਂ ਵਰਜਿਆ ਜਾਂਦਾ ਸੀ, ਪਰ ਪਾਤਰ ਅਤੇ ਉਸਦੀ ਪੀੜ੍ਹੀ ਦੇ ਕੁਝ ਨਾਮਵਰ ਸ਼ਾਇਰਾਂ ਨੇ ਜਿਸ ਥੀਮਕ ਮੌਲਿਕਤਾ, ਪੰਜਾਬੀ ਸੁਭਾਅ ਅਨੁਕੂਲ ਤਾਲ, ਚਾਲ ਅਤੇ ਰਿਦਮ ਉਸਾਰਕੇ ਪੰਜਾਬੀ ਜੀਵਨ ਜਾਂਚ ਦੇ ਕੇਂਦਰੀ ਜੀਵੰਤ ਅਤੇ ਬਲਸ਼ਾਲੀ ਸਰੋਕਾਰ ਪਰੋਕੇ, ਤਰਕ, ਤੁਕਾਂਤ ਅਤੇ ਹੋਰ ਰੂਪਾਕਾਰਕ ਗੁਣਾਂ ਨੂੰ ਸੰਜੋਅ ਕੇ ਗ਼ਜ਼ਲ ਦਾ ਜਿਹੜਾ ਸਰੂਪ ਸਿਰਜਿਆ, ਉਸਨੇ ਗ਼ਜ਼ਲ ਨੂੰ ਨਿਰਸੰਦੇਹ ਆਧੁਨਿਕ ਪੰਜਾਬੀ ਕਾਵਿ ਵਿੱਚ ਜੇ ਕੇਂਦਰੀ ਨਹੀਂ ਤਾਂ ਅਹਿਮ ਸਥਾਨ ਹਾਸਿਲ ਕਰਵਾਇਆ ਹੈ।"[20]

ਸੁਰਜੀਤ ਪਾਤਰ ਦੀ ਗ਼ਜ਼ਲ ਦਾ ਨਮੂਨਾ:

"ਅੱਗ ਦਾ ਨਾਮ ਹੀ ਸੁਣਦਾ ਹਾਂ ਤਾਂ ਡਰ ਜਾਂਦਾ ਹਾਂ।
ਮੈਂ ਜੁ ਪਿੱਤਲ ਹਾਂ ਖਰੇ ਸੋਨਿਓਂ ਵਿਕਿਆ ਹੋਇਆ।"[21]

ਵੀਹਵੀਂ ਸਦੀ ਦੇ ਨੈਵੇਂ ਦਹਾਕੇ ਤੋਂ ਬਾਅਦ ਬੌਧਿਕ ਤੌਫ਼ੀਕ ਵਾਲੇ ਅਤੇ ਪੁਖ਼ਤਗੀ ਨਾਲ ਗ਼ਜ਼ਲ ਕਹਿਣ ਵਾਲੇ ਕਾਫ਼ੀ ਗ਼ਜ਼ਲਗੋ ਹੋਂਦ ਗਤ ਹੋਏ ਹਨ। ਇਸ ਸਮੇਂ ਦੌਰਾਨ ਪਿਛਲੇ ਦੌਰ ਦੇ ਕਈ ਗ਼ਜ਼ਲਗੋ ਵੀ ਸਰਗਰਮ ਰਹੇ ਹਨ। ਨਵੇਂ ਸ਼ੁਮਾਰ ਹੋ ਰਹੇ ਗ਼ਜ਼ਲਕਾਰਾਂ ਦੀ ਸੂਚੀ ਬਹੁਤ ਲੰਮੇਰੀ ਹੈ। ਉਹਨਾਂ ਵਿੱਚੋਂ ਕੁਝ ਇਕ ਚਰਚਿਤ ਗ਼ਜ਼ਲਗੋ-ਪ੍ਰੋ. ਜਸਪਾਲ ਗਈ, ਰਬਿੰਦਰ ਮਸਰੂਰ, ਲਖਵਿੰਦਰ ਜੌਹਲ, ਸੁਰਜੀਤ ਜੱਜ, ਜਸਵਿੰਦਰ, ਵਿਜੇ ਵਿਵੇਕ, ਗੁਰਤੇਜ ਕੋਹਾਰਵਾਲਾ, ਬਰਜਿੰਦਰ ਚੌਹਾਨ, ਗੁਰਭਜਨ ਗਿੱਲ, ਸਤੀਸ਼ ਗੁਲਾਟੀ, ਹਰਦਿਆਲ ਸਾਗਰ, ਸ਼ਮਸ਼ੇਰ ਮੋਹੀ, ਕਵਿੰਦਰ ਚਾਂਦ, ਸ਼ੁਸ਼ੀਲ ਦੁਸਾਂਝ, ਜਗਤਾਰ ਸੇਖਾ, ਜਗਵਿੰਦਰ ਜੋਧਾ, ਤ੍ਰੈਲੋਚਨ ਲੋਚੀ, ਮਨਜਿੰਦਰ ਧਨੋਆ ਆਦਿ ਹਨ।

ਉਪਰੋਕਤ ਸ਼ਾਇਰਾਂ ਤੋਂ ਇਲਾਵਾਂ ਨਾਰੀ ਗ਼ਜ਼ਲਕਾਰਾਂ ਵੀ ਗ਼ਜ਼ਲ-ਖੇਤਰ ਵਿੱਚ ਵਿੱਚ ਸਰਗਰਮ ਹਨ। ਜਿੰਨ੍ਹਾਂ ਵਿੱਚ ਪ੍ਰਮੁੱਖ-ਸੁਰਜੀਤ ਸਖੀ, ਸੁਖਵਿੰਦਰ ਅੰਮ੍ਰਿਤ, ਬਲਜੀਤ ਤੁਲਸੀ, ਨਿਰਅੰਜਨ ਅਵਤਾਰ, ਸੁਰਜੀਤ ਨੂਰ, ਸਪਨ ਮਾਲਾ, ਗੁਰਚਰਨ ਕੋਚਰ ਆਦਿ ਹਨ।

ਪੰਜਾਬੀ ਗ਼ਜ਼ਲ ਪੰਜਾਬ ਤੋਂ ਬਾਹਰ ਭਾਵ ਵਿਸ਼ਵ ਦੇ ਕਈ ਦੇਸ਼ਾਂ ਵਿੱਚ ਲਿਖੀ ਜਾ ਰਹੀ ਹੈ। ਪਰਵਾਸੀ ਗ਼ਜ਼ਲ ਨਸਲੀ ਵਿਤਕਰਾ, ਭੂ-ਹੇਰਵਾ, ਬਗਾਨਗੀ, ਮਾਨਸਿਕ ਟੁੱਟ-ਭੱਜ, ਸਾਮਰਾਜੀ ਲੁੱਟ, ਖ਼ਪਤ ਸੱਭਿਆਚਾਰ, ਕਿਰਤ ਦਾ ਸ਼ੋਸ਼ਣ ਆਦਿ ਵਿਸ਼ਿਆਂ ਨੂੰ ਆਪਣੇ ਕਲੇਵਰ ਵਿੱਚ ਲੈਂਦੀ ਹੈ। ਪ੍ਰਵਾਸੀ ਗ਼ਜ਼ਲਕਾਰਾਂ ਦੀ ਗਿਣਤੀ 100 ਤੋਂ ਵਧੇਰੇ ਹੈ। ਉਹਨਾਂ ਵਿੱਚ ਪ੍ਰਮੁੱਖ ਗ਼ਜ਼ਲਗੋ-ਹਰਜਿੰਦਰ ਕੰਗ, ਕੁਲਵਿੰਦਰ, ਨਿਰੰਜਨ ਸਿੰਘ ਨੂਰ, ਜਗਜੀਤ ਬਰਾੜ, ਸੁਰਿੰਦਰ ਸੋਹਲ, ਨਦੀਪ ਪਰਮਾਰ, ਸੁਰਿੰਦਰ ਸੀਰਤ, ਉਂਕਾਰ ਪ੍ਰੀਤ, ਸੁਰਿੰਦਰ ਸੀਹਰਾ, ਰਾਜਵੰਤ ਰਾਜ, ਰਾਜਵੰਤ ਬਾਗੜੀ, ਰਾਜਿੰਦਰ ਜਿੰਦ, ਪਰਮਜੀਤ ਸਾਗਰ, ਅਸਰਫ਼ ਗਿੱਲ, ਰਣਧੀਰ ਸਿੰਘ ਨਿਊਯਾਰਕ, ਗਿੱਲ ਮੋਰਾਂਵਾਲੀ, ਸੁਰਿੰਦਰਗੀਤ, ਗੁਰਮੇਜ ਦੁੱਗਲ ਆਦਿ ਹਨ। ਪੰਜਾਬੀ ਗ਼ਜ਼ਲ ਦੀ ਉਤਪਤੀ ਤੋਂ ਲੈ ਕੇ ਸਮਕਾਲ ਤੱਕ ਦੇ ਇਤਿਹਾਸਕ ਕ੍ਰਮ ਨੂੰ ਵਾਚਦਿਆਂ-ਘੋਖਦਿਆਂ ਨਜ਼ਰੀ ਪੈਂਦਾ ਹੈ ਕਿ ਗ਼ਜ਼ਲ ਵਿਧਾ ਅਰਬੀ ਤੋਂ ਪੰਜਾਬੀ ਕਾਵਿ ਵਿੱਚ ਸੰਮਲਿਤ ਹੋ ਕੇ ਅਹਿਮ ਸਥਾਨ ਗ੍ਰਹਿਣ ਕਰਦੀ ਹੈ। ਭਾਵੇਂ ਗ਼ਜ਼ਲਕਾਰਾਂ ਨੇ ਅਰੂਜ਼ੀ ਬਹਿਰਾਂ ਵਰਤੀਆਂ/ਵਰਤ ਰਹੇ ਹਨ ਪਰ ਪੰਜਾਬੀ ਦੀਆਂ ਨਿਰੋਲ ਬਹਿਰਾਂ ਵਿੱਚ ਵੀ ਗ਼ਜ਼ਲ ਕਹੀ ਜਾਂਦੀ ਰਹੀ ਹੈ/ਕਹੀ ਜਾ ਰਹੀ ਹੈ। ਗ਼ਜ਼ਲ ਸਿਨਫ਼ ਵਿੱਚ ਰੂਪ ਵਿਧਾਨਕ ਤੇ ਵਿਸ਼ੇ ਪੱਖ ਤੋਂ ਨਵੇਂ ਪ੍ਰਯੋਗ ਹੋ ਰਹੇ ਹਨ।

ਆਧੁਨਿਕ ਸਮੇਂ ਵਿੱਚ ਪਰੰਪਰਕ ਵਿਸ਼ੇ ਤੇ ਆਧੁਨਿਕ ਵਿਸ਼ੇ ਸਮਾਂਤਰ ਨਿਭਾਏ ਜਾਂਦੇ ਰਹੇ ਹਨ/ਨਿਭਾਏ ਜਾ ਰਹੇ ਹਨ। ਡਾ. ਜਗਤਾਰ ਅਤੇ ਸੁਰਜੀਤ ਪਾਤਰ ਦੀ ਨਿੱਗਰ ਗ਼ਜ਼ਲ ਨਾਲ ਆਧੁਨਿਕਤਾ ਦਾ ਰੰਗ ਨਿਖਰ ਕੇ ਸਾਹਣੇ ਆਇਆ ਹੈ। ਜਿਥੇ ਸਮਕਾਲੀ ਸਮੇਂ ਵਿੱਚ ਖੁੱਲ੍ਹੀ ਕਵਿਤਾ ਦੇ ਉਹਲੇ ਜ਼ਿਆਦਾਤਰ ਨਸਰ-ਨੁਮਾ ਬੋਝਲ ਕਵਿਤਾ ਹੀ ਸਿਰਜੀ ਜਾ ਰਹੀ ਹੈ, ਉੱਥੇ ਗ਼ਜ਼ਲ ਸਰੋਦੀ ਤੇ ਸਰਲ ਰੂਪ ਵਿੱਚ ਆਧੁਨਿਕ ਸਮੇਂ ਨਾਲ ਬਰ ਮੇਚਕੇ ਤੁਰਦੀ ਹੋਈ, ਵਿਲੱਖਣ ਪਹਿਚਾਣ ਨੂੰ ਕਾਇਮ ਰੱਖਦੀ ਹੋਈ ਪੰਜਾਬੀ ਕਾਵਿ-ਅੰਬਰ ਉੱਤੇ ਧਰੂ ਤਾਰ ਵਾਂਗ ਚਮਕ ਰਹੀ ਹੈ।

**ਹਵਾਲੇ ਤੇ ਟਿੱਪਣੀਆਂ:-**


**(1) .** ਦਵਿੰਦਰ ਸਿੰਘ, ਡਾ. ਜਗਤਾਰ : ਸ਼ਬਦ ਸੰਵਾਦ (ਸੰਪਾ:), ਪੰਨਾ, 77

**(2).** ਨਰੇਸ਼, ਗ਼ਜ਼ਲ ਦੀ ਪਰਖ, ਪੰਨਾ, 67

**(3).** ਮੇਲਾ ਬਖਸ਼ ਕੁਸ਼ਤਾ, ਪੰਜਾਬੀ ਸ਼ਾਇਰਾਂ ਦਾ ਤਜ਼ਕਰਾ, ਪੰਨਾ, 309

**(4).** ਉਧਰਿਤ ਸ਼ਮਸ਼ੇਰ ਮੋਹੀ, ਪੰਜਾਬੀ ਗ਼ਜ਼ਲ ਚਿੰਤਨ, ਪੰਨਾ, 79

**(5).** ਸਾਧੂ ਸਿੰਘ ਹਮਦਰਦ, ਗ਼ਜ਼ਲ: ਜਨਮ ਤੇ ਵਿਕਾਸ, ਪੰਨਾ, 168

**(6).** ਕੰਚਨ ਸਿੰਘ, ਗ਼ਜ਼ਲ ਅਧਿਐਨ ਤੇ ਮੋਹਨ ਸਿੰਘ ਕਾਵਿ, ਪੰਨਾ, 32

**(7).** ਉਧਰਿਤ, ਸਾਧੂ ਸਿੰਘ ਹਮਦਰਦ, ਗ਼ਜ਼ਲ: ਜਨਮ ਤੇ ਵਿਕਾਸ, ਪੰਨਾ, 171

**(8).** ਉਹੀ ਪੰਨਾ , 175

(9). ਸੁਲੱਖਣ ਸਰਹੱਦੀ, ਸੰਪੂਰਨ ਪਿੰਗਲ ਅਤੇ ਅਰੂਜ਼, ਪੰਨਾ, 527

**(10).** ਪ੍ਰੋ. ਜਸਪਾਲ ਘਈ, ਪੰਜਾਬੀ ਗ਼ਜ਼ਲ ਦਾ ਸੁਹਜ ਸ਼ਾਸਤਰ, (ਸੰਪਾ. ਗਿੱਲ ਮੋਰਾਂਵਾਲੀ, ਸੁਲੱਖਣ ਸਰਹੱਦੀ) ਪੰਨਾ, 111

**(11).** ਡਾ. ਜਗਤਾਰ, ਪੰਜਾਬੀ ਗ਼ਜ਼ਲ ਦਾ ਸੁਹਜ ਸ਼ਾਸਤਰ, (ਸੰਪਾ. ਗਿੱਲ ਮੋਰਾਂਵਾਲੀ, ਸੁਲੱਖਣ ਸਰਹੱਦੀ) ਪੰਨਾ, 19

**(12) .** ਉਧਰਿਤ, ਐਸ. ਤਰਸੇਮ, ਪੰਜਾਬੀ ਗ਼ਜ਼ਲ ਸ਼ਾਸਤਰ, ਪੰਨਾ, 248

**(13).** ਪ੍ਰੋ: ਮੋਹਨ ਸਿੰਘ, ਮੇਰੀ ਚੌਣਵੀ ਕਵਿਤਾ, ਪੰਨਾ, 110

**(14)** . ਐਸ. ਤਰਸੇਮ, ਪੰਜਾਬੀ ਗ਼ਜ਼ਲ ਸ਼ਾਸਤਰ, ਪੰਨਾ, 253

**(15).** ਡਾ. ਕੁਲਬੀਰ ਸਿੰਘ ਕਾਂਗ, (ਸੰਪਾ.) ਬਾਵਾ ਬਲਵੰਤ ਦਾ ਕਾਵਿ-ਸੰਸਾਰ, ਪੰਨਾ, 309

**(16).** ਡਾ. ਅਤਰ ਸਿੰਘ, ਭੂਮਿਕਾ, ਲਹੂ ਦੀ ਵਰਖਾ (ਤਖ਼ਤ ਸਿੰਘ) ਪੰਨਾ, 9

**(17).** ਕਰਨਲ ਗੁਰਦੀਪ ਸਿੰਘ ਜਗਰਾਓਂ (ਸੰਪਾ.) ਪ੍. ਤਖ਼ਤ ਸਿੰਘ ਦੀਆਂ ਗ਼ਜ਼ਲਾਂ, ਪੈਠਾ, 96

**(18).** ਸੁਲੱਖਣ ਸਰਹੱਦੀ, ਪੰਜਾਬੀ ਗ਼ਜ਼ਲ: ਗਲੋਬਲੀ ਸਮੀਖਿਆ, ਪੰਨਾ, 255

**(19).** ਡਾ. ਜਗਤਾਰ, ਜੁਗਨੂੰ ਦੀਵਾ ਤੇ ਦਰਿਆ, ਪੰਨਾ, 10

**(20).** ਜਸਵਿੰਦਰ ਸਿੰਘ, ਨਵੀਂ ਪੰਜਾਬੀ ਕਵਿਤਾ: ਪਛਾਣ ਚਿੰਨ੍ਹ, ਪੰਨਾ, 98

**(21).** ਸੁਰਜੀਤ ਪਾਤਰ, ਲਫ਼ਜ਼ਾਂ ਦੀ ਦਰਗਾਹ, ਪੰਨਾ, 35

ਮੋਬਾਇਲ. 88048-00007 E-mail- brarjagjeet07@gmail.com

www.bohalshodhmanjusha.com Bohal Shodh Manjusha ISSN: 2395-7115
Impact Factor:8.642 January 2025 Page No. : 249-254
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

# TEACHING EFFECTIVENESS OF SECONDARY SCHOOL TEACHERS

**MR. RAVINDER SINGH,** RESEARCH SCHOLAR,
DEPARTMENT OF EDUCATION, KURUKSHETRA UNIVERSITY

**Abstract**:

Effective teaching is a complex art aimed at improving student learning. The effectiveness of teaching plays a crucial role in making learning more meaningful and impactful for students. This study investigates the teaching effectiveness of Government Secondary School teachers in Haryana. A descriptive survey method was employed, with a sample of 480 teachers selected through stratified random sampling. Data were collected using the Teaching Effectiveness Scale developed by Sarkar and Deb (2021), and analyzed using mean, standard deviation, and t-tests. The results revealed that the majority of teachers (51.67%) displayed moderate teaching effectiveness, with only 1.67% exhibiting high effectiveness. Female teachers significantly outperformed their male counterparts, while no significant differences were found based on locality or teaching subject. Teachers with fewer than 10 years of experience demonstrated higher effectiveness than those with more experience. These findings underscore the importance of professional development and targeted interventions to improve teaching effectiveness.

**Keywords:** Teaching effectiveness, teachers, locality, age, teaching experience, government secondary schools, professional development, teacher training and student outcomes.

## Introduction

Teachers play a crucial role in the progress and development of any nation, as they contribute significantly to shaping individuals who will ultimately shape society. Their work in guiding and educating students is central to nation-building, and the quality of education is closely linked to the quality of its teachers (Kareem & Ravirot, 2014). Teachers are often regarded as the backbone of the education system, facilitating the teaching-learning process and ensuring its success (Afe, 2000; Kiadese, 2011). The academic outcomes of students are heavily influenced by the effectiveness of their teachers, making them an indispensable factor in any educational framework. As emphasized by the Kothari Education Commission (1964-66), the competence, quality, and character of teachers are among the most significant determinants of education quality and national development. A strong correlation exists between teacher-related factors and student achievement, as noted by Olatoye (2006), Adekola (2006), and Kiadese (2011). In this context, Postlethwaite (2007) identified that students' academic performance is influenced by various factors, including teacher-related variables, environmental or family-related variables, and school-related variables. Among these, teaching effectiveness stands out as a critical teacher-related factor that greatly enhances student achievement.

**Teaching Effectiveness**:

Teaching is a dynamic process requiring dedication, quality resources, and personalized feedback to foster growth in both teachers and students. Oyedeji (1998) defines teaching as imparting knowledge, skills, and attitudes to bring about positive change, while Ogunyemi (2000) emphasizes its goal of ensuring meaningful learning. Effective teaching significantly impacts student achievement, integrating teacher expertise, content relevance, student needs, and clear objectives (McKeachie, 1997). Ramsden (1992) and Weimer (2009) stress that effective teaching empowers students, fostering mastery and lifelong learning.

Kullbert (1989) and Baker (1990) highlight effective teaching as a catalyst for curiosity, active learning, and creative thinking, while Bastick (1995) views it as maximizing academic success and satisfaction. Ogunyemi (2000) underscores its role in developing cognitive, affective, and psychomotor skills, and Evans (2006) connects effective teaching to teacher-pupil interactions and behavioral impact. Afe (2003) further adds that it requires intellectual, emotional, and social stability, alongside a passion for inspiring students. Thus, teaching effectiveness remains pivotal in shaping student outcomes and addressing the evolving demands of education.

**Review of Related Literature**

***Kumar, Rana, and Thapliyal (2024)*** found that government teachers outperformed private school teachers, with female teachers also showing higher effectiveness than males. ***Seth and Pandey (2024)*** found no significant difference in teaching effectiveness between male and female teachers in Prayagraj City. ***Donna Lalnunfeli (2019)*** similarly found no significant differences in teaching effectiveness based on gender, qualifications, or educational stage. ***Promod Kuar Naik (2018)*** also observed no gender-based differences in teaching effectiveness among male and female teachers in government and private schools, regardless of locality. However, ***Kumari and Chahal (2017)*** found that government school teachers were more effective than private school teachers, with no significant effect from gender or locality. ***Biswas (2017)*** noted significant differences in teaching effectiveness based on locality, class level, and academic streams. ***Pachaiyappan and Ushalaya Raj (2014)*** studied the Teacher Effectiveness of Secondary and Higher Secondary School Teachers. The results indicated no significant difference in teacher effectiveness between male and female teachers. However, significant differences were found based on locale, stream (arts and science), school level (secondary and higher secondary), teaching experience, and type of school management.

**Justification of the study**

Teaching Effectiveness refers to the combination of experiences, characteristics, behaviors, and attitudes that are commonly seen in highly effective educators. It signifies the highest level of competence, efficiency, and productivity that a teacher can achieve. A teacher's influence on a student's personality development is profound, highlighting the importance of having teachers who are capable of handling work-related stress, adapting to their environment, and delivering quality outcomes in terms of student achievement and learning. The emotional well-being of teachers, such as their happiness and positivity, can directly impact students. It is only through the presence of skilled and effective teachers that educational goals can be met, enabling a nation to become a leader in academic excellence. The teacher's role is pivotal, and without educators with a positive mindset, the education system would face significant challenges.

**Objectives of the study:**

1. To study the level of Teaching Effectiveness of Secondary School Teachers.

2. To study the difference between Teaching Effectiveness of Secondary School Teachers with regard to Gender, Locality, Teaching Subject and Teaching Experience.

**Hypothesis of the study**

There exists no significant difference in Teaching Effectiveness of Secondary School Teachers with regard to their (1). Gender, (2). Locality, (3) Teaching Subject and (4)Teaching Experience.

**Methodology Used:**

The researcher employed a descriptive survey method in this study. This approach was used to gather data and analyze the variables in question.

**Population and Sample:**

The population of the study comprises secondary level teachers from Government Senior Secondary Schools under the Haryana Board of School Education (HBSE). A multi-stage random sampling method was used to select a sample of 480 teachers from 48 schools.

**Research Tools Used:**

In this study, data was collected using the Teaching Effectiveness Scale developed and standardized by Dr. Subhash Sarkar and Abhijit Deb (2021).

**Statistical Techniques Employed:**

The Mean, median, mode, standard deviation, range, percentage and t-test were use for the analysis of the collected data.

**Data Analysis & Results**

***Table 1. Descriptive analysis of the scores obtained by secondary school teachers on Teaching Effectiveness Scale (TES) (N=480)***

| Sr. No. | Levels of TE | Raw Score Range | Frequency | Percentage |
|---|---|---|---|---|
| **1.** | High | 191 & above | 8 | 1.67 |
| **2.** | Above Average | 176-190 | 118 | 24.58 |
| **3.** | Average/ Moderate | 159-175 | 248 | 51.67 |
| **4.** | Below Average | 144-158 | 84 | 17.50 |
| **5.** | Low | 143 & Below | 22 | 4.58 |

Table 1 shows the distribution of teaching effectiveness levels among 480 secondary school teachers: 1.67% (8 teachers) exhibited high effectiveness (scores ≥191), 24.58% (118 teachers) were above average (scores 176–190), 51.67% (248 teachers) had moderate effectiveness (scores 159–175), 17.50% (84 teachers) were below average (scores 144–158), and 4.58% (22 teachers) had low effectiveness (scores ≤143).

***Table 2. Comparison of Mean scores of Teaching Effectiveness of Secondary School Teachers with regard to Gender i.e. Male and Female***

| Variable | Gender | N | Mean | SD | SEd | t-value | Level of Significance |
|---|---|---|---|---|---|---|---|
| Teaching Effectiveness | Male | 202 | 168.88 | 13.81 | 1.173 | 3.06 | Significant at 0.01 & 0.05 |
| | Female | 278 | 165.35 | 11.80 | | | |

The observed 't' value of 3.06 surpasses the critical value of 2.58 at the 0.01 level, signifying a notable difference in teaching effectiveness between male and female teachers. Therefore, Hypothesis 1 is disproven.

***Table 3. Comparison of Mean scores of Teaching Effectiveness of Secondary School Teachers with regard to Locality i.e. Rural and Urban***

| **Variable** | **Locality** | **N** | **Mean** | **SD** | **SEd** | **t-value** | **Level of Significance** |
|---|---|---|---|---|---|---|---|
| Teaching Effectiveness | Rural | 249 | 166.17 | 13.08 | 1.17 | 1.18 | Not Significant at 0.01 & 0.05 |
| | Urban | 231 | 167.55 | 12.46 | | | |

The computed 't' value of 1.18 falls below the critical value of 1.96 at the 0.05 level, showing no significant disparity in teaching effectiveness between rural and urban teachers. Consequently, Hypothesis 2 stands affirmed.

***Table 4. Comparison of Mean scores of Teaching Effectiveness of Secondary School Teachers with regard to Teaching Subject i.e. Arts and Science***

| **Variable** | **Subjects** | **N** | **Mean** | **SD** | **SEd** | **t-value** | **Level of Significance** |
|---|---|---|---|---|---|---|---|
| Teaching Effectiveness | Arts | 294 | 167.46 | 11.64 | 1.20 | 1.34 | Not Significant at 0.01 & 0.05 |
| | Science | 186 | 165.85 | 14.40 | | | |

The derived 't' value of 1.34 is lower than the critical threshold of 1.96 at the 0.05 level, reflecting no substantial variation in teaching effectiveness between arts and science teachers. Thus, Hypothesis 3 is validated.

***Table 5. Comparison of Mean scores of Teaching Effectiveness of Secondary School Teachers with regard to Teaching Experience i.e. Up to 10 years and Above 10 years***

| **Variable** | Teaching Experience | **N** | **Mean** | **SD** | **SEd** | **t-value** | **Level of Significance** |
|---|---|---|---|---|---|---|---|
| Teaching Effectiveness | Up to 10 years | 208 | 165.02 | 12.96 | 1.17 | 2.74 | Significant at 0.01 & 0.05 |
| | Above 10 years | 272 | 168.22 | 12.50 | | | |

The calculated 't' value of 2.74 exceeds the table value of 2.58 at the 0.01 level, indicating a significant difference in teaching effectiveness of school teachers regarding their teaching experience Up to 10 years and Above 10 years. Thus, Hypothesis 4 is rejected.

**Main Findings of the Study**

Most teachers (51.67%) exhibit moderate teaching effectiveness, with only 1.67% showing high effectiveness. Female teachers significantly outperform male teachers, rejecting Hypothesis 1. No significant differences were found based on locality or teaching subjects, supporting Hypotheses 2 and 3. Teachers with up to 10 years of experience are more effective than those with over 10 years, rejecting Hypothesis 4. These findings highlight the need for professional support and targeted interventions to enhance teaching effectiveness.

**Suggestions and Educational Implications**

The findings highlight the need for targeted professional development programs, especially for teachers with over 10 years of experience, to keep their skills current. Mentorship initiatives, where experienced female teachers guide male teachers, can also help improve teaching effectiveness. Schools should implement evaluation and feedback systems, alongside recognition and reward programs, to maintain teacher motivation and engagement. Gender-sensitive training can enhance the strengths of female teachers while addressing challenges for male teachers. Additionally, providing support to teachers with moderate effectiveness through tailored interventions will further improve overall teaching quality.

## References


1. Berk, R.A. (2005). Survey of 12 strategies to measure teaching effectiveness. *International Journal of Teaching and Learning in Higher Education, 17*(1), 48-62.
2. Biswas, S. (2017). A comparative study of teaching effectiveness in relation to locality and academic streams. *Journal of Educational Research, 12*(2), 76-88.
3. Cheng, Y.C., & Tsui, K.T. (1999). Multimodels of teacher effectiveness: Implications for research. *The Journal of Educational Research, 92*(3), 141-150.
4. Evans, C. (2006). Teacher-pupil interactions and their effects on teaching effectiveness. *Educational Psychology Review, 18*(4), 299-312.
5. Habib, H. (2017). A study of teacher effectiveness and its importance. *National Journal of Multidisciplinary Research and Development, 3*(2), 530-532.
6. Kareem, O. M., & Ravirot, A. (2014). The role of teachers in nation-building. *International Journal of Education and Research, 2*(8), 345-358.
7. Kothari Education Commission. (1964-1966). *Report of the Education Commission (1964-66)*. Ministry of Education, Government of India.
8. Kumari, P., & Chahal, A. (2017). Comparative study of teaching effectiveness between government and private school teachers. *Journal of Educational Research, 29*(2), 56-68.
9. Lalnunfeli, D. (2019). Factors influencing teaching effectiveness in secondary education: A gender-based study. *Journal of Research in Education, 35*(4), 132-145.
10. Naik, P. K. (2018). Gender and locality differences in teaching effectiveness of school teachers. *International Journal of Education, 26*(5), 101-112.
11. Olatoye, R. A. (2006). Impact of teacher-related factors on students' academic performance in Nigeria. *Educational Research and Review, 1*(5), 100-108.
12. Postlethwaite, T. N. (2007). The role of teacher quality in student performance: A comparative analysis. *Journal of Educational Research, 101*(4), 205-220.
13. Pachaiyappan, P., & Ushalaya Raj, R. (2014). A study on teacher effectiveness of secondary and higher secondary school teachers. *Indian Journal of Education, 48*(1), 11-24.
14. Ramsden, P. (1992). *Learning to teach in higher education*. Routledge.

15. Seth, S., & Pandey, A. (2024). A comparative study of teaching effectiveness in Prayagraj City: Gender perspective. *Journal of Educational Research and Practice*, *12*(1), 45-56.

16. Weimer, M. (2009). *The teaching professor: A guide to effective teaching*. Jossey-Bass.

MOB. 9467134726 Email.: Ravinderdocuments1@gmail.com

देवानां भद्रा सुमतिर्ऋजूयताम्।। ऋ० १/८९/२

ISSN : 2395-7115

बोहल शोध मञ्जूषा

Bohal Shodh Manjusha

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED & REFEREED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

Publisher : Gugan Ram Educational & Social Welfare Society (Regd.)



**Table 2**

**Methodology for University and College Teachers for calculating Academic/Research Score**

(Assessment must be based on evidence produced by the teacher such as: copy of publications, project sanction letter, utilization and completion certificates issued by the University and acknowledgements for patent filing and approval letters, students' Ph.D. award letter, etc,.)

| S.N. | Academic/Research Activity | Faculty of Sciences /Engineering / Agriculture / Medical /Veterinary Sciences | Faculty of Languages / Humanities / Arts / Social Sciences / Library /Education / Physical Education / Commerce / Management & other related disciplines |
|---|---|---|---|
| 1. | **Research Papers in Peer-Reviewed or UGC listed Journals** | 08 per paper | 10 per paper |
| 2. | **Publications (other than Research papers)** | | |
| | **(a) Books authored which are published by ;** | | |
| | International publishers | 12 | 12 |
| | National Publishers | 10 | 10 |
| | Chapter in Edited Book | 05 | 05 |
| | Editor of Book by International Publisher | 10 | 10 |
| | Editor of Book by National Publisher | 08 | 08 |
| | | | |
| | | | |
| | **(b) Translation works in Indian and Foreign Languages by qualified faculties** | | |
| | Chapter or Research paper | 03 | 03 |
| | Book | 08 | 08 |
| 3. | **Creation of ICT mediated Teaching Learning pedagogy and content and development of new and innovative courses and curricula** | | |
| | **(a) Development of Innovative pedagogy** | 05 | 05 |
| | **(b) Design of new curricula and courses** | 02 per curricula/course | 02 per curricula/course |

गुगनराम एजुकेशनल एण्ड सोशल वेलफेयर सोसायटी (रजि.)
द्वारा भिवानी (हरियाणा), काठमाण्डू (नेपाल) से प्रकाशित

ISSN : 2395-7115
Impact Factor 8.642

# बोहल शोध मंजूषा

# Bohal Shodh Manjusha

AN INTERNATIONAL MULTI DISCIPLINARY, MULTIPLE LANGUAGES
PEER REVIEWED, REFREED RESEARCH JOURNAL

UGC Valid Journal (The Gazette of India, Extraordinary Part III, Section 4, Dated July 2018)

Website : www.bohalshodhmanjusha.com
Email : grsbohal@gmail.com

Editor :
Dr. Naresh Sihag, Advocate
HOD Hindi, Tantia University
M. : 8708822674, 9466532152

---

गीना देवी शोध संस्थान
[illegible]

ISSN : 2321-8037
Impact Factor 7.834

# Gina Shodh SANGAM

A Peer Reviewed & Refereed International Research Journal
Journal of Literature, Arts, Culture, Humanities and Social Sciences
UGC Valid Journal (The Gazette of India, Extraordinary Part III, Section 4, Dated July 2018)

Website : www.ginajournal.com
Email : grngobwn@gmail.com
Office : 8708822674

Editor :
Dr. Rekha Soni, Vice Principal
Education, Tantia University
M. 9828531975

---

गिरधारीलाल घासीराम शोधपीठ
द्वारा नई दिल्ली, आगरा, गाजियाबाद एवं नेपाल से प्रसारित

ISSN : 2348-5639
Impact Factor 6.521

# SHODH SAMALOCHAN

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES QUARTERLY RESEARCH JOURNAL

UGC Valid Journal (The Gazette of India, Extraordinary Part III, Section 4, Dated July 18, 2018)

Website : https://ginajournal.com/shodh-samalochan/
Executive Editor : Dr. Varsha Rani M. 9671904323
Managing Editor : Dr. Mukesh Verma M. 9627912535

Editor :
Dr. Naresh Sihag, Advocate
M. 8708822674